गुप्त भारत की खोज

लेखक

डाक्टर पाल ब्रन्टन

अनुवादक—श्री वी० वेंकटेश्वर शर्मा, शास्त्री
(हिन्दी अध्यापक, आंध्र विश्वविद्यालय)

V. Venkateswara Sastri

CENTRAL ARCHAEOLOGICAL
LIBRARY NEW DELHI.
Acc. No. 370
Date 27/5/48
Call No. 910.54/.... Sha

133.0954
Bru/Ven

ग्रन्थ-संख्या—७६

प्रकाशक तथा विक्रेता
भारती-भण्डार
लीडर प्रेस
इलाहाबाद

Acc. No:— 33673
Date:— 30-4-58
Call No:— 133.0954
Bru/Vew.

द्वितीय संस्करण
सं० २००३ वि०
मूल्य ५)

A Search in Secret India
Paul Brunton

मुद्रक
महादेव एन० जोशी
लीडर प्रेस, इलाहाबाद

कसमंडा

के

श्रीमान युवराज तथा श्रीमती युवराज्ञी

के कर-कमलों में—

अपनी पुस्तक का यह हिन्दी रूपान्तर

'गुप्त भारत की खोज'

सादर तथा सप्रेम समर्पित

—डा० पाल ब्रन्टन

विषय सूची

चित्र सूची

डा० पाल ब्रन्टन (लेखक)

प्राक्कथन

लेखक—सर फ्रांसिस यंगहस्बैंड, के॰ सी॰ आई॰ ई॰; के॰ सी॰ एस॰ आई॰, सी॰ आई॰ ई॰

इस पुस्तक का नाम यदि 'पवित्र भारत' होता तो बहुत ही उचित होता, कारण कि यह वर्णन उस भारत की खोज का है जो पवित्र होने के कारण ही गुप्त है। जीवन की अति पवित्र बातें कभी साधारण जनता के सामने प्रदर्शित नहीं की जातीं। मनुष्य का सहज स्वभाव ही कुछ ऐसा है कि वह ऐसी बातों को अपने ही अंतरतम वक्ष के निगूढ़ कोषागार में ऐसी सावधानी के साथ छिपाए रखता है कि शायद ही किसी को उनका पता लग पाता हो। उनका पता लगा लेने वाले वे ही थोड़े से व्यक्ति होते हैं जिनको आध्यात्मिक विषयों की सच्ची लगन होती है।

व्यक्ति के समान ही किसी देश के विषय में भी यह कथन पूर्ण रूप से लागू होता है। कोई भी देश अपने पवित्रतम विषयों को गोपनीय रक्खेगा। किसी भी अजनबी के लिए यह पता लगा लेना सरल नहीं है कि इंगलैण्ड अपनी किन बातों को सब से अधिक पवित्र समझता है। यही बात भारत के सम्बन्ध में भी ठीक है। भारत का अत्यन्त पवित्र अंग वही है जो अत्यन्त गुप्त है।

गुप्त विषयों की खोज करना बड़े परिश्रम और लगन का कार्य है; फिर भी सच्ची खोज करने वाले को अंत में उनका पता लग ही जायगा। जो पूर्ण मनोयोग और सच्चे संकल्प के साथ खोज के कार्य में लगते हैं वे अंत में सफल ही होते हैं।

श्री ब्रन्टन की लगन इसी प्रकार की थी और वे अंत में सफल ही हुए। उन्हें बड़ी कठिनाइयों का सामना करना पड़ा; क्योंकि और देशों की भाँति

भारत में भी आडम्बरपूर्ण आध्यात्मिकता का जाल फैला हुआ है और सत्य का पता लगाने के लिए इस झूठे जाल को काट कर आगे क़दम रखना पड़ता है। सच्ची आध्यात्मिकता के जिज्ञासु को अगणित आध्यात्मिक ढोंगियों और नटों जैसी कलाबाज़ी करने वाले व्यक्तियों के झुंडों की उपेक्षा करते हुए आगे बढ़ना पड़ता है। इन लोगों में बहुतेरे ऐसे भी होते हैं जिन्होंने अपने मन और शरीर पर काफ़ी अधिकार प्राप्त करके उन्हें पूर्ण रूप से नियंत्रित कर लिया है। ये अपने चित्त को एकाग्र करने में चरम सीमा तक पहुँच गए हैं। इनमें से कितने ही इस प्रकार की साधनाओं द्वारा अज्ञात शक्तियाँ प्राप्त करने में भी सफल हुए हैं।

इन सब में भी अपने अपने ढंग की रोचकता होती है। मनोविज्ञान का अध्ययन करने वाले वैज्ञानिकों के अध्ययन तथा परिशीलन के लिए वे उचित सामग्री हो सकते हैं। पर वे सच्चे साधु अथवा योगी नहीं कहे जा सकते। वे ऐसे स्रोत नहीं हैं जिनसे आध्यात्मिकता की धारा बह निकले।

श्री ब्रन्टन जिस गुप्त और पवित्र भारत की खोज करने गए थे उसका इस कोटि के व्यक्तियों से कोई सम्बन्ध नहीं है। श्री ब्रन्टन ने उन्हें देखा, उ- परखा और उनका वर्णन भी किया। परन्तु उन्हें पीछे छोड़ते हुए वे अपन खोज कार्य में आगे बढ़े। वे आध्यात्मिक अनुभूति के शुद्धतम और अत्यन्त निर्मल रूप का दर्शन करना चाहते थे और अन्त में उनकी सा- पूरी भी हुई।

श्री ब्रन्टन ने नगरों से दूर निर्जन नीरव जंगलों में, या हिमालय की तराइयों में भारत की मूर्तिमान पवित्रता का दर्शन पाया है, क्योंकि भारत के सच्चे साधु—महात्मा ऐसे ही स्थानों में जाकर निवास करते हैं। श्री ब्रन्टन सब से अधिक 'महर्षि' के साक्षात्कार से प्रभावित हुए। भारत भर में वे अपने ढंग के केवल अकेले नहीं हैं। भारत के कोने कोने की छान बीन करने इसी उच्च कोटि के व्यक्ति मिल सकते हैं, परन्तु उनकी संख्या अधिक नहीं किन्तु बहुत ही कम है। ये ही भारत की सच्ची प्रतिभा के परिचायक हैं और

ऐसे ही सच्चे साधुओं में परम पिता परमेश्वर विभिन्न अंशों में अपने को व्यक्त करता है।

अतः ऐसे महात्मा ही इस जगत में जिज्ञासुओं की खोज के परम योग्य लक्ष्य हैं।

प्रस्तुत ग्रंथ में इसी प्रकार की एक सफल खोज का परिणाम हमारे सामने उपस्थित किया गया है!

—फ्रांसिस यंगहस्बैंड
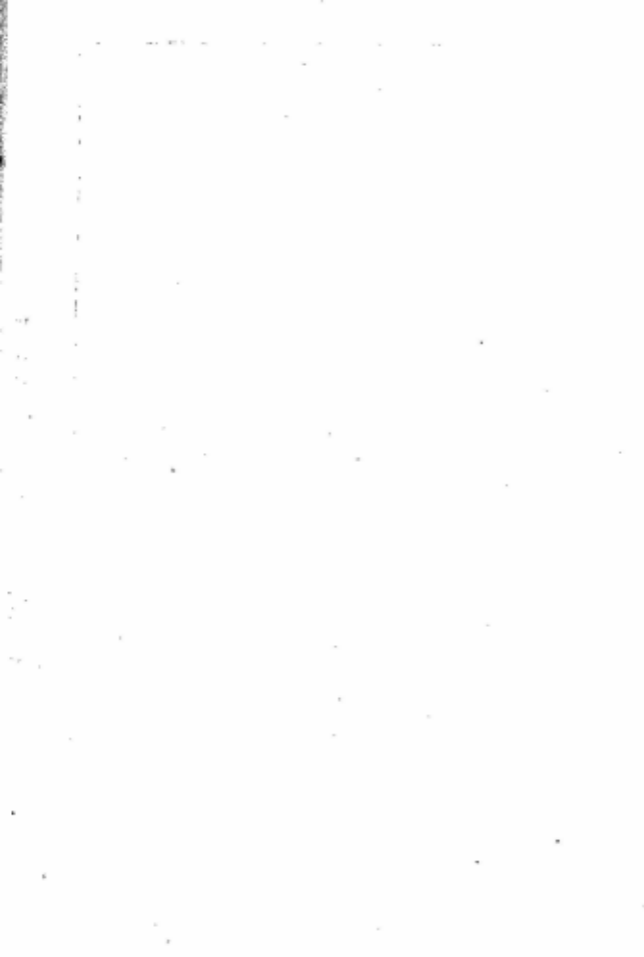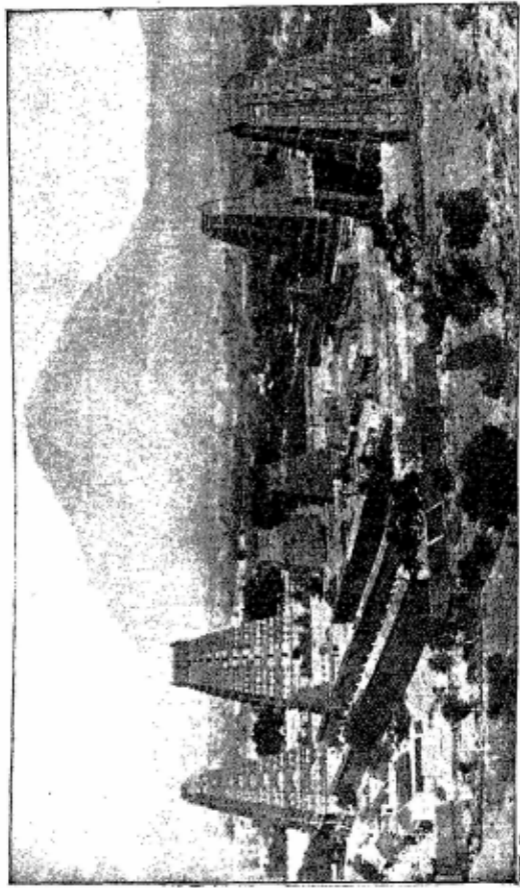
ज्योतिर्गिरि अरुणाचल पर अरुणाचलेश का मन्दिर

गुप्त भारत की खोज

१

पाठकों से निवेदन

भारतीय जीवन का एक पहलू अत्यन्त निगूढ़ और रहस्यमय है जिसका अपने पश्चिमी भाइयों के लाभार्थ स्पष्टीकरण करने की मैंने चेष्टा की है। शुरू के यूरोपीय यात्री स्वदेश वापस आने पर हिन्दुस्तान के फ़क़ीरों के सम्बन्ध में अनेकानेक जादूभरी कहानियाँ उपस्थित किया करते थे, और आजकल के यात्री भी कभी कभी कुछ ऐसी ही कथाएँ सुनाया करते हैं।

भारतवर्ष में एक विशेष कोटि के रहस्यपूर्ण व्यक्ति होते हैं जिन्हें कोई कोई तो फ़क़ीर कहते हैं और कोई योगी। उनके बारे में सदा अद्भुत वृत्तान्त सुने जाते हैं। पर क्या इन गाथाओं की तह में कोई सत्य भी है? बार बार यह बात दुहराई जाती है कि भारतवर्ष के प्राचीन विज्ञान का भांडार अत्यन्त रहस्यपूर्ण है और उसके अनुसार आचरण और अभ्यास करने से निश्चय ही मानसिक शक्तियों का असाधारण विकास हो जाता है। क्या ये कथन सत्य के आधार पर स्थित हैं? इस रहस्य का पता लगाने के लिए मैं एक लम्बे सफ़र पर चल पड़ा और यह कथा मेरी इसी खोज का एक संक्षिप्त ब्यौरा है।

इसे मैं संक्षिप्त ब्यौरा इसलिए कहता हूँ कि स्थल और समय के प्रतिबन्धों से मैं लाचार हूँ। कहीं कहीं मैं केवल एक ही योगी का उल्लेख कर सका हूँ जब कि वास्तव में मेरी भेंट कई योगियों से हुई थी। जिनके व्यक्तित्व का मेरे मन पर गहरा असर पड़ा है उन्हीं कुछ योगियों का वर्णन मैंने इस पुस्तक में किया है। इस चुनाव में यह ध्यान भी रक्खा गया है कि पश्चिमी

भाइयों के लिए किन योगियों की कथाएँ अधिक रोचक होंगी। कितने ही साधुओं के बारे में यह प्रसिद्धि सुनाई पड़ी कि उनका विज्ञान अगाध है और उन्होंने असाधारण शक्तियाँ प्राप्त की हैं। इन कथनों से आकृष्ट हो कर कड़ाके की धूप और झुलसाने वाली लू सह कर तथा कितनी ही रातें बिना सोये हुए बिता कर इन साधुओं की खोज में मैं भटकता फिरा। पर अन्त में अधिकांश धर्म-ग्रंथों के गुलाम, आदरणीय मूढ़, धनलोलुप नट, बाजीगर अथवा हाथ की सफ़ाई दिखाने वाले मदारी ही निकले। ऐसे व्यक्तियों के वर्णन से इस पुस्तक के पन्नों को काला करना न तो पाठकों के लिए उपयोगी होगा और न यह कार्य मुझे ही रुचिकर है। अतः अपने समय की बरबादी की इस कहानी को इतने में ही समाप्त करता हूँ।

मेरा यह विनम्र विश्वास है कि यह मेरा अहोभाग्य ही था कि भारतीय जीवन का एक ऐसा अप्रकट अंग भी मुझे देखने को मिला जो प्रायः साधारण पश्चिमी वासियों की दृष्टि अथवा उनकी बुद्धि के परे रहता है। इस विशाल भारत में रहने वाले अंग्रेज़ों में बहुत ही कम ऐसे होंगे जिन्होंने इस पहलू का अध्ययन करने का कष्ट उठाया हो। ऐसे जो होंगे वे पक्षपात रहित तथा गम्भीर समीक्षा करने के योग्य नहीं कहे जा सकते; क्योंकि उनके लिए अपने सरकारी पद के गौरव की रक्षा करना परम आवश्यक है। जिन अंग्रेज़ लेखकों ने इस विषय पर क़लम उठाई है वे एकदम वहमी और संशयात्मा बन बैठे हैं। इसका स्वाभाविक परिणाम यह हुआ है कि इस विषय का सच्चा और पूरा ज्ञान रखने वाले भारतीय ऐसे अंग्रेज़ लेखकों से इन विषयों की सच्ची चर्चा ही नहीं करना चाहते। अतः इस तत्व के पहचानने के कई साधन ऐसे लेखकों के लिए असाध्य ही रहे। यदि यूरोपीय लेखक योगियों के सम्बन्ध में जानकारी प्राप्त भी कर पाये हैं तो वह पूर्ण नहीं हुई है; और सच्चे योगियों तक तो उनकी पहुँच निश्चय ही नहीं हुई है। योगियों को जन्म देने वाले देश भारतवर्ष में ही सच्चे योगी अब उँगलियों पर गिने जा सकते हैं। उनकी संख्या अब नहीं के बराबर ही समझनी चाहिए। वे अपनी सिद्धियों को जनसाधारण से गोपनीय रखना पसंद करते हैं और जान-बूझ

कर साधारण लोगों के सामने अपने को मूढ़ सिद्ध करना चाहते हैं। चीन, तिब्बत या भारत में यदि कभी कोई पश्चिमी यात्री की भूले-भटके इन योगियों तक पहुँच हो जाती है तो वे बड़ी खूबी से अपने को अनाड़ी के रूप में प्रकट करते हैं और उनकी असलियत की उन गोरे मुसाफिरों को टोह तक नहीं मिलती। पता नहीं उनके इस प्रकार के आचरण का कारण क्या है; शायद वे 'जानन्नपि हि मेधावी जड़वल्लोके आचरेत्' वाली सूक्ति को ठीक मानते हैं। वे तो दूरवर्ती निर्जन स्थानों में रहने वाले संसार से विरक्त जीव हैं। किसी भी नये और अपरिचित व्यक्ति से भेंट होने पर वे उसको अपनी वास्तविकता से परिचित नहीं होने देते। कम से कम आगन्तुक का गहरा परिचय न होने तक वे उससे खुल कर बातें नहीं करते। इन्हीं कारणों से पश्चिम के लोग योगियों के अनूठे जीवन के बारे में बहुत कम लिख पाये हैं, और जो कुछ अब तक लिखा मिलता भी है वह अस्पष्ट और अपूर्ण है। कई भारतीय लेखकों ने इन योगियों के विषय में बहुत कुछ लिखा है। परन्तु इन लेखकों के कथनों को बड़ी सावधानी से स्वीकार करना होगा। खेद है कि प्राच्य लेखक मीमांसात्मक-वृत्ति त्याग कर वास्तविक तथ्यों के साथ किंवदन्तियों को भी मिला देते हैं। अतः उनकी पुस्तकों के उल्लेख पूर्ण रूप से प्रामाणिक नहीं माने जा सकते। जब मैंने स्वयं इन ग्रन्थों के उल्लेखों की सत्यता परखी तो मुझे बड़ा कटु अनुभव हुआ और मैंने भगवान को धन्यवाद दिया कि उसकी कृपा से मुझमें पश्चिमी वैज्ञानिक मनोवृत्ति का विकास हुआ और पत्रकार के पेशे को अपनाने के कारण सहज विवेक तथा छानबीन करने की आदत पड़ी। प्राच्य लोगों के अंध-विश्वासों की तह में निश्चय ही कुछ न कुछ वास्तविक तथ्य होता है परन्तु उसे खोज कर निकालने के लिए अत्यन्त सतर्क रहना आवश्यक है। जहाँ कहीं भी मैं गया मैं सदैव अपनी आलोचनात्मक वृत्ति को सजग बनाये रहा, परन्तु साथ ही मैंने जानबूझ कर विरोधी रुख भी नहीं रक्खा। दार्शनिक जिज्ञासा के अतिरिक्त रहस्यमय तथा अनहोनी बातों में भी मेरी अभिरुचि है, यह जान कर कितने ही लोगों ने मुझे जो बातें बतलाईं उनमें वास्तविक सत्य तो बहुत

कम था और कल्पना की मात्रा अत्यन्त अधिक। इस प्रकार के वर्णन सुनते समय कभी कभी मेरे अन्दर यह प्रेरणा उठा करती थी कि मैं इन लोगों को साफ साफ समझा दूँ कि सत्य का पाया स्वयं ही बहुत मज़बूत है और वह बिना किसी सहारे के ही दृढ़ता के साथ जमा रहेगा; लेकिन इस झगड़े में पड़ने की मुझे फुर्सत ही न थी। तो भी खुशी की बात है कि जिस प्रकार मैं महात्मा ईसा के भाष्यकारों की नासमझी की अपेक्षा उन्हीं के सत्य वचनों का अध्ययन करना अधिक उचित समझता हूँ उसी प्रकार प्राच्य संसार के रहस्यों तथा अद्भुत महिमाओं को भी मैंने अपनी निजी विवेचनात्मक कसौटी पर कस कर परखना ही अधिक उचित समझा। कड़ी से कड़ी परीक्षा पर भी खरी उतरने वाली सत्य सूक्तियों की तलाश में मुझे उनके साथ मिश्रित घोर अंध-विश्वासों तथा परम्परागत चली आई हुई थोथी बातों को अलग हटा देना पड़ा। यह मेरे लिए आत्म-प्रशंसा की बात है कि यदि मेरे स्वभाव में वैज्ञानिकों जैसी प्रत्येक बात को संशय और सन्देह से देखने की सनक और साथ ही आध्यात्मिक जिज्ञासा की सच्ची लगन का अपूर्व मेल न होता तो मैं अपनी इस खोज के कार्य में कभी सफल न होता, क्योंकि साधारणतया ये दोनों प्रवृत्तियाँ निरन्तर विरोधी और संघर्षमय हैं।

इस पुस्तक का नाम मैंने 'गुप्त भारत' इसलिए रक्खा है कि यह उस भारत की कथा है जो हज़ारों वर्ष से परखने वालों की आँखों से ओझल रहा है, जो संसार से इतना अलग और एकान्त रहा है कि आज उसके बचे-खुचे चिन्ह ही रह गये हैं और जिनके शीघ्र ही मिट जाने की सम्भावना है। जनसत्तात्मकता के इस युग में हमें यह बात बिलकुल स्वार्थ भरी जँचेगी कि इन योगियों ने अपनी इस ज्ञान-राशि को गोपनीय रक्खा, परन्तु इसके लुप्त-प्राय होने का यही प्रधान कारण है।

इस समय भारत में अंग्रेज़ हज़ारों की तादाद में बसे हुए हैं और हर साल भ्रमण के लिए सैकड़ों इस देश की यात्रा करते हैं। लेकिन बहुत कम लोग यह जानते हैं कि भारत में एक ऐसी अमूल्य निधि भी है जो अन्त में संसार के सामने भारत के सोने, चाँदी और जवाहिरातों से भी अधिक क़ीमती

ठहरेगी। किसी अँधेरी गुफा में बैठे अर्धनग्न भारतीय साधु अथवा शिष्यों से घिरे हुए ज्ञान-वार्ता को चलाने वाले महात्मा को साष्टांग दंडवत करना शायद ही किसी अंग्रेज़ को पसन्द आवेगा। अतः इन अंग्रेज़ों से यह आशा करना ही व्यर्थ है कि वे अपना सारा काम-काज छोड़ कर इन योगियों का पता लगाने का कष्ट उठावेंगे। इस कोटि के लोगों ने अपने तथा बाहरी संसार के बीच ऐसा अनिवार्य पर्दा डाल लिया है कि यदि किसी उदार स्वभाव के विवेकी अंग्रेज़ को ब्रिटिश रहन-सहन छोड़ कर किसी योगी के संग ऐसी गुफा में रहना पड़े तो उसे न तो योगी के साथ रहना रुचिकर होगा और न वह योगी की विचार-धारा को ही समझ सकेगा। फिर भी भारतीय अंग्रेज, चाहे वे फ़ौज के हों या मुल्की हाकिम, व्यापारी अथवा पर्यटक, योगियों के प्रति उदासीन होने के लिए दोषी नहीं ठहराये जा सकते, क्योंकि उनके लिए योगी के कुशासन पर बैठना ही अपने आत्मसम्मान को धक्का पहुँचाने की बात होती है। ब्रिटेन की मर्यादा निबाहने की टेक तो दूर रही, जिसको अक्षुण्ण बनाये रखना आवश्यक ही है, यथार्थ बात यह है कि ये अंग्रेज़ जिस कोटि के साधुओं के सम्पर्क में आते हैं वे अपनी ओर दूसरों को आकर्षित करने के बदले अपने प्रति घृणा का भाव ही पैदा करते हैं। ऐसों से दूर रहने में कोई हानि भी नहीं होती। तिस पर भी यह बड़े खेद की बात है कि अंग्रेज़ लोग कितने ही साल तक भारत में रह कर भी बहुधा भारतीय योगियों के सच्चे गुणों को जाने बिना ही अपने घर लौट आते हैं।

त्रिचनापल्ली के पहाड़ी किले के निकट एक वृद्ध अंग्रेज़ से अपनी भेंट की बात मुझे अब तक अच्छी तरह से याद है। वह भारत के रेलवे विभाग में २० साल से कुछ अधिक समय तक एक ज़िम्मेदार पद पर काम कर चुका था। अतः उससे भारत के बारे में अनेक प्रश्न पूछना उचित ही था। आखिर को सकुचाते हुए मैंने अपनी खोज की बात भी पूछ डाली—"क्या किसी योगी से आपकी भेंट तो नहीं हुई ?"

उसने मेरी ओर शून्य दृष्टि से ताका और कहा—"योगी से! योगी कौन सी बला है ? क्या यह कोई जानवरों की किस्म का नाम है ?"

यदि इस फूहड़ आदमी का अनुभव केवल अपने ही देश में गिरजाघर की घंटियाँ सुनने तक ही सीमित होता तो उसका यह घोर अज्ञान क्षम्य रहता। किन्तु भारत में २५ वर्ष तक बसने के बाद, उसके मुँह से यह उत्तर पाना अज्ञता की पराकाष्ठा थी। मैं उसके प्रश्न के उत्तर में मौन ही रहा जिसमें उसकी मूढ़ता जनित शान्ति को धक्का न पहुँचे।

हिन्दुस्तान के विभिन्न प्रकार के लोगों से मिलते समय अपने जाति-गत गर्व को मैं पूर्ण रूप से भुलाये रहा। भारतीयों की बातें बड़ी हमदर्दी से मैंने सुनीं, और समझने की कोशिश की। वर्ण की अपेक्षा न रख कर मैंने सत्य की उपासना की। गोरे काले के झूठे भेद को मैंने सदा दूर रक्खा। जहाँ शील था वही मेरे लिए उपासना के योग्य था। मेरा समस्त जीवन सत्य का अन्वेषण करने में ही बीता है। अतः सत्य की खोज करने में मैं हर प्रकार की ऊँच-नीच बातें सहने को तैयार था। इन्हीं कारणों से आज अपनी अनुभूतियों का यह ब्यौरा मैं पाठकों के सामने उपस्थित करने में समर्थ हुआ हूँ। साधुओं के चरणों के निकट बैठ कर मैंने उनके भक्तों और चेलों के विभिन्न भाषाओं में कहे गये आख्यान सुने हैं। इन एकान्तवासी और साधारण जनता से बात न करने वाले साधुओं का मैंने पता लगाया और अत्यन्त विनम्र होकर उनके अधिकारपूर्ण उपदेशों को सुना। मैंने काशी के विद्वान ब्राह्मण पंडितों से घंटों बातचीत की और उनके साथ उन दार्शनिक विषयों पर बहस की जो अनादि काल से मनुष्य के चिन्तन के विषय बने हुए हैं। कभी कभी विनोद अथवा दिल बहलाने के लिए मैंने जादूगरों और करामात दिखाने वाले लोगों के तमाशे भी देखे जिनसे मुझे अनेक विचित्र अनुभव प्राप्त हुए।

मैं स्वयं ही खोज और जाँच करके आजकल के योगियों के बारे में सच्ची और सही घटनाओं का संग्रह करना चाहता था। मुझे गर्व है कि पत्रकार-कला का अनुभव होने के कारण असली बात को झट पहचान लेने की योग्यता मुझमें थी, और सम्पादकीय कलम चलाने की पटुता होने से झूठ और सच की परख करने में मुझे कोई कठिनाई नहीं हुई। इस पेशे में काम करने वाले को हर कोटि के व्यक्तियों के सम्पर्क में आना पड़ता है, उनकी चिथड़े लपेटे

हुए भिखमंगों से लेकर आरामतलबी से रहने वाले लखपतियों तक पहुँच होती है। अतः इस अनुभव ने हिन्दुस्तान के विभिन्न कोटि के वासियों के बीच सच्चे योगियों की खोज कर लेने में मेरी बड़ी मदद की।

साथ ही, मेरा आन्तरिक जीवन मेरी बाहरी बनावट से बिलकुल विपरीत है। मैंने अपना फुरसत का समय रहस्यमय पुस्तकों का अध्ययन करने अथवा अल्प-ज्ञात मनोवैज्ञानिक तथ्यों की खोज में बिताया है। प्रच्छन्न रहस्यों का पता लगाना ही मेरा प्रिय विषय रहा है। इसके साथ ही बचपन से ही प्राच्य संसार सम्बन्धी बातें मुझे आकर्षित करती रही हैं। सर्व प्रथम बार भारत आने के पहले से ही प्राच्य विषयों की चर्चा सुन कर मेरा मन आनन्दविभोर हो जाता था। अन्त में अपनी इस रुचि के कारण मैं एशियाई देशों के पवित्र ग्रंथों, उनकी पांडित्यपूर्ण व्याख्याओं तथा प्राच्य सन्तों के उन्नत विचारों, जहाँ तक उनके अंगरेजी अनुवाद उपलब्ध हो सके, के अध्ययन की ओर प्रेरित हुआ।

यह द्वंद्वानुभूति बड़े काम की सिद्ध हुई। इससे मैंने यह सबक सीखा कि जीवन के रहस्यों की गुत्थियों को सुलझाने की प्राच्य पद्धतियों के प्रति सहानुभूति रहते हुए भी मुझे उनका अध्ययन करते समय विशुद्ध आलोचनात्मक तथा वैज्ञानिक दृष्टिकोण के महत्व को कदापि न भुलाना चाहिए। इस सहानुभूति के बिना मैं कदापि उन लोगों और उन जगहों का दर्शन नहीं कर सकता था, जिन्हें हिन्दुस्तान में रहने वाला साधारण अंग्रेज तुच्छ समझ कर देखने का कष्ट भी नहीं उठावेगा। दूसरी ओर कड़ी वैज्ञानिक दृष्टि के बिना, उस अंध-विश्वास के जाल में फँस जाने का डर था, जिसमें कितने ही हिन्दुस्तानी लेखक फँसे दिखाई देते हैं। इन दोनों परस्पर विरोधी गुणों का हर समय सामंजस्य बनाये रखना अत्यन्त कठिन है, फिर भी मैंने यथाशक्ति इन दोनों में से किसी को भी अनुचित रूप से प्रबल नहीं होने दिया।

इस कथन को मैं अस्वीकार नहीं करता कि पाश्चात्य संसार वर्तमान भारत से कोई नया सबक नहीं सीख सकता। परन्तु साथ ही मैं यह दावा

भी करूँगा कि न केवल प्राचीन भारत के ऋषियों से ही वरन् इस ज़माने में भी जो थोड़े से सच्चे महात्मा बचे हैं उनसे भी हमें अनेकानेक बातें सीखनी हैं। बड़े-बड़े शहरों की सैर करके तथा ऐतिहासिक दृश्य देख कर घर लौटने वाले अंग्रेज़ों को यदि भारत की पिछड़ी हुई सभ्यता से अरुचि पैदा हो तो कोई आश्चर्य नहीं। किन्तु एक-आध ऐसे भी अंग्रेज़ यात्री हो सकते हैं जिन्हें भारत के ध्वस्त मन्दिरों, अथवा किसी ज़माने में मरे हुए बादशाहों के मकबरों को देखने की इच्छा न होकर जीवित संतों से ज्ञान सीखना हो—वह ज्ञान जो हमें अपने विश्वविद्यालयों में कदापि प्राप्त नहीं हो सकता।

ये हिन्दुस्तानी बिलकुल आलसी ही तो नहीं हैं? झुलसाने वाली धूप में व्यर्थ ही पैर पसार कर लेटे तो नहीं रहते? क्या इन्होंने कभी भी ऐसी कोई बात नहीं सोची अथवा की है जो समस्त संसार के लिए उपयोगी हो? भारतीयों के सांसारिक पतन और उनकी मानसिक शिथिलता को ही देखने वाले ने उन्हें ठीक तरह से नहीं पहचाना है। मन से घृणा हटा कर, यदि सहानुभूति के साथ खोज की जाय तो खोज करने वाले को छिपी हुई ज्ञान-राशि प्राप्त होगी।

माना कि भारत सदियों से ग़फ़लत की नींद में सो रहा है, माना कि आज भी वहाँ के करोड़ों किसान घोर अज्ञान-सागर में डूबे हुए हैं, माना कि उनका अंध-विश्वास और धार्मिक भोलापन तथा अज्ञता चौदहवीं सदी के अंग्रेज़ किसानों जैसी ही है; यह भी मान लेते हैं कि इस देश के ब्राह्मण पंडित आज भी मध्यकालीन यूरोपीय विद्वानों के समान ही बाल की खाल निकालने वाले तर्कों में, तथा दार्शनिक विचारों की बारीकियों में, अपनी सारी पंडिताई चौपट कर रहे हैं। फिर भी भारत की प्राचीन संस्कृति की अमूल्य निधि अभी पूर्ण रूप से नहीं मिट गई है और उसके बचे-खुचे अंश हमें आज भी उस वर्ग के व्यक्तियों में प्राप्त हो सकते हैं जो योगी जैसे साधारण नाम से पुकारे जाते हैं। यह अवशेष संस्कृति अपने निजी ढङ्ग से समस्त मानव समाज के लिए लाभदायक और मूल्यवान है और इस दृष्टि से उसका महत्व पश्चिमीय विज्ञानों से किसी प्रकार भी कम नहीं है। योग की सहायता

से हम अपने शारीरिक स्वास्थ्य को प्रकृति के अधिक से अधिक अनुरूप बना सकते हैं। इसके द्वारा आधुनिक सभ्यता की एक सबसे बड़ी आवश्यकता, अर्थात् निर्मल मनः-शांति और मनः-प्रसाद की प्राप्ति हो सकती है; और जो लोग योग की साधना कर सकें उन्हें निश्चय ही आध्यात्मिक तल्लीनता की सिद्धि हो सकती है। पर यह बात मैं स्वीकार करता हूँ कि यह महान आर्ष-विज्ञान आधुनिक भारत में विरलों ही को सिद्ध है। यह अतीत भारत की अमूल्य सम्पत्ति है। आजकल योग साधना की परिपाटी अवनति पर है, जब कि किसी समय इसके सुयोग्य आचार्य और विनम्र शिष्य इस देश में हर जगह मौजूद थे। हो सकता है कि इस अमूल्य ज्ञान को गोपनीय रखने की व्यवस्था ही इस प्राचीन विज्ञान के लिए घातक सिद्ध हुई हो।

अतः अपने पश्चिमी भाइयों से यह कहना ही अधिक उचित होगा कि इस देश से वे किसी नवीन धर्म व्यवस्था पाने की आशा न करें, बल्कि अपनी ज्ञान-राशि को बढ़ाने के लिए पूर्व की ओर ध्यान दें।

बर्नाफ, कोलब्रूक, मैक्समूलर जैसे प्राच्य संस्कृति के ज्ञाताओं ने अपने परिश्रम से जब भारत की विज्ञान सम्पदा के अनूठे रत्नों का प्रदर्शन किया तब पश्चिम के विद्वानों की समझ में आया कि हिन्दुस्तान के 'विधर्मी' वास्तव में मूर्ख न थे जैसा वे अपने अज्ञान के कारण उन्हें समझे हुए थे। जो एशिया के देशों के ज्ञान को पश्चिम के लिए थोथा सिद्ध करना चाहते हैं वे वास्तव में अपनी ही अज्ञता का प्रमाण उपस्थित करते हैं। जो व्यक्ति व्यावहारिकता के पंडित बन कर प्राच्य विषयों के अध्ययन करने वालों को मूर्ख कहते हैं वे स्वयं इसी सम्बोधन के पात्र हैं। यदि हम देश और काल को ही व्यक्तित्व के परखने की कसौटी मान लें और किसी व्यक्ति के व्यक्तित्व का मूल्य आँकने के समय यह सोचें कि वह बम्बई में पैदा हुआ था या ब्रिस्टल में, तो हम कदापि सभ्य कहलाने का दावा नहीं कर सकते। जो अपने को प्राच्य विचारों और विज्ञान से एकदम दूर रखना चाहते हैं वे निश्चय ही उदार विचारों, गम्भीर सत्य और उचित मनोवैज्ञानिक मर्मों से अपने को सदैव वंचित रखते हैं। जो कोई भी प्राच्य के प्राचीन ज्ञान के अध्ययन का कष्ट

उठावेगा उसे तथ्य रूपी कोई न कोई अमूल्य-मणि अवश्य हाथ लगेगी और उसकी खोज निष्फल नहीं होगी।

× × ×

योगियों और उनके आध्यात्मिक ज्ञान की खोज में मैंने पूर्व की यात्रा की। दिल के एक कोने में किसी आध्यात्मिक गुरु के दैवी व्यक्तित्व के दर्शन की लालसा भी लगी हुई थी, पर यह मेरा प्रधान ध्येय नहीं था। हिन्दुस्तान की पवित्र नदी, मरकत सलिला गंगा, विशाल यमुना और रम्य गोदावरी के तटों पर इसी खोज में मैंने बहुत भ्रमण किया, देश के चारों ओर चक्कर लगाया, हिन्दुस्तान नें मुझे अपने अंतस्तल में स्थान दिया और मुझ जैसे अपरिचित पाश्चात्य व्यक्ति को इस देश के लुप्त-प्राय महात्माओं में से कितनों ने ही अपनी शरण दी।

अभी कुछ समय पूर्व ही मैं ऐसे देश में था जो ईश्वर को मानव कल्पना का विकार, आध्यात्मिक सत्य को बुद्धि का भ्रम और दैवी न्याय को आदर्शवादी शिशुओं का तर्क समझता है। मज़हबी पागलपन के आवेश में स्वर्ग की कल्पना करने वाले तथा अपने को ईश्वर के भेजे हुए मज़हब के ठेकेदार बताने वाले व्यक्तियों से तो मुझे भी कुछ चिढ़ थी; अविवेकी तार्किकों के व्यर्थ के वादों के प्रति मुझे घोर घृणा थी।

प्राच्य आध्यात्मिकता के सम्बन्ध में मेरे विचार पाश्चात्य देस-वासियों में प्रचलित साधारण विचारों से भिन्न होने से मुझे लाभ ही हुआ है। फिर भी मैं प्राच्य धार्मिकता का ऐसा अंध-भक्त न था कि किसी संप्रदाय का अनुयायी हो जाता। सच तो यह है कि जिन बातों से मैं वास्तव में प्रभावित हुआ हूँ उनका ज्ञान मैंने भारत आने से पहले ही पुस्तकों के अध्ययन द्वारा प्राप्त कर लिया था। तो भी इस नये अध्ययन के परिणाम-स्वरूप मैं दैवी ज्योति के एक बिलकुल नये ही रूप को पहचान सका हूँ। दूसरों को यह लाभ अत्यन्त निजी और तुच्छ भले ही जान पड़े परन्तु स्थूल, प्रत्यक्ष और जटिल तर्कों पर ही निर्भर रहने वाले तथा धार्मिक उत्साह से हीन इस युग

की सन्तति होते हुए मेरे लिए यह अनुभूति बहुत बड़ी बात है। मुझ संशयात्मा को यह धार्मिक विश्वास प्राप्त होने का यही एकमात्र उपाय था— किसी प्रकार के तर्कों से समझ कर नहीं किन्तु अपनी बाढ़ में डुबा देने वाली अनुभूति के द्वारा।

मेरे मानसिक जगत की इस महान् क्रांति का कारण एक परम उदासी वनवासी था। उसने एक पहाड़ी गुफा में छः वर्ष बिताये थे। सम्भव है कि आधुनिक शिक्षा-प्रणाली के दसवें दर्जे तक भी उसने न पढ़ा हो, किन्तु इस पुस्तक के अन्तिम परिच्छेदों में उनके प्रति अपने अगाध आभार को स्वीकार करने में मुझे तनिक भी संकोच नहीं हुआ है। भारत में अब भी ऐसे श्रेष्ठ ऋषि पैदा होते हैं, इसी एक बात के बल पर भारत पश्चिम के बुद्धिमानों का ध्यान अपनी ओर आकर्षित करने का दम भर सकता है। गुप्त भारत का आध्यात्मिक जीवन देश के राजनीतिक आन्दोलन की तुलना में अवश्य ही अप्रकट और छिपा हुआ है, परन्तु उसका अस्तित्व कदापि नहीं मिटा है। मैंने इस पुस्तक में इस देश के कुछ ऐसे महापुरुषों का प्रामाणिक वर्णन करने का प्रयत्न किया है जो दृढ़ता, गम्भीरता और प्रशांति की उस पराकाष्ठा को प्राप्त हुए हैं जिसकी हम संसारी जीव सदैव याचना करते रहते हैं।

इस पुस्तक में मैंने और भी अनेक बातों का ज़िक्र किया है जो अनोखी और जादू भरी जान पड़ती हैं। इस समय जब कि मैं इंगलैंड के देहाती जीवन से घिरा हुआ इस पुस्तक को लिख रहा हूँ, ये सब बातें मुझे अविश्वस-नीय प्रकट हो रही हैं। पश्चिम की शक्की दुनिया के लिए इन बातों का वर्णन करने में मुझे स्वयं ही अपने साहस पर आश्चर्य हो रहा है। किन्तु मुझे इस बात पर दृढ़ विश्वास है कि वर्तमान विश्वव्यापी जड़-वादी अथवा अनात्मवादी विचार सदैव स्थायी न बने रहेंगे। इस समय भी भावी बौद्धिक क्रांति के लक्षण झलकने लगे हैं। फिर भी मैं यह बात साफ़ साफ़ प्रकट करना चाहता हूँ कि करामातों का मैं बिलकुल क़ायल नहीं हूँ और न इस ज़माने के लोग ही उनमें विश्वास करेंगे। साथ ही मैं यह भी मानता हूँ कि प्रकृति के सिद्धान्तों की हमारी जानकारी अभी अधूरी ही है। अज्ञात नियमों

को खोज में गवेषणापूर्वक अग्रसर वैज्ञानिक नेतागण कुछ अन्य नियमों तथा कुछ अन्य रहस्यों का जब उद्घाटन करेंगे तब हम जरूर ऐसे काम करके दिखा सकेंगे जो करामात न होते हुए भी करामात जैसे प्रकट होंगे।

२

पूर्वाभास

भूगोल के अध्यापक हाथ में लम्बा नुकीला सूचकदंड लेकर अब-कभे क्लास में एक बड़े नक्शे के पास खड़े हैं। वे विषुवत् रेखा की ओर बढ़ते हुए एक लाल त्रिभुजाकार भूमिखंड की ओर इशारा करते हुए मंदोत्साह शिष्यों की उत्सुकता को उत्तेजित करने का प्रयत्न करते हैं। धर्मोपदेश देने के समान धीरे धीरे गम्भीर स्वर से वे निम्न शब्दों को अपने मुख से निकालते हैं:—'हिन्दुस्तान ब्रिटिश राजमुकुट का सब से अधिक दीप्तिमान रत्न कहा जाता है।' यह सुन कर ध्यान में अर्धनिमग्न एक उदास विद्यार्थी एकदम चौंक उठता है और अपनी बिखरी हुई विचार श्रृंखला को सम्हाल कर मदरसे की ईंट-चूने की इमारत में अपने अस्तित्व को पहचानता है। न जाने क्यों 'हि न्दु स्ता न' इस शब्द के कान में पड़ते ही, या किसी पुस्तक में उसके नक्शे को देखते ही उसके मन में एक अजीब रहस्यपूर्ण सनसनी पैदा होने लगती है। एक अज्ञात विचारधारा बार बार उसके चित्त को भारत की ओर खींच ले जाती है।

गणित के अध्यापक जब यह समझते हैं कि उनका यह शिष्य बड़ी धुन से बीजगणित का कोई प्रश्न हल कर रहा है, तो उन्हें इसका ध्यान ही नहीं आता कि यह नटखट लड़का अपनी मेज़ पर बड़ी होशियारी से सजी हुई किताबों के ढेर की ओट में बड़ी शीघ्रता से पगड़ीधारी मनुष्यों और देशी नावों पर से बड़े जहाज़ों पर मसालों से भरे हुए बोरों के लादे जाने के चित्र खींच रहा है।

किशोरावस्था के ये दिन बीत जाते हैं; किन्तु हिन्दुस्तान के प्रति उसका यह अनुराग घटने के बदले और अधिक बढ़ जाता है, यहाँ तक कि समस्त एशिया उस वृत्त के अन्तर्गत आ जाता है। सदैव वह हिन्दुस्तान जाने की बिना सिर-पैर की तदबीरें सोचता रहता है। वह जहाज़ी नौकरी कर लेगा, और तब तो थोड़ी सी कोशिश करने पर सचमुच ही उसको भारत की एक झाँकी देखने का अवसर मिलेगा। इन तदबीरों के कारगर न होने पर भी वह हार नहीं मानता और अपने साथियों से बड़े ओजपूर्ण ढंग से अपने हिन्दुस्तान जाने के इरादे को सुनाता है। अन्त में एक सहपाठी भी इस कल्पनामय उत्साह का सहज ही में शिकार हो जाता है।

अब तो ये दोनों सहपाठी एकान्त में बैठ कर अपनी भारत यात्रा के सम्बन्ध में तरह तरह के मंसूबे बाँधा करते हैं। वे यूरोप की पैदल यात्रा करके एशिया माइनर होते हुए अरब देश के अदन बन्दरगाह तक पहुँचने की बात सोचते हैं। हमारे पाठकों को इस बालोचित साहस पर हँसी आये बिना न रहेगी। ये बालक समझते हैं कि अदन में किसी जहाज़ के कप्तान से दोस्ती कर लेंगे और उनके ध्येय के प्रति सहानुभूति और दया के भावों से प्रेरित हो कर जहाज़ का कप्तान इन्हें अपने जहाज़ में चढ़ा लेगा। इस प्रकार एक सप्ताह के अन्दर ही ये भारत में पहुँच जावेंगे और उस देश की खोज प्रारम्भ कर देंगे।

इस लम्बे सफ़र की तैयारियाँ होने लगती हैं। बड़ी किफ़ायत से पैसे जमा किये जाते हैं, और अन्त को वे अपनी बाल-बुद्धि के अनुसार यात्रा की समस्त आवश्यक सामग्री छिपे छिपे एकत्रित करते हैं। नक्शों और पथ-सूचक किताबों का बड़े ध्यान से परिशीलन किया जाता है। उनके रंग-बिरंगे पन्ने और मन लुभाने वाले चित्र इन बालकों की भ्रमण करने की लालसा को पराकाष्ठा तक पहुँचा देते हैं। आखिर को नियति का परिहास करते हुए घर-बार छोड़ कर भागने का दिन भी निश्चित हो जाता है। किन्तु भवितव्यता कैसी है इसका उन्हें क्या पता था?

अच्छा होता यदि ये बालक अपनी बचपन की उमंगों को कुछ छिपा कर रखते और अपनी प्रारम्भिक लालसाओं की लगाम कुछ थामे रहते। दुर्भाग्य से दूसरे साथी के गुरुजनों को इस यात्रा की बात मालूम हो जाती है। पूछने पर उनको सारी बातें सविस्तार बता देनी पड़ती हैं और वे कड़ाई से पेश आते हैं। उन बालकों पर उस समय क्या बीती यह वे ही जानते हैं। इतना ही कहना पर्याप्त है कि यात्रा के सभी इरादे छोड़ देने पड़े।

परन्तु जिस बालक के मन में हिन्दुस्तान को देखने की अभिलाषा सबसे पहले उठी थी वह उससे कभी भी दूर नहीं होती। इसके विपरीत इस इरादे की जड़ और भी मज़बूत होती जाती है। पर वह करे क्या ? दूसरी ज़िम्मेदारियाँ भी उसके सिर पर आ पड़ती हैं और मजबूर होकर उसे अपनी इस चिर-अभिलाषा को रोक रखना पड़ता है।

समय का चक्र चलता जाता है और इसी प्रकार कितने ही वर्ष बीत जाते हैं। अचानक एक दिन एक अपरिचित व्यक्ति से भेंट होने पर बचपन की वही पुरानी लालसा एक क्षण के लिए ज़ोर से सजग हो जाती है। इस अपरिचित व्यक्ति का रंग गेहुँआ है। सिर पर साफा बँधा है और वह उसी भारत देश का निवासी है जो सदैव सूर्य की सुनहली किरणों से दीप्तिमान रहता है।

× × ×

उन महाशय से अपनी भेंट की घटना का इस समय मुझे पूरी तरह से स्मरण हो रही है। शरद ऋतु समाप्त हो चली है। चारों ओर कुहरा छाया है। सर्दी मेरे कपड़ों को भेद कर शरीर को जकड़ रही है। ऐसा जान पड़ता है कि मेरे हृदय का स्पन्दन रुक रहा है और मैं अपने ठिठुरे हुए हाथों से उसे थामे हूँ।

घूमते-घामते एक कहवेख़ाने में मैं पहुँच जाता हूँ। वहाँ की गर्मी और मेज़बानी से कुछ सांत्वना होती है। चाय का एक प्याला पीने पर भी, जिससे साधारणतया शरीर में स्फूर्ति आ जाती है, इस समय कोई लाभ नहीं होता। मेरी तबियत फिर भी उत्साहित नहीं होती। उदासी और उत्साह-

हीनता ने मुझे बुरी तरह से धर दबाया है। मेरे हृदय-द्वार पर काले परदे पड़े हुए हैं।

यह बेचैनी, यह व्याकुलता, मुझसे सही नहीं जाती। अन्त में विवश हो कर कहवाखाना छोड़ कर मैं गली में चल देता हूँ और निरुद्देश ही इधर उधर चिर-परिचित गलियों में घूमने लगता हूँ। अन्त को सामने एक परिचित पुस्तक-विक्रेता की दूकान दिखाई पड़ती है। वहीं मैं ठहर जाता हूँ। दूकान की इमारत पुरानी है और उसमें बिकने वाली किताबें भी पुराने विषयों के सम्बन्ध की हैं। पुस्तक-विक्रेता[1] विचित्र स्वभाव का व्यक्ति है। वह पुराने ज़माने के आदमियों का एक रहा-सहा नमूना है। धूम धड़ाके का यह युग उसकी तनिक भी परवा नहीं करता, और यह बूढ़ा भी इस भड़कीले ज़माने की उतनी ही उपेक्षा करता है। वह केवल प्राचीन पुस्तकों और ग्रंथों के अप्राप्य संस्करणों को बेचा करता है। अद्भुत और गोप्य वस्तुओं को बेचना ही उसका प्रधान व्यापार है। उसने पोथियों के अध्ययन द्वारा गूढ़ और अनोखी बातों की असाधारण जानकारी प्राप्त की है। मैं अकसर इस पुरानी दूकान पर जाया करता हूँ और दूकानदार के प्रिय विषयों पर उससे बातें किया करता हूँ।

मैंने दूकान के भीतर जा कर दूकानदार का अभिवादन किया। थोड़ी देर तक पुरानी जिल्दों के धुँधले पृष्ठों को उलटता रहा। अन्त में एक प्राचीन पुस्तक पर मेरी नज़र पड़ी। उसे हाथ में लेकर मैं अधिक ध्यान पूर्वक देखने लगा। चश्माधारी बूढ़े दूकानदार ने मेरी उत्सुकता को ताड़ लिया और अपनी आदत के अनुसार किताब के विषय—आवागमन—पर अपने विचार प्रकट करने लगा।

बूढ़ा अपनी आदत के अनुसार विषय के पक्ष और विपक्ष के समस्त तर्क स्वयं ही विस्तार पूर्वक कहता जाता है मानो उसे उस विषय की जान-

---

[1] खेद है कि यह बेचारा अब दुनिया में नहीं है और उसकी दूकान भी उसके साथ ही लापता हो गई है।

कारी किताब के लेखक से भी अधिक हो, और इस विषय को प्रतिपादित करने वाले प्रधान आचार्यों के नाम उसे कंठस्थ हों। इस प्रकार मुझे कितनी ही अनूठी बातों की जानकारी प्राप्त होती है।

सहसा दूकान के एक कोने में किसी व्यक्ति के उपस्थित होने की आहट मिलती है। घूम कर देखने पर दूकान के भीतरी कमरे से, जहाँ पर अधिक मूल्यवान पुस्तकें रक्खी हुई हैं, एक लम्बे डीलडौल का व्यक्ति बाहर आता हुआ दिखाई देता है।

यह अपरिचित व्यक्ति भारतीय है। वह बड़े अमीरी ढंग से हम लोगों के पास आकर किताब बेचने वाले को सम्बोधित करके कहने लगा :

"मित्र, मेरी अनधिकार चेष्टा को क्षमा करना। आपकी बातों में दखल दिये बिना मुझसे रहा नहीं गया, क्योंकि इस विषय से मुझे भी बड़ी दिलचस्पी है। आप उन बड़े बड़े लेखकों का नाम लेते हैं जिन्होंने पहले पहल मनुष्य की आत्मा के अनवरत आवागमन का उल्लेख किया था। मैं यह स्वीकार करता हूँ कि मिश्र यूनानी दार्शनिक, बुद्धिमान अफ्रीकन तथा पूर्वकाल के ईसाई पादरी, सभी इस सिद्धान्त से भलीभाँति परिचित थे। किन्तु आप इस सिद्धान्त का जन्मदाता किस देश को मानते हैं? एक क्षण के लिए रुक कर किसी को उत्तर देने का अवसर दिये बिना ही वे मुस्कराते हुए कहने लगे—"क्षमा कीजिए, मुझे भी इस बारे में दो बातें कहनी हैं। पुराने ज़माने में दुनिया के सब लोगों ने हिन्दुस्तान से ही आवागमन का सिद्धान्त ग्रहण किया था। तभी से मेरे देश के लोग इसे अपने धार्मिक विचारों का केन्द्र मानते आये हैं।"

उनकी मुखाकृति मुझे आकर्षित करने लगी। वह अपूर्व थी। सैकड़ों भारतीयों के बीच में भी उसकी विलक्षणता साफ़ नज़र आ जाती। उनके चेहरे से ज्ञात हुआ कि वे पुंजीभूत शक्ति की मानो अनभिव्यक्त मूर्ति थे। मुझे वे ऐसे ही व्यक्ति जान पड़े। पैनी दृष्टि, मज़बूत जबड़े, उन्नत और विशाल ललाट, यही उनकी रूप-रेखा थी। साधारण हिन्दुओं की अपेक्षा वे

कुछ अधिक श्यामवर्ण थे। वे सुन्दर पगड़ी पहने हुए थे जिसके अग्र-भाग में एक मंजु-मणि चमक रही थी। इसके अतिरिक्त उनकी बाकी पोशाक यूरोपियनों की सी थी।

उस अजनबी के उपदेश-युक्त वाक्यों का बूढ़े दूकानदार पर कुछ भी असर नहीं पड़ा। इसके विपरीत उससे भारतीय व्यक्ति के प्रति विरोध भाव प्रकट होता था। असहमत होते हुए बूढ़े ने कहा—"यह हो कैसे सकता है जब कि ईसा से पूर्व के काल में भूमध्य समुद्र के पूर्व के शहर संस्कृति और सभ्यता के मुख्य केन्द्र थे। क्या प्राचीन काल के उत्तम से उत्तम पंडितों को एथेंस और अलेग्जांड्रिया के निकटवर्ती प्रदेश ने जन्म नहीं दिया था? निश्चय ही आवागमन का सिद्धान्त भारत में पश्चिमी देशों से ही पहुँचा होगा।

भारतीय व्यक्ति बड़ी सहनशीलता से मुस्करा कर बोला :

"कदापि नहीं। वास्तव में बात उलटी ही है।"

पुस्तक-विक्रेता ने आश्चर्य चकित होकर कहा :

"क्या आप सच्चे दिल से कहते हैं कि उन्नतिशील पश्चिम के निवासी दार्शनिक विज्ञान के लिए पिछड़े हुए भारत के ऋणी हैं? यह कदापि ठीक नहीं है।"

"क्यों नहीं? महाशय, आप एक बार फिर अपूलियस के ग्रन्थों को पढ़िये और देखिये कि किस प्रकार पैथागोरस ने भारत जाकर वहाँ के ब्राह्मणों से शिक्षा पाई थी। सोचिये कि वे किस प्रकार यूरोप लौट कर आवागमन के सिद्धान्त का प्रचार करने लगे थे। यह तो अपने ढंग की केवल एक ही मिसाल है। और भी कितनी ही मिसालें दी जा सकती हैं। 'पिछड़ा हुआ भारत!' आपका यह सम्बोधन सुन कर मुझे हँसी आती है। जब आपके बुजुर्गों को यह भी नहीं मालूम था कि दार्शनिक विचार कहते किसे हैं, तब, आज से हजारों वर्ष पूर्व, हमारे ऋषि-महात्माओं ने दर्शन शास्त्र के गम्भीर सागर को मथ कर कितने ही विचार-रत्न निकाले थे।"

इस प्रकार कहते कहते यह अपरिचित व्यक्ति बीच ही में रुक गया। उसने बड़ी गम्भीरता के साथ हम लोगों की ओर ताका और अपनी बातों का हमारे मन पर असर डालने के लिए कुछ देर तक ठहर गया। बूढ़ा किताब बेचने वाला दंग रह गया। दूसरे की बुद्धि के प्रभाव में इस प्रकार आ जाते और इस ढंग से एकदम चुप हो जाते मैंने उसे कभी नहीं देखा था।

मौन साध कर मैं इस नये ग्राहक की बातें सुनता रहा, बीच में बोलने की कुछ भी कोशिश नहीं की। अब सभी चुप थे। यह खामोशी आदर-मिश्रित थी। कुछ देर बाद सहसा वह भारतीय पीछे घूम कर अन्दर के कमरे में गया और दो ही मिनट बाद एक मूल्यवान पुस्तक ले आया। उसका दाम चुका कर वह दूकान छोड़ने के लिए उद्यत हुआ। मैं दरवाज़े की ओर जाते हुए उस भव्य व्यक्ति को आश्चर्य-चकित होकर देखने लगा। इतने में वह पीछे घूम कर मेरे पास आया। उसने अपनी जेब में रक्खी एक छोटी थैली से अपना परिचय-पत्र बाहर निकाला। वह मुस्करा कर कहने लगा :

"क्या आप इस विषय पर मेरे साथ फिर कभी बातचीत करना चाहेंगे ?" मैंने कुछ सहमे हुए ढंग से उसकी बात मान ली। उसने मुझे अपना परिचय-पत्र देकर बड़ी इज़्ज़त के साथ मुझे अपने साथ भोजन करने का न्योता भी दिया।

× × ×

शाम को मैं अपने अजनबी मित्र का पता लगाने बाहर निकला। यह काम सहज नहीं था क्योंकि चारों ओर कुहरा बुरी तरह से छाया था। गलियों में हाथ को हाथ नहीं सूझ रहा था। शहर पर छाये हुए इन कुहरे के बादलों में किसी चतुर चितेरे या कुशल कवि की रुचि भले ही हो पर मेरा मन इस भारतीय से भेंट करने के विचार में इतना व्यग्र था कि प्रकृति के इस पट-परिवर्तन का मेरे ऊपर कुछ भी असर नहीं पड़ रहा था।

घूमते घामते मैं एक लम्बे ऊँचे मज़बूत फाटक पर पहुँच गया। फाटक के दोनों बग़ल में दो बड़े लैम्प लोहे की दीवालगीरों में रक्खे हुए थे। फाटक

से होकर, भीतर घुसते ही मेरे आनन्द और आश्चर्य का कोई ठिकाना नहीं रहा। मेरे मित्र ने वहाँ के साज-सामान का कोई आभास नहीं दिया था। हर जगह मुझे उनकी अभिरुचि, कलाप्रियता और छबीले स्वभाव का परिचय प्राप्त हो रहा था।

मैं एक आलीशान मकान के विशाल कक्ष में पहुँच गया। वह किसी पूर्वीय महल का अन्तःपुर जान पड़ता था। उसकी सजावट और सज-धज में किसी भी प्रकार की कमी नहीं दिखाई देती थी। बाहरी दरवाजा मेरे पीछे बंद होने पर ऐसा जान पड़ा मानो मैं यूरोप के नीरस और बनावटी वातावरण से एकदम दूर हो गया हूँ। इस कमरे की सजावट में चीनी और हिन्दुस्तानी कलाओं का अपूर्व समावेश था। सभी सजावट काले, लाल, अथवा सुनहले रङ्ग में थी। दीवारों पर चौंधियाने वाली दीवालगीरें नज़र आती थीं। उन पर हाथ-पाँव पसारे हुए चीन के परदार अजगरों की तसवीरें अंकित थीं। सभी कोनों में, पत्थर पर खुदे हुए परदार अजगरों के हरे शिर बड़े भयानक लगते थे उन पर दीवालगीरें लगाई गई थीं जिनमें कई किस्म के हाथ की कारीगरी के नमूने रक्खे गये थे। द्वार के दोनों बगल पीले रेशम के कोट लटकते हुए, वहाँ की शोभा बढ़ा रहे थे। कमरे के लकड़ी जड़े हुए फ़र्श पर हिन्दुस्तान के मूल्यवान बेलबूटेदार क़ालीन बिछे हुए थे जिनके गुलगुले बालों में पैर धँस जाते थे। अंगीठी के सामने एक लम्बा-चौड़ा बाघम्बर बिछा हुआ था।

मेरी नज़र कोने की सुनहले रंग की एक मेज़ पर पड़ी। उस पर काले आबनूस का एक छोटा मन्दिर रक्खा हुआ था। उस पर सोने का बेलबूटे का काम किया हुआ था। उस मन्दिर के किवाड़ मुड़ जाने वाले थे। मन्दिर के अन्दर मुझे किसी भारतीय देवता की मूर्ति दिखलायी पड़ी। शायद वह बुद्धदेव की मूर्ति थी, क्योंकि उसकी मुख-मुद्रा इतनी प्रशांत और गम्भीर थी कि उसकी ओर ताका नहीं जा सकता था। मूर्ति की दृष्टि नासाग्र पर स्थिर थी।

वहाँ मेरी अच्छी मेहमानी हुई। मेरे मित्र भोजन के समय की पोशाक पहने हुए थे। मैंने सोचा कि ऐसे व्यक्ति चाहे किसी भी समाज में रहें, अवश्य आदरणीय होंगे। थोड़ी देर बाद हम दोनों भोजन करने बैठे। तरह तरह के सुन्दर व्यंजन एक के बाद एक परोसे गये। यहीं मुझे पहले पहल हिन्दुस्तान की कढ़ी खाने का चस्का लगा जो सदैव के लिए मेरे भोजन की प्रिय वस्तु बन गई। भोजन परोसने वाला नौकर भी अजीब वेष में था। वह एक सफ़ेद कुर्ता, सफ़ेद पायजामा, पीले रेशम का पटुका और सफ़ेद साफ़ा पहने था।

भोजन के समय कुछ देर तक इधर-उधर की बातें होती रहीं। मेरे मित्र जो कुछ, अथवा जिस विषय पर बात करते थे उससे ऐसा जान पड़ता था मानो वे उस विषय की अत्यन्त अधिकारपूर्ण और अकाट्य विवेचना कर रहे हों। उसमें तर्क की कोई गुंजाइश नहीं रहती थी। मेरे मन पर उनके प्रशान्त स्वभाव और उनकी अधिकारपूर्ण बातों का गहरा प्रभाव पड़ा।

क़हवा पीते समय उन्होंने अपने बारे में भी कुछ बातें बतलाईं। मुझे ज्ञात हुआ कि वे काफ़ी धनी हैं और संसार का बहुत भ्रमण कर चुके हैं। उन्होंने चीन की स्थिति का वर्णन किया जहाँ वे एक वर्ष तक रह चुके थे। जापान का भविष्य कैसा है, यह भी उन्होंने अत्यन्त आश्चर्यजनक जानकारी के साथ बतलाया। अमेरिका और यूरोप आदि के बारे में भी वे बहुत कुछ जानते थे और सब से आश्चर्य की बात यह थी कि उन्होंने सीरिया के एक ईसाई मठ की रहन-सहन का वर्णन किया जहाँ वे कुछ समय तक शान्तिमय जीवन बिता चुके थे।

भोजनोपरान्त धूम्रपान करते समय पुस्तक-विक्रेता के यहाँ उठाये गये विषय की चर्चा होने लगी। किन्तु मुझे स्पष्ट रूप से यह प्रकट हो रहा था कि वे अन्यान्य विषयों के बारे में भी कुछ कहना चाहते हैं क्योंकि वे शीघ्र ही अधिक गहन और जटिल विषयों की चर्चा करने लगे और अन्त को भारत के प्राचीन गौरव और विज्ञान की बात छेड़ दी।

उन्होंने ज़ोर देकर कहा—"हमारे ऋषियों के कई सिद्धान्त अब पश्चिम-वासियों को मालूम हो गये हैं किन्तु यह प्रायः देखा जाता है कि उन सिद्धान्तों का ठीक अर्थ नहीं समझा गया है। कहीं कहीं तो अर्थ का अनर्थ ही हो गया है। तो भी इसकी मुझे शिकायत नहीं है क्योंकि आज दिन भारत अपनी पुरानी उज्ज्वल संस्कृति का सच्चा प्रतिनिधि भी नहीं रह गया है। भारत का बड़प्पन खो गया है। यह बात बड़े अफ़सोस की है। साधारण भारतीय कुछ सिद्धान्तों का दृढ़ता के साथ अनुसरण कर रहे हैं, लेकिन साथ ही जिस धार्मिक आडम्बर और भ्रमपूर्ण परम्पराओं की बेड़ियों में वे जकड़े हुए हैं उनकी ओर उनका ध्यान ही नहीं जाता।"

मैंने पूछा—"इस पतन का कारण क्या हो सकता है?"

वे कुछ देर तक चुप रहे। एक मिनट बीत गया। उनकी आँखें मुँदने लगीं यहाँ तक कि वे अधखुली रह गईं। तब वे धीरे धीरे बोलने लगे :

"अफ़सोस की बात है, दोस्त! किसी समय भारत में बड़े बड़े ऋषि-मुनि रहते थे जिन्होंने जीवन के रहस्य का पता लगा लिया था। तब राजा और रंक सभी उनसे सदुपदेश पाने को उत्सुक रहते थे। उनके ज्ञान की छत्र-छाया में भारत की सभ्यता और संस्कृति पराकाष्ठा को पहुँच गई। लेकिन आज वे सब लुप्त हो गये हैं। समस्त देश में ऐसे सच्चे महात्मा शायद दो या तीन भले ही बच रहे हों, और वे भी संसार से विरक्त और छिपे हुए कहीं दूर अज्ञात, निर्जन स्थानों में निवास करते होंगे। जिस दिन वे ऋषि-महात्मा समाज को छोड़ कर एकान्त में बसने लग गये उसी दिन से हमारे पतन का प्रारम्भ हुआ।"

मेरे मित्र का सिर झुकने लगा, यहाँ तक कि उनकी ठुड्ढी छाती से लग गयी। अन्तिम वाक्य के साथ उनकी आवाज़ में दुःख और खेद साफ़ झलकने लगा। थोड़ी देर तक ऐसा मालूम हुआ कि उन्हें बाह्य जगत का कुछ भी ज्ञान नहीं रहा है, उनकी आत्मा करुणापूर्ण चिन्तन में लग गई है।

उनके व्यक्तित्व का मुझ पर गहरा असर पड़ा। वे मेरे मन को अपनी

ओर बरबस खींच रहे थे। उनकी काली और चमकीली आँखें उनके मेधावी होने की परिचायक थीं। लोच और सहानुभूति भरी उनकी आवाज़ उनके दयार्द्र हृदय को व्यक्त कर रही थी। नये रूप से मैं उनके प्रति फिर से आकृष्ट होने लगा।

नौकर चुपचाप कमरे में आया। उसने मेज़ के पास जाकर धूप बत्ती जलायी। नीला धुआँ ऊपर की ओर उड़ने लगा। एक अनूठी भारतीय सुगंधि चारों ओर फैल गयी जो मुझे सुखकर जान पड़ रही थी।

अचानक मेरे मित्र ने सिर उठा कर मेरी ओर देखा। बोले : "मैंने बताया है न, कि दो या तीन महात्मा अब भी रहते होंगे। हाँ ऐसा ही कहा है। एक बार एक महान ऋषि से मिलने का मुझे सौभाग्य प्राप्त हुआ था। वह ऐसा अमूल्य संयोग था कि उसकी चर्चा मैं अब शायद ही कभी करता हूँ। वे मेरे पिता, ज्ञानदाता, गुरु और मित्र, सब कुछ थे। वे देवताओं के समान ज्ञानवान थे। मैं उन्हें पिता-तुल्य मानता था। जब कभी सौभाग्य से उनके साथ रहने का संयोग होता था तो जान पड़ता था कि मानव-जीवन वास्तव में तुच्छ वस्तु नहीं है। कला और सौन्दर्य को ही जीवन का ध्येय बना लेने वाले मुझ जैसे व्यक्ति को भी कोढ़ी, ग़रीब और दरिद्र व्यक्तियों में, जिनसे मैं कोसों दूर भागता था, दैवी सुन्दरता पहचानने की शक्ति और शिक्षा उन्होंने ही दी। वे शहरों से दूर एक जंगल में रहते थे। अकस्मात एक दिन मैं उनकी झोपड़ी पर पहुँच गया। तब से कई बार मैंने उनका दर्शन किया और जहाँ तक बन पड़ता था उनके साथ रहा करता था। उन्होंने मुझे अनेक बातें सिखायीं। ऐसे महात्मा किसी भी देश का मुख उज्ज्वल कर सकते हैं और उसके गौरव को बढ़ा सकते हैं।

निस्संकोच होकर मैंने उनसे पूछा—"तब उन्होंने एकान्तवास छोड़ कर भारतीय जनता की सेवा क्यों नहीं की!"

मेरे मित्र ने सिर हिला कर कहा—"भाई, ऐसे अलौकिक पुरुषों के उद्देश्य हम लोगों के लिए समझना कठिन है। पश्चिम के निवासियों के

लिए तो यह बात और भी दुर्ज्ञेय है। सम्भव है कि यह प्रश्न उठाने पर वे यह उत्तर देते कि जनता की सेवा एकान्त में रह कर भी मानसिक और आध्यात्मिक शक्ति द्वारा की जा सकती है। दूर बैठ कर ही अव्यक्त रूप से दूसरों का मन सफलता पूर्वक सुधारा जा सकता है। सम्भवतः वे यह भी कहते कि जब तक उद्धार की घड़ी नहीं आ पहुँचती तब तक पतित जाति को दुःख भोगना ही पड़ेगा।"

मैंने साफ़ कह दिया कि उनके उत्तर ने मुझे और भी भ्रम में डाल दिया है।

मेरे मित्र ने कहा—"आप ठीक कहते हैं, मैं भी ऐसा ही अनुमान करता था।"

× × ×

उस भेंट का दिन मेरे लिये चिरस्मरणीय है। उसके बाद कई बार मैं उस भारतीय के मकान पर गया। एक तो उनकी अपूर्व विद्वत्ता और दूसरे उनके परदेशी व्यक्तित्व का निरालापन, दोनों ही ने किसी अज्ञात रूप से मुझे अपने निकट खींच लिया। उनको देखते ही मेरा उत्साह अधिक उत्तेजित हो उठता था और जीवन के मर्म का रहस्य जानने की मेरी चिरसंचित अभिलाषा जाग पड़ती थी। उनका दर्शन मेरे मन को शान्त और सन्तुष्ट करने के बदले मुझे सच्चे शाश्वत आनन्द को प्राप्त करने के लिए उत्कंठित बना देता था।

एक दिन हमारी बातचीत ने नया रंग पकड़ा, जिसका मेरे जीवन पर विशेष प्रभाव पड़ने को था। मेरे भारतीय मित्र बातचीत के सिलसिले में कभी कभी अपने देश के विचित्र रस्म रिवाजों और विभिन्न परम्पराओं का वर्णन करने लगते थे और कभी अपने विशाल देश में बसने वाली विभिन्न जाति के लोगों का परिचय देते थे। आज उन्होंने योगियों का ज़िक्र किया। उस शब्द का ठीक ठीक क्या अर्थ है यह मैं नहीं जानता था। अध्ययन करते समय कभी कभी मुझे इस शब्द का अर्थ जानने की आवश्यकता हुई

थी, लेकिन हर बार इसके इतने भिन्न अर्थ प्रकट होते थे कि अन्त में इस शब्द के ठीक तात्पर्य के बारे में मैं कोई ठीक राय क़ायम नहीं कर सका। अतः मेरे मित्र ने जब योगी शब्द का उल्लेख किया तो मैंने उनकी बातों में बाधा देते हुए प्रार्थना की कि वे इस शब्द को मुझे अधिक विस्तार के साथ समझायें।

उन्होंने कहा—"मैं आपके अनुरोध को बड़ी प्रसन्नता से स्वीकार करता हूँ, किन्तु 'योगी' शब्द की कोई एकमात्र परिभाषा नहीं दी जा सकती। मेरे देश के भिन्न भिन्न व्यक्ति इस शब्द का भिन्न भिन्न अर्थ लगाते हैं। उदाहरणार्थ सड़कों पर घूमने वाले हज़ारों भिखमंगे साधारणतया योगी के नाम से पुकारे जाते हैं। वे झुंड के झुंड बना कर गाँवों में घूमते रहते हैं और बड़े बड़े मेलों में सम्मिलित होते हैं। इनमें कितने ही निरे आलसी आवारे होते हैं, और कितने ही छँटे हुए बदमाश। बहुत से अपढ़ और मूर्ख हैं। वे केवल नाम के लिए योगी बने फिरते हैं जब कि वे न तो योग शास्त्र के इतिहास का ही ज्ञान रखते हैं और न उसके सिद्धान्त ही जानते हैं।"

अपनी सिगरेट की राख झाड़ने के लिए कुछ देर रुक कर उन्होंने फिर कहा—"लेकिन हृषीकेश जैसे स्थानों का दर्शन कीजिये, पर्वतराज हिमालय जिसकी रक्षा में अनवरत सतर्क रूप से खड़ा है। वहाँ न्यारे ही लोग नज़र आते हैं। वे साधारण कुटियों या गुफाओं में रहते हैं, स्वल्प भोजन करते हैं और सदा भगवान के भजन में मग्न रहते हैं। वे धर्मप्राण हैं, रात दिन उसी का उन्हें ध्यान लगा रहता है। वे बड़े ही सज्जन होते हैं। उनका समस्त समय या तो धर्म-ग्रन्थों के अध्ययन में या भगवद्भजन में व्यतीत होता है। ये लोग भी योगी ही कहलाते हैं। लेकिन इनमें और अपढ़ गाँववालों का खून चूसने वाले उन आवारे योगियों में क्या कोई समता हो सकती है? देखिए योगी शब्द कितना विशाल है। इन दोनों वर्गों के बीच में और कई प्रकार के व्यक्ति हैं जिनमें इन दोनों कोटियों की कुछ विशेषताएँ पाई जाती हैं और वे भी योगी कह कर पुकारे जाते हैं।"

मैंने कहा—"लेकिन फिर भी इन योगियों की महिमा और रहस्यमय शक्ति की बड़ी प्रशंसा की जाती है।"

हँसते हुए मेरे मित्र बोल उठे—"हाँ भाई! अब योगी शब्द की एक और परिभाषा सुनिए। बड़े बड़े शहरों से दूर, निर्जन जंगलों के बीच, या पहाड़ी कन्दराओं में, एकान्त में रहने वाले भी कुछ लोग हैं। अलौकिक विभूतियाँ प्राप्त करने के लिए वे जीवन भर कुछ योग सम्बन्धी अभ्यास किया करते हैं। इनमें से किसी किसी के पास धर्म का नाम लेना भी गुनाह है, किन्तु कोई कोई तो बड़े धार्मिक होते हैं। लेकिन ये सभी योगाभ्यास के द्वारा प्रकृति की अज्ञेय तथा अदृश्य शक्तियों पर एकाधिपत्य प्राप्त करने की दृष्टि से एक ही कोटि के अन्तर्गत आते हैं। रहस्यवाद और अलौकिक शक्तियों की सत्ता सम्बन्धी परम्पराएँ हमारे देश में सभी काल में मौजूद रही हैं। इन विषयों में पारदर्शी विद्वानों की करामातों के सम्बन्ध में कितने ही आख्यान सुनने को मिलते हैं। ऐसे को भी योगी ही कहते हैं।"

मैंने सरल स्वभाव से पूछा—"क्या आपकी कभी ऐसी असाधारण शक्ति वाले किसी व्यक्ति से भेंट हुई है? क्या इन बातों में आपको विश्वास है?"

मेरे मित्र कुछ देर तक चुप्चाप रहे। जान पड़ा कि वे अपने उत्तर देने के ढंग के सम्बन्ध में सोच रहे हैं।

मेरी आँखें मेज़ पर रक्खी हुई मूर्ति की ओर फिरीं। प्रतीत हुआ कि कमरे के मंद, मृदु आलोक में बुद्धदेव उस चमकीली लकड़ी के पद्मासन पर बैठे बैठे बड़ी दया और अनुकम्पा के साथ मेरी ओर देख कर मुस्करा रहे हैं। एक आध मिनट तक ऐसा जान पड़ा मानो मेरा दम घुट रहा हो। इतने में मेरे भारतीय मित्र की साफ़ और स्फुट आवाज़ ने मेरे बिखरे हुए विचारों को फिर से एकत्रित कर दिया। उन्होंने अपने कुर्ते के भीतर से कुछ चीज निकाली और उसे मुझे दिखाते हुए कहने लगे—"मैं जाति का ब्राह्मण हूँ। यह मेरा यज्ञोपवीत है। हज़ारों वर्ष के पृथक और विशुद्ध जीवन

बिताने के कारण हमारी जाति के लोगों के रक्त में कुछ खास विशेषताएँ, कुछ विशेष बातें, घुल-मिल गई हैं। पाश्चात्य शिक्षा और पाश्चात्य देशों का भ्रमण भी इन गुणों को कभी दूर नहीं कर सकता। जन्म से ही ब्राह्मण एक अलौकिक, अप्राकृत शक्ति की सत्ता में विश्वास करने लगता है। वह मानव योनि में भी आध्यात्मिक विकास की बात मानता है। चाहने पर भी हमारे ये विश्वास दूर नहीं होंगे। तर्क तथा विवेक की कसौटी पर ये विश्वास निश्चय ही ठीक नहीं उतरते, फिर भी ब्राह्मण कुल में जन्म लेने के नाते मैं उन्हें ठीक मानता ही हूँ। अतः यद्यपि आपके आधुनिक वैज्ञानिक सिद्धान्तों से हमारी पूरी पूरी सहानुभूति है, फिर भी इस सम्बन्ध में मेरा एकमात्र उत्तर यही होगा कि—मेरा ऐसा विश्वास है।"

बड़े ध्यान से मेरी ओर ताकते हुए वे कहने लगे—"हाँ, सच्चे योगियों से मेरी भेंट अवश्य हुई है। एक दो बार नहीं, कई बार मेरा उनसे परिचय हुआ। वे विरले ही किसी के देखने में आते हैं। किसी ज़माने में उनसे मिलना आसान था। किन्तु आज वे लुप्तप्राय हो गये हैं।"

"लेकिन अब भी उनका अस्तित्व तो होगा ही?"

"हाँ, मैं तो ऐसा विश्वास करता हूँ, किन्तु उनको खोज लेना बड़ा ही टेढ़ा काम है। उनको बड़ी धुन के साथ खोजना होगा।"

"आपके गुरु जी! वे तो अवश्य ही सच्चे योगी रहे होंगे?"

"नहीं! वे तो इससे भी उच्च कोटि के थे। मैंने आपसे कहा था न कि वे ऋषि थे?"

मैंने अपने मित्र से ऋषि शब्द का अर्थ पूछा। वे बोले—"ऋषि योगियों से श्रेष्ठतर हैं। डार्विन के विकासवाद के सिद्धान्त को मानव चरित्र के क्षेत्र में लागू करके देखिए। भौतिक जगत के समान, आध्यात्मिक जगत में भी विकासवाद ठीक तौर पर लागू होता है। ब्राह्मणों का भी यही कहना था। ऋषि वे हैं जो आध्यात्मिक विकास की चरम सीमा तक पहुँच गये हैं। इससे आप किसी हद तक उनके बड़प्पन का अनुमान कर सकते हैं।"

"क्या ऋषि लोग भी अद्भुत चमत्कार दिखा सकते हैं ?"

"दिखा क्यों नहीं सकते। किन्तु ऋषि लोग इन बातों को कुछ भी महत्व नहीं देते। अनेक योगी विभूतियों को बड़े महत्व की चीज़ मानते हैं लेकिन ऋषि उनको तुच्छ समझते हैं। इन विभूतियों को प्राप्त करने के लिए ऋषियों को कोई विशेष यत्न नहीं करना होता। इच्छा-शक्ति के विकास तथा पूर्णरूप से ध्यानावस्थित हो सकने के कारण सिद्धियाँ यों ही उनके हाथ लग जाती हैं। ऋषियों का सारा ध्यान अपने अन्तरंग के पुनरुज्जीवन की ओर लगा रहता है। बुद्धदेव और महात्मा ईसा के समान वे भी अपने अन्तरंग को दैवी ज्योति से आलोकित करने के यत्न में लगे रहते हैं।"

"लेकिन ईसा ने करामातें दिखाई थीं ?"

"जी हाँ, यह सत्य है। लेकिन क्या उन्होंने अपना गौरव बढ़ाने के लिए ऐसा किया था ? कभी नहीं। उनके द्वारा जन-साधारण को अपनी ओर खींच कर उनकी आत्माओं को पवित्र बनाने के उद्देश्य ही से उन्होंने ऐसा किया था।"

"यदि भारत में ऋषियों का अब भी अस्तित्व है तो लोगों के झुंड के झुंड उनके पास इकट्ठे होते होंगे ?"

"बेशक ! लेकिन ये ऋषि खुल कर अपने को सिद्ध पुरुष प्रकट करें तब न ? इस प्रकार विरला ही कोई ऋषि, किसी खास बात के लिए अपने को संसारी पुरुषों के सामने प्रकट करता है। प्रायः वे दुनिया से दूर, एकांत-वास में रहना अधिक पसन्द करते हैं। यदि लोकसंग्रह करना भी हो, तो वैसा करके वे फिर एकान्त का आश्रय लेते हैं।"

दृढ़ता के साथ मैंने अपने मन का यह भाव उन पर प्रकट कर दिया कि जो व्यक्ति अपने को दुर्गम स्थानों में छिपा कर रखते हैं समाज को उनसे किसी प्रकार की भलाई नहीं हो सकती।

मेरे मित्र मुस्कराते हुए बोले—"आपके इस कथन पर आपही के देश

की एक कहावत लागू होती है कि बाह्य रूप की उज्ज्वलता प्रायः धोखे की टट्टी है। इन लोगों के बारे में जब तक सच्चा और पूरा ज्ञान प्राप्त नहीं हो तब तक उनके बारे में दुनिया कोई निश्चित राय क़ायम नहीं कर सकेगी। मैंने बताया है कि कभी कभी ये ऋषि नगरों में आ कर जन-साधारण से भी मिलते हैं। पुराने ज़माने में ऐसा अक्सर हुआ करता था। तब उन ऋषिवरों का ज्ञान, शक्ति और सिद्धियाँ लोगों पर प्रकट हुआ करती थीं। बड़े बड़े राजे महाराजे उनकी बड़े सम्मान से आवभगत करते थे और अपने जीवन की कितनी ही जटिलताएँ उनकी सहायता से सुलझाया करते थे। किन्तु यह तो सभी जानते हैं कि अप्रत्यक्ष, अज्ञात तथा मूक भाव से उन लोगों की सहायता करना ऋषिगण अधिक पसन्द करते थे।"

"अच्छा हो यदि किसी ऐसे ही महापुरुष से मेरी भी भेंट हो जाय। किसी सच्चे योगी से मिलने की मेरी बड़ी अभिलाषा है।"

मेरे मित्र ने मुझे दिलासा देते हुए कहा—"निस्सन्देह आपकी मनोकामना किसी दिन पूर्ण होगी।"

कुछ चकित होकर मैं बोल उठा—"आप ऐसा किस आधार पर कहते हैं?"

"जिस दिन आप से पहले पहल मेरी भेंट हुई थी उसी दिन मैंने यह समझ लिया था। किसी आन्तरिक प्रेरणा से मुझे ऐसा जान पड़ा। उस प्रेरणा की यथार्थता बाह्य सबूतों से समझाई नहीं जा सकती। वह एक अनुभव मात्र था। उसे आप चाहे जिस नाम से पुकारिए। किसी भीतरी आवेग ने सन्देश के रूप में मेरे मन पर यह अंकित कर दिया कि आप की अवश्य ही किसी सच्चे ऋषि से भेंट होगी। मेरे गुरुदेव ने मेरी इस आन्तरिक प्रेरणा को परिमार्जित और विकसित करने का मार्ग बता दिया था। अब बिना सोचे विचारे मैं उसका भरोसा कर सकता हूँ।"

मैंने एक ढंग से उनकी हँसी उड़ाते हुए कहा—"जान पड़ता है कि आप के शरीर में सुकरात ने फिर से जन्म लिया है। किन्तु यह तो बताइए कि आपकी भविष्यवाणी कब पूर्ण होगी?"

"मैं भविष्य-वक्ता अथवा पैग़म्बर तो नहीं हूँ। अतः मैं आपके लिए कोई निश्चित तिथि निर्धारित नहीं कर सकता।"

मैंने इस पर कुछ भी बहस नहीं की। किन्तु मुझे यह सन्देह अवश्य बना रहा कि यदि मेरे मित्र चाहते तो इससे कुछ अधिक ही बता सकते थे।

इस पर कुछ सोचकर मैंने कहा—"आख़िर आप किसी दिन अपने देश को अवश्य ही लौटेंगे। उस समय तक यदि मैं तैयार हो जाऊँ तो दोनों एक ही साथ चल सकते हैं। योगियों का पता लगाने में आप मेरी अवश्य सहायता करेंगे।"

"नहीं दोस्त! आप अकेले जाइए। अच्छा है अपनी खोज आप स्वयं ही करें।"

"एक अजनबी व्यक्ति के लिए यह बड़ा ही कठिन होगा।"

"हाँ! कठिन अवश्य होगा, बहुत ही कठिन। तो भी अकेले ही जाइए। एक दिन आपको मेरे कथन की सत्यता प्रमाणित हो जायगी।"

× × ×

तब से मेरे मन पर यह बात अंकित सी हो गयी कि किसी दिन मुझे भारत-भ्रमण का सौभाग्य प्राप्त होगा। मैं सोचने लगा कि यदि मेरे मित्र के कथनानुसार सचमुच भारत ने प्राचीन काल में ऋषि-महात्माओं को जन्म दिया है तो अब भी उनमें से कोई न कोई अवश्य बचा ही होगा, क्योंकि किसी संप्रदाय का मूलोच्छेद होना असम्भव सी बात है। उन ऋषियों को ढूँढ़ निकालने में कठिनाइयों का सामना भले ही करना पड़े पर मेरा परिश्रम व्यर्थ न जायगा। सम्भव है कि इस खोज के परिणाम-स्वरूप मुझे वह आत्म-शान्ति और दैवी अनुभूति भी प्राप्त हो जाय जिसके लिए मैं अब तक भटकता रहा हूँ। दूसरी ओर इस खोज में यदि मैं असफल भी रहा तो कोई विशेष हानि न होगी, क्योंकि योगियों, उनके चमत्कारों, उनकी निराली रहन-सहन, चाल-चलन और रस्म-रिवाज देखने की मेरी लालसा तो पूर्ण ही हो जायगी।

पत्रकार होने के कारण किसी भी अनूठी बात के प्रति मेरी उत्सुकता अपेक्षाकृत अधिक बढ़ी हुई थी। अल्पज्ञात विषयों की खोज कर उनका पता लगाने की बात सोचते ही मेरे मन में गुदगुदी पैदा होने लगती थी। मैंने निश्चय कर लिया कि मैं अपनी इस धुन का पूरी तरह से निर्वाह करूँगा और मौक़ा पाते ही सब से पहले जहाज़ से भारत के लिए रवाना हो जाऊँगा।

इस प्रकार पूर्व की यात्रा करने की मेरी अभिलाषा को मेरे भारतीय मित्र ने और भी उत्तेजित कर दिया जो अपने घर पर कई महीनों तक मेरी आवभगत करते रहे। भवसागर के विकट थपेड़ों में जीवन-नैया को अच्छी तरह खेने का उपाय उन्होंने मुझे अवश्य बतलाया किन्तु उन्होंने मेरी जीवन-नौका का कर्णधार बनने से सदैव इनकार किया। फिर भी किसी नौजवान के लिए अपनी दशा का ठीक ठीक परिचय प्राप्त कर लेना, अपने अन्दर छिपी शक्तियों को पूरी तरह से पहचान लेना, अपने अस्फुट भावों को स्फुट रूप से देख लेना ही बहुत महत्व की बात है। अतः अपने सर्व प्रथम भारतीय मित्र के प्रति अपनी हार्दिक कृतज्ञता प्रकट करना इस अवसर पर अनुचित न होगा। नियति का प्रबल चक्र फिर गया और हम दोनों बिछुड़ गए। कुछ साल हुए मुझे खबर मिली कि उनका स्वर्गवास हो गया। समय और परिस्थिति के फेर में मैं तत्काल ही भारत की यात्रा न कर सका। आकांक्षाएँ तथा सांसारिक झंझट मनुष्य को बरबस ऐसी ज़िम्मेदारी के कामों में फँसा देती हैं जिनसे छुटकारा पाना सहज नहीं है। मैंने चुपचाप अपने जीवन प्रवाह को साधारण रूप से प्रवाहित होने दिया और हृदय की चिर-अभिलाषा की पूर्ति के शुभ दिन की प्रतीक्षा करता रहा।

उन भारतीय मित्र की भविष्य वाणी में मेरा दृढ़ विश्वास था। एक दिन आकस्मिक रूप से उसकी और भी अधिक पुष्टि हुई। अपने पेशे सम्बन्धी काम से कई महीने तक एक सज्जन से मुझे मिलते रहना पड़ा। उन्हें मैं अत्यन्त आदर और सम्मान की दृष्टि से देखता था। वे बहुत चतुर और मानव स्वभाव के हर पहलू से भली प्रकार परिचित थे। कई वर्ष पहले वे एक ब्रिटिश विश्वविद्यालय में मनोविज्ञान के प्रोफ़ेसर रहे थे। किन्तु अध्या-

पन का काम उन्हें पसन्द न आया। अतः उन्होंने उस पद से इस्तीफ़ा देकर खेती में अपने विशाल ज्ञान-भांडार को लगाने का निश्चय किया। कुछ समय तक व्यापार और वाणिज्य के प्रमुख व्यक्तियों के वे सलाहकार रहे। कितनी ही बार उन्होंने सगर्व यह बतलाया कि बड़े बड़े व्यवसायियों ने अच्छी रकमें देकर उन्हें अपना सलाहकार रक्खा। उनमें यह अनूठा गुण था कि वे दूसरे व्यक्तियों की छिपी शक्तियों को उकसा कर क्रियान्वित कर देते थे। उनसे मिलने वाला चाहे वह धनवान हो या धनहीन, 'उनसे व्यावहारिक सहायता पाता था और नवजीवन के उत्साह से भर जाता था। मैं सदा उनकी प्रत्येक सलाह नोट कर लेता था क्योंकि कार-बार और खानगी बातों में भी उनका कहना और उनकी दिव्य दृष्टि प्रायः आश्चर्यजनक प्रकट होती थी। उनकी सोहबत मुझे बड़ी दिलचस्प लगती थी क्योंकि उनके स्वभाव में सूक्ष्म-दर्शन और बाह्य-ज्ञान का ऐसा सुन्दर समावेश हो गया था कि वे किसी भी क्षण दर्शन के गहन प्रश्नों पर और दूसरे ही क्षण वाणिज्य की किसी भी पेचीदा समस्या पर अधिकारपूर्ण ढंग से विचार कर सकते थे। उनके साथ बातचीत करने में कभी भी तबियत ऊबती न थी और वह सदैव ज्ञातव्य तथा मनोरंजक तथ्यों से पूर्ण रहती थी। वे मुझे अपना अन्तरंग और विश्वसनीय मित्र मानने लगे और काम-काज तथा आमोद-प्रमोद दोनों में ही हमारा घंटों साथ रहता था। उनकी बातें सुनने से मेरी तबियत कभी भी नहीं उकताई। उनका विशाल पांडित्य और बहु-विषयक ज्ञान मुझे प्रभावित करता था। मैं चकित हो जाता था कि उनके उस छोटे से दिमाग़ में दुनिया भर की बातें क्यों कर समाई हुई हैं।

एक रात को हम दोनों एक छोटे से नियंत्रण-विहीन होटल में भोजन करने गये। स्वादिष्ट भोजन और रंग बिरंगे प्रकाश का आनन्द उठाने के बाद सड़क पर आने पर आकाश में चारों ओर धवल चाँदनी छिटकी दिखाई दी। हम दोनों ने चाँदनी का आनन्द उठाते हुए घर तक पैदल चलने का निश्चय किया।

अधिकांश समय तक अप्रधान और साधारण विषयों पर बातचीत होती

रही, किन्तु शहर की सुनसान गलियों में प्रवेश करते करते हमारी बातचीत का विषय गम्भीर हो गया। अन्त में दर्शन का गहन विषय उपस्थित हुआ। बातचीत ऐसे गूढ़ विषयों पर होने लगी जिनका नाम सुनकर ही मेरे मित्र के अन्य परिचित व्यक्ति घबरा उठते। अपने घर के द्वार पर पहुँचते ही उन्होंने विदा होने के लिये मेरी ओर हाथ बढ़ाया। मेरा हाथ अपने हाथ में लेकर वे बड़े गम्भीर स्वर में धीरे धीरे कहने लगे :

"तुम्हें इस पेशे को कभी न अपनाना था। तुम सच्चे दार्शनिक हो। क्यों इस अखबारनवीसी के झमेले में पड़े? तुम्हें किसी विश्वविद्यालय का आचार्य होकर गवेषणा तथा अनुसंधान कार्य में जीवन बिताना चाहिए था। तुम विचार-वीथियों में भ्रमण करने वाली प्रवृत्ति के हो। मन की जड़ पहचानने की तुम्हें धुन लगी है। तुम निश्चय ही एक दिन भारत के योगियों, तिब्बत के लामाओं और जापान के 'ज़ेन' भिक्षुओं से भेंट करोगे। तब तुम असाधारण ग्रंथ लिखोगे। अच्छा विदा।"

"इन योगियों के बारे में आपका क्या विचार है?"

उन्होंने मेरे सर के पास अपना सर झुकाया और मेरे कान में चुपके से कहा—"मेरे मित्र वे जानते हैं, उन्हें सब ज्ञात है!"

मैं बड़ा हैरान हुआ। विचारों में डूबा हुआ घर लौटा। निकट भविष्य में मेरी मनोकामना के पूर्ण होने की कोई सम्भावना न दिखाई देती थी। दिन प्रति दिन अन्य अन्य कामों में फँसा जा रहा था। उनसे छूट कर बाहर निकलना असम्भव सा प्रतीत होता था। कुछ समय तक निराशा ने मेरे हृदय पर अधिकार कर लिया। शायद मेरे भाग्य में यही बदा था कि इन व्यक्तिगत बन्धनों और लालसाओं के पाशों में सदैव फँसा रहूँ।

किन्तु अन्त को मेरी समस्त आशंकाएँ निराधार प्रमाणित हुईं। नियति अपना चक्र चलाती रही। यद्यपि उसके हुक्मनामों को पढ़ सकने की सामर्थ्य हम में नहीं है फिर भी अनजाने ही उसकी आज्ञाओं का पालन हमें करना ही होता है। एक वर्ष बीतने के पूर्व ही एक दिन मैंने अपने को बंबई

के अलेक्जेंड्रा बन्दरगाह में जहाज से उतरने और इस पूरबी शहर के बहुरंगे जीवन में मिलकर भारतीय भाषाओं के विचित्र कोलाहल में डूबा हुआ पाया।

३

मिस्र का जादूगर

यह एक अनोखी और शायद कुछ सार्थक सी बात है कि इस विचित्र अन्वेषण में अपना भाग्य परखने की मेरी कोशिश अभी शुरू भी नहीं हुई कि भाग्य स्वयं ही मुझे खोजते हुए आ गया। अभी तक बम्बई के दर्शनीय स्थानों को देख भी नहीं पाया हूँ। इस नगर के विषय में मेरी अब तक की समस्त जानकारी एक पोस्टकार्ड पर लिखी जा सकती है। मेरा समस्त असबाब, केवल एक संदूक को छोड़ कर, अभी तक जैसे का तैसा बन्द पड़ा है। जहाज के एक साथी ने मुझे मैजेस्टिक होटल का परिचय देकर कहा कि यह बम्बई के ऊँचे दर्जे का निवास स्थान है। यहाँ जब से आया हूँ मेरी तमाम कोशिश यही रही है कि इस होटल के पास पड़ोस वालों से अच्छी तरह परिचित हो जाऊँ। इसी यत्न में मैंने एक अद्भुत खोज की है कि होटल के साथियों में एक व्यक्ति ऐसा है जो जादूगर, असाधारण तांत्रिक अथवा अपूर्व मायावी है।

स्मरण रहे कि यह व्यक्ति उन ऐन्द्रजालिकों की कोटि का नहीं है जो भ्रमित दर्शकों की आँखों में धूल झोंक कर, उन्हें चकमा देकर अपना और अपने प्रदर्शन का प्रबन्ध करने वाले थियेटर-के स्वामियों का उल्लू सीधा कर लेते हैं। वह कोई ऐसा चालबाज नहीं था जो बाज़ारों में गुठली बो कर तुरन्त ही पेड़ का उगना और उसमें आम का फलना दिखाते फिरते हैं। नहीं, वह तो मध्यकालीन तांत्रिकों की श्रेणी का था। वह नित्य ही उन मायावी जीवों से काम लेता रहता है जो साधारण मनुष्यों के लिए अदृश्य, पर उसकी नज़रों के सामने उसका हुक्म तामील करने के लिए दौड़ते रहते हैं। कम से

कम लोगों में ऐसी ही प्रतीति उसने अपने विषय में पैदा कर रक्खी है। होटल के कर्मचारी सहमी हुई आँखों से उसकी ओर देखते और साँस रोक कर उसके विषय में चर्चा करते हैं। जब कभी वह पास से गुज़रता तो होटल के और मेहमान भी आप ही आप बातचीत का ताँता तोड़ कर घबराई हुई प्रश्न-सूचक दृष्टि से उसकी ओर ताका करते हैं। वह उनसे बात भी नहीं करता और प्रायः अकेले में ही भोजन करना पसन्द करता है।

जब हम देखते हैं कि पहिनाव से वह न तो यूरोपीय जान पड़ता है और न हिन्दुस्तानी, तब हमारा कुतूहल और आश्चर्य और भी बढ़ जाता है। वह नील नदी वाले मिस्र देश से आया हुआ एक यात्री है, जो वास्तव में जादूगर है।

महमूद बे की ग़ैबी ताक़तों की प्रशंसा मेरे सुनने में आयी, पर उसके रूप-रंग से तो मुझे उनका गुमान भी नहीं होता है। मैं समझता था कि उसका शरीर दुबला पतला और चेहरा गम्भीर होगा, पर मैंने देखा कि वह सौम्य, हँस-मुख और गठीले बदन का है। चाल उसकी कर्मशील व्यक्ति की तरह तेज़ है। सफेद और लंबे चोगे के बदले वह आधुनिक ढंग की चुस्त सुथरी पोशाक पहने, पेरिस के होटलों में शाम के समय घूमते हुए पाये जाने वाले किसी छैले-छबीले फ़रांसीसी युवक सा दिखाई पड़ता है।

इसी विषय का ध्यान करते करते सारा दिन कट गया। दूसरे दिन इस निश्चय के साथ उठा कि महमूद बे से फ़ौरन मुलाक़ात करनी चाहिए। पत्रकारों की भाषा में मेरा निश्चय इन शब्दों में प्रकट किया जायगा 'मैं उसके रहस्य की गुत्थी सुलझाऊँगा।'

अपने परिचय-पत्र की पीठ पर मैंने उससे भेंट करने के अपने ध्येय को लिखा और उसके दाहिने कोने में छोटे छोटे अक्षरों में एक संकेत-चिह्न लिख दिया जिससे वह समझ जाय कि मैं उसकी मायाविनी विद्या की परम्परा से एकदम अपरिचित नहीं हूँ। मुझे आशा थी कि भेंट करने की अनुमति आसानी से मिल जायगी। मैंने यह पत्र, एक रुपये के साथ होटल के चतुर नौकर के हाथ में रख दिया और उसे जादूगर के कमरे में भेज दिया।

पाँच मिनट के बाद उत्तर मिला कि महमूद बे मुझसे फ़ौरन भेंट करेंगे, वह नाश्ता करने जा रहे हैं और उनका अनुरोध है कि मैं भी नाश्ते में उनका साथ दूँ।

इस प्रथम सफलता से मेरी हिम्मत बढ़ गई और मैं उस नौकर के बतलाए रास्ते पर सीढ़ियाँ चढ़ कर ऊपर पहुँचा। देखा कि महमूद बे अपने कमरे में एक मेज़ के सामने बैठे हैं जिस पर चाय, रोटी व मुरब्बा रक्खा हुआ है। यह मिस्र-वासी मेरी आवभगत करने तो नहीं उठा, पर सामने की एक कुरसी दिखाते हुए उसने स्थिर, गूँजते स्वर में कहा :

"कृपया इस पर विराजिए; आप मुझे क्षमा करें, मैं कभी किसी से हाथ नहीं मिलाता।"

जादूगर के बदन पर एक ढीला, खाकी रंग का चोगा और कंधों पर सिंह के केसर के समान भूरे केश लटक रहे थे। माथे पर एक घुँघराली लट झूल रही थी। मुस्कराहट के साथ, श्वेतदन्त-पंक्ति दिखाते हुए उन्होंने पूछा :

"मेरे साथ नाश्ता करने की कृपा न करेंगे?"

मैंने धन्यवाद दिया; फिर यह भी बतला दिया कि होटल भर में उनकी असाधारण ख्याति फैली हुई है, और उनसे मिलने का साहस करने के पहले मैंने इस विषय पर बड़े ध्यानपूर्वक विचार किया है। वह ठहाका मार कर हँस पड़ा। हाथ उठा कर उसने लाचारी का संकेत किया, पर मुँह से कुछ कहा नहीं।

थोड़ी देर चुप रह कर उन्होंने कहा :

"मैं समझता हूँ आप किसी अखबार के प्रतिनिधि होंगे?"

"नहीं, वैसा तो नहीं; मैं अपने एक ज़ाती मतलब से हिन्दुस्तान आया हूँ। कुछ असाधारण और अद्भुत विषयों का अध्ययन करके, हो सके तो, एक ग्रंथ रचना की सामग्री संग्रह करने का मेरा इरादा है।"

"तो आप हिन्दुस्तान में बहुत दिनों तक रहने जा रहे हैं?"

"यह बात तो परिस्थिति पर निर्भर होगी, इस समय तो मेरे सामने समय का कोई बन्धन नहीं है।" यह उत्तर मैंने बहुत सकुचाते हुए दिया; क्योंकि मामला उलटा हुआ जा रहा था। मैं गया था उनका भेद खोजने पर महमूद बे तो उलटे मुझ से ही प्रश्न करने लगे। किन्तु उनकी बाद की बातचीत से मुझे धैर्य हुआ।

"मैं भी यहाँ लम्बी यात्रा करने आया हूँ; शायद साल दो साल लगें; उसके बाद सुदूर प्राच्य देशों में जाऊँगा। अगर अल्लाह ताला ने चाहा तो सारी दुनिया की सैर करता हुआ अपने वतन, मिस्र देश को लौट जाना चाहता हूँ।"

हम लोगों के नाश्ता कर चुकने पर नौकर ने आ कर मेज़ साफ़ की। मेरे मन में आया, गहरे पानी में पैठने का यही ठीक मौक़ा है। अतः सीधी तौर पर सवाल किया :

"तो क्या, सचमुच आपको अदृश्य शक्तियों पर अधिकार है?"

शान्ति और दृढ़ता से उन्होंने उत्तर दिया—"जी हाँ, सर्व-शक्तिमान ईश्वर ने मुझे ऐसी शक्तियाँ प्रदान की हैं।"

मुझे बड़ा सन्देह हुआ। उन्होंने अपनी काली कजरारी आँखें मुझ पर जमा दीं और सहसा बोल उठे :

"मैं समझता हूँ आप उनका प्रत्यक्ष प्रदर्शन देखना चाहते होंगे?"

वे मेरा आशय ठीक ठीक ताड़ गये थे। मैंने सिर हिलाकर अपनी सम्मति सूचित की।

"बहुत अच्छा, आपके पास पेन्सिल और थोड़ा काग़ज़ होगा न?"

झट से मैंने अपनी जेब टटोली, नोट-बुक से काग़ज़ फाड़ लिया और पेन्सिल भी हाथ में ली।

"खूब! आप उस पर कोई प्रश्न लिख दें।"

यह कहते हुए वे एक खिड़की के सामने छोटी सी मेज़ पर जा बैठे और

मेरी ओर पीठ करके नीचे की सड़क को देखने लगे। हम दोनों के बीच में कई फुट का अन्तर था।

मैंने पूछा—"कैसा प्रश्न ?"

उन्होंने झट कहा—"जो आप चाहें।"

मेरे मन में सहसा कई विचार दौड़े, आखिर यह छोटा सा सवाल उस पर लिख दिया—'चार साल पहले मैं कहाँ रहा था ?'

"अब उसे चौकोर मोड़ कर खूब छोटा कर दीजिये।"

मैंने उनके हुक्म की तामील की; फिर वे मेरी मेज़ के पास कुर्सी खींच कर बैठ गये और मेरी तरफ़ ध्यानपूर्वक ताकने लगे।

"काग़ज़ और पेन्सिल को अपने दाहिने हाथ की मुट्ठी में मज़बूती से पकड़े रहिए।"

मैंने पूरी ताक़त से वैसा ही किया। अब मिस्र-निवासी ने आँखें मूँद लीं। वे थोड़ी देर तक ध्यान-मग्न से दिखाई दिए, फिर पलकें खोल, मेरी ओर टकटकी बाँधे धीरे से बोले :

"आप का सवाल यही है न कि 'चार साल पहले मैं कहाँ रहा था' ?"

"आपने बिलकुल ठीक कहा" मैं अचम्भे में आ कर बोला। यह तो मनोगत भावों को जान लेने का अत्यन्त अद्‌भुत दृष्टान्त है।

वे फिर बोले—"अब हाथ का काग़ज़ खोल दीजिए।"

उस छोटे से परचे को तमाम तहें खोल कर मैंने उसे मेज़ पर रख दिया।

फिर हुक्म हुआ—"ग़ौर से देख लीजिए।"

उस पर नज़र दौड़ाते ही मैं दंग रह गया, क्योंकि किसी ग़ैबी हाथ ने पेन्सिल से उस पर शहर का नाम लिख दिया था जहाँ मैं चार साल पहले रहा था। यह उत्तर मेरे लिखे हुए प्रश्न के ठीक नीचे अंकित था।

महमूद् बे ने विजय-गर्व से मुस्करा कर कहा—"जवाब भी उसी में पाइयेगा, मेरा ख्याल है कि वह सही है। क्यों ?"

मैंने विस्मित हो कर कहा—"हाँ"; पर उस पर विश्वास कर लेना कठिन मालूम होता था। परखने के विचार से मैंने इस प्रयोग को दुहरा देने की उनसे प्रार्थना की। वे तुरन्त सहमत हो कर खिड़की की ओर खिसक गये। मैंने काग़ज़ पर दूसरा सवाल लिखा। दूरी पर जा कर उन्होंने मेरा यह सन्देह भी दूर कर दिया कि पास रह कर वे मेरी लिखावट को पढ़ लेते हैं। इसके अतिरिक्त मैं तो बड़ी सावधानी के साथ उनकी तरफ़ देखता रहा था और वे खिड़की से नीचे की तरफ़ झुक कर रास्ते पर का रम्य दृश्य देखते रहे।

मैंने दूसरी बार काग़ज़ को खूब तह किया और उसे पेन्सिल के साथ दृढ़ता से मुट्ठी में कस रक्खा। फिर वे मेज़ के पास लौट आये। आँखें बन्द कर उन्होंने पुनः गहरा ध्यान लगाया। थोड़ी देर बाद वे यों बोले:

"आप का दूसरा सवाल यही है कि 'दो वर्ष पहले मैंने किस पत्र का सम्पादन किया' ?" उन्होंने मेरा प्रश्न अक्षरशः दुहरा दिया था; पर मेरा फिर से यही विचार हुआ कि यह तो केवल मनोगत भावों को पढ़ लेने की हिकमत है।

दाहिने हाथ का काग़ज़ खोलने की जब आज्ञा हुई तो मैंने उसे खोलकर मेज़ पर फैला दिया और मेरे उस सम्पादित पत्र का नाम उस पर भद्दे अक्षरों में पेन्सिल ही से लिखा पाया। अब मुझे अपनी ही आँखों पर विश्वास जाता रहा।

यह बाजीगर का तमाशा तो नहीं है ?

नहीं, यह कैसे हो सकता है। काग़ज़ और पेन्सिल मेरे ही थे, सवाल भी ऐन वक्त पर सूझे हुए, और महमूद बे हर बार मुझसे कई फ़ुट के अन्तर पर बैठे हैं; फिर भी तारीफ़ यह कि यह सारा व्यापार प्रातःकाल के उजाले में किया गया है।

क्या जादूगर ने मेरी नज़र तो नहीं बाँध दी है। किन्तु ऐसा नहीं हो

सकता। दृष्टि द्वारा प्रभाव डालने का थोड़ा बहुत ज्ञान मुझे भी अवश्य है। अपने को प्रभावित करने का प्रयत्न मैं भलीभाँति जान सकता हूँ और उससे अपने को बचाने का उपाय भी मेरे लिए सुलभ है। अचरज तो इस बात का है कि उस गैबी-हाथ की लिखावट आज तक[१] कागज पर जैसी की तैसी बनी हुई है। मेरे विस्मय का अन्त न रहा। मैंने उस मिस्रवासी से प्रार्थना की कि वह तीसरी बार भी अपना प्रयोग दिखाने का कष्ट उठावें। आखिरी जाँच पर वे राज़ी हुए। मगर इस बार भी वे पूरी तरह से विजयी हुए।

सत्य को कौन झूठ बता सकता है। मेरा विश्वास है कि वे मेरे मन में घुस कर भावों को जान गये, और किसी गुप्त-मन्त्र के बल से, किसी अदृश्य व्यक्ति के द्वारा, उन्होंने मेरे हाथ में बँधे हुए कागज पर ऐसे शब्द लिखवाये जिनसे मेरे प्रश्नों के उत्तर बन गये। यह कौन सा विचित्र उपाय है जिससे उन्होंने काम लिया है? इस पर ध्यान देने पर मुझे ऐसा अनुभव होने लगा कि संसार में कुछ गुप्त शक्तियाँ जरूर मौजूद हैं। साधारण बुद्धि के व्यक्तियों की समझ में यह बात नहीं आ सकती; क्योंकि स्वाभाविक मन-स्तल से यह भिन्न और परे जान पड़ती है। इस विचित्रता और विस्मय-जनक स्थिति का ध्यान करके मैं स्तम्भित हो गया, मेरे हृदय की गति रुक सी गई।

"आप के इंगलिस्तान में इस तरह कर दिखाने वाला कोई है?" उन्होंने आत्म-प्रशंसा के साथ कहा।

मुझे मजबूर हो कर यह मानना पड़ा कि यद्यपि अनुकूल परिस्थिति में अपनी अपनी निजी -सामग्री के सहारे ऐसी-करामातें दिखाने वाले बहुतेरे पेशेवर जादूगर हैं, तो भी ऐसा तो कोई दिखाई नहीं देता जो इस तरह की परीक्षा में सफलतापूर्वक प्रयोग कर सकता हो।

---

१ मैंने उस पुरज़े को कई महीनों तक अपने पास रक्खा और अन्त तक उसके अक्षर ज़रा भी नहीं मिटे। मैंने उसे दो-चार मित्रों से पढ़वाया और उस पर लिखे जवाबों को जँचवाया भी। इससे यह साबित है कि मेरा अनुभव भ्रान्ति-हीन था।

"क्या आप अपने विधान को साफ़ साफ़ समझाने का कष्ट उठायेंगे ?" मैंने डरते डरते उनसे प्रश्न किया, क्योंकि मैं जानता था कि उनसे उनके रहस्य को जान लेने की इच्छा करना आकाश-पुष्प को पाने के समान दुराशा मात्र है।

हाथों को झुलाते हुए लाचारी सूचित करते हुए उन्होंने कहा :

"हज़ारों रुपये देने का वादा करके कितने ही लोग यह कोशिश करते आये हैं कि मैं अपना रहस्य उन पर खोल दूँ। लेकिन आज तक मैं सहमत नहीं हो सका।"

मैंने साहस करके कहा :

"आप तो यह समझते हैं कि मैं इन ग़ैबी-ताक़तों की बातों से एकदम अनजान नहीं हूँ।"

"जी हाँ, यह तो सच है। अगर मैं कभी योरप आया, और उसकी बहुत सम्भावना है, तो आप कई बातों में मेरी मदद कर सकते हैं। मैं वचन देता हूँ कि उस वक्त मैं आप को इस विद्या का इतना ज्ञान अवश्य करा दूँगा कि अगर आप चाहें तो खुद ही इस प्रकार के प्रदर्शन कर सकें।"

"यह विद्या कितने दिन में आ जायगी ?"

"यह तो सब के लिए एक सा नहीं होगा। अगर आपने मेहनत के साथ अपना पूरा समय इस में लगाया तो आप तीन महीनों में मेरी पद्धति अच्छी तरह सीख सकेंगे। पर बाद में भी कई वर्ष तक अभ्यास जारी रखना होगा।"

मैंने सानुरोध कहा—"क्या आप अपने रहस्य के मूलमंत्र को गोप्य रखते हुए भी अपने करतबों के सम्बन्ध में कुछ साधारण सिद्धान्तों का स्पष्टीकरण न करेंगे ?"

महमूद बे मेरे प्रश्न पर थोड़ी देर विचार करते रहे; फिर धीरे से बोले :

"अवश्य, आपके लिए इतना करने को प्रस्तुत हूँ।"

मैंने अपनी जेब से शीघ्र-लेखन की नोट बुक और पेन्सिल निकाली और लिखने के लिए तैयार हुआ। पर उन्होंने मुस्कराते हुए उस पर आपत्ति की।

"जी, आज नहीं; माफ़ कीजिए, आज फ़ुरसत नहीं। कल सुबह ११ बजे आ जाइए तो हम लोग अपनी बातचीत फिर प्रारम्भ करेंगे।"

नियत समय पर मैं पुनः महमूद बे के कमरे में जाकर बैठ गया। उन्होंने मिस्र की बनी एक सिगरेट का डब्बा मेज़ के ऊपर से मेरी तरफ़ बढ़ाया। मैंने उसमें से एक सिगरेट निकाल ली। सलाई जला कर मेरी ओर बढ़ाते हुए उन्होंने कहा :

"ये सिगरेटें मेरे देश में बनी हैं, बहुत अच्छी हैं।"

हम दोनों कुरसियों पर बैठ गये और बातचीत प्रारम्भ करने के पूर्व सिगरेट का आनन्द लेने लगे। धुआँ मीठा और सुगन्धित था। वास्तव में वे सिगरेटें उत्तम थीं। महमूद बे ने सरल स्वभाव से हँस कर कहा :

"अब तो मुझे अपने सिद्धान्तों का रहस्य प्रकट करना ही होगा; क्यों न ? आप अंग्रेज़ लोग इन बातों को कोरा सिद्धान्त भले ही मानें पर मेरे लिए तो यह प्रत्यक्ष सत्य है।"

फिर सिलसिला तोड़ कर वह बोलने लगे :

"शायद यह सुन कर आप को आश्चर्य होगा कि मैं कृषि-विज्ञान का विशेषज्ञ हूँ और इस विषय की बड़ी उपाधियाँ पा चुका हूँ।"

मैं जल्दी जल्दी इन बातों को लिखने लगा। वे फिर कहने लगे :

"हाँ, यह तो ठीक है; मैं जानता हूँ कि यह मेरा कृषि विषयक वैज्ञानिक अध्ययन मेरी इस मायाविनी विद्या की अभिरुचि से बिलकुल मेल नहीं खाता।"

मैंने उनकी तरफ़ सिर उठाया तो देखा कि उनके ओंठ मुस्करा रहे हैं। वह भी मेरी ओर ध्यानपूर्वक देखने लगे। मैंने सोचा, इस व्यक्ति की कहानी बड़ी अच्छी मालूम होती है।

"आप तो पत्रकार हैं, मुमकिन है यही जानना चाहते होंगे कि मैं. जादूगर कैसे बना ? क्यों न ?"

मैंने उतावली के साथ कहा—"जी हाँ ।"

"बहुत अच्छा । यद्यपि मेरा जन्म मिस्र के समुद्रतट से दूरवर्ती प्रदेश में हुआ है परन्तु मेरा पालन पोषण कैरो नगर में हुआ है । आप बस यही समझिए कि मैं बिलकुल साधारण बालक था, वैसी ही अभिरुचियाँ रखता था जो स्कूल के लड़के रक्खा करते हैं । खेती-बारी का पेशा अपनाने की मेरी उत्कट अभिलाषा थी, इसीलिए सरकारी कृषि-विद्यालय में मैं भर्ती हुआ और मैंने बड़ी मेहनत तथा उत्साह के साथ अपना अध्ययन जारी रक्खा ।

"एक दिन मेरे निवासस्थान पर एक बूढ़ा आदमी आया और उसने उसी मकान में एक कमरा किराये पर लिया । वह यहूदी था । उसकी भौंहें बड़ी घनी, दाढ़ी भूरी और लम्बी थी; उसका चेहरा हमेशा शीत और गम्भीर रहा करता था । वह पुराने ढंग के कपड़े पहनता था और ऐसा जान पड़ता था मानो किसी पिछली शताब्दी का व्यक्ति हो । वह लोगों से इतना खिंचा हुआ रहता था कि मकान के दूसरे रहने वाले सभी उससे दूर रहा करते थे । ताज्जुब की बात तो यह है कि इस बूढ़े की अलग रहने की प्रवृत्ति ने मुझ पर विपरीत असर डाला; उसने मुझ में अपने प्रति उत्सुकता और दिलचस्पी बढ़ा दी । छोटा होने के कारण मुझ में नाममात्र को भी संकोच न था, आत्म-व्यंजकता काफ़ी मात्रा में थी, और बहुत आग्रह के साथ मैंने उस से जान-पहचान बढ़ाने की कोशिश की । पहले तो उसने झिड़कियाँ देकर मेरे उत्साह पर पानी फेर दिया । पर इसने तो मेरी उत्सुकता की आग में घी का काम किया । उसे बातचीत में लगाने के मेरे निरन्तर प्रयत्नों का फल यह हुआ कि उसका मन पिघल गया । उसने अपना दरवाज़ा खोल कर मुझे अन्दर आने दिया और अपने जीवन के रहस्य को समझने का अवसर दिया । इस प्रकार मैंने जाना कि वह अपना अधिकांश समय ग़ैबी-इल्म हासिल करने और ऐसे कृत्यों के साधन में व्यय कर रहा है जो साधारण मनुष्य की शक्ति के परे हैं । सारांश यह कि उसने मुझ पर स्पष्ट रूप से यह प्रकट कर

दिया कि वह इस गैबी-इल्म की खोज का काम करता रहा है। जरा सोचिये, अब तक तो मेरा जीवन साधारण युवकों के समान विद्याध्ययन तथा खेल-कूद के सीधे मार्ग पर चल रहा था, किन्तु अब सर्वथा भिन्न परिस्थिति से मेरी मुठभेड़ हो गई। आश्चर्य की बात यह है कि यह नई परिस्थिति मुझे अत्यन्त रोचक जान पड़ी। खूब भा गयी। गैबी बातों के विचार से मुझे तनिक भी भय नहीं हुआ, जैसा कि अन्य साधारण बालकों को निस्सन्देह होता। वास्तव में इससे मैं प्रफुल्लित हो गया क्योंकि मैंने इस हुनर के द्वारा बड़े बड़े साहसी कार्य कर दिखाने की सम्भावना देखी। इस विद्या का थोड़ा बहुत ज्ञान मुझे भी करा देने के लिए मैंने उस वृद्ध यहूदी से मिन्नतें कीं और उसने मेरी प्रार्थना स्वीकार भी की। इस तरह मैं नूतन अभिरुचि और मित्रों के घेरे में लाया गया! यह यहूदी मुझे अपने साथ कैरो की उस मंडली में अकसर ले जाता था जहाँ जादू, प्रेत-विद्या, दिव्य-ज्ञान और गुप्त-शक्ति का क्रियात्मक अनुसन्धान होता रहता था। इस मंडली में अकसर उस यहूदी के व्याख्यान होते थे। समाज के सम्मानित व्यक्ति, विद्वान, सरकारी अफ़सर और अन्य भद्र पुरुष इसमें शरीक होते थे।

"यद्यपि मैं अभी युवावस्था को पहुँचा ही था, तो भी मंडली की हर एक बैठक में मुझे उस वृद्ध के साथ हाजिर रहने की अनुमति मिल गई। हर बार मैं बड़ी ही उत्सुकता के साथ व्याख्यान सुनता; मेरे चारों ओर जो सम्भाषण होता उसका एक एक अक्षर मेरे कानों में प्रवेश करता। बार बार होने वाले प्रयोगों को मेरी आँखें तीव्र उत्कंठा के साथ परखती रहतीं। इस से मेरे कृषि-शास्त्र के अध्ययन में बाधा तो अवश्य पहुँची, पर यह अनिवार्य था। इस मायावी विद्या के प्रयोगों के लिए अधिक समय देना जरूरी था! परन्तु कृषि-शास्त्र में मेरी स्वाभाविक प्रवीणता होने के कारण किसी तरह, बिना विशेष कष्ट उठाये, मैंने कृषि-विज्ञान की उपाधि की परीक्षा पास कर ली।

"मैंने उस यहूदी की दी हुई समस्त प्राचीन पोथियाँ पढ़ डालीं और जादू के उन सब साधनों व प्रतिक्रिया का अच्छा अभ्यास कर लिया, जो उसने सिखाई थीं। इसमें मैंने शीघ्र ही ऐसी उन्नति की कि मैं ऐसी नई बातों

की खोज भी करने लगा जिनको यहूदी स्वयं नहीं जानता था। होते होते मैं इस विद्या का विशेषज्ञ समझा जाने लगा। कैरो की सोसाइटी में मैंने इस विषय पर कई व्याख्यान दिए और प्रत्यक्ष प्रयोग भी कर दिखाए। इसका परिणाम यह हुआ कि उस सोसाइटी के सदस्यों ने मुझे अपना अध्यक्ष बना लिया। १२ वर्ष तक मैं उस सोसाइटी का अगुआ बना रहा। बाद को उससे इस्तीफ़ा देकर मैं अलग हुआ, क्योंकि मिस्र देश के बाहर कुछ अन्य देशों की यात्रा करने की, और साथ ही धन कमाने की भी, मेरी इच्छा हुई।"

महमूद बे इतना कह कर रुक गये, और अपनी सावधानी से चिन्हित उंगलियों से—जिन पर मेरा ध्यान गये बिना न रहा—उन्होंने सिगरेट की राख गिरा दी।

मैंने कहा—"धन कमाना तो टेढ़ी खीर है।"

उन्होंने हँसते हुए कहा :

"मेरे लिए तो आसान ही है। थोड़े से असाधारण धनवान व्यक्ति ही तो मुझे चाहिएँ जो मेरी ग़ैबी ताक़तों से फ़ायदा उठाना चाहते हों। इस समय भी दो-चार धनाढ्य पारसी और हिन्दू व्यक्तियों से मेरी जान पहचान हो गई है। अपने व्यापार के मामलों और दिक़्क़तों के सम्बन्ध में मेरी सलाह लेने वे यहाँ चले आते हैं। जो बात उन्हें धोखे में डाल दे उससे वे बचना चाहते, अथवा ऐसी बात का पता लगाना चाहते हैं जिसकी खोज इस रहस्यमय विद्या के ज्ञान के बिना पाना असम्भव है। मैं उन लोगों से सहज ही में काफ़ी ऊँची फ़ीस लेता हूँ; १०० रु० से कम तो मैं लेता ही नहीं। स्पष्ट बात तो यह है कि मैं बहुत सा धन संचित करना चाहता हूँ। बाद को इन सब बातों से अलग होकर अपने मिस्र देश के किसी अन्तर्भाग में जा बसूँगा। एक विशाल नारंगी का बाग़ ख़रीद कर फिर से खेती बारी को अपनाऊँगा।"

"आप सीधे मिस्र से यहाँ आये हैं?"

"जी नहीं, कैरो छोड़ने पर मैंने सीरिया और पैलेस्टाइन में कुछ समय बिताया। सीरिया के पुलिस अफ़सरों ने जब मेरी ताक़तों की बात सुनी तो

वे मुझसे अकसर मदद माँगने के लिए आने लगे। जब कभी किसी जुर्म का पता लगाने में वे हैरान होते और हार कर थक जाते तो अन्त में मेरी शरण लेते। प्रायः हर एक मामले में मुझे अपराधी का राज़ बताने में सफलता मिली।"

"यह आप से कैसे हो सका ?"

"मेरी वशवर्ती प्रेतात्माएँ मेरी आँखों के सामने जुर्म का यथार्थ दृश्य खड़ा कर देती थीं और मैं उसका सच्चा रहस्य जान जाता था।"

महमूद बे एक क्षण तक अपनी स्मृति को बटोरते हुए सोचने लगे और मैं शान्ति से उनकी आगे की बातों की प्रतीक्षा करने लगा। "हाँ, मैं समझता हूँ आप मुझे एक प्रकार का जिन्नी अर्थात् प्रेत-विद्या विशारद कह सकते हैं क्योंकि मैं सचमुच प्रेतों से काम लिया करता हूँ। लेकिन, मैं वास्तविक अर्थ में वह भी हूँ जिसे आप लोग जादूगर कहते हैं—इन्द्रजालिक नहीं—और दूसरों के गुप्त भावों को पढ़ने वाला भी हूँ। बस, इससे और ऊँचा होने का मैं दावा नहीं करता।"

वह जो कुछ होने का दावा करते हैं वही मुझे आश्चर्य-चकित कर देने के लिए पर्याप्त है।

मैंने उनसे पूछा—"कृपा करके अपने उन गैबी-ताबेदारों की बाबत कुछ समझा दीजिए।"

"भूतों के बारे में ? अच्छा, जितना अधिकार आज मैं उन पर कर रहा हूँ वह मुझे तीन वर्ष की कठोर साधना के बाद प्राप्त हो सका है। इस स्थूल संसार से परे जो दूसरी दुनिया है उसमें अच्छे तथा बुरे सभी प्रकार के भूत-प्रेत निवास करते हैं। मैं सदा अच्छे प्रेतों से ही काम लेने का यत्न करता हूँ। उनमें से कुछ वे हैं जो इस संसार से मर कर वहाँ पहुँचते हैं। परन्तु मेरे अधिकतर ताबेदार तो जिन्न हैं जो प्रेत लोक के आदि निवासी हैं और जिन्हें कभी मनुष्य का शरीर नहीं मिला है। उनमें से कुछ तो जानवरों के समान बुद्धिहीन हैं और कुछ मनुष्यों के समान बुद्धिमान। कुछ जिन्न दुष्ट स्वभाव

के भी होते हैं—जिन्न शब्द मिस्र देश का है इसका अंग्रेजी भाषा का पर्याय-वाची शब्द मुझे नहीं मालूम है। इन दुष्ट जिन्नों से निम्न कोटि के इन्द्रजालिक खास कर अफ्रीका के टोना करने वाले ओझा लोग, काम लिया करते हैं। मैं उनसे भूल कर भी सरोकार नहीं रखता। वे बड़े खतरनाक सेवक हैं और कभी कभी अपने ही मालिक से दगा करके उसकी जान ले लेते हैं।"

"वे मानवी प्रेत कौन हैं जिनसे आप काम लेते हैं?"

"मैं आप से बता सकता हूँ; उनमें से एक मेरा ही भाई है। वह कुछ साल पहले 'मर' चुका है। मगर यह बात याद रखिए, मैं प्रेतों का माध्यम करने वाला नहीं हूँ। मेरे शरीर में न कोई भूत प्रवेश कर सकता है और न मैं उन्हें अपने ऊपर किसी प्रकार का प्रभाव ही डालने देता हूँ। मेरा भाई मेरे मन पर अपनी इच्छा अंकित कर देता है अथवा मेरे मनोनेत्र के आगे अपने विचारों का चित्र-सा खींच देता है; इस प्रकार वह मुझसे वार्तालाप कर सकता है। इसी रीति से कल मैंने आप के लिखे प्रश्नों को जान लिया था।"

"और आप के आज्ञाकारी जिन्न?"

"उनमें से लगभग ३० मेरे वशवर्ती हैं। उन्हें काबू में लाने के बाद मुझे उनको आज्ञापालन का क्रम सिखाना पड़ा, ठीक उसी तरह जैसे बच्चों को नाचना सिखाया जाता है। उनमें से हर एक का नाम जान लेना मेरे लिए ज़रूरी है, नहीं तो न वे बुलाए जा सकते हैं और न उनसे कोई काम ही लिया जा सकता है। इनमें से कुछ के नाम तो मैंने उन पुरानी पोथियों से जान लिये जो उस यहूदी ने दी थीं।"

महमूद बे ने सिगरेट की डिबिया फिर से मेरी तरफ़ खिसका दी और फिर कहने लगे :

"मैंने प्रत्येक प्रेत को भिन्न भिन्न काम सौंपे हैं और उन्हें भिन्न भिन्न कार्य करने की शिक्षा दी है। कल आपके काग़ज़ पर जिस जिन्न ने पेन्सिल से जवाब लिख दिया था, उससे आपका सवाल जानने के काम में मैं कोई मदद नहीं पा सकता था।"

"आप इन भूतों के सम्पर्क में कैसे आते हैं ?"

"एकाग्रचित्त होकर उनका ध्यान करने से मैं उन्हें बहुत ही जल्द अपने पास बुला ले सकता हूँ। पर साधारणतः जिस जिन्न से मुझे काम लेना होता है उसका नाम अरबी में लिख देता हूँ; उसी क्षण वह मेरे पास दौड़ा आवेगा।"

मिस्र निवासी ने अपनी घड़ी पर नज़र डाली, फिर उठ कर बोला :

"मेरे प्रिय मित्र, अफ़सोस है कि मैं अब अपने उपायों का इससे अधिक स्पष्टीकरण नहीं कर सकता। आप समझ ही गये होंगे कि मुझे इस विषय को क्यों गुप्त रखना चाहिए। अगर अल्लाह की मर्ज़ी हुई तो हम किसी दूसरे दिन मिलेंगे। आदाब अर्ज़।"

सिर झुकाते समय जब वह मुस्करा दिया उसके सफ़ेद दाँत चमक उठे।

हमारी मुलाक़ात समाप्त हुई।

× × ×

बम्बई की रात का अनुभव। काफ़ी रात बीत जाने पर मैं बिस्तरे पर गया लेकिन किसी तरह नींद नहीं आई। उमस के मारे दम घुटने लगा। हवा में कोई प्रासाद शक्ति नज़र ही नहीं आती थी। गरमी असह्य हो गई थी। छत से लटकने वाला बिजली का पंखा ज़ोर से चल रहा था पर उससे मुझे काफ़ी आराम नहीं मिल रहा था, इतना आराम कि मेरी आँखें बन्द हो जायें। मुझे इतनी गरमी का कभी अनुभव नहीं था। इस कारण मेरा दम घुटने लगा। साँस लेना भी मेरे लिए कठिन मालूम हो रहा था। मेरे अभागे बदन से पसीने की धार छूट रही थी। मेरा पायजामा उस पसीने के कारण तर हो गया। मेरा दिमाग़ बेचैन था। नींद न आने का भयानक रोग आज की रात मुझे अपना शिकार बनाने लगा और मेरे भाग्य में यही बदा था कि भारत के मेरे सफ़र के आख़िरी दिन तक इससे मेरा पिंड न छूटे। अपने को इस देश की आबहवा के अनुकूल बना लेने का सौदा मेरे लिए बहुत मँहगा पड़ा है। ऐसा होना भी अवश्यम्भावी था।

कफ़न के समान मेरे बिस्तर को एक सफ़ेद मसहरी घेरे हुए थी। बरामदे की ओर दीवार में एक लम्बी खिड़की थी। उसके द्वारा चाँदनी का प्रवाह भीतर उमड़ा आ रहा था और उसकी उदास छाया भीतरी छत पर पड़ रही थी।

मैं लेटे लेटे महमूद बे के साथ अपनी सुबह की बातचीत और पिछले दिन के असाधारण प्रदर्शनों के बारे में मनन करने लगा। उन्होंने सारी बातों को एक ढंग से समझा दिया था पर उस बयान के अतिरिक्त उनके सम्बन्ध में और कोई मर्म की बात मैं जान नहीं सका। वे जिन ३०-३५ ग़ैबी खिदमतगारों का ज़िक्र करते हैं यदि सच ही उनकी हस्ती हो, तो निश्चय ही हम आज दिन भी उस मध्यकालीन दुनिया में रहने वालों से भिन्न नहीं हैं जब कि यूरोप के हर शहर में जादू-टोना करने वाले रहा करते थे।

इस समस्या को हल करने की मैं जितनी कोशिश कर रहा था उतना ही चकित मुझे रह जाना पड़ता था।

पेंसिल और काग़ज़, दोनों को एक साथ ही हाथ में लेने के लिए महमूद बे ने मुझसे क्यों कहा था? उनके बताये जिन्न क्या पेंसिल के किसी अंश के द्वारा ग़ैबी ढंग से जवाब लिख देते थे?

मैं इसी प्रकार की कुछ अन्य बातों के लिए अपनी स्मृति को टटोलने लगा। वेनिस निवासी प्रसिद्ध पर्यटक मार्को पोलो ने भी कुछ इसी प्रकार की बातों का अपने यात्रा वृत्तान्त में उल्लेख किया है। उन्होंने लिखा है कि चीन, तातार और तिब्बत में उनकी कुछ जादूगरों से भेंट हुई थी। वे भी पेंसिल छुए बिना ही उससे काग़ज़ पर लिख कर दिखा सकते थे। इन अजीब जादूगरों ने उनको बताया था कि तंत्र-मंत्र और झाड़-फूँक की विद्या उन लोगों में कई सदियों से चली आ रही थी।

मुझे एक और व्यक्ति की भी याद आ रही है। रूस की विचित्र महिला हेलीना पेट्रोला ब्लावटस्की ने, जिन्होंने थियोसाफिकल सोसाइटी की नींव डाली, ५० वर्ष पूर्व कुछ इसी ढंग की करामातें दिखाई थीं। उनकी इच्छा-

शक्ति द्वारा उनके कुछ खास चेलों को लम्बे चौड़े संदेश भी मिला करते थे। उन्होंने कुछ दार्शनिक प्रश्न पूछे और उन प्रश्नों का उत्तर ठीक उसी पत्र पर किसी गैबी ढंग से लिखा मिलता था जिस पर वे प्रश्न लिखे होते थे। यह भी एक ध्यान देने योग्य बात है कि मार्को पोलो ने जिन प्रदेशों का इस सम्बन्ध में उल्लेख किया है उन्हीं तातार और तिब्बत के प्रान्तों से ब्लावटस्की ने भी अपना परिचय बतलाया है। परन्तु महमूद बे के समान किन्हीं गैबी जिन्नों को अपने कब्ज़े में रखने का दावा उन्होंने पेश नहीं किया है। उनका कहना था कि लिखने का काम उनके तिब्बत के महात्मागण ही किया करते थे। ब्लावटस्की कहा करती थीं कि ये महात्मा इसी संसार में हाड़-मांस का शरीर धारण किये हुए हैं और अदृश्य रूप से उनके समाज के सदस्यों को प्रेरणा देते हैं। जो हो, ब्लावटस्की के महात्मागण महमूद बे के जिन्नों की अपेक्षा अधिक सिद्ध हस्त थे क्योंकि वे तिब्बत से ही सैकड़ों मील की दूरी पर भी इस अद्भुत करामात को कर सकते थे। जनसाधारण ने ब्लावटस्की के कथनों की सत्यता के सम्बन्ध में बड़ा सन्देह प्रकट किया था कि तिब्बत में इस प्रकार के महात्मा वास्तव में हैं या नहीं। किन्तु इन सब झमेलों से मुझे कोई मतलब नहीं है। उक्त महिला को स्वर्ग सिधारे कितने ही वर्ष बीत गये। मैं तो अपने अनुभव की बात जानता हूँ। अपनी आँखों देखी बात मुझे याद है। मैं उसका मर्म भले ही न समझ सकूँ परन्तु महमूद बे की करामात धोखे की टट्टी नहीं है।

बेशक महमूद बे बीसवीं सदी के एक अद्भुत जादूगर हैं। भारत की भूमि पर पैर रखते ही इस अजीब तांत्रिक से मेरी यह भेंट भविष्य में मेरे सामने घटने वाली और भी अनेक अद्भुत बातों की मानो सूचना दे रही थी। इस प्रकार मैंने अपने भारत भ्रमण सम्बन्धी अनुभवों का श्रीगणेश किया और मेरी डायरी के कोरे पन्ने मेरे इस नवीन अनुभव की गाथा से रँग गये।

४

पैग़म्बर से भेंट

"आपको देख कर मुझे बड़ी खुशी हुई", यों कह कर मेहर बाबा ने कुछ शिष्टाचार के ढंग से मेरी आवभगत की। मुझे क्या मालूम था कि वे कुछ समय तक किसी समय पश्चिमी संसार के आकाश में उल्का के समान चमक उठेंगे और यूरोप तथा अमेरिका के लाखों आदमियों की उत्सुकता को भड़का देंगे और फिर उसी तीव्र गति से अनादरित हो कर अदृश्य हो जायँगे। उनसे भेंट करने वालों में मैं सबसे पहला पश्चिमी पत्र-संवाददाता था, क्योंकि जब उनके निकटवर्तियों को छोड़ कर और कहीं भी उनका नाम प्रायः अज्ञात था तभी मैं उनका पता लगा कर उनके निवास स्थान ही पर उनसे मिला था।

मुझे उनके एक प्रधान शिष्य से परिचय प्राप्त हुआ था और कुछ लिखा-पढ़ी के बाद मुझे आश्चर्य होने लगा कि यह किस ढंग का विचित्र व्यक्ति है जो अपने आप को पैग़म्बरों की श्रेणी में समझने लगा है। मुझको अपने गुरु के पास ले चलने के लिए दो पारसी शिष्य बम्बई आये थे। शहर से रवाना होने से पहले ही उन्होंने मुझको बता दिया था कि उनके गुरुदेव की भेंट के लिए मुझे अवश्य ही कुछ चुने हुए उत्तम फूल और फल खरीदना होगा। इसलिए हम लोगों ने बाजार की राह ली; वहाँ मेरी ओर से उन्होंने एक बड़ी टोकरी भर भेंट का सामान खरीदा।

दूसरे दिन सुबह हमारी गाड़ी रात भर के सफर के बाद अहमदनगर स्टेशन पर पहुँची। मुझे स्मरण हुआ कि यहीं कठोर हृदय औरंगज़ेब ने, जो गाज़ी और मुग़ल तख़्त का एक जौहर समझा गया है, आखिरी बार अपनी लम्बी दाढ़ी सुहलायी थी, क्योंकि यहीं यमदेव ने उनको उन्हीं के खेमे में धर पकड़ा था। स्टेशन पर महासमर के समय की एक पुरानी फ़ोर्ड मोटर, जो मेहर बाबा के स्थान वालों की सवारी के काम में आती थी, हमारी

नये मसीहा मेहर बाबा

14279
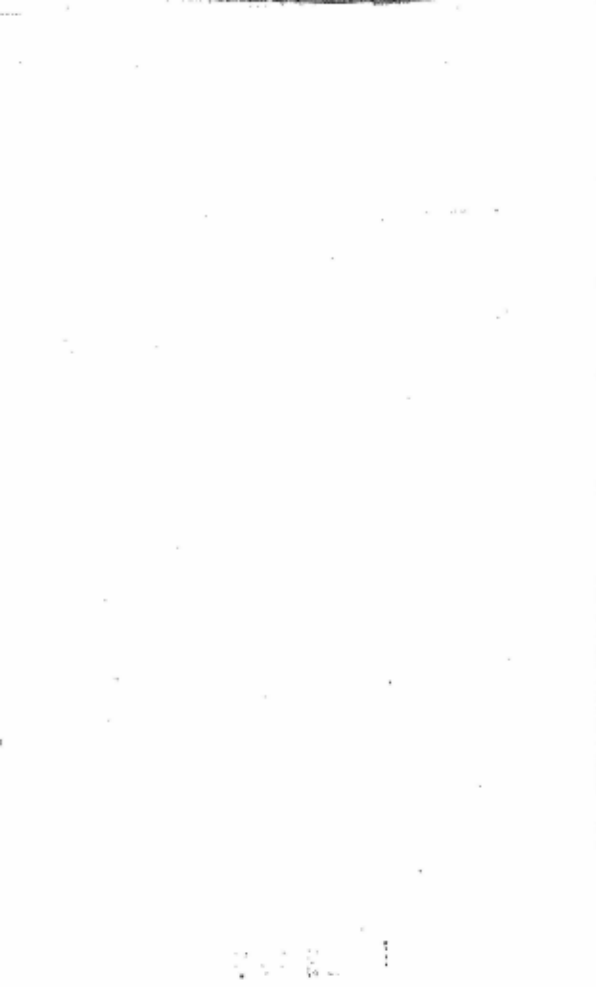
प्रतीक्षा कर रही थी। हमें समतल भूमि को पार करते हुए कोई सात मील का रास्ता तय करना था। कुछ दूर तक सड़क के दोनों ओर नीम के पेड़ों की श्रेणी दिखाई पड़ी। बीच में एक छोटा गाँव नज़र आया जिसके मन्दिर की चोटी के अगल-बगल भूरे छप्परों का एक झुंड दिखाई पड़ता था। फिर एक छोटी नदी मिली। उसके दोनों किनारे गुलाबी और सुनहले रँग के फूलों से बहुत ही सुहावने मालूम होते थे। उस नदी के कीचड़ से भरे छिछले पानी में भैंसें मग्न हो कर आराम कर रही थीं।

फिर हम मेहर बाबा की विचित्र बस्ती में पहुँच गये। वहाँ का दृश्य कुछ अजीब था। कुछ मकान इधर उधर बिखरे हुए खड़े थे। एक खेत में कुछ निराले ढंग के पत्थर के मकान दिखाई दिये। मुझे बतलाया गया कि ये किसी पुरानी छावनी के बचे-खुचे अंश हैं। उससे लगे हुए एक खेत के बीच में तीन सादे काठ के बंगले खड़े थे। यहाँ से कोई दो फर्लांग की दूरी पर एक छोटा गाँव, आरंगाँव था। सारा दृश्य कुछ उजड़ा सा दिखाई पड़ता था। मेरे पारसी मित्र मुझे यह समझाने में उलझे हुए दिखाई दिये कि यह स्थान मेहर बाबा का सदर मुकाम नहीं है वरन् उनके एकान्तवास का स्थान है। उन्होंने मुझको बताया कि उनका सदर मुकाम नासिक नगर के पास है जहाँ उनके कई खास चेले रहा करते हैं और वहीं साधारणतया अतिथियों का आदर किया जाता है।

हमारे आगे बढ़ने पर एक बँगले में से कुछ लोग बाहर आये। वे बरामदे में मुस्कराते हुए इधर उधर टहलने लगे। उनके चेहरों से यह साफ़ ज़ाहिर हो रहा था कि अपने बीच में मुझ अंग्रेज़ व्यक्ति को पाकर बड़े खुश हो रहे हैं। हम एक खेत को पार कर एक विचित्र घर के पास आ पहुँचे। वह एक कृत्रिम गुफा मात्र थी जो ईंटों की बनी थी। खुरदुरे पत्थरों से ज़मीन जड़ी हुई थी। उस गुफा की चौड़ाई कोई आठ फुट होगी। उसका मुँह दक्षिण की ओर था और उसके दरवाजे में से सुबह की सूर्य-रश्मि अच्छी तरह भीतर प्रवेश कर पाती थीं। मैंने चारों ओर अपनी निगाह दौड़ाई तो दूर तक आँख के सामने खेत बिछे हुए दिखाई दिये। सुदूर क्षितिज पर पूर्व

33673

की ओर पर्वतों की गोलाकार पंक्ति खड़ी थी। नीचे की ओर तराई में वृक्षों के एक झुरमुट के बीच एक देहाती बस्ती थी। सच ही यह पारसी पैग़म्बर प्राकृतिक छवि के उपासक हैं क्योंकि उन्होंने शहरों के कोलाहल से दूर इस एकान्त और प्रशांतिमय वायुमंडल के बीच अपना आवास चुना है। वास्तव में बम्बई के] चकराने वाले कोलाहलपूर्ण जीवन के बाद, इस निराकुल प्रशान्त आवास को पाकर मैं बड़ा ही प्रसन्न हुआ।

गुफ़ा के द्वार पर दो आदमी खड़े चौकसी कर रहे थे। हमारे पहुँचते ही उनमें से एक अपने मालिक से हमारे आगमन की बात कह कर अपना कर्तव्य जानने के लिए गया। मेरे साथ जो व्यक्ति आये थे, उनमें से एक ने मुझे सहेजा—"सिगरेट फेंक दीजिये, बाबा इन चीज़ों को पसन्द नहीं करते।" मैंने उस आपत्तिजनक सिगरेट को फेंक दिया। एक मिनट बाद हम इस नये पैग़म्बर कहलाने वाले महात्मा के सामने पहुँच गये।

सारे फ़र्श पर एक बहुत सुन्दर ईरानी क़ालीन बिछा था। गुफ़ा के भीतर एक ओर मेहर बाबा बैठे थे। मैंने जो कल्पना की थी, उनका रूप उससे कुछ भिन्न ही था। उनकी दृष्टि मेरे भीतर पैठती न थी। उनके चेहरे पर दृढ़ता की झलक तक नहीं। यद्यपि उनके चारों ओर के वायुमंडल में मुझे किसी प्रकार के अलौकिक और सौम्य भाव की प्रतीति होती थी, तो भी मुझे अचरज होने लगा कि मेरे भीतर उनके दर्शन के साथ ही बिजली क्यों नहीं दौड़ गई जैसा कि किसी सच्चे महात्मा, जिसको लाखों व्यक्ति पूजते हों, के सामने पहुँचने पर अवश्य ही होनी चाहिए।

वे एक शुभ्र सफेद लम्बा चोगा पहने हुए थे जो पुराने ढंग की रात में पहनने की अंगरेजी शर्ट के समान था। उनके चेहरे से सौजन्य और दया के भाव छलके पड़ते थे। उनके लालिमा-मिश्रित भूरे लम्बे बालों की लटें उनके गले तक लहरा रही थीं। उनके रेशमी बालों की कोमलता और चिक-नाई औरतों के बालों की सी थी। उनकी नाक कमान के समान कुछ ऊपर उभड़ कर फिर चील की चोंच सी झुकी हुई थी। उनके काले नेत्र स्वच्छ

थे जो न अधिक बड़े थे और न छोटे; पर वे तनिक भी प्रभाव डालने वाले नहीं जान पड़े। भूरे रंग की मोटी मूछें ओठों पर शोभित थीं। उनके चमड़े के रंग से उनका ईरानीपन साफ़ झलक रहा था क्योंकि उनके पिता ईरान से आये थे। वे अभी युवा ही हैं, आयु ४० वर्ष से कुछ कम ही होगी। सबसे आखिरी बात जो मेरे स्मृति-पट पर अंकित हुई वह यह थी कि उनका ललाट कुछ धँसा हुआ था। मुझे उसको देख कर अचरज हुआ! क्या ललाट की गठन का भी किसी व्यक्ति की मेधा-शक्ति से कोई तारतम्य नहीं है? पर शायद पैग़म्बर इन नियमों के अपवाद होते हों!

उन्होंने मुझको देख कर कहा—"आपसे मिलकर मुझे खुशी हुई है।" लेकिन ये वाक्य उन्होंने औरों के समान अपनी वाणी द्वारा नहीं प्रकट किये। उनकी गोद में एक तख्ती रक्खी है जिस पर अपना उत्तर लिखकर वे अपनी तर्जनी से बहुत ही जल्दी एक एक अक्षर को दिखाते जाते हैं। इस प्रकार बिना बोले केवल संकेतों के द्वारा मेहर बाबा अपने आशय प्रकट किया करते हैं। उनके मन्त्री महोदय मेरे लिए वे वाक्य ज़ोर से पढ़ देते थे।

१० जुलाई सन् १९२५ से आज तक इन महात्मा के मुँह से एक भी शब्द नहीं निकला है। उनके छोटे भाई ने मुझको बताया कि जब वे अपना मुँह खोल कर बोलने लगेंगे तो उनका संदेश संसार को चकित कर देगा। तब तक वे मौन व्रत धारण किये रहेंगे।

अपनी दाढ़ी सुहलाते हुए मेहर बाबा ने मेरी रुचि तथा निजी सुविधाओं की बात बड़ी दया के साथ पूछी, मेरे जीवन के बारे में प्रश्न किये और भारतवर्ष के प्रति मेरा प्रेम देख कर अपना सन्तोष प्रकट किया। वे अंग्रेजी अच्छी तरह जानते हैं। अतः मेरी बातों के अनुवाद की कोई आवश्यकता नहीं हुई। मैंने उनसे अपने लिए कुछ समय माँगा तो उन्होंने शाम का समय नियत कर दिया। वे बोले—"आपको अभी भोजन और आराम की बड़ी आवश्यकता है।" वहाँ से उठ कर मैं एक कमरे में गया। उसके भीतर कुछ धुँधली रोशनी थी। एक कोने में एक पुरानी खाट पड़ी थी।

उस पर कोई बिछौना नहीं था। एक ओर एक मेज और कुर्सी भी थीं जो शायद ग़दर के समय भी व्यवहार में लाई जाती होंगी। इसी कमरे में मुझे एक हफ़्ते तक रहना था। मैंने काँच-रहित खिड़की से झाँक कर देखा। सामने बीहड़ खेत इधर उधर बिखरे पड़े थे और एक ओर कहीं कहीं नागफनी से भरी हुई छोटी झाड़ियाँ फैली हुई थीं।

चार घंटे बड़ी ही मुश्किल से किसी प्रकार कटे। फिर एक बार ईरानी क़ालीन पर मैंने मेहर बाबा के सामने अपने को बैठा पाया। इन्हीं मेहर बाबा के इस आश्चर्यपूर्ण दावे की मुझे जाँच करनी थी कि वे ही सारी मानव जाति को आध्यात्मिक ज्योति प्रदान कर सही मार्ग पर ले चलने वाले हैं। अपनी तख्ती पर उन्होंने सबसे पहले वही वाक्य लिखा जो अपने महत्व के सम्बन्ध में वे सदैव कहा करते हैं—"मैं दुनिया के इतिहास को ही पलट दूँगा।"

मैं उनकी बातों को लिखने लगा जिससे उन्हें कुछ असुविधा हुई। उन्होंने मुझसे पूछा—"क्या मुझसे भेंट समाप्त करने के बाद आप अपना लेखन कार्य नहीं कर सकते?"

मैंने मान लिया और उस क्षण से उनकी बातों को अपने स्मृति-पट पर अंकित करने लगा।

"जिस प्रकार जड़वादी भौतिक जगत को ही सब कुछ मानने वाली दुनिया को एक आध्यात्मिक संदेश सुनाने के लिए ईसामसीह संसार में आये थे उसी भाँति मैं भी इस ज़माने के मानव समुदाय को आध्यात्मिकता की ओर उन्मुख करने के लिए ही आया हूँ। इस प्रकार के दिव्य कार्य-कलाप का एक निश्चित समय हुआ करता है! जब समय आ पहुँचेगा मैं सारे संसार के सामने अपना सच्चा स्वरूप प्रकट कर दूँगा। दुनिया के जो बड़े बड़े पैग़म्बर, जैसे ईसामसीह, बुद्धदेव, मुहम्मद, जरतस्तू आदि हो गये हैं उनके मुख्य सिद्धान्तों में कोई वास्तविक भेद नहीं है। ये सब पैग़म्बर ईश्वर के भेजे हुए थे। उनके सारे उपदेशों में एक ही समान मूल-मंत्रों का समावेश

है। इन दिव्य धर्म-प्रवर्तकों ने जनता के सामने अपने को उसी समय प्रकट किया जब कि उनकी सहायता की बड़ी भारी आवश्यकता थी, जब आध्यात्मिकता मृत्यु-शय्या पर पड़ी पड़ी कराहती थी और जड़ अनात्मवाद विजय-गर्व से माथा ऊँचा किये अपना रोब जमाये था। इस जमाने में हम बहुत जल्द कुछ ऐसी ही परिस्थिति की ओर बड़ी तेज़ी के साथ बढ़े जा रहे हैं। अब सारा संसार विषय-वासनाओं, जातियों के स्वार्थों और धन-सम्पत्ति की उपासनाओं के चंगुल में फँसा हुआ है। ईश्वर का कोई नाम तक नहीं लेता। सच्चे धर्म की सर्वत्र निन्दा की जा रही है क्योंकि वह बहुत विकृत हो गया है; उपासक तो सच्चे और दिव्य जीवन के लिए लालायित हो रहे हैं पर पुजारी नीरस पत्थर उनके मत्थे मढ़ देने को तय्यार हैं। इन्हीं कारणों से, फिर से धर्म के अभ्युत्थान के लिए सत्य-धर्म की स्थापना के लिए, लोगों को भौतिक जीवन की अंधतम जड़ता से जगाने के लिए, ईश्वर को अवश्यमेव एक सच्चे धर्म-प्रवर्तक को दुनिया के बीच में भेजना पड़ेगा। मैं उन पुराने पैग़म्बरों के मार्ग पर ही चल रहा हूँ। यही मेरा संदेश है; ईश्वर ने मुझे यह काम करने का आदेश दिया है।"

उनके मंत्री महोदय इन आश्चर्यजनक पूर्व वचनों को मुझे सुना रहे थे और मैं चुपचाप सुनता रहा। मैंने अपनी ओर से किसी प्रकार का मानसिक प्रतिरोध खड़ा नहीं किया। मेरा मन एकदम खुला हुआ था। इन कथनों की परीक्षा करने की अपनी लालसा को थोड़ी देर तक मैं रोके रहा। इसका मतलब यह कदापि नहीं था कि मैं उनकी बातों को सच मानने लगा था। बात सिर्फ इतनी ही थी कि प्राच्य वासियों की बातें सुन लेना एक कला है और मैं उससे अच्छी तरह परिचित था। नहीं तो किसी भी पश्चिमी व्यक्ति को अपनी सारी मेहनत के बदले शायद कुछ भी हाथ नहीं लगेगा चाहे उन बातों में संग्रहणीय सार भी हो। सत्य कड़ी जाँच की आँच खूब सह सकता है, पर पश्चिमी व्यक्ति को चाहिए कि वह अपनी पद्धतियों को प्राच्य मनोवृत्तियों के अनुकूल बदल ले। मेहर बाबा बड़ी हमदर्दी से मेरी ओर ताक कर मुस्कराये और फिर बोलने लगे।

"अपने जीवन को सुधार कर ईश्वर के उन्मुख बनाने में लोगों को मदद पहुँचाने के लिए पैग़म्बरगण कुछ नियमों तथा व्यवस्थाओं का प्रतिपादन किया करते हैं। धीरे धीरे ये ही नियम एक संगठित धर्म का रूप धारण कर लेते हैं और उस धर्म के प्रामाणिक सिद्धान्त बन जाते हैं। लेकिन उस धर्म के आदि प्रवर्तक के जीवन काल में जो आदर्शात्मक वायुमण्डल छाया रहता है, जो जीती जागती मायाद शक्ति जागरूक रहती है, वह उनके मरने के बाद क्रमशः धीरे धीरे लुप्त हो जाती है। यही कारण है कि कोई भी धर्म-प्रणाली किसी को सत्य के निकट नहीं पहुँचा सकती। यही वजह है कि सच्चा धर्म सदा ही व्यक्तिगत होता है। धार्मिक संप्रदाय उन पुरातत्व प्रेमी गवेषकों की मंडलियों के समान हैं जो विगत जीवन तथा अतीत के मृतकाय में फिर से जान फूँकने की चेष्टा किया करती हैं। इसलिए मैं कोई नवीन धर्म, संप्रदाय या संगठन की नींव डालने की चेष्टा क़तई नहीं करूँगा। हाँ मैं आवश्यमेव सभी जातियों के धार्मिक विचारों को पुनरुज्जीवित करूँगा, जीवन के मर्मों का कुछ अधिक ज्ञान लोगों को समझा कर, उन्हें प्रबोध दूँगा। धर्म-प्रवर्तकों के निधन के कई सदियों बाद जो मत तथा सिद्धान्त नये रूप से ईजाद किये जाते हैं उनमें प्रायः आश्चर्यजनक पारस्परिक विरोध और मतभेद दिखाई देता है, पर सभी धर्मों के मूल सिद्धान्त प्रायः मेल खाते हैं, क्योंकि उन सभों का एक ही स्थान—ईश्वर—से उद्भव है। इसी कारण जब मैं अपने को खुलकर पैग़म्बर के रूप में प्रकट करूँगा तब किसी धर्म का खण्डन नहीं करूँगा। हाँ, किसी एक विशेष धर्म का समर्थन भी नहीं करूँगा। मैं लोगों की दृष्टि को साम्प्रदायिक मतभेदों से दूर हटा लेना चाहता हूँ ताकि वे मौलिक सत्य पर बिना दिक्कत के सहमत हो जायँ। आपको याद रखना होगा कि प्रत्येक धर्म-प्रवर्तक अपने को प्रकट करने से पहले देश, काल और पात्र आदि का खूब ध्यान करता है। अतएव वह समय आदि परिस्थितियों को देख कर सब के अनुकूल और सब को जो सुलभ हो ऐसे ही सिद्धान्तों का प्रतिपादन करता है।"

इन उदात्त विचारों का मेरे दिमाग पर असर डालने के लिए मेहर बाबा

ने कुछ देर तक बातचीत का तार तोड़ दिया। फिर उनकी बातें दूसरे ही ढर्रे में पड़ गयीं। बोले—"आप को मालूम नहीं है कि सभी राष्ट्र इस नए ज़माने में शीघ्र यातायात के साधनों से कैसे निकट हो गए हैं? देखते नहीं हैं कि रेल, जहाज़, टेलीफोन, तार, बेतार के तार और अखबार आदि के सारे संसार को कितने समीप, कितनी गहरी एकता में गूँथ दिया है? किसी देश में यदि कोई खास घटना घटी तो सिर्फ एक रोज़ ही में ही दस हज़ार मील की दूरी पर रहने वाले को भी मालूम हो जाती है। अतएव यदि कोई किसी खास संदेश पहुँचाने का इच्छुक हो तो उसे श्रोताओं के रूप में करीब करीब सारी दुनिया तय्यार मिल जायगी। इन सभी बातों का एक विशेष कारण अवश्य है। वह समय बहुत ही निकट है जब कि मानव जाति को एक सार्वभौम आध्यात्मिक संदेश पहुँचाने का, जिससे सभी जातियों और सभी राष्ट्रों को काफ़ी मदद मिले, अवसर उपस्थित होगा। गरज़ यह कि मेरे एक सार्वभौम विश्व-संदेश को सुनाने के उपयुक्त रास्ता तैयार किया जा रहा है।"

इस स्तम्भित करने वाली घोषणा से मुझे अच्छी तरह मालूम हो गया कि मेहर बाबा को अपने भविष्य के बारे में कितना भारी आत्म-विश्वास है। उनका रंग-रूप भी इस बात की गवाही दे रहा था। उनका अपना अनुमान यह है कि वे अपने भावी संदेश को जितना मूल्यवान समझते हैं उससे कहीं अधिक मूल्यवान वह अन्त में प्रमाणित होगा।

"लेकिन आप संसार को अपना संदेश कब सुनाएँगे?"

"मैं अपना मौन त्याग कर अपना संदेश ले कर दुनिया के सामने उस समय आऊँगा जब दुनिया में चारों ओर घोर अशान्ति लहरें मारती होगी। क्योंकि तभी संसार को मेरी सबसे अधिक आवश्यकता होगी, जब दुनिया उपद्रवों के थपेड़ों से बेचैन होगी। जब चारों ओर भूकम्प, पानी की बाढ़ और ज्वालामुखी पर्वतों से अग्नि-वर्षा होगी, जब पूर्व और पश्चिम-दोनों युद्धाग्नि से प्रज्वलित हो कर भभकते होंगे; तब मैं अपने को प्रकट करूँगा। निस्सन्देह सारी दुनिया को यातनाएँ भुगतनी ही पड़ेंगी क्योंकि तभी उसका उद्धार सम्भव होगा।"

"आप यह तो जानते ही होंगे कि यह भावी महासमर कितने दिनों बाद होगा?"

"क्यों नहीं? वह निकट भविष्य में होने वाला है। पर मैं किसी को उसकी तिथि बतलाना नहीं चाहता।*"

मैं बोल उठा—"यह बड़ी भयानक भविष्यद्वाणी है!"

मेहर बाबा अपनी कोमल उँगलियाँ फैलाते हुए बोले :

"हाँ! भयानक अवश्य है। भविष्य में होने वाला यह युद्ध बड़ा ही भयंकर होगा; क्योंकि वैज्ञानिकों की प्रतिभा उसको बड़ा ही उग्र रूप, पिछले महासमर से भी कहीं भयंकर रूप, दे देगी। तो भी वह युद्ध बहुत थोड़े समय तक चलेगा—शायद कुछ महीनों तक ही—और जब वह अत्यन्त प्रचण्ड हो उठेगा मैं अपने पैग़म्बर रूप को प्रकट करूँगा और सारे संसार को अपना संदेश सुना दूँगा। अपनी आध्यात्मिक शक्ति तथा भौतिक प्रयत्नों से बहुत जल्द ही इस संघर्ष को मैं अचानक बन्द कर दूँगा और सभी राष्ट्रों के बीच शान्ति की स्थापना करा दूँगा। पर साथ ही साथ भूमंडल के विभिन्न भागों में महान् प्राकृतिक परिवर्तन भी होंगे। जान और माल दोनों को ही बड़ी भारी जोखिमें उठानी पड़ेंगी। मैं भविष्य में पैग़म्बर बनने का दम इसीलिए भरता हूँ कि विश्व में घटनाओं का चक्र ही मुझे ऐसा करने के लिए बाध्य करता है। विश्वास रक्खो, मैं अपने आध्यात्मिक कार्य को अधूरा नहीं छोड़ जाऊँगा।"

मेहर बाबा के सेक्रेटरी महोदय जो मराठों की सी गोलाकार काली टोपी पहने हुए थे इन आखिरी शब्दों को कह कर मेरी ओर साभिप्राय ताकने लगे। उनके चेहरे से मानो यही भाव झलक रहा था, 'देखा आपने! आपको इन बातों ने कितना प्रभावित किया! देखते हो हम लोगों को यहाँ कैसी कैसी महत्त्वपूर्ण बातें ज्ञात हैं!'

---

* देखिये अध्याय १४

फिर उनके मालिक की उँगलियाँ तख्ती पर फिरने लगीं और मंत्री महोदय झटपट उनका भाव मुझे बताने के लिए तत्पर होने लगे। बोले :

"युद्ध के बाद एक अनुपम शान्ति दीर्घ काल तक दुनिया में विराजेगी, सारे विश्व में शान्ति ही शान्ति का सुमधुर दृश्य देखने को मिलेगा। तब निःशस्त्रीकरण की समस्या केवल ज़बानी जमाखर्च न रहेगी, वह चरितार्थ हो कर एक स्थूल प्रत्यक्ष सत्य का रूप धारण करेगी। जातिगत और संप्रदायगत झगड़े नाममात्र को भी नहीं रहेंगे। मैं सारी दुनिया की यात्रा करूँगा और समस्त राष्ट्र मुझे देखने के लिए उतावले होंगे मेरा आध्यात्मिक संदेश हर एक देश में, हर एक शहर में और देहातों तक में फैल जायगा। विश्व-बन्धुत्व, मानव समाज की शान्ति, पतित, असहाय लोगों के प्रति सहानुभूति, ईश्वर-भक्ति आदि को मैं खूब ही उन्नति पर पहुँचाऊँगा।"

"अपनी मातृभूमि भारत के लिए आप क्या करेंगे ?"

"हिन्दुस्तान में जब तक वर्ण-व्यवस्था की कुत्सित प्रथा का सत्यानाश न होगा तब तक मुझे शान्ति न मिलेगी। वर्ण-व्यवस्था के प्रचलन के साथ ही भारतवर्ष संसार की दृष्टि में पतित हो गया। जब दलित और बहिष्कृत वर्गों का पूर्ण रूप से उद्धार हो जायगा भारत फिर से प्रगतिशील राष्ट्रों में प्रमुख दिखाई पड़ेगा।"

"उसका भविष्य क्या होगा ?"

"कितने ही दोषों के होते हुए भी आज दुनिया भर में भारत ही सब से अधिक आध्यात्मिक देश है। भविष्य उसको अन्य राष्ट्रों का नैतिक गुरू बनते देखेगा। सभी मुख्य धर्म-प्रवर्तक पूर्व में ही पैदा हुए थे और अब भी आध्यात्मिक ज्योति के लिए सारी दुनिया को पूर्व की ही ओर फिर एक बार उन्मुख होना पड़ेगा।"

मैंने मेहर बाबा के बतलाये हुए उस भावी समय का एक दिमाग़ी खाका खींचना चाहा जिसमें समस्त महान पश्चिम राष्ट्र छोटे, गेहुँआ रंग वाले भारतीयों की चरण सेवा कर रहे हों पर इसमें मुझे सफलता नहीं मिली।

शायद मेरे सामने जो मूर्ति शुभ्रवस्त्र पहने बैठी हुई थी, वह मेरी इस उलझन को समझ गई क्योंकि उसने फिर कहना प्रारम्भ किया—"भारत की जो गुलामी इस समय दिखाई दे रही है वह वास्तविक गुलामी नहीं है। वह तो केवल शारीरिक दासता है और इसीलिए वह क्षणिक है। देश की सूक्ष्म आत्मा अमर और महान् है। यद्यपि बाहरी दृष्टि से यह देश सब कुछ खो बैठा है तब भी वह अपने अन्तःसार से वंचित नहीं हुआ है।"

उनकी यह सूक्ष्म दलील मेरी समझ में ठीक ठीक नहीं आई और मैंने पुराने विषय को फिर से छेड़ दिया।

"आपके संदेश की कई मुख्य बातें तो हम पश्चिमियों ने अन्य अन्य प्रकार से भी समझ रक्खी हैं। अतः बताने के लिए क्या आपके पास कोई नई बात नहीं है?"

"मेरी बातें पुराने आध्यात्मिक सत्यों को फिर से केवल प्रतिध्वनित ही कर सकती हैं। पर मेरी रहस्यपूर्ण शक्ति ही एक ऐसी नई बात है जो संसार के इतिहास में एक नई जान फूँक देगी।"

इस बात पर मैंने अधिक बहस नहीं करनी चाही। थोड़ी देर तक सन्नाटा छाया रहा। मैंने और कोई प्रश्न नहीं पूछे। मैं अपनी दृष्टि फेर कर उस गुफा के बाहर की ओर ताकने लगा। दूर सुनसान खेतों के उस पार पहाड़ों की एक रेखा सी उभड़ी हुई थी। आसमान में सूर्य अपना प्रचंड तेज फैला कर प्राणिमात्र को झुलसाए दे रहा था। कई मिनट बीतते चले जा रहे थे। इस एकान्त गुफा में, इस असीमित कड़ाके की धूप में, हर बात को ध्रुव सत्य के रूप में स्वीकार करने वाले चेलों से घिरे बैठ कर संसार के सुधार की मनमानी तदबीरें और तजवीज़ें गढ़ लेना और अपने को महान धार्मिक आत्मा घोषित कर लेना बहुत ही आसान है। पर संसार के बीच, स्थूल प्रत्यक्ष घटनाओं के बीच, जड़वादी भौतिक सत्ताओं को ही मानने वाले रूखे शहरों के बीच क्या ये सब ख़याली पुलाव, प्रभात सूर्य की भेदने वाली किरणों के सामने शीघ्र विनष्ट होने वाले कुहरे के समान विलीन न हो जायँगे?

मैं बोला—"यूरोप में आजकल लोग किसी बात की सत्यता पर सहज ही विश्वास नहीं कर बैठते। आप हमको इस बात का क्योंकर विश्वास दिला सकते हैं कि आपकी बातों के मूल में एक दैवी प्रेरणा, एक दिव्य शक्ति काम कर रही है? हमें कैसे समझा सकते हैं कि आपकी बातों की मूल भित्ति ईश्वरीय आदेश है? आप अजनबी लोगों के मन को अपने आध्यात्मिक विश्वास के ढाँचे में कैसे ढाल सकेंगे? साधारणतया कोई भी पश्चिमीय व्यक्ति आपसे स्पष्ट रूप से कह देगा कि आपकी बातें असम्भव हैं। यही नहीं आपके लाख प्रयत्न करने पर भी आप उसको इन बातों की हँसी उड़ाने से रोक नहीं सकेंगे।"

"क्या खूब! आप समझते नहीं हैं कि तब तक समय कितना पलट जायगा?"

मेहर बाबा अपने कोमल पीले हाथों को मलने लगे। इसके बाद उन्होंने अपने सम्बन्ध में कुछ ऐसे चकित करने वाले दावे पेश किये जो पश्चिमियों को शेखचिल्ली की बातें ही मालूम पड़ेंगी, परन्तु मेहर बाबा उन बातों को यों ही कह रहे थे मानो वे उनको पूर्ण रूप से वास्तविक और स्वाभाविक मानते हों।

"एक बार अपने को पैग़म्बर घोषित कर देने के बाद दुनिया में कोई भी ऐसी बात न रहेगी जो मेरी शक्ति के विरोध में टिक सके। मैं खुले तौर पर करामातें करके अपने संदेश को प्रामाणिक सिद्ध करूँगा। अंधों की आँखों को मैं ज्योति प्रदान करूँगा, बीमारियों को दूर करूँगा, लँगड़े और लूले व्यक्तियों को स्वस्थ बनाऊँगा—यहाँ तक कि मुर्दों को भी जिला दूँगा। ये सब बातें मेरे लिए बाएँ हाथ का खेल होंगी। मैं इन सब करामातों को इसीलिए करूँगा कि इनके ज़रिए हर कहीं लोग मेरी बातों पर विश्वास करने के लिए मजबूर हों। तब उनको मेरे सन्देश को स्वीकार करने में किसी प्रकार का आगा पीछा करना नहीं पड़ेगा। आलसियों की उत्सुकता और कौतूहल को तृप्त करने के लिए ये करामातें नहीं दिखाई जावेंगी, वरन् शक्तियों को भी अपने घेरे में ले आने के उद्देश्य से।"

मैं एकदम स्तब्ध रह गया। हमारी बातचीत अब तो मनुष्य की साधारण

बुद्धि की सीमाएँ पार कर रही थी। मेरा मन लड़खड़ाने लगा था। हम अब पूरब के ऊहातीत कल्पना के प्रपंच में प्रवेश कर रहे थे।

पारसी पैग़म्बर तब भी कहते ही गये—"तो भी भूल न करना! मैं अपने चेलों से हमेशा ही कहा करता हूँ कि ये सब करामातें मामूली जनता के लिए हैं न कि उनके लिए। मुझे एक भी करामात कर दिखाने की क्या पड़ी है। परन्तु मैं जानता हूँ कि ऐसा करने पर ही साधारण जनता मेरी बातों में विश्वास करने लगेगी। इन करामातों से मैं दुनिया को इसीलिए चकित करूँगा जिसमें लोग आध्यात्मिक जीवन बिताने के लिये उन्मुख हो जावें।"

मंत्री महोदय बीच ही में बोल उठे—"बाबा अब तक कई अद्भुत करामातें दिखा चुके हैं।"

मैं एकदम चौकन्ना हो गया।

तुरन्त पूछ बैठा—"जैसे—?"

मेहर बाबा इस प्रकार मुस्कराने लगे मानो अपने बड़प्पन की उपेक्षा कर रहे हों और बोले :

'विष्णु! फिर कभी बताना। ज़रूरत पड़ने पर मैं कोई भी करामात कर सकता हूँ। जिस दिव्य अवस्था को मैं पहुँच चुका हूँ उस दशा में रहने पर ऐसी बातें बिलकुल आसान हो जाती हैं।"

मैंने अपने मन में पक्का निश्चय कर लिया कि दूसरे दिन सेक्रेटरी महोदय को ज़रूर धर पकड़ूँगा और उनसे इन विख्यात करामातों का अधिक ब्योरा जान लूँगा। मेरी जाँच का यह अवश्य ही एक महत्वपूर्ण अंग होगा। मैं तो एक सावधान जिज्ञासु की हैसियत से आया हूँ अतः हर एक बात मेरे लिए निश्चय ही लाभदायक सिद्ध होगी।

फिर थोड़ी देर तक सन्नाटा रहा। मैंने मेहर बाबा से प्रार्थना की कि वे अपने पिछले जीवन के विषय पर कुछ प्रकाश डालें।

उन्होंने अपने सेक्रेटरी को मुझे दिखाते हुए कहा—"ऐ विष्णु इनको

ये बातें भी बता देना। आपको हमारे चेलों से बातचीत करने का काफ़ी अवकाश मिलेगा क्योंकि आप कुछ दिन यहीं रहेंगे। हमारे चेलों से आप मेरे पूर्व जीवन का वृत्तान्त जान सकते हैं।

फिर इधर उधर की बातें कुछ देर तक होती रहीं। अन्त में मेरी भेंट समाप्त हुई और हम लोग वहाँ से चल दिए। अपने कमरे में पहुँच कर सब से पहले मैंने जो काम किया वह सिगरेट पीना था। पहले सिगरेट पीने की मुझे जो मनाही हुई थी उसका अब मैंने बदला चुकाया और उस सिगरेट के खुशबूदार धुएँ को ऊपर की ओर उठते हुए देखने लगा।

× × ×

शाम को मैंने एक विचित्र दृश्य देखा। दिन एकदम अस्त नहीं हुआ था परन्तु तारागण कुछ कुछ झिलमिलाने लगे थे। इस अजीब धुँधलेपन में कुछ तेल के चिराग़ अपनी मंद ज्योति प्रसारित करने लगे। मेहर बाबा अपनी गुफा के भीतर आसीन थे और बाहर पास ही के आरंगाँव से आये हुए कुछ दर्शक और चेलों का एक मिश्रित झुंड गुफा के मुख-द्वार पर एक अर्ध-गोलाकार बनाए खड़ा हो गया।

जहाँ कहीं मेहर बाबा रहते हैं वहीं प्रति संध्या को एक धार्मिक विधान किया जाता है और उसी की तैयारी में यह मंडली एकत्रित हुई थी। एक शिष्य ने एक छिछले कटोरे में, जो दीपक का काम देता था, संदल की सुगंधि से युक्त तेल भर कर बत्ती जला दी। सात बार उसने उस प्रदीप से अपने मालिक की आरती उतारी। समुपस्थित सज्जनों ने बड़े उच्च स्वर में मन्त्र और प्रार्थनाओं का ठाठ रचा। उन लोगों की मराठी भाषा की स्तुति में मेहर बाबा का नाम अनेक बार आया। यह स्पष्ट था कि वे मन्त्र तथा स्तुति उनके मालिक की अत्युक्ति भरी प्रशंसा के सिवा और कुछ नहीं थे। हर एक मेहर बाबा की ओर पूज्य भाव से ताक रहा है। मेहर का छोटा भाई एक छोटे हारमोनियम के पास बैठ कर एक करुण राग बजाकर गायकों का साथ दे रहा है। इस संस्कार के समय हर एक भक्त गुफा के अन्दर

बारी बारी से जाता है और मेहर के सामने साष्टांग दंडवत् करके उनके नंगे पैरों का चुम्बन करता है। कोई कोई तो भक्ति के उद्रेक में इतने बह जाते हैं कि पूरे मिनट भर तक अपने स्वामी का पैर चूमते ही रहते हैं। मुझको बतलाया गया कि आध्यात्मिक रूप से इस क्रिया का बड़ा भारी महत्त्व और उपयोगिता है, क्योंकि इससे भक्त को मेहर बाबा का आशीर्वाद प्राप्त होता है जिससे भक्त के पापों का भार घट जाता है।

मैं लौट कर अपने कमरे में आ गया और आश्चर्य करने लगा कि कल कौन सी नई बातें ज्ञात होंगी। दूर के खेतों और पहाड़ी झाड़ियों से सियारों की हुआ, हुआ की आवाज़ सुनाई पड़ती थी जो रात के सन्नाटे में बाधा डाल रही थी।

दूसरे दिन मैंने सेक्रेटरी महोदय तथा अंग्रेज़ी जानने वाले कुछ अन्य चेलों को इकट्ठा किया। हम एक अर्ध-गोलाकार रूप में बैठ गये। जो अंग्रेज़ी नहीं समझते थे वे कुछ दूर पर खड़े खड़े बड़ी उत्सुकता से हमारी ओर ताक कर मुस्कराने लगे। इन सभी लोगों से मैं उनके गुरुदेव के जीवन की उन घटनाओं को पूछने लगा जो अब तक मुझे अज्ञात थीं।

पैग़म्बर का निजी नाम मेहर है; पर वे अपने को 'सद्‌गुरु मेहर बाबा' कहते हैं। 'सद्‌गुरु' का अर्थ 'पूर्ण बोध पाया हुआ गुरु' है। 'बाबा' प्रेम-सूचक शब्द है और भारतीयों में प्रायः इसका आदरार्थ प्रयोग होता है। उनके शिष्य प्रायः उन्हें 'बाबा' कह कर पुकारते हैं।

मेहर बाबा के पिता पारसी हैं। पारसी लोग जरतस्तू धर्म के अनुयायी हैं। मेहर बाबा के पिता अपना देश ईरान छोड़ कर ग़रीबी की हालत में भारत आये थे। मेहर उनके सबसे ज्येष्ठ पुत्र हैं। इनका जन्म सन् १८९४ में पूना में हुआ था। पाँच वर्ष की उम्र में बालक मेहर पाठशाला में भेजा गया। वे पढ़ने लिखने में अच्छे थे। सत्रहवीं साल में मेट्रिक परीक्षा पास करके पूना के डेक्कन कालेज में दो वर्ष तक उन्होंने उच्च शिक्षा प्राप्त की।

इसी समय उनके जीवन में कुछ जटिल और दुरूह परिवर्तन नज़र आने

हज़रत बाबाजान

लगे। एक शाम को वे साइकिल पर सवार होकर कालेज से घर लौट रहे थे और हज़रत बाबाजान नाम की एक मशहूर मुसलमान फ़कीरिन की कुटिया के सामने से गुज़रने ही वाले थे कि एक विचित्र बात हो गई। उस समय बाबाजान अपने सोफ़े पर, जो उनकी दीन कुटिया के बाहरी बरामदे में रक्खा हुआ था, लेटी थीं। जब मेहर की साइकिल उनके सामने से गुज़रने लगी तो बूढ़ी बाबाजान ने उठ कर उन्हें इशारे से बुलाया। वे साइकिल से उतर कर बाबाजान के निकट आये तो बाबाजान ने उनके हाथ अपने हाथों में लेकर उनको छाती से लगा लिया और उनके माथे का चुम्बन किया। इसके बाद क्या हुआ, यह विवरण कुछ अस्पष्ट सा है। मैंने उनके चेलों से जाना कि जब मेहर घर लौटे तो उनकी बुद्धि चकराई हुई थी। फिर आठ महीने तक मेहर की मानसिक शक्तियाँ क्रमशः शिथिल होती गईं और अन्त में वे अपनी पढ़ाई ठीक ठीक जारी रखने में असमर्थ हुए। फलतः उन्हें कालेज की पढ़ाई से विदा लेनी पड़ी क्योंकि कालेज की बातें मेहर के दिमाग़ में घुसती ही नहीं थीं।

इसके पश्चात् मेहर अर्ध-मूर्ख जैसी दशा को पहुँच गये जिसमें वे अपनी शारीरिक आवश्यकताओं के प्रति भी उदासीन और उनकी पूर्ति कर लेने में असमर्थ बन गये। उनकी आँखों की ज्योति धीमी पड़ गयी। उनमें अब जीवन की ज्योति नहीं चमकती थी। भोजन करना, नहाना, शौचादि कामों से निवृत्त होना आदि मामूली बातें भी वे कर न पाते थे। उनके पिता जब भोजन करने को कहते तो यंत्रवत् कौर मुँह में रख लेते। वरना वे जानते ही नहीं थे कि भोजन उनके सामने परोसा क्यों जाता है। सारांश यह कि वे मनुष्य होते हुए भी यंत्र के समान बन गये थे।

२० वर्ष का युवा व्यक्ति यदि ऐसी अवस्था को प्राप्त हो जाय जिससे उसके माँ-बाप को उसकी १ वर्ष के बालक सी देख-रेख करनी पड़े तो इसे मानसिक ह्रास ही कहना होगा। उनके व्याकुल पिता ने समझा कि लड़के ने परीक्षा की तैयारी में बेहद पढ़ाई की है यहाँ तक कि उसकी मानसिक स्थिरता ही लुप्त हो गई है। तब उन्होंने डाक्टरों की शरण ली। डाक्टरों ने मेहर

की जाँच करके उनको मानसिक कमज़ोरी का शिकार बतलाया और इसी बीमारी को दूर करने के इंजेक्शन दिये। ६ महीने के उपचार के बाद मेहर की यह दयनीय दशा कुछ सुधरती दिखाई दी। अन्त में उन्हें दुनिया का ठीक ठीक ज्ञान होने लगा और वे कुछ हद तक साधारण मनुष्यों के समान व्यवहार करने लगे।

उनके चंगे हो जाने पर यह देखा गया कि उनके चरित्र में एक अजीब परिवर्तन हो गया है। पढ़ाई में अब उनका दिल नहीं लगता था। सांसारिक सफलता प्राप्त करने के प्रति वे विरक्त हो गये और खेल कूद में जो उनका मन पहले लगता था अब बिलकुल जाता रहा था। इन सब के बदले उनके दिल में धार्मिक जीवन की गहरी तृष्णा ने, अपने को आध्यात्म मार्ग का पथिक बना लेने की अनवरत तत्परता ने, घर कर लिया।

चूँकि मेहर का विश्वास था कि बाबाजान के चुम्बन ने ही उनमें ये सब परिवर्तन किये हैं वे उसी वृद्धा तपस्विनी के पास अपने भावी जीवन के बारे में सलाह लेने गये। बाबाजान ने मेहर को किसी आध्यात्मिक गुरु की खोज करने की सलाह दी। मेहर ने जब पूछा कि गुरुदेव की कहाँ प्राप्ति होगी तो बाबाजान ने बड़ी अस्पष्टता के साथ शून्य में हाथ फेर दिया। फिर कई स्थानीय महात्माओं के मेहर ने दर्शन किये। बाद को पूना के चारों ओर १०० मील के दायरे में जितने गाँव थे सभी की उन्होंने खोज की। एक दिन वे चलते चलते साकोरी के पास एक मन्दिर पर पहुँचे। वह मन्दिर बहुत ही साधारण था लेकिन गाँव वालों ने कहा कि उसमें एक बड़े भारी महात्मा रहते हैं। इस प्रकार जब मेहर बाबा उपासनी महाराज के सम्मुख आये तो उन्होंने जाना कि इतने दिनों तक जिन गुरुदेव की खोज में वे भटकते रहे हैं वे आप ही हैं।

साधु बनने की अभिलाषा रख कर युवा मेहर समय समय पर साकोरी की यात्रा किया करते थे। जब वे साकोरी जाते अपने गुरु के साथ कुछ दिन तक अवश्य रहते। एक बार वे चार महीने तक वहीं उपासनी महाराज के
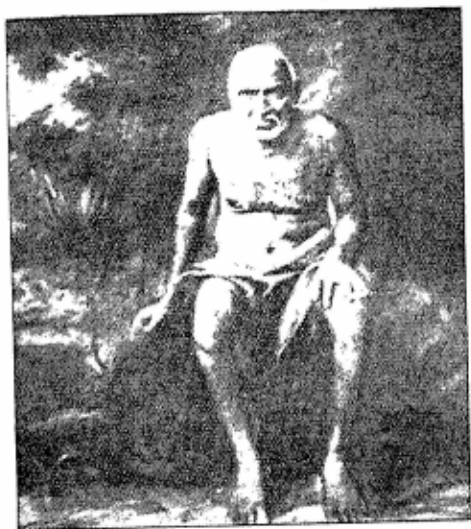
उपासनी महाराज
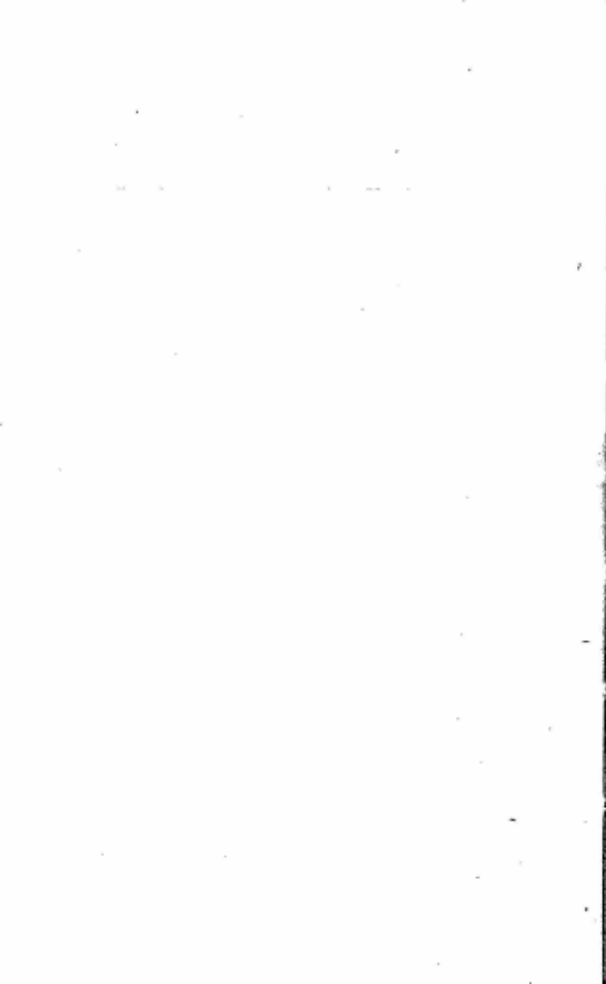
साथ रहे। मेहर दृढ़ता के साथ कहते हैं कि इसी समय वे विश्व-संदेश देने के योग्य बनाये गये थे। एक दिन शाम को मेहर अपने कालेज के पुराने साथियों और हमजोली के अन्य मित्रों में से लगभग १० को ले कर साकोरी गये। पहले ही से मेहर ने अपने साथियों से यह संकेत कर रक्खा था कि एक बहुत ही महत्वपूर्ण भेंट होने वाली है। इस टोली के मन्दिर के अन्दर प्रवेश करने पर उसके दरवाज़े अन्दर से बन्द कर दिये गये। तब वहाँ रहने वाले गम्भीर मुद्रा वाले उपासनी महाराज उठ कर उन लोगों को उपदेश करने लगे। उन्होंने उनसे धर्म, नीति के बारे में कुछ बातें कह कर अन्त को बतला दिया कि उन्होंने अपनी सारी आध्यात्मिक शक्तियाँ और ज्ञान तथा विभूतियाँ मेहर को प्रदान कर दी हैं। अन्त में उपासनी महाराज ने उन चकित श्रोताओं को यह कह कर और भी स्तब्ध कर दिया कि मेहर पूर्ण सिद्धि को प्राप्त हो चुके हैं और तत्परता के साथ यह सलाह भी दी कि वे अपने पारसी मित्र के अनुयायी बन जावें जिससे उन सब को दोनों लोकों में निस्संदेह आध्यात्मिक लाभ होगा।

श्रोताओं में किसी किसी ने तो उनकी बातें मान लीं, परन्तु कुछ शंका और सन्देह में पड़ गये। एक साल बाद, जब मेहर की आयु २७ वर्ष की हो गयी तो उन्होंने अपने चेलों की उस छोटी मंडली को बता दिया कि उन्हें संसार को एक दिव्य ईश्वरीय संदेश देने की प्रेरणा हुई है, ईश्वर ने मानव जाति को उबारने के लिए उन्हें अपना साधन चुन लिया है। उन्होंने स्पष्ट रूप से उस ईश्वरीय संदेश का मर्म नहीं समझाया पर चन्द साल बाद उन्होंने यह भी प्रकट किया वे ईश्वर के पैग़म्बर हैं।

सन् १६२४ में पहली बार मेहर ने विदेशों की यात्रा की। लगभग ६ चेलों को साथ लेकर वे फ़ारस के देश के लिए रवाना हुए और अपने चेलों से उन्होंने कहा कि वे अपने पूर्वजों के देश का भ्रमण करेंगे। जहाज़ जब बूशायर बंदरगाह पर पहुँचा उन्होंने अचानक अपना निश्चय बदल दिया और तुरन्त दूसरे जहाज़ द्वारा स्वदेश के लिए प्रस्थान किया। तीन महीने बाद जब फ़ारस देश में ग़दर हुआ और बाग़ियों ने वहाँ की राजधानी को

अपने कब्जे में करके पुराने राजवंश को तख्त से उतारा और एक दूसरे ही शाह ने तख्त ले लिया, तो मेहर बाबा ने अपने चेलों से कहा—'देखा आप लोगों ने ! मेरी फ़ारस यात्रा के कारण ही, मेरी ग़ैबी शक्तियों का यह नतीजा हुआ ! देखा !'

उनके चेलों ने मुझे बताया कि नये शाह की हुकूमत में लोग पहले की अपेक्षा कहीं अधिक सुखी हैं। अब मुसलमान पारसी, यहूदी और ईसाई अधिक मिल-जुल कर बड़ी हमदर्दी के साथ जीवन बिता रहे हैं, पहले यह बात नहीं थी। उस वक्त हमेशा के झगड़े-फ़साद के मारे सारा देश तबाह था।

इस विचित्र यात्रा के कुछ साल बाद मेहर बाबा ने एक अनोखी शिक्षा-संस्था की स्थापना की। उनके कहने पर उनके एक चेले ने आरंगांव के पास की सारी ज़मीन खरीद डाली। कुछ टूटे-फूटे बँगले खड़े किये गये। बीच बीच में पुआल के छप्परों से ढँकी हुई झोपड़ियाँ भी थीं। एक निःशुल्क भोजनालय और एक पाठशाला खोल दी गई। उनके खास चेलों में से इने-गिने लोग अध्यापक बने। छात्रों में उनके भक्तों तथा मित्रों के लड़के थे। शिक्षण के लिए भी कोई शुल्क नहीं लिया जाता था। सांसारिक विषय तो पढ़ाए ही जाते थे, इसके अतिरिक्त स्वयं मेहर बाबा ने किसी खास मज़हब से सम्बन्ध न रखने वाली धार्मिक शिक्षा देने का भार अपने ज़िम्मे लिया।

ऐसी मन को लुभानेवाली बातों से कोई १०० छात्रों को इकट्ठा करना कठिन नहीं कहा जा सकता। दूर के फ़ारस देश से भी एक दर्जन छात्र आ गये। उन छात्रों को जिस नीति-धर्म का उपदेश दिया जाता था वह सभी धर्मों के लिए समान था, और बड़े बड़े पैग़म्बरों की जीवनियों का मर्म भी उन बालकों को समझाया जाता था। शिक्षण के कार्यक्रम में क्रमशः धार्मिक शिक्षा वाला घंटा बहुत ही प्रधान हो गया और मेहर बाबा कुछ बड़े लड़कों को एक प्रकार के रहस्यपूर्ण भक्ति मार्ग का उपदेश देने लगे जिसका अन्त में कोई

स्थाई प्रभाव नहीं पड़ा। उन लड़कों को बताया गया कि मेहर बाबा बड़े ही पूज्य व्यक्ति हैं और उनकी पूजा की जानी चाहिए। फल यह हुआ कि कुछ लड़के भक्ति-आवेश रूपी हिस्टीरिया (मूर्छा) के लक्षण प्रकट करने लगे। पाठशाला में विचित्र घटनाएँ जल्द जल्द होने लगीं।

इस असाधारण पाठशाला की एक खास विशेषता यह थी कि वहाँ के छात्रों में सभी जातियों के—हिन्दू, मुसलमान, भारतीय ईसाई, पारसी आदि—सभी प्रकार के लोग थे। मेहर बाबा ने अपने एक अन्तरंग शिष्य को इंगलैण्ड भी इस आशय से भेजा कि वे वहाँ से कुछ अंगरेज छात्रों को ले आवें। लेकिन उस चेले को इंगलैंड में बड़ी कठिनाइयों का सामना करना पड़ा, क्योंकि कोई भी अपने बच्चों को दूर के एशिया महाद्वीप में पढ़ाई के वास्ते, और वह भी एक अजनबी को सौंप कर, भेजने के लिए तय्यार न मिला। इसके अतिरिक्त एक ऐसी शाला का विचार ही उनकी समझ में नहीं आया जिसमें सभी धर्मों का समावेश हो। यदि वे इस आशय को समझे भी तो उसका उनके लिए कोई खास महत्व नहीं था क्योंकि ऐसे स्कूलों की इंगलैंड में कोई कमी नहीं थी जहाँ सभी प्रकार के लोग जाति-पाँति के भेद को भूल कर एक साथ पढ़ते हों।

एक दिन भाग्यवश मेहर बाबा के चेले की भेंट एक ऐसे अंग्रेज से हुई जिसने बात की बात में उनके धर्म के महत्व को स्वीकार करके अपने को मेहर बाबा का शिष्य मान कर धन्य समझा। वह एक प्रकार का भावुक व्यक्ति था। लन्दन के सभी धर्म संप्रदायों पर बड़ी शीघ्रता से नज़र डालकर और अन्त में मेहर बाबा के धर्म को अधिक महत्वपूर्ण मान कर उसने उसे स्वीकार कर लिया। अतः उसने छात्रों की खोज में मेहर बाबा के शिष्य की बड़ी मदद की। अन्त को तीन बालक उनको मिल गये। उन बालकों के माँ-बाप बड़े ग़रीब थे और उनका पालन पोषण उचित रीति से नहीं कर सकते थे। अतएव यह समझ कर कि बच्चों के आर्थिक भार से उन्हें मुक्ति मिलेगी वे बच्चों से बिछुड़ने के लिए राज़ी हो गये। जब यह बात भारत-मंत्री के दफ़्तर को ज्ञात हुई तो उसने इन बच्चों के भारत ले जाये जाने पर रोक

लगा दी। इस कारण वे बच्चे भारत न आ सके। अन्त में पारसी पैग़म्बर के प्रतिनिधि भारत लौट आये पर उनके साथ एक अंग्रेज़, उसकी स्त्री तथा साली भी थीं। इन लोगों के भारत आने के ५-६ महीने बाद मेहर बाबा ने उनको फिर इंगलैण्ड वापस भेज दिया और जहाज़ के किराये आदि का भार मेहर बाबा के प्रधान चेले पर पड़ा।

मेहर ने मुझे बतलाया कि इस पाठशाला के खोलने में उनके दो विशेष उद्देश्य थे। पहला, अपने चेलों के बीच में जो सांप्रदायिक और धार्मिक विचारों के भेद भाव थे उनका सर्वनाश करना और दूसरा, अपना आध्यात्मिक सन्देश संसार में फैलाने के लिए कुछ चुने हुए चेलों को तैयार करना। मेहर का विचार यह था कि जब पाठशाला में पढ़ने वाले लड़के जवान होकर कार्य क्षेत्र में उतरने के योग्य बन जायेंगे, और साथ ही उनके विश्व-संदेश की घोषणा के अनुकूल समय भी आ जाय, तो इन शिक्षित चेलों को दुनिया के सभी कोनों में भेजकर उन्हें मानव जाति का कल्याण करने में लगा दें।

पाठशाला के अलावा एक और संस्था भी कायम हुई थी। एक पुराने ढंग का अस्पताल खोला गया और लूले-लंगड़े तथा अंधों को ले आने के लिए चेले पास के गाँवों में भेज दिये गये। उन दीनों को मुफ़्त ही दवा तथा अन्न-वस्त्र दिये जाते थे और साथ ही पैग़म्बर स्वयं उनको आध्यात्मिक सांत्वना देने लगे। मेहर बाबा के एक अनन्य भक्त ने मुझको बताया कि उनके छूने मात्र से ही ५ कोढ़ी एकदम चंगे हो गये। पर हाय! मैं तो शक्की ठहरा। उन कोढ़ियों का पता ठिकाना किसी को मालूम नहीं था; वे कौन थे, कहाँ रहते हैं कोई नहीं बता सका। मेरा अनुमान है कि यह प्राच्य वासियों की अतिशयोक्ति मनोवृत्ति का ही एक उदाहरण है। कम से कम क्या एक भी ऐसा कोढ़ी, सिर्फ एहसानमन्दी के कारण ही सही, मेहर का अनुयायी बन कर उनके साथ नहीं रहा होगा? सचमुच यह बात यदि ठीक होती तो कोढ़ियों की बहुत बड़ी संख्या वाले भारत देश में यह बात बिजली की तरह फैल जाती और लाखों पीड़ित लोग आरंगाँव के अस्पताल पर टूट पड़ते?

धीरे धीरे इस स्थान पर पास के गाँवों के भक्तों, दर्शकों और जिज्ञासुओं आदि का जमघट हो गया। इस आश्रम की आबादी क्रमशः कई सौ की हो गई; चारों ओर एक धार्मिक आवेश फैल गया और इस समस्त विस्तार का केन्द्र मेहर बाबा ही थे।

यह आश्रम स्थापना के १८ महीने बाद, एकबारगी बन्द कर दिया गया और साथ ही उसकी सारी शाखाएँ भी तोड़ दी गईं। लड़के अपने अपने माँ-बाप के पास, और बीमार अपने घर वापस भेज दिये गए। ऐसा क्यों किया गया, इसका मेहर बाबा ने कोई ठीक कारण नहीं बताया। पीछे मुझको मालूम हुआ कि इसी प्रकार के आकस्मिक भावावेग, जिनका कोई भी कारण नहीं बताया जा सकता, उनके चरित्र की एक विशेषता है।

सन् १९२९ के वसन्त में मेहर बाबा ने अपने सबसे पहले प्रचारक को देश में भेजा। उनका नाम था साधु लैक। उनको आज्ञा दी गयी कि वे सारे भारत का भ्रमण करें। विदा करते समय बाबा ने उन्हें यह आदेश दिया था :

'तुम्हारा सौभाग्य है कि तुमको एक पैग़म्बर की सेवा का अवसर मिला है। तुम सदैव उदार रहो। किसी धर्म का तिरस्कार या निन्दा मत करना। विश्वास मानो, तुम्हारी हर बात को मैं जानता रहूँगा। दूसरों की टीका टिप्पणी से निराश मत होना। कभी हिम्मत मत हारना। मैं तुम्हारा पथ प्रदर्शक हूँ। मुझको छोड़ और किसी का अनुसरण न करो।'

जो कुछ जानकारी इस बेचारे के बारे में मैं प्राप्त कर सका उससे मुझे साफ़ मालूम हुआ कि वह अपने कमजोर स्वास्थ्य के कारण वैसे घुमक्कड़ जीवन के योग्य नहीं था। मद्रास में कुछ भक्तों को अपनी ओर आकृष्ट करने में वह सफल हुआ; पर शीघ्र ही वह बीमार पड़ गया और मरने के लिए मेहर बाबा के यहाँ लौट आया।

पारसी पैग़म्बर के जीवन का यह एक शीघ्रतापूर्ण खींचा गया चित्र है।

× × ×

मेहर बाबा से मैंने कई बार बातचीत की। उनके विश्व-सन्देश के बारे में कुछ ठीक ठीक राय कायम करने के लिए उसके बारे में और कुछ जान लेने की मेरी बड़ी इच्छा थी। इस कारण आखिरी बार मैंने उनसे मुलाक़ात करने की अनुमति माँगी तो मुझे आज्ञा मिल गई।

आज वे एक मुलायम नीली पोशाक पहने हुए थे। लिखने की तख्ती उनके घुटनों पर थी। जो चेले वहाँ पर मौजूद थे वे अपने गुरु की प्रशंसा में खूब ही सिद्धहस्त थे। इस प्रकार अभिनय का सारा सामान—वक्ता, जिज्ञासु और श्रोता सभी जुट गये। सभी एक दूसरे को देख कर मुस्करा रहे थे। इसी बीच में मैंने अचानक एक प्रश्न पूछ कर उस सन्नाटे को एकदम भंग कर डाला।

"आप कैसे जानते हैं कि आप पैग़म्बर हैं?"

मेरे इस दुस्साहस से चकित होकर उनके चेले मेरी ओर घूरने लगे। मेहर बाबा की भौंहें चढ़ गईं। तब भी वे कुछ भी विचलित न हुए। मुस्कराते हुए उन्होंने मुझ जिज्ञासु पश्चिमी व्यक्ति को यह जवाब दिया :

"मैं जानता हूँ! खूब जानता हूँ। जिस प्रकार आप यह जानते हैं कि आप मनुष्य हैं वैसे ही मैं भी जानता हूँ कि मैं पैग़म्बर हूँ। मेरा सारा जीवन ही मुझे पैग़म्बर प्रकट कर रहा है। मेरे आनन्द में कभी बाधा नहीं पड़ती। आप कभी भी अपने को कोई दूसरा व्यक्ति समझने की ग़लती नहीं कर सकते। इसी प्रकार मैं भी अपनी असलियत पर सन्देह ही नहीं कर सकता। मैं जानता हूँ कि मैं वास्तव में पैग़म्बर हूँ। मैं ईश्वर का पैग़ाम लेकर आया हूँ और उसको सुनाए बिना मैं हटूँगा नहीं।"

"जब मुसलमान फ़क़ीरिन ने आपका चुम्बन लिया था तब ठीक ठीक क्या हुआ था; कुछ याद है?"

"हाँ! तब तक और युवकों के समान मैं भी दुनिया के माया-मोह में फँसा हुआ था। उनके चुम्बन ने मेरा कायापलट ही कर दिया। मुझे भान होने लगा था कि समस्त विश्व कहीं शून्य में विलीन हो रहा है और मैं एक-

दम अकेला रह गया हूँ—हाँ ! मैं ईश्वर के साथ, उसके समक्ष अकेला ही तो था। महीनों भूख मुझे नहीं लगती थी, तो भी मैं बिलकुल कमज़ोर नहीं हुआ; पहले जैसा ही बलवान बना रहा। मेरे पिता जी को मालूम नहीं हुआ कि बात क्या थी। उन्होंने समझा कि मैं पागल होता जा रहा हूँ। उन्होंने पहले एक डाक्टर को दिखलाया और फिर किसी दूसरे को। हकीमों ने मुझे दवा दी। कई प्रकार की दवाओं के इंजेक्शन लगाए गए। लेकिन वे गलती पर थे क्योंकि मैं ईश्वर के साथ था और इलाज से दूर होने वाली मेरी बीमारी नहीं थी। बात यह थी कि अपने सांसारिक अस्तित्व का मुझे ज्ञान न रहा था और उसकी पुनःप्राप्ति में मुझे बहुत समय लगा। समझे ?"

"जी हाँ। चूँकि आपको अब संसार का फिर से ध्यान हुआ है, बताइये आप कब तक अपना सन्देश सुनावेंगे ?"

"निकट भविष्य में ही, यद्यपि मैं इसके लिए कोई निश्चित तिथि नहीं निर्धारित कर सकता।"

"फिर—?"

"इस संसार में मेरा कार्य-काल ३३ वर्ष तक रहेगा। तब मेरी विषाद भरी मौत होगी। मेरे इस क्रूर अन्त का खास कारण मेरे ही पारसी लोग होंगे; पर मेरे काम को और लोग जारी रक्खेंगे।"

"आपके शिष्य न ?"

"हाँ मेरे चुने हुए १२ चेलों की मंडली। इनमें से एक निश्चित समय पर गुरु बनेगा। प्रायः जो मैं व्रत रखता हूँ और मौन धारण किये हूँ वह अपने चेलों के दोषों तथा पापों को धो कर उनको आध्यात्मिक सम्पूर्णता के योग्य बनाने के लिए ही है। ये सब के सब पूर्व जन्मों में मेरे साथ थे; अतः मेरा यह कर्तव्य है कि मैं उनकी मदद करूँ। चेलों की यह मंडली अन्तरंग मंडली है। इनके अलावा ४४ सदस्यों की एक बाह्य मंडली होगी। उसमें अपेक्षाकृत कुछ कम आध्यात्मिक विभूति वाले स्त्री-पुरुष सदस्य रहेंगे। उनका काम अन्तरंग मंडली की सहायता करना होगा।"

"और लोग भी तो पैग़म्बर होने का दावा करते हैं ?"

यह सुनकर मेहर बाबा इस प्रकार मुस्कराने लगे मानो अपने को पैग़म्बर कहने वाले अन्य लोगों की हंसी उड़ा रहे हों।

हाँ ! कृष्णमूर्ति—श्रीमती बेसेंट के शिष्य भी इसी कोटि में से एक हैं। थियासोफ़िस्ट लोग अपने को धोखा दे रहे हैं। वे यह मानते हैं कि उनके असली सूत्रधार कहीं तिब्बत में हिमालय पर्वत पर रहते हैं। किन्तु यदि वे वहाँ जा कर देखें तो ख़ाक और धूल के सिवा और क्या मिलेगा ? इसके अलावा यह कैसी हँसी की बात है कि कोई सच्चा आध्यात्मिक गुरु अपने धार्मिक संदेश की सिद्धि के लिए किसी दूसरे मानव शरीर का सहारा ले।"

इस गुफ़्तगू में और भी कई गुल खिले। मेहर की कोमल उंगलियाँ जब तख्ती पर लिखने के लिए तेजी के साथ दौड़ने लगती थीं तो कितने ही अनोखे और साहस पूर्ण कथन लिख जाते थे।

'अमेरिका का भविष्य बड़ा ही उज्वल होगा। उसका रुख आध्यात्मिकता की ओर फिर जायेगा।......मुझ पर ईमान लाने वाले हर एक व्यक्ति को मैं जानता हूँ और उसकी सदा ही मदद की जाती है।...मेरे कार्यों का अध्ययन करके मेरे सम्बन्ध में कोई धारणा न बनाइए क्योंकि उनकी गहराई का आप को पता ही नहीं चलेगा।...यदि किसी स्थान पर मैं एक बार भी, थोड़ी ही देर के लिए सही, हो आया हूँ तो निश्चय मानिए वहाँ की आबहवा ही बदल कर सुधर जायेगी।...संसार को मेरी ओर से जो आध्यात्मिक प्रेरणा मिलेगी उसके वेग से कितनी ही समस्याएँ—आर्थिक, राजनैतिक, स्त्री-पुरुष-विषयक, सामाजिक—सभी की सभी सुधरेंगी और हल हो जायेंगी क्योंकि स्वार्थ का नाश हो जायगा और उसके स्थान पर भाईचारे की भावना फैल जायेगी।...छत्रपति शिवाजी जिन्होंने १७ वीं शताब्दी में मरहठा राज्य की स्थापना की थी अब यहीं हैं (मेहर ने अपनी ओर संकेत किया, अर्थात् उनके विचार से वे स्वयं शिवाजी के अवतार थे।)......कुछ ग्रहों पर प्राणियों का अस्तित्व है और वे संस्कृति में तथा भौतिक उन्नति में इस पृथ्वी

पर रहने वालों का मुकाबला कर सकते हैं, पर आध्यात्म की दृष्टि से इस पृथ्वी का कोई भी ग्रह बराबरी नहीं कर सकता...आदि।'

किसी से भी यह बात छिप नहीं सकती कि अपने बड़प्पन की डुग्गी पीटते समय मेहर बाबा को किसी प्रकार का संकोच नहीं होता। लेकिन बात-चीत के समाप्त होते होते उन्होंने मुझे एक आदेश दिया जिसे सुन कर मैं कुछ चकित सा हो गया। वे बोले :

"आप मेरे प्रतिनिधि होकर पश्चिम में जावें। चारों ओर घोषित कर देना कि मैं ही भावी पैग़म्बर हूँ। मेरे लिए आप काम करें और मेरे प्रभाव को फैलाने की चेष्टा करें, तभी तो आप मानव जाति के कल्याण के लिए जी-जान से चेष्टा करने वाले वीर सिपाही बनेंगे।"

ऐसे काम करने के विचार मात्र से ही मेरी बुद्धि चकराई जा रही थी। अतः कुछ बेचैन होकर मैंने उत्तर दिया—"ऐसा करने पर मुझे शायद दुनिया पागल कह बैठेगी।"

मेहर ने मेरे कथन पर अपनी असहमति प्रकट की।

मैंने उनसे नम्रता के साथ कहा कि शक्की पश्चिमियों को किसी के पैग़म्बर होने की बात तो दूर रही उसके आध्यात्मिक बड़प्पन में भी तभी विश्वास पैदा हो सकता है जब वह लगातार ऐसी कितनी ही करामातें कर दिखावे जिनका करना मनुष्य के लिए असम्भव हो; और चूँकि मैं कोई करामात कर सकने की शक्ति नहीं रखता था अतः मैं इस आज्ञा के पालन के लिए तय्यार नहीं था।

मेहर बाबा ने मुझे दिलासा देते हुए कहा :

"तब तो आप करामातें अवश्य ही कर सकेंगे।"

मैं चुप रहा। मेहर ने मेरे मौन का कुछ दूसरा ही अर्थ समझ लिया। बोले :

"मेरे साथ रहिए। मैं आपको बड़ी विभूतियाँ प्रदान करूँगा। आपका

भाग्य जागा है। उच्च से उच्च शक्तियों की प्राप्ति में मैं आपकी मदद करूँगा ताकि आप पश्चिमी संसार में मानव सेवा करने के योग्य बन जावें।"

× × ×

इस भेंट का मैं जितना ही कम वर्णन करूँ उतना ही अच्छा होगा। दुनिया में कुछ लोग पैदायशी बड़े होते हैं, कुछ अपने प्रयत्नों से बड़े बन जाते हैं और कुछ अखबारों के सम्वाद-दाताओं के भरोसे उनसे अपना निरंतर विज्ञापन कराके बड़े बनते हैं। मुझे जान पड़ता है कि मेहर बाबा इस तीसरी कोटि के व्यक्ति हैं।

दूसरे दिन मैं चलने की तैयारी करने लगा। अपना काम चलाने योग्य, दिव्य ज्ञान और भविष्यद्वाणियाँ काफ़ी मात्रा में मैंने संग्रह कर ली थीं। संसार में दूर दूर तक मैंने इस आकांक्षा से भ्रमण नहीं किया था कि कुछ धार्मिक विश्वासों तथा आडम्बरों से युक्त घोषणाओं को सुन पाऊँ। मैं सच्ची और खरी घटनाओं को चाहता था। हाँ, यदि ये सच्ची घटनाएँ कुछ अलौकिक और निराली भी प्रकट हों तो कोई परवाह नहीं। इससे भी अधिक मेरी चाह यह थी कि मैं ऐसे व्यक्तियों के मुँह से उनकी निजी अनुभूतियाँ सुन लूँ जिनकी सचाई को मैं स्वयं भी अपनी कसौटी पर कस कर संसार के सामने उनका समर्थन कर सकूँ।

मेरा बोरा-बँधना तैयार था और मैं कूच करने ही वाला था। मैंने मेहर के पास जाकर विनय पूर्वक विदा माँगी। उन्होंने मुझसे कहा कि वे कुछ ही महीनों के बाद नासिक के निकट अपने सदर मुकाम पर पहुँच जायँगे। उन्होंने मुझसे उस स्थान पर एक मास तक अपने साथ रहने का अनुरोध किया। वे बोले :

"मेरी बात सुनिए। जब आपको फ़ुरसत हो, आ जायँ। मैं आपको आश्चर्यजनक आध्यात्मिक अनुभूतियाँ प्रदान करूँगा और आप मेरे बारे में सच्ची बातें जान सकेंगे। मेरे अन्दर जो आध्यात्मिक शक्तियाँ मौजूद हैं, आपको देखने को मिलेंगी। उसके बाद आपके सारे संशय दूर होंगे। तब

आप अपने ही अनुभव से मेरे दावे की सत्यता को प्रमाणित कर सकेंगे। फिर आप पश्चिम में जाकर मेरी ओर से प्रचार कर सकेंगे।"

मैंने अपनी फ़ुरसत के समय कभी उनके यहाँ एक महीने तक ठहरने का निश्चय कर लिया। यद्यपि इस पारसी पुरुष का चरित्र मुझे नाटकीय और प्रदर्शनपूर्ण जान पड़ा और उनके सन्देश की बात बहुत ही काल्पनिक मालूम हुई, तब भी खुले दिल से सारी बात की जाँच करने की मैंने ठान ली।

× × ×

बम्बई लौट कर कुछ दिन तक फिर से वहाँ की चहल पहल देखी और तब मैं पूना के लिए रवाना हुआ। इस प्राचीन भारत देश में मेरा भ्रमण अब शुरू हो रहा था।

सब से पहले मेरी दृष्टि उस बूढ़ी मुसलमान योगिन की ओर फिरी जिसके अकस्मात् सामने आने से मेहर बाबा का जीवन कुछ से कुछ हो गया था। मैंने सोचा एक बार उनका दर्शन करूँ तो कुछ अनुचित न होगा। बम्बई ही में मैंने इस योगिन के बारे में कुछ प्रारम्भिक जाँच शुरू कर दी थी। वहाँ भूतपूर्व जज खाँदलावाला ने उनके बारे में मुझे कुछ बातें बताई थीं। वे उस योगिन को ५० साल से कुछ अधिक काल से जानते थे। उनका कहना था कि योगिन की ठीक ठीक उम्र ६५ के लगभग होगी। मुझे याद आया कि मेहर के चेलों ने उनकी उम्र १३० वर्ष की बतायी थी। पर मैंने बड़ी उदारता के साथ उनकी इस अत्युक्ति का कारण उनके उत्साह की अधिकता ही मान लिया।

जज साहब ने संक्षेप में योगिन की कहानी बताई थी। वे बलूचिस्तान की रहनेवाली हैं। छुटपन में घर छोड़ कर भाग खड़ी हुई। बहुत समय तक बड़ी विकट परिस्थितियों में पैदल ही दूर दूर तक सफ़र करते करते वे बीसवीं सदी के प्रारम्भ में पूना चली आईं और तब से और कहीं जाने का नाम नहीं लिया। शुरू में वे एक नीम के तले रहने लगीं और सभी मौसमों में वहीं रहने की ज़िद पकड़ी। उनकी पवित्रता और अद्भुत शक्तियों की धूम

अगल-बगल की मुसलमानी जनता में यहाँ तक फैल गई कि अन्त को हिन्दू लोग भी उनको इज्ज़त की दृष्टि से देखने लगे। कुछ दिन बाद कुछ मुसलमानों ने मिल कर उनके लिए उसी पेड़ के नीचे एक काठ की झोपड़ी खड़ी कराई क्योंकि योगिन किसी अच्छे मकान में रहने के खिलाफ़ थीं। इसी काठ के घेरे से घर का काम चल जाता था और वे इस प्रकार जाड़े-गरमी की प्रचंडता से एक हद तक बच जाती थीं।

मैंने जज साहब से बाबाजान के सम्बन्ध में जब उनकी निजी राय बता देने की प्रार्थना की तो उन्होंने उत्तर दिया कि इसमें कोई शक नहीं कि हज़रत बाबाजान सच्ची फ़कीरिन हैं। जज साहब पारसी थे और मेहर बाबा को अच्छी तरह जानते थे। अतः उनसे मेहर बाबा के बारे में बड़ी सावधानी के साथ मैंने कुछ प्रश्न किये। उन्होंने जो कुछ मुझे बताने की कृपा की उससे पारसी पैग़म्बर के बारे में जो मेरी राय बनी थी उसमें किसी प्रकार का अन्तर नहीं हुआ। अन्त को मैंने उनसे उपासनी महाराज के बारे में पूछा, क्योंकि वे ही मेहर के नये प्रेरक और प्रोत्साहक थे। मेरा प्रश्न सुन कर, वृद्ध, विवेकी, और भला-बुरा समझने वाले अनुभवी जज साहब उपासनी महाराज के सम्बन्धी अपने कटु अनुभवों की एक लम्बी कहानी सुनाने लगे। मैं उदाहरण के लिए केवल दो ही घटनाओं का उल्लेख करूँगा। जज साहब बोले—"उपासनी ने बड़ी भयानक भूलें की हैं। एक समय जब वे बनारस में रहते थे उन्होंने मुझे प्रोत्साहन देकर वहाँ बुलवा लिया। कुछ दिन बीतने पर मुझे ऐसा भासित हुआ कि मेरे किसी निकट सम्बन्धी की मृत्यु हो गई है। उस समय मेरा कुटुम्ब पूना में था और मैं घर लौटने के लिए उत्सुक हुआ। उपासनी ने बारम्बार यह भविष्यवाणी करके मुझे वहीं रोक लिया कि सब कुछ अच्छा ही होगा। परन्तु, दो दिन बाद मुझे तार द्वारा खबर मिली की मेरी पतोहू ने एक शिशु को जन्म दिया और वह शिशु कुछ ही मिनटों में चल बसा। एक अन्य अवसर पर उपासनी ने मेरे दामाद के बारे में एक भविष्यवाणी की। मेरा दामाद बम्बई के स्टाक बाज़ार में कारबार करने का विचार कर रहा था। उपासनी ने बतलाया कि उनको उसमें बहुत भारी लाभ

पहुँचेगा। इस सलाह को ले कर मेरे दामाद ने विनिमय बाज़ार में पाँव रक्खा और वे करीब करीब बरबाद हो गया।"

जज साहब के विचार-स्वातंत्र्य का मेरे ऊपर बड़ा ही असर पड़ा। जिन उपासनी महाराज को मेहर ने इस ज़माने का एक अत्यन्त उच्च आध्यात्मिक महापुरुष बताया था उन्हीं को जज साहब इस हीन कोटि का बता रहे थे। तब भी मेहर को वे सचमुच ईमानदार मानते हैं और मेहर की संसिद्धि में भी उनका विश्वास है।

मैं पूना पहुँच गया। छावनी के एक होटल में एक कमरा लेकर सीधे हज़रत बाबाजान की खोज में निकला। मेरे साथ एक पथ-प्रदर्शक भी था जो स्वयं हज़रत बाबाजान से परिचित था। वह मेरी टूटी-फूटी हिंदुस्तानी समझ लेता था; अतः मैं उससे दुभाषिए का काम चला लेने की आशा करता था।

योगिन एक तंग गली में रहती थीं। कहीं कहीं उस गली में बिजली के लैम्प लगे हुए थे, पर बीच बीच में मिट्टी के तेल वाले म्युनिसिपल लैम्प भी नज़र आते थे। योगिन एक छोटे निचले सोफे पर लेटी हुई थीं। सड़क पर चलने वाले उनको भली भाँति देख सकते थे क्योंकि लोगों की दृष्टि से उनको बचाने की कोई व्यवस्था नहीं थी। उस काठ के घर से लगा हुआ एक छोटा बरामदा था जिसके चारों ओर तारों से घिरा एक प्रकार का घेरा बना हुआ था। उस कुटिया के ऊपर एक विशाल नीम की साया थी जिसके सफ़ेद फूलों से वायुमण्डल कुछ कुछ सुरभित हो रहा था।

पथ-प्रदर्शक ने मुझे सहेज कर कहा—"आपको जूते निकालने होंगे। घर में प्रवेश करते समय जूता पहनना बेअदबी है।"

मैंने उसकी बात मान ली और एक मिनट बाद हम हज़रत बाबाजान के बिस्तर के बगल में खड़े हो गये।

वह पड़ी चित लेटी हुई थीं। उनके सिर के नीचे तकिये रक्खे थे। उनके रेशम जैसे बालों की सफेद चमक, उनके झुर्रीदार ललाट से बिलकुल ही मेल नहीं खाती थी।

मैंने अपनी नई सीखी टूटी-फूटी हिन्दुस्तानी में उस बूढ़ी योगिन को अपना परिचय दिया। उन्होंने बुढ़ापे से झुका हुआ अपना सिर मेरी ओर, फेरा और अपने दुबले हाथ को, जिसमें हड्डी और चमड़े के सिवा और कुछ भी बाकी नहीं रह गया था, बढ़ा कर मेरे हाथों को अपने हाथों में ले लिया। वे मेरी ओर अपनी अलौकिक आँखों से स्थिरता के साथ ताकती रहीं और उन्होंने मेरे हाथों को और मजबूती के साथ पकड़ा।

उनकी वह दृष्टि मुझे चकित करने लगी। वह एकदम शून्य और समझ के परे थी। इस प्रकार वे मेरे हाथों को तीन चार मिनट तक पकड़े रहीं और मेरी आँखों में सूनी दृष्टि से ताकती रहीं। मुझे प्रतीत होने लगा कि उनकी दृष्टि मेरे अन्दर पैठी जा रही है। वह एक अद्भुत अनुभूति थी। मैं विवश था कि क्या करूँ....।

अन्त को उन्होंने अपना हाथ खींच लिया और कई बार माथा पोछने लगीं। तब मेरे साथी की ओर घूम कर उससे कुछ कहा जिसका अर्थ मैं नहीं समझ सका।

मेरे पथ-प्रदर्शक ने उसका अनुवाद करके मुझसे कहा :

"यह व्यक्ति भारत में ईश्वरीय प्रेरणा से आया है और यह बात शीघ्र ही उसकी समझ में आ जायगी।"

कुछ देर तक रुक कर उन्होंने एक और वाक्य कहा लेकिन उस वाक्य को यहां लिखने की अपेक्षा स्मृति-मन्दिर में ही रखना बेहतर होगा।

उनकी आवाज़ बिलकुल धीमी थी। बड़ी मुश्किल से धीरे धीरे बोल पाती थीं। सम्भव है कि इस वृद्ध जीर्ण ढाँचे में सच्चे फ़कीर की विभूतिमय आत्मा वास करती हो! कौन कह सकता है? सदा शरीर के ढाँचे को देख कर आत्मा के पत्र नहीं पढ़े जा सकते।

लेकिन यह फकीरिन १०० वर्ष के निकट पहुँच रही हैं। मुझे पहले ही सहेज दिया गया था कि उनकी कमज़ोर हालत की वजह से मुझे उनसे देर तक बातचीत नहीं करनी चाहिए। मेरे मन पर एक बात का गहरा प्रभाव

पड़ गया था, और मैं चुपचाप उठ कर चल देने को तैयार हो गया। मुझे प्रतीत होता था कि उनकी शून्य दृष्टि उनकी निकट भविष्य में होने वाली मृत्यु की सूचना थी। प्राण-पखेरू उनके जीर्णकाय से उड़ा जा रहा था, पर बीच बीच में इस संसार की आखिरी झाँकी लेने के लिए उनकी आँखें अजीब ढंग से खुली हुई थीं।*

होटल में पहुँच कर मैं अपने अनुभवों पर मनन करने लगा। मुझे इस बात में ज़रा भी सन्देह नहीं था कि उस योगिन की आत्मा के अंतरतम तल में ज़रूर ही कुछ गहन आध्यात्मिक अनुभूति थी। अपने आप मेरे दिल में उनके प्रति असीम गौरव और आदर पैदा हो रहा था। मुझे जान पड़ा कि उनके छूने पर मेरी साधारण विचार-धाराओं का रुख एकदम बदल गया था और आधुनिक वैज्ञानिकों के समस्त आविष्कारों तथा अनुमानपूर्ण दावों के होते हुए भी सांसारिक जीवन सम्बन्धी एक रहस्यपूर्ण अकथनीय और अवर्णनीय अनुभूति मेरे अंतस्तल में प्रसारित होने लगी। मुझे अच्छी तरह से समझ पड़ा कि जो वैज्ञानिक महान् विश्व-समस्या के मूल रहस्यों के उन्मीलन करने का दम भरते हैं वे उस समस्या के ऊपरी रूप-रंग को ही उसका वास्तविक स्वरूप समझे हुए हैं, और उनको मूल तत्व का पता भी नहीं है! लेकिन यह बात मेरी समझ में ही नहीं आती कि उस बुढ़ा के क्षणिक स्पर्श के कारण ही बड़े प्रेम और विश्वास के साथ पले हुए मेरे निश्चयात्मक मानसिक विचारों की नींव क्यों कर इतने ज़ोर से हिल उठी!

उस योगिन ने मेरे सम्बन्ध में जो संकेत रूप से भविष्यवाणी की थी वह आज भी मुझे स्मरण है परन्तु उसका अर्थ मेरी समझ में बिलकुल नहीं आ रहा है। मैं तो किसी के बुलाने पर भारत भ्रमण के लिए नहीं आया हूँ। क्या अपनी स्वेच्छा से ही, अपने ही मानसिक हौसिले को पूरा करने के लिए मैं नहीं आया था?...केवल इस समय जब कि मैं इन पंक्तियों को लिख रहा

---

* कुछ महीने बाद मैंने फिर उनसे भेंट की। मेरा यह अनुमान कि वह मरणासन्न थीं सच निकला। कुछ दिन बाद ही वह स्वर्ग सिधार गईं।

हूँ, अर्थात् इस घटना के बहुत काफी समय बाद, धीरे धीरे मैं विश्वास करने लगा हूँ कि अस्पष्ट रूप में उन वाक्यों का मतलब मेरी समझ में नहीं आ रहा है। हे प्रभु ! संसार बड़ा ही विचित्र है।

५

योगी ब्रह्म

समय तेज़ी के साथ बीतता जा रहा है और मैं दक्षिण भारत में भ्रमण करता फिर रहा हूँ। मैं अब तक कई प्रसिद्ध शहरों को देख चुका हूँ, पर अभी तक किसी असाधारण व्यक्ति से भेंट होने का सौभाग्य नहीं हुआ है। कोई अनिवार्य प्रेरणा, जिसको मैं समझ नहीं रहा था किन्तु फिर भी जिसका मैं अंध-अनुकरण कर रहा था, तेज़ी के साथ मुझे आगे बढ़ाए लिए जा रही थी, यहाँ तक कि मैं कभी कभी अपनी खोज के ध्येय को भूल कर केवल नगरों की शोभा और उल्लेखनीय स्थानों को ही देख कर अपना सफ़र जारी रखता था।

अन्त में मैंने मद्रास की गाड़ी पकड़ी। वहीं कुछ दिन तक रहने का मेरा विचार था। रात का लम्बा सफ़र था। नींद कठिनाई से भी नहीं आ रही थी, अतः मैं यह सिंहावलोकन करने लगा कि अब तक पश्चिम भारत में मैंने जो यात्रा की है उसमें मेरे हाथ क्या लगा है।

मुझे यह भान पड़ा कि अब तक तो मुझे किसी भी ऐसे योगी का पता नहीं लगा है जिनके दर्शन से मैं अपने परिश्रम को सुफल समझूँ; किसी ऋषि के दर्शन होने के सम्बन्ध में तो मैं और भी अधिक हतोत्साह हो गया। दूसरी ओर मैंने इस निद्रालु भारत की घोर अंध-विश्वास में पगी हुई और जीवन को घोटने वाली, मूर्ख प्रथाओं का इतना काफी परिचय पा लिया है कि मुझे जान पड़ा कि बम्बई में कुछ स्वल्प-परिचित व्यक्तियों ने मेरी यात्रा के उद्देश्य की पूर्ति के सम्बन्ध में जो शंकाएँ प्रकट की थीं वे ठीक ही

थी। मुझे यह भी विश्वास होने लगा कि जिस काम का मैंने अपने आप बीड़ा उठाया है उसको पूरा करना बहुत ही कठिन है। हिन्दुस्तान में अपने को धार्मिक कहने वाले व्यक्ति तो ७५ किस्म के मिलते हैं, परन्तु वे मेरे दिल को अपनी ओर खींच सकने में असमर्थ हैं। कभी कभी मैंने मन्दिरों के चारों ओर चक्कर लगाया, क्योंकि उनके रहस्यपूर्ण अन्तरंग से वास्तविक रहस्य की प्राप्ति की आशा होती थी। मैंने मन्दिरों की परिधि को पार करके भीतर भी प्रवेश किया है और अन्दर की झाँकी देखी है। परन्तु वहाँ भी यही दिखाई दिया है कि पूजा के समय ध्यान अथवा स्तुति की अपेक्षा पुजारीगण घंटा बजाने में अधिक मन लगा रहे हैं जिसमें उनके इष्ट-देव का ध्यान उनकी ओर अवश्य ही आकृष्ट हो जाय।

मद्रास पहुँच कर मुझे बड़ी खुशी हुई। नगर का बिखरा हुआ और रंग-बिरंगा स्वरूप मेरे मन को भाया। शहर से दो मील के फ़ासले पर एक सुन्दर छोटी बस्ती में मैंने अपना डेरा जमाया जिसमें मैं यूरोपियनों की अपेक्षा हिन्दुस्तानियों के अधिक सम्पर्क में आ सकूँ। मेरा मकान ब्राह्मणों की बस्ती में था जहाँ सड़क कच्ची थी और उसकी धूल में मेरे जूते धँस जाते थे। सड़क के किनारों की भूमि पर धूल नहीं थी। बीसवीं सदी की उन्नतिशील प्रगति की गंध वहाँ छू नहीं गई थी। मकान चूने से पुते हुए थे और उनके खुले बरामदे बड़े ही सुन्दर लगते थे। मेरे घर के भीतर खपरैल का एक दालान था और आँगन के चारों ओर एक छज्जा बना था। घर में एक पुराना कुआँ था जिसमें से डोल और रस्सी के सहारे पानी खींच कर निकाला जाता था।

इस छोटी बस्ती में केवल दो तीन गलियाँ थीं, जिनको पार करने पर दूर तक इस देश की प्रफुल्ल प्रकृति की उमड़ती हुई सारी शोभा आँखों को सदा ही शीतल कर देती थी। शीघ्र ही मुझे मालूम हो गया कि अडयार नदी बिलकुल ही नजदीक है और उसके तट तक आध घंटे में पहुँचा जा सकता है। इसकी विपुल धारा के दोनों ओर ताड़ के वृक्षों के झुंड हैं जो देखने वाले के चित्त को मोह लेते हैं। मैं अपनी फ़ुरसत का सारा समय या तो

उन वृक्षों की छाया में घूमते-घामते या नदी के किनारे कुछ दूर तक चलते हुए बिताता था।

अडयार नदी मद्रास नगर के निकट तक बह कर आती है और उसकी दक्षिणी सीमा बनती हुई पास के महासागर के कारोमंडल तट पर समुद्र में मिलती है। एक दिन सबेरे इस सुन्दर नदी के किनारे मैं धीरे धीरे टहल रहा था। मेरे साथ एक परिचित ब्राह्मण साथी भी था जिसे यह मालूम था कि मेरी यात्रा का ध्येय क्या है। अचानक उसने मेरी बाँह पकड़ी। वह बोला—"देखिए! हमारी ओर जो सज्जन आ रहे हैं उन्हें आपने देखा? लोग उन्हें योगी मानते हैं। आप उनसे अवश्य ही बातचीत करना चाहेंगे, किन्तु खेद है कि वे तो किसी से बोलते ही नहीं।"

"क्यों नहीं बोलते?"

"इनका निवासस्थान मैं जानता हूँ, लेकिन इस ज़िले भर में इनका सा गम्भीर और संकोची व्यक्ति,दूसरा नहीं है। वे अपने को समाज से दूर, एक-दम तनहा रखते हैं।"

अब यह अपरिचित व्यक्ति हमारे बिलकुल पास आ गया। इसका बदन गठा हुआ था। मेरे अनुमान में इसकी आयु ३५ वर्ष के लगभग होगी। क़द मँझोला था, न अधिक लम्बा और न अधिक छोटा। सब से अधिक उल्लेख-नीय बात मुझे यह जान पड़ी कि इसकी आकृति हबशियों से मिलती हुई थी। चमड़े का रंग बिलकुल ही काला था। नाक चपटी, ओंठ मोटे, बदन खूब ही तगड़ा और मोटा। ये सभी साफ़ प्रकट कर रहे थे कि यह आर्य नहीं है। शिर पर कंघी किए हुए बालों की शिखा बँधी थी। एक अजीब प्रकार की बड़ी बालियाँ इसके कानों में शोह रही थीं। यह अपने शरीर पर एक सफ़ेद दुशाला ओढ़े था जिसका एक आँचल बायें कंधे पर से पीछे लटक रहा था। इसके पाँव नंगे थे और पैरों पर कोई भी वस्त्र न था।

इस व्यक्ति ने हमारी उपस्थिति की ओर ध्यान तक न दिया और धीरे धीरे हमारे सामने से चला गया। इनकी दृष्टि ज़मीन पर लगी हुई थी मानो

ज़मीन पर किसी वस्तु को खोज रहा हो। मुझे प्रतीत हुआ कि वह किसी ध्यान में मग्न हैं। यह चल-मूर्ति किस विषय पर इतनी तन्मयता से विचार कर रही है। इसने मेरी उत्सुकता को और भी भड़का दिया। मेरे हृदय में अचानक यह उत्कट इच्छा पैदा हो गई कि शिष्टाचार की सभी बाधाएँ तोड़ कर इस व्यक्ति से बातें करूँ। मैंने अपने साथी से कहा—"मैं इनसे बातचीत करना चाहता हूँ। चलो हम लोग इनके पीछे चलें।" मेरे ब्राह्मण साथी ने दृढ़ता के साथ इसका विरोध किया। कहा—"व्यर्थ है।"

मैंने उत्तर दिया—"कोशिश करके देखने में क्या हर्ज है?" ब्राह्मण ने मुझे निरुत्साहित करने की चेष्टा की—"वे इतने गम्भीर हैं कि यहाँ कोई भी अब तक इनके बारे में कुछ भी नहीं जान पाया है। ये पास-पड़ोस के लोगों से अपने को बिलकुल ही तनहा रखते हैं। इनके ध्यान में हमें दखल नहीं देना चाहिए।"

लेकिन मैं तो इसी बीच में इस प्रसिद्ध योगी की ओर चलने लगा था, अतः झख मार कर मेरे साथी को भी मेरे साथ हो लेना पड़ा।

शीघ्र ही हम योगी के पीछे पहुँच गये; पर उनकी किसी भी बात से यह प्रकट नहीं हुआ कि उन्हें हमारी उपस्थिति का कोई भी आभास मिला हो! वे उसी प्रशान्त ढंग से आगे बढ़े जा रहे थे। हम भी उनके साथ कुछ दूर तक बराबर चलते रहे!

मैंने अपने साथी से कहा—"कृपया इनसे पूछिए कि क्या मैं इनसे बात कर सकता हूँ।" मेरे साथी ने संकोच में पड़ कर सिर हिलाया। बोला—"नहीं, मेरी तो हिम्मत नहीं पड़ती।"

इस अमूल्य अवसर को हाथ से खो बैठने की दुःखद संभावना ने मेरे प्रयत्न को और भी दृढ़ किया। कोई दूसरा चारा नहीं था। सीधे योगी से मुझको ही बोलना था। शिष्टाचार को मैंने तिलांजलि दे दी; योगी के रास्ते को रोक कर खड़ा हो गया। अपनी टूटी फूटी हिन्दुस्तानी के सहारे मैंने एक छोटा वाक्य कहा। उन्होंने सिर उठा कर मेरी ओर ताका। उनके ओठों पर

मंद मुसकान की अर्ध-प्रस्फुटित रेखा फैल गई। लेकिन अपनी अनिच्छा को प्रकट करते हुए उन्होंने सिर हिला दिया।

उन दिनों मद्रास की प्रान्तीय बोली तामिल का एक ही शब्द मुझे मालूम था और यह भी निश्चय था कि योगी उससे भी कम मात्रा में अंग्रेज़ी जानते थे। दक्षिण भारत के बहुत ही थोड़े लोग हिन्दुस्तानी जानते हैं, लेकिन उस समय इस बात का मुझे पता ही न था। मेरा सौभाग्य था कि मेरे साथी ब्राह्मण का दिल मेरी लाचारी पर पिघल उठा, अतः मेरी रक्षा और सहायता के लिए वे आगे बढ़े।

क्षमा-प्रार्थना-मिश्रत संकोचपूर्ण स्वर में उन्होंने तामिल में कुछ कहा।

योगी ने जवाब नहीं दिया। उनका चेहरा और भी गम्भीर हो गया। आँखों में दया का भाव लुप्त हो गया। उनमें स्नेह की झलक तक न थी। मेरा ब्राह्मण साथी लाचारी से मेरी ओर देखने लगा। फिर बड़ी देर तक सन्नाटा रहा। क्या करना था यह हम में से किसी को भी नहीं सूझा। मुझे प्रथम बार यह खेदपूर्ण अनुभव हुआ कि योगियों को अपने साथ बातचीत करने के लिए राज़ी करना कैसा कठिन काम है। वे किसी से भी मिलना नापसन्द करते हैं और अपनी निजी अनुभूतियों के बारे में अपरिचितों से बात करने से अलग रहना चाहते हैं, खास कर किसी गोरे व्यक्ति के वास्ते, जिनके विषय में यह साधारण धारणा ही है कि उनका योग के प्रति न कोई सहानुभूति है और न उसकी बारीकियों को समझने की बुद्धि-कुशलता ही। अपनी चिर-सहचरी मौन दीक्षा को त्याग देना पूर्व के योगियों को बिलकुल ही नापसन्द है।

मेरी इस भावना में शीघ्र ही कुछ परिवर्तन हुआ। मुझे प्रतीत हुआ कि योगी बड़ी तेज़ निगाह से मेरी तह लेने की चेष्टा कर रहे हैं। किसी प्रकार से मैं ताड़ गया कि योगी मेरे अंतरतम तल के विचारों को जानने की मानसिक चेष्टा कर रहे हैं। लेकिन बाहर से वे वैसे ही गम्भीर बने रहे। तो क्या मैंने कोई समझ की भूल की थी? मैं अपनी इस विचित्र भावना को छोड़ नहीं
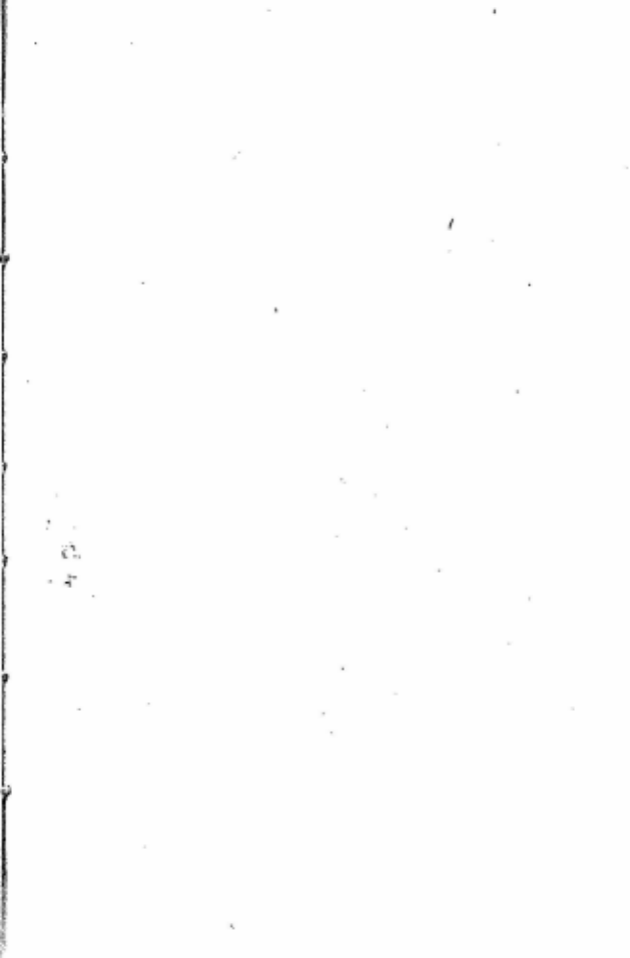
योगी ब्रह्म

सका कि योगी अपनी दृष्टि से अनुवीक्षण यंत्र के समान मेरी परीक्षा कर रहे हैं।

मेरे साथी ब्राह्मण की घबराहट अब तक और भी बढ़ गई थी। उन्होंने मुझे इशारा करके बताया कि वहाँ से चल देने में ही खैरियत थी। यदि वही अवस्था एक मिनट तक और बनी रहती तो मैं अपने साथी का आदेश मान लेता और हार मान कर चल देता।

पर होनहार कुछ और ही थी। अचानक योगी ने हाथ उठा कर इशारा किया और हमें पास के एक उन्नत ताड़ के वृक्ष के पास ले गये; बैठ जाने की मूक आज्ञा दी और खुद भी बैठ गये।

उन्होंने ब्राह्मण साथी से तामिल में कुछ कहा। उनके गले में लोच थी और माधुर्य था।

मेरे साथी ने अनुवाद करके बताया—"योगी कहते हैं कि वे आप से बातचीत करने को राज़ी हैं।" फिर मेरे साथी ने अपनी ओर से कहा कि योगी ने अडयार नदी तटवर्ती ऐसे प्रदेशों में कई वर्ष तक भ्रमण किया है जहाँ कोई भी नहीं जाता।

सब से पहले मैंने योगी का नाम पूछा। मुझको इतना लम्बा नाम सुनाई पड़ा कि मैंने उनका अलग ही एक नाम रखने का निश्चय कर डाला। कहा गया था कि उनका पहला नाम 'ब्रह्म सुखानन्द' था। उनके चार अन्य ऐसे ही लम्बे नाम थे। अतः मुझे तो उनको 'ब्रह्म' कह कर पुकारने में अधिक सुविधा मालूम हुई। मैं उनके और नामों का उल्लेख न करूँगा क्योंकि यदि उनकी सम्पूर्ण नामावली लिखी जाय तो एक पूरा पन्ना भी काफी न होगा। अतः मैं उनको 'ब्रह्म' का संक्षेप नाम देकर पुकारूँगा ताकि पाठकों को सुविधा हो।

"मुझे योग में अधिक दिलचस्पी है और उसके बारे में कुछ जानने का अभिलाषी हूँ।"

मुस्कराते हुए ब्रह्म बोले—"दिखाई तो दे रहा है। अच्छा, अपने प्रश्न कीजिये।"

"आप किस योग का अनुसरण करते हैं?"

"हठयोग का। सभी योगों में यह कठिनतम है। इस योग में शरीर और श्वास जैसे अड़ियल घोड़ों को बड़ी कठिनाई से क़ाबू में लाना होता है। इसके बाद स्नायु और मन पर सहज ही अधिकार हो जाता है।"

"ऐसा करने से क्या हाथ लगता है?"

ब्रह्म ने नदी के उस पार शून्य की ओर ताका और कहा—"शारीरिक स्वास्थ्य, मनोबल और दीर्घायु—ये हठयोग से होने वाले लाभों में से कुछ हैं। मैं जिस प्रकार के योग की शिक्षा प्राप्त कर रहा हूँ उसमें पहुँचा हुआ व्यक्ति अपनी मांसपेशियों को लोहे के समान कठोर बना सकता है और उनकी सहन शक्ति अनुपम होगी। दुःख, यंत्रणा आदि उसका बाल भी बाँका नहीं कर सकते। ऐसे ही एक योगी को एक बार नश्तर लगाने के समय कोई भी दवा बेहोश न कर सकी, किन्तु उन्होंने बेहोश हुए बिना ही नश्तर लगवा लिया और उसे तनिक भी कष्ट का अनुभव नहीं हुआ। ऐसे व्यक्ति बिना किसी प्रकार के संरक्षण के ही शीत और उष्णता की घोर तीव्रता सहन कर सकते हैं और ऐसा करने में उनको किसी प्रकार की क्षति नहीं पहुँचती।"

हमारी बातचीत अधिक रोचक होती जा रही थी। अतः कुछ नोट करने के लिए मैंने अपनी नोट बुक निकाली। ब्रह्म इसको देख कर मुस्करा उठे, पर किसी प्रकार की आपत्ति नहीं उठाई। मैंने उनसे प्रार्थना की कि वे अपने योग के बारे में अधिक प्रकाश डालें।

"मेरे गुरुदेव हिमाच्छादित हिमालय की चोटियों पर अपने गेरुए वस्त्र को छोड़ और किसी कपड़े के बिना ही रहते हैं, जहाँ पानी बरफ़ बन जाता है। ऐसी सर्द जगह पर भी मेरे गुरुजी एक साथ घंटों तक बैठ सकते हैं। तब भी उनको किसी प्रकार की कठिनाई नहीं मालूम होती। हमारे योग की कुछ ऐसी ही महिमा है।"

"तो आप किसी के चेले हैं ?"

"हाँ। अब भी मुझे कई पहाड़ लाँघना है। मैंने लगातार १२ वर्ष तक प्रति दिन योग के अभ्यास सीखने में बिताये हैं।"

"तो आप को कुछ असाधारण सिद्धियाँ प्राप्त हुईं ?"

ब्रह्म ने सिर हिलाया, पर एकदम चुप रहे। इस विचित्र युवक की ओर मेरा चित्त अधिकाधिक आकृष्ट होने लगा।

"क्या मैं पूछ सकता हूँ कि आप योगी कैसे बने ?"

पहले तो कोई उत्तर नहीं मिला। हम तीनों उसी ताड़ के वृक्ष के नीचे बैठे रहे। नदी के उस पार, नारियल के पेड़ों पर बैठे कौए काँ काँ कर रहे थे। इस आवाज़ की तुमुलता को और भी बढ़ाते हुए बंदरों की चीं चीं की आवाज़ सुनाई देने लगी। नदी तट पर लहरों की थपकियाँ देने की स्नेहमय तान कानों को प्यारी लगती थी।

अचानक ब्रह्म बोल उठे—"बड़ी खुशी के साथ।" मुझे जान पड़ा कि वे यह समझ गये हैं कि मेरे प्रश्न पूछने का कारण केवल उत्सुकता अथवा कौतूहल मात्र न था। वे समझ गये कि मैं किसी गहरी प्रेरणा के कारण ही उनसे प्रश्न कर रहा था। उन्होंने अपने हाथ दुशाले की तहों में छिपा लिये, नदी के उस पार किसी चीज़ पर अपनी दृष्टि जमाई और बोलने लगे :

"मैं अपने माँ-बाप का एकलौता बेटा हूँ। जन्म से ही मेरी प्रकृति कुछ शान्त थी। मैं किसी खेल कूद में भाग न लेता था। अकेले बाग-बगीचों, या खेतों की सैर में मेरा दिल खूब लगता था। मननशील बालक को बहुत कम लोग समझ पाते हैं। मैं यह नहीं कह सकता कि मेरा जीवन सुखमय था। जब मैं १२ वर्ष का हुआ अचानक एक दिन कुछ प्रौढ़ व्यक्तियों की बातचीत मेरे कानों में पड़ी। उन्हीं की बातों से योग का नाम मुझे पहले पहल मालूम हुआ। इस घटना से योग के विषय में और अधिक जान लेने की उत्कट इच्छा पैदा हुई। मैं लोगों से पूछ-ताँछ करने लगा। इस भाँति तामिल भाषा

की योग सम्बन्धी कुछ किताबें मेरे हाथ लगीं। उनके पाठ से योगियों के बारे में कई दिलचस्प बातें मेरे जानने में आईं। रेगिस्तान में दौड़ने वाला जैसे पानी के लिए तड़पने लगता है उसी भाँति मेरा मन भी योग सम्बन्धी शास्त्रोदक पान करने के लिए तड़पने लगा। लेकिन मैं इस ज्ञान-प्राप्ति के मार्ग में ऐसी जगह पहुँच गया था जहाँ और अधिक आगे बढ़ने की कोई सूरत ही नहीं दिखाई दी। एक दिन मैंने अपने सौभाग्य से एक किताब को दुबारा पढ़ा। उसके एक वाक्य ने मेरे मन पर खूब ही असर डाला। इस किताब में लिखा था — 'योग मार्ग पर सफलता के साथ आरूढ़ होने के लिए गुरू की परम आवश्यकता है।' इसका गहरा असर हुआ। मुझे विश्वास हो गया कि घर-बार छोड़ कर घूमने पर ही सच्चे गुरू से भेंट होगी। इसके लिए मेरे माँ-बाप राजी नहीं थे। ऐसी अवस्था में अपना कर्तव्य निश्चित करने में असमर्थ हो कर मैं छिप कर प्राणायाम का अभ्यास करने लगा। उसके बारे में किताबों की सहायता से मुझे कुछ बिखरा हुआ ज्ञान मिला। इन अभ्यासों से लाभ प्राप्त होने की बात तो दूर रही उलटे मुझे बड़ी हानि पहुँची। मुझे उस समय मालूम नहीं था कि सिद्ध गुरू की मदद के बिना उन अभ्यासों का नाम तक नहीं लेना चाहिए। मेरा हौसला ऐसा था कि मैं गुरू के मिलने तक इन्तज़ार नहीं कर सकता था। कुछ वर्षों के अन्दर ही इन प्राणायाम के अभ्यासों का बुरा नतीजा देखने में आया। मेरे सिर के मध्य भाग में कुछ चोट सी मालूम होने लगी। जान पड़ता था मेरा कपाल सब से कोमल स्थान पर फट गया है। घाव से रक्त बह निकला और मेरा शरीर ठंडा और सुन्न हो गया। मैंने सोचा कि मैं मरने वाला हूँ। दो घंटे बाद मुझे एक अजीब स्वप्न देख पड़ा। किसी पूजनीय साधु ने स्वप्न में दर्शन दिये और यह कहते प्रतीत हुए—'इन निषिद्ध अभ्यासों में हाथ डाल कर, देखो! तुमने अपनी कैसी हालत बना ली है। यह तुम्हारे लिए कड़ी चेतावनी है।' यह क्षणिक दृश्य ग़ायब हो गया और आश्चर्य की बात यह है कि उसी क्षण से मेरी तबियत सुधरती गई और अन्त को ख़ूब ही चंगा हो गया। लेकिन उस घाव का निशान अब भी है।"

यों कहते हुए ब्रह्म ने सिर झुका कर वह निशान हमें दिखा दिया। सिर पर साफ ही एक छोटा सा गोलाकार घाव का निशान नज़र आया।

"इस दुःखद अनुभव के बाद मैंने प्राणायाम का अभ्यास छोड़ दिया और घर के बन्धनों के छूटने की प्रतीक्षा की। जब मैं उनसे मुक्त हुआ, घर छोड़ कर गुरू की खोज में निकल पड़ा। मुझे मालूम था कि सच्चे गुरू को परखने की उत्तम पद्धति उनके साथ कुछ महीनों तक रहना ही है। मैंने कई गुरुजनों से भेंट की और कुछ दिन उनके साथ रहते और अन्त में निराश हो कर घर लौटते अपना समय काटा। कोई तो मठाधिपति थे और कोई आध्यात्मिक आश्रमों के अथवा दार्शनिक विद्यापीठों के आचार्य, लेकिन किसी से मुझे सन्तोष नहीं मिला। उन्होंने मुझे काफ़ी दर्शन ज्ञान सिखाया, पर किसी में भी अपने अनुभव की कोई बात नहीं थी। उनमें कई तो पुस्तकों की बातें ही दोहरा कर सुनाते थे। वास्तविक मार्ग की कोई भी सूचना तक नहीं दे सके। मैं किताबी बातों के लिए उतना उतावला नहीं था जितना योग के प्रत्यक्ष अनुभव के लिए। इस प्रकार मैंने लगभग १० गुरुओं से भेंट की, पर वे योग के सच्चे आचार्य मालूम नहीं हुए। तब भी मैं निराश नहीं हुआ था। मेरे यौवन की सारी उत्सुकता ख़ूब प्रज्वलित हो चुकी थी। अतः रुकावटों पर विजय पाने का मेरा दृढ़ संकल्प और भी पक्का होता गया।

मैं तब तक किशोरावस्था को पार कर यौवन के द्वार पर पहुँच गया था। मैंने अपने बुज़ुर्गों के घर-द्वार को हमेशा के लिए छोड़ देने का संकल्प कर लिया। संन्यास लेकर मरते दम तक सच्चे गुरू को खोज लेने का मेरा पक्का इरादा हो गया। मैं अपना घर छोड़ कर अपनी ग्यारहवीं यात्रा पर निकला। घूमते-घामते तंजौर ज़िले के एक बड़े गाँव में पहुँचा। प्रातः स्नान के लिए नदी के तीर जा कर स्नानादि समाप्त करके नदी के किनारे चलने लगा। शीघ्र ही लाल पत्थर का बना हुआ एक छोटा मन्दिर मिला। उत्सुकता के कारण झाँक कर मन्दिर के भीतर देखा तो वहाँ कई सज्जनों को केवल एक लंगोटी-धारी साधु के चारों ओर बैठे देख कर आश्चर्यचकित हो गया। लोग

उनकी ओर बड़े आदर की दृष्टि से ताक रहे थे। उन महात्मा के चेहरे पर कुछ अकथनीय गौरव, गम्भीरता और कुछ रहस्यपूर्ण तेज छाया हुआ था। मैं चकित भाव से द्वार पर ही खड़ा रहा। शीघ्र ही मुझको मालूम हो गया कि उपस्थित सज्जन कुछ उपदेश सुन रहे हैं। धीरे धीरे मेरे अन्दर यह विचार दृढ़ हो उठा कि ये साधु सच्चे योगी हैं। अन्य लोगों के समान किताबी ज्ञान के व्यक्ति नहीं हैं। मेरे मन में ऐसी धारणा क्यों बैठ गई, मैं स्वयं नहीं जान सका।

"अचानक महात्मा ने द्वार की ओर नज़र दौड़ायी। हम दोनों की चार आँखें हुईं। तब एक भीतरी प्रेरणा के वेग में आ कर मैंने मन्दिर में प्रवेश किया। महात्मा ने मेरी बड़े प्रेम से आवभगत की, बैठने को कहा और बोले—'छः महीने हुए मुझे तुम्हें शिष्य के रूप में ले लेने का आदेश मिला था अन्त में तुम आ ही गये।' यह सुनकर मुझे संभ्रम और आनन्द दोनों ने एक साथ घेर लिया। मुझे याद आ गयी कि ठीक छः महीने पूर्व ही मैंने अपनी ग्यारहवीं यात्रा शुरू की थी। खैर! यों मुझे मेरे गुरू मिल गये। इसके बाद वे जहाँ जहाँ जाते थे मैं उनके पीछे ही लगा रहता था। वे कभी शहरों में जाते, कभी घने जंगलों के निर्जन प्रदेश में। उनकी कृपा और मदद से मैं योग मार्ग पर उन्नति करने लगा और इतने वर्ष बाद मुझे चैन मिला। मेरे गुरू ने अनुभव करके योग की अच्छी सिद्धियाँ प्राप्त की थीं। यद्यपि मेरे गुरुदेव केवल हठ योग का अनुसरण करने वाले थे, तो भी अनुभव में वे किसी सिद्ध योगी से कुछ कम न थे। योग मार्ग के कई प्रभेद हैं। अभ्यासों और अपनी पद्धतियों में वे बहुत भिन्न हैं। जिस मार्ग की मुझे दीक्षा मिली, वही अकेला ऐसा मार्ग है जिसमें मन के बदले शरीर से ही साधना शुरू होती है। मुझे प्राणायाम का तरीका सिखाया गया। एक बार योग की एक क्रिया की सिद्धि में मुझे ४० दिन तक उपवास भी करना पड़ा था।

"तुम सोच सकते हो कि मुझे किस प्रकार का आश्चर्य हुआ होगा जब कि एक दिन मेरे गुरू ने मुझे बुला भेजा और कहा—'अभी तुम्हारे पूर्ण संन्यास लेने का समय नहीं आया है। अपने घर वालों के पास लौट जाओ, और

साधारण जीवन बिताओ। तुम विवाह कर लोगे और तुम्हारे एक लड़का भी होगा। तुम्हें अपने ३६ वें साल में कुछ संकेत मिलेंगे। उसके बाद तुम संसारी जीवन के परित्याग के योग्य हो जाओगे। तब तुम फिर जंगलों में चले जाओगे और एकान्त मनन में तब तक डूबे रहोगे जब तक कि तुम्हें वह परम पुरुषार्थ न मिले जिसकी सभी योगी खोज करते हैं। मैं तुम्हारी प्रतीक्षा करता रहूँगा। तुम मेरे पास आ सकते हो।'

मैंने उनकी आज्ञाओं का पालन किया। घर लौट कर एक साध्वी से अपना विवाह कर लिया। उससे एक लड़का हुआ। लेकिन इसके कुछ दिन बाद ही मेरी स्त्री की मृत्यु हो गई। मेरे माँ-बाप तब तक स्वर्ग सिधार चुके थे। अतः मैं अपना गाँव छोड़ कर यहाँ पर चला आया। यहाँ एक बुढ़िया के मकान पर रहता हूँ जो मेरे गाँव की ही है और मुझको बचपन से जानती है। वह मेरे घर-बार का काम देखती है, और चूँकि जीवन के अनुभव ने उसे विवेकी बना दिया है वह मुझे मेरा विरक्त जीवन, जो कि हमारे सम्प्रदाय का एक प्रधान विहित नियम है, बिताने देती है।"

ब्रह्म की आत्म-कथा पूरी हुई। उससे मैं इतना प्रभावित हो गया कि मेरी प्रश्न पूछने की इच्छा ही शान्त हो गई। दो तीन मिनट तक एकदम सन्नाटा छाया रहा। फिर ब्रह्म उठे और अपने घर की ओर धीरे धीरे चलने लगे। हम दोनों भी उनके पीछे हो लिये।

रास्ता ताड़ के वृक्षों के सुन्दर झुरमुटों से होकर जाता था। सूर्य के स्वच्छ आलोक में नदी का जल जगमगा रहा था। उसी के किनारे चलते चलते लगभग एक घंटा बीत गया, तब कहीं हम मनुष्यों के बीच में आये। मछुए जाल लेकर कमर तक गहरे पानी में खड़े होकर पुराने ढंग से मछली पकड़ रहे थे। रंग-बिरंगी चिड़ियाँ नदी के जल पर उड़ती हुई दृश्य की सुन्दरता की मनोज्ञता को और भी बढ़ा रही थीं। समुद्र की ओर से आने-वाली सुगन्धपूर्ण हवा धीरे से हमारे बगल में से झूम कर बह उठी। हम कुछ खेद के साथ नदी को पीछे छोड़ कर एक सड़क पर चलने लगे। सुब्बरी

का एक झुंड घुरघुराता हुआ हमारे बाजू से गुजरा। एक पासी औरत हाथ में डंडा लिए उस झुंड को चलाती थी, और इधर उधर बहक कर भागने वाले बेचारे सुअरों को बाँसों की चोट भी खानी पड़ती थी।

ब्रह्म ने घूम कर हमसे विदा लेनी चाही। मैंने यह आशा प्रकट की कि वे फिर से मिलने की अनुमति दें। उन्होंने हमारी प्रार्थना मंजूर कर ली। तब मैंने साहस करके पूछा कि क्या वे अपने शुभागमन से मेरी ग़रीब कुटी को पावन करने की कृपा न करेंगे। मेरे ब्राह्मण साथी को आश्चर्य सागर में डुबाते हुए ब्रह्म बोल उठे:

"क्यों नहीं! आज शाम को तुम्हारे यहाँ आवेंगे।

× × ×

गोधूलि के समय मैं ब्रह्म सुखानन्द की बड़ी उत्कंठा से प्रतीक्षा करने लगा। मन में कई प्रश्नों के उठते और गिरते रहने से एक बेचैनी फैल गई थी। उनकी संक्षिप्त जीवनी ने मुझको मोहित कर लिया था, और उनके विचित्र चरित्र और बर्ताव को देख कर मैं चकित हो गया था।

नौकर ने उनके आगमन की सूचना दी। मैं हाथ जोड़े उनकी आवभगत करने के लिए सीढ़ियाँ पार कर बरामदे से नीचे उतरा। हाथ जोड़कर प्रणाम करना हिन्दुओं का साधारण अभ्यर्थना का तरीका है। इसका गुप्त अर्थ बाद में मुझे मालूम हुआ, पर यह यूरोपीय लोगों को अवश्य ही विचित्र मालूम होगा। इस प्रणाम से यह अर्थ सूचित होता है कि 'हम दोनों की आत्माएँ अभिन्न हैं।' किसी यूरोपियन के इस तरीके से नमस्कार करने से हिन्दू लोग बड़े प्रसन्न होते हैं, क्योंकि ऐसा विरले ही हुआ करता है। यूरोपियनों के यहाँ हाथ मिलाने का जो अर्थ है वही तात्पर्य हिन्दुओं के यहाँ नमस्कार करने का है। मैं हिन्दुओं से उनका आत्मीय बनकर मिलना चाहता था। अतः जहाँ तक मुझे मालूम था मैं हिन्दुओं के आचार और रस्म-रिवाज के अनुकूल चलने की चेष्टा करता था। इसका तात्पर्य यह कभी नहीं था कि मैं भी हिंदु-

स्तानी बन जाना चाहता था। मेरा यही मतलब था कि मैं उनसे ठीक वैसा ही सलूक करूँ जैसा कि उनसे मैं स्वयम् चाहता था।

ब्रह्म ने मेरे साथ बड़े कमरे में प्रवेश किया और वे पालथी मार कर ज़मीन पर बैठ गये। मैंने उनसे पूछा—"आप सोफ़े पर क्यों नहीं बैठते? उस पर तो बड़ा आराम रहेगा।" किन्तु उन्होंने पक्के फ़र्श को ही पसन्द किया।

मैंने उनकी कृपा के लिए धन्यवाद दिया और कुछ नाश्ता करने की प्रार्थना की। उन्होंने मेरा दिया हुआ भोजन ग्रहण किया और भोजन करते समय बराबर मौन बने रहे।

भोजन के बाद मेरी इच्छा हुई कि अपनी राम कहानी उन्हें सुना कर कह दूँ कि मैंने उनके शान्त जीवन में अचानक क्यों दख़ल दिया है। ऐसा कहना मेरे लिए उचित ही था। अतः संक्षेप में मैंने उनसे उन प्रेरक शक्तियों का ज़िक्र किया जिनके कारण मुझे भारत-दर्शन का सौभाग्य प्राप्त हुआ। इसके बाद ब्रह्म ने मुझसे कुछ खिंचे से रहने के अपने ढंग को छोड़ दिया और वे दोस्ताने तौर पर मेरे कंधे पर अपना हाथ रख कर कहने लगे—"मुझे यह सुन कर बड़ी प्रसन्नता हुई है कि पश्चिम में भी तुम्हारे जैसे आदमी रहते हैं। तुम्हारी यात्रा व्यर्थ नहीं होगी क्योंकि तुम बहुत कुछ सीख लोगे। मेरे लिए यह आनन्द का दिन है कि हम दोनों को भाग्य ने मिला दिया। भाई! जो कुछ तुम जानना चाहते हो पूछो। अपनी प्रतिज्ञाओं का उल्लंघन किये बिना जो कुछ बता सकूँगा उतना अवश्य ही बता दूँगा।"

इन शब्दों को सुन कर मेरे जी में जी आ गया। प्रतीत हो रहा था कि मेरे भाग्य जाग रहे हैं। मैंने ब्रह्म से उनके योग मार्ग का स्वरूप, उसका उद्देश्य और इतिहास आदि बताने की प्रार्थना की।

"कौन कह सकता है कि हठयोग, जिसका कि मैंने अध्ययन किया है, कितना प्राचीन है। हमारे गोप्य ग्रंथों में लिखा हुआ है कि भगवान शिव ने घेरण्ड महर्षि के लिए इस योग को प्रकट किया था। उन ऋषिवर ने अनुग्रह

करके इसे मात्स्येन्द्र जी को सिखाया। इस प्रकार हजारों वर्षों की गुरु-शिष्य परम्परा से योग विद्या का क्रम जारी रहा है। लेकिन कितने हजार वर्ष पूर्व इसकी उत्पत्ति हुई, यह न तो हम जानते हैं और न जानने की परवाह ही करते हैं। हमें इतना अवश्य मालूम है कि योग-विद्या सभी अन्य शास्त्रों से प्राचीन है। उस पुराने ज़माने में भी मनुष्य इतना गिरा हुआ था कि देवताओं को उसकी मुक्ति का मार्ग शारीरिक क्रियाओं की साधना के द्वारा बताना पड़ा। सिद्ध-हस्त योगियों को छोड़ कर हठयोग को विरले ही कोई आदमी जानता है। और जो जानता है उसको भी इस विद्या का सच्चा स्वरूप बहुत ही कम समझ में आया होगा। आम लोगों में हठयोग के बारे में बहुत गलत-फ़हमियाँ फैली हैं और उसके विषय में कुछ अजीब धारणा बन गई है। चूँकि इसके तत्व के जानने वाले बहुत ही विरले पाये जाते हैं, सबसे तुच्छ और भ्रान्त सिद्धान्त और रद्दी अभ्यास खुले तौर पर आम लोगों में बिना रोक टोक हठयोग के नाम से चल पड़े हैं। बनारस जाकर देखो, वहाँ एक आदमी रात-दिन नुकीली कीलों के तख्तों पर लेटा दिखाई देगा। दूसरी जगह एक ऐसा व्यक्ति मिलेगा जो एक हाथ को हमेशा ही ऊपर उठाये रहता है; यहाँ तक कि उसकी मांस-पेशियाँ सूख गई हों और उसके नख बहुत ही लम्बे हो गये हों। तुमको लोग बतायेंगे कि ये सभी हठ-योगी हैं। लेकिन यह बात झूठ है। ऐसे लोगों के कारण हठयोग की उत्तमता पर धब्बा आ गया है। इनके लिए हमें शरमिन्दा होना पड़ता है। आम लोगों को भुलावा देने के लिए इस प्रकार शरीर को यंत्रणा देना हठयोग का उद्देश्य ही नहीं है। ये मूर्ख जो अपने शरीर को दुःख देते हैं भ्रम में पड़े हुए हैं। ऐसे लोग किसी मित्र से या जनश्रुति से थोड़े बहुत हठयोग के अभ्यास सीख जाते हैं और शरीर को खूब ही यंत्रणा देने में बाज़ी मार लेते हैं। बस, इतने से ही वे तृप्त हो जाते हैं। चूँकि उनको हठयोग के सच्चे उद्देश्य और सिद्धान्तों का परिचय नहीं है वे इन अभ्यासों को बहुत ही विरूप बना देते हैं और अनुचित रूप से दीर्घ काल तक इन्हीं में रत रहते हैं। तब भी साधारण जनता ऐसे मूर्खों की बड़ी इज्ज़त करती है और उन पर खूब ही पैसे लुटाती है।"

मैंने बात काटते हुए कहा—"तो इसमें उनका दोष ही क्या है ? सच्चे योगी तो अपने को प्रकट नहीं करते और अपने अमूल्य विज्ञान को छिपाए रखते हैं। ऐसी सूरत में ग़लतफ़हमियाँ अवश्य ही फैलेंगी।"

ब्रह्म ने अपने कंधे ऊँचे किये। उनके मुँह पर घृणा की एक झलक प्रकट हुई। वे बोले :

"क्या राजा-रईस अपने ज़ेवर सभी के देखने के लिए खुली सड़क पर छोड़ जाते हैं ? क्या वे अपने अमूल्य रत्नों को महलों के तहख़ानों में बड़ी हिफ़ाज़त से छिपाते नहीं हैं ? हमारा योग विज्ञान एक दुर्लभ रत्न है। उसके समान कोई प्राप्य रत्न मनुष्य के लिए नहीं है। क्या ऐसे जौहर को किसी ऐरे-गैरे के वास्ते आम सड़क पर फेंक दें ? जिसको यह अमूल्य धन पाने की लालसा हो, वह उसके लिए प्राणपण से खोज करे; यही योग को समझने का एकमात्र और सही मार्ग है। बार बार हमारे ग्रंथ इस अमूल्य धन को गुप्त रखने की ताकीद करते हैं। हमारे आचार्य लोग ऐसे लोगों को, जो वर्षों तक परीक्षा किये जाने पर खरे निकलें, इस मार्ग के सच्चे मर्म को बता देते हैं। हमारा योग अन्य सभी योग पद्धतियों से अधिक रहस्यपूर्ण है। इसके मार्ग में ख़तरनाक जोखिमें हैं और वे जोखिमें केवल साधकों के लिए ही नहीं अन्य लोगों के लिए भी ख़तरनाक हैं। क्या तुम यह समझते हो कि उसके गूढ़ रहस्य मैं तुमको ही बता सकता हूँ ? नहीं। मैं उसकी प्रारम्भिक और स्थूल बातें ही तुम्हें बता सकता हूँ और वह भी बहुत ही सावधानी के साथ।

"अच्छा ! समझा।"

"लेकिन हमारे इस विज्ञान का एक पहलू है जिसके बारे में मैं तुम से साफ़ साफ़ बात कर सकता हूँ। यह वह विभाग है जिससे साधना प्रारम्भ करने वाले अपने विभिन्न अवयवों को मज़बूत करते हैं और जिससे उनकी संकल्प शक्ति पक्की बनती है। इसके बाद ही वे सच्चे योग के कठिन अभ्यासों का प्रयोग करने योग्य हो सकेंगे।"

"यह तो यूरोपियनों के लिए बड़ा ही रोचक विषय होगा।"

"शरीर के भिन्न भिन्न अवयवों को दृढ़ बनाने के लिए हमारे यहाँ २० से कुछ अधिक अभ्यास हैं। उनसे कुछ बीमारियाँ रोकी और दूर भी की जा सकती हैं। इनमें कुछ मुद्राएँ हैं जिनसे मुख्य नाड़ी-चक्रों पर अधिक दबाव पड़ता है। फलतः ऐसे कुछ अवयव जो अपना काम ठीक ठीक न कर रहे हों मदद पा कर ठीक और चंगे हो जावेंगे।"

"आप ओषधि इस्तेमाल करते हैं?"

"हाँ, यदि उनकी आवश्यकता हो। ऐसी ओषधियाँ शुक्ल पक्ष में उखाड़ी जाती हैं। शरीर को स्वस्थ रखना पहला कर्तव्य है। इसके वास्ते चार खास तरीके के अभ्यास सिखाये जाते हैं। सबसे पहले नाड़ियों को शान्त करने के लिए शरीर को आराम देना पड़ता है। आराम देने की एक खास कला है। इसके लिए चार अनुकूल और उपयोगी अभ्यास हैं। स्वस्थ जानवरों के शरीर को ढीला करने के ढंग को गौर से देखने पर, चार अभ्यासों का आविष्कार किया गया था। उनसे हर एक अवयव को आराम पहुँचा सकते हैं। फिर हम अपने शरीर को भीतर से साफ़ करते हैं। इसके लिए भी कुछ विशेष उपाय हैं जो तुम्हें विचित्र मालूम होंगे, लेकिन उनका बड़ा ही अच्छा परिणाम होता है। सबसे अन्त में प्राणायाम साधना सिखाया जाता है।"

मैंने कुछ अभ्यास देखने की इच्छा प्रकट की।

ब्रह्म मुस्करा पड़े। बोले :

"अभी मैं जो तुमको दिखाने जा रहा हूँ उसमें कोई गोपनीय बात नहीं है। सबसे पहले आराम पहुँचाने की कला को ही लीजिए। इसके बारे में बिल्ली को देख कर हम कुछ सीख सकते हैं। मेरे गुरुदेव एक बिल्ली को चेलों के बीच में छोड़ा करते थे और हम लोगों से कह देते थे कि दोपहर की धूप लगने पर बिल्ली जब सोने लगे तो उसकी चेष्टाओं को गौर से देखो। वे कहते थे कि चूहों के बिल के सामने बिल्ली किस प्रकार अपने को सिकोड़ लेती है इसे ध्यानपूर्वक देखो। उनका कहना था कि आराम करने का

उत्तम ढंग बिल्ली से बढ़ कर दूसरा कोई नहीं सिखा सकता। बिल्ली जानती है कि अपनी शक्ति को पूर्णरूप से संचित रखना चाहिए। तुम लोग सोचते हो कि तुम आराम करना खूब जानते हो, लेकिन असलियत में यह बात ठीक नहीं है। तुम लोग थोड़ी देर तक कुर्सी पर बैठते हो, फिर उसी कुर्सी में हिलने डुलने लगते हो; कभी किसी पैर को सिकोड़ लिया, कभी किसी को, अब एक हाथ फैला दिया, फिर थोड़ी ही देर में उसे दूसरे ढंग से रख लिया। संक्षेप में बात यह है कि किसी भी तरीके से एक-आध घंटे तक हिले डुले बिना तुम लोग रह नहीं सकते। हाँ, यह सच है तुम कुर्सी से उठते नहीं हो और बाहर से देखने पर मालूम होगा कि तुम आराम कर रहे हो। लेकिन जानते हो तुम्हारे मन में एक के बाद एक करके विचारों की धारा बहती है। इसी को तुम लोग आराम करना कहते हो? क्या यह सचल रहने का एक दूसरा ढंग ही नहीं है?"

"यह मुझे कभी नहीं सूझा। यह मेरे लिए बिलकुल नई बात है।"

"जानवरों को आराम करने का तरीका भली प्रकार मालूम है। लेकिन बहुत ही थोड़े मनुष्यों को इसका ज्ञान है। इसका कारण यह है कि जानवर प्राकृतिक प्रेरणा के अनुकूल चलते हैं और मनुष्य अपनी बुद्धि तथा विचारों के अनुकूल। चूँकि प्रायः मनुष्यों का अपने ही विचारों पर अधिकार नहीं रहता, उन विचारों के बुरे परिणाम उनके शरीर और नाड़ियों में प्रकट होने लगते हैं। अतः सच्चा आराम किस चिड़िया का नाम है वे शायद ही जानते हैं।

"तब हमें आराम करने का कौन सा ढंग अपनाना चाहिए?"

"सब से पहले तुम्हें भारतीयों के बैठने का तरीका अख्तियार करना होगा। तुम्हारे ठंडे देशों में कुर्सियों का भले ही उपयोग हो तो हो, पर योगाभ्यास करने की योग्यता कमाने की यदि तुम्हारी इच्छा हो तो अभ्यास के समय कुर्सियों को दूर रखने की चेष्टा करनी होगी। बैठने के हमारे तरीके में सचमुच बड़ा सुख होता है। जब हम काम-काज से या चल-फिर कर थक

जाते हैं, कुछ देर तक आसन मार कर बैठने पर सारे शरीर को सुख मिल जाता है। उसे सीखने की सबसे सुलभ पद्धति यह है कि अपने कमरे को दीवार के पास एक आसन बिछा लो। इस पर जैसे तुम्हें अधिक से अधिक आराम मिले बैठ जाओ और दीवार से पीठ लगाओ। फिर अपने पैरों को भीतर की ओर घुटनों के पास मोड़ लो ताकि एक पैर दूसरे पर आ जाय। ख्याल रहे कि ऐसा करने में माँस-पेशियों पर किसी प्रकार का अनुचित दबाव न पड़े। अतः पहला अभ्यास यही है कि इस प्रकार बैठ कर अपने शरीर को अचल रक्खो। हाँ धीरे धीरे साँस लेने की चेष्टा तो जारी ही रहेगी। इस आसन से बैठने पर तुम्हें यह प्रतिज्ञा करनी होगी कि अपने सारे विचारों को लौकिक बातों से फेर लो। बेहतर है कि किसी सुन्दर वस्तु, तसवीर या फूल का ध्यान करो।"

मैंने आरामकुर्सी छोड़ दी और ज़मीन पर बैठ कर ब्रह्म के कहे हुए आसन के अभ्यास में लग गया। यह आसन उसी ढंग का है जैसे कि पुराने ज़माने में दर्ज़ी लोग अपना काम करते समय बैठते थे।

ब्रह्म ने कहा—"तुम तो इसे बहुत ही सहज में कर लेते हो। औरों को बड़ी दिक्कत होगी। और यूरोपियनों को ऐसे बैठने का अभ्यास ही कहाँ है? हाँ तुमसे एक गलती अवश्य हुई है। देखो, अपनी रीढ़ को सीधा रक्खो। अब दूसरा आसन दिखाऊँ?"

ब्रह्म अपने पाँवों को एक के ऊपर एक पहले जैसे रख कर धीरे धीरे घुटनों को ठुड्डी की ओर उठाने लगे। इससे उनके पैर कमर से कुछ ऊपर उठ गये। इसके बाद उन्होंने अपने हाथों से अपने घुटनों को लपेट लिया। वे फिर बोले :

"देर तक खड़े रहने के बाद यह आसन करने से अधिक सुख मिलेगा। ध्यान रहे, शरीर का अधिक भार आसन पर ही डाला जाय। जब कभी तुम्हें थकावट हो इस आसन का कुछ मिनट तक अभ्यास कर सकते हो। इस आसन से कुछ खास नाड़ी चक्रों को काफ़ी शान्ति मिलेगी।"

"यह तो बहुत सरल है।"

"आराम करने की विद्या सीखने में किसी जटिल बात की कोई आवश्यकता नहीं है। सच है, जो अभ्यास सब से अधिक सरल हो उसी से सब से अधिक लाभ होगा। अपनी पीठ के बल, चित् लेट जाओ, पाँव पास पास पसार दो और अंगूठों को बाहर की ओर फेर लो, अपने हाथों को फैला कर बदन के बगल में लगा लो, हर एक मांस-पेशी को, रग-रग को ढीला कर लो, आँखें बन्द कर लेना और शरीर का सारा भार पृथ्वी पर डालना। यह अभ्यास चारपाई पर लेट कर नहीं किया जा सकता क्योंकि खास कर रीढ़ को समान रूप से सीधा रखना पड़ता है। ज़मीन पर एक कम्बल बिछा कर यह आसन करना ठीक होगा। इस आसन में प्रकृति की शान्तिदायिनी शक्तियाँ खिल उठेंगी और शान्ति पहुँचायेंगी। इसको शव आसन कहते हैं। अभ्यास करने पर इनमें से किसी भी आसन को एक घंटे तक यदि चाहो तो साध सकते हो। इनसे रगों और स्नायुओं का तनाव दूर हो जायगा और शरीर में प्रसन्नता विराजेगी, मन को शान्त करने से पहले शरीर की मांस-पेशियों को शान्त और प्रसन्न करने की बड़ी ज़रूरत है।"

"आपके ये अभ्यास किसी न किसी प्रकार शान्त हो कर बैठना मात्र ही तो हैं ?"

"इसका क्या कम मूल्य है ? तुम पश्चिमी लोग सदैव सक्रिय रहने पर बहुत ज़ोर देते हो। पर क्या आराम तिरस्कार करने के योग्य वस्तु है ? शान्त और प्रसन्न नाड़ियों का कोई महत्व ही नहीं है ? शान्ति और आराम योगाभ्यास के श्रीगणेश हैं। लेकिन यह केवल हमारे लिए ही आवश्यक हो सो बात नहीं, सारी दुनिया को इसी की आवश्यकता है।"

ब्रह्म के ये वाक्य अर्थ रहित नहीं थे। वे बोले—"आज के लिए इतना पर्याप्त है। मुझे अब जाना है।"

मैंने उनको बहुत धन्यवाद दिये और प्रार्थना की कि वे मेरे ऊपर और अनुग्रह करें।

उन्होंने जवाब दिया—"कल सुबह तुम मुझ से नदी के किनारे मिल सकते हो।"

अपना सफ़ेद दुशाला कंधों पर डाल कर उन्होंने हाथ जोड़ कर प्रणाम किया और चले गये।

उनके साथ अपनी दिलचस्प गुफ्तगू, जिसे उन्होंने इतनी जल्दी खतम कर डाला था, पर मनन करने के लिए मैं अकेला ही रह गया।

× × ×

मैंने ब्रह्म सुखानन्द जी से कई बार भेंट की। उनके आदेशानुसार मैं सुबह टहलने के समय उनके साथ हो लेता। जब मैं उनको फाँस लेता था तो वे शाम के वक्त मेरे यहाँ आ जाते। शाम की ये बैठकें मेरे लिए और मेरी खोज के लिए अत्यन्त लाभदायक सिद्ध हुईं क्योंकि उस समय जब कि चंद्रमा की चाँदनी चारों ओर छिटक जाती थी, दिन की धूप के समय की अपेक्षा अधिक तत्परता के साथ वे अपने रहस्य-ज्ञान का खजाना लुटाते थे।

ज़रा सी पूँछ-ताँछ करने पर मेरे मन की एक समस्या हल हो गई जो मुझे चिन्तित किए हुए थी। मेरी यह हमेशा की धारणा थी कि हिन्दू लोग गेहुँआँ रंग के होते हैं। लेकिन ब्रह्म का शरीर क्यों हबशियों जैसे काले रंग का है?

इसका यही कारण है कि ब्रह्म हिन्दुस्तान के आदिम निवासियों की सन्तान हैं। हजारों वर्ष पूर्व भारतवर्ष के पश्चिमोत्तर प्रान्तों में से हो कर आर्यों के, जिन्होंने कि भारत पर सब से पहले आक्रमण किया था, झुंड देश पर टूट पड़े। वहाँ देशीय द्रविड़ लोगों से उनको टक्कर लेनी पड़ी। अन्त में आर्यों ने द्रविड़ों को हरा कर भगा दिया। द्रविड़ लोगों ने पराजित होकर दक्षिण की राह ली। आज भी उन लोगों की एक अलग ही जाति है। तिस पर भी उन्होंने आर्यों के धर्म को अपना लिया है। इस देश की झुलसाने वाली गरम धूप के कारण उनके शरीर का रंग एकदम काला पड़ गया। इसके अलावा अस्थियों की परीक्षा के आधार पर वैज्ञानिक अनुमान करते हैं

कि द्रविड़ लोगों की उत्पत्ति अफ्रीका की किसी जाति से हुई थी। अपनी उसी पुरानी रस्म के अनुसार द्रविड़ लोग अब भी लम्बी शिखा रखते हैं और अपनी पुरानी अस्पष्ट उच्चारण वाली भाषाएं, जिनमें तामिल सबसे प्रधान है, बोलते हैं।

ब्रह्म ने दावे के साथ कहा कि आर्यों ने द्रविड़ों से ही और कई चीज़ों की भाँति योग-विज्ञान भी सीखा था। लेकिन जब मैंने कुछ विद्वानों से इस बात का उल्लेख किया तो उन्होंने इस राय को एकदम भ्रान्त कहा। अतः योग-विज्ञान की उत्पत्ति के बारे में मैं और अधिक न लिख कर इसे यहीं छोड़ देना उचित समझता हूँ।

मैं योग और शारीरिक व्यायाम के विषय पर कोई ग्रंथ लिखने नहीं बैठा हूँ। अतः मैं कुछ अभ्यासों का ही ज़िक्र करूँगा जो हठयोग में बहुत मुख्य हैं। ब्रह्म ने जो बीसों आसन मुझे दिखाये थे वे बहुत ही विचित्र और यूरोपियनों की दृष्टि में या तो परिहासपूर्ण या एकदम असम्भव या दोनों प्रकार के जँचेंगे। इनमें शरीर के अवयवों को बहुत ही टेढ़ा-मेढ़ा करना पड़ता है। ब्रह्म को इन अभ्यासों का प्रदर्शन करते हुए जब मैंने देखा तो मुझे साफ़ साफ़ प्रकट हुआ कि हठयोग बड़ा ही कठिन है। मैंने ब्रह्म से प्रश्न किया :

"आपके हठयोग में ऐसे कितने अभ्यास हैं ?"

"हठयोग में ८४ आसन हैं। लेकिन मुझे तो अभी ६४ ही आसन मालूम हैं।" बोलते बोलते उन्होंने एक नवीन आसन, जो उन ६४ में से एक था, धारण किया और उसमें उन्हें उतना ही आराम था जितना कि मुझे अपनी आराम-कुर्सी में। उन्होंने मुझसे कहा कि यह आसन उनको सबसे अधिक प्रिय है। यह उतना कठिन न था और कष्टप्रद तो नहीं मालूम होता था। उनका बायाँ पाँव जंघा से लगा था और दाहिना पाँव मुड़कर नीचे रक्खा था जिसपर उनके शरीर का समस्त भार सधा था।

मैंने पूछा—"इस आसन का क्या प्रयोजन है ?"

"इस आसन में बना रह कर यदि योगी एक विशेष प्रकार का प्राणायाम करे तो उसको चिर-यौवन प्राप्त होगा।"

"वह प्राणायाम किस प्रकार का है ?"

"मुझे यह बतलाने की अनुमति नहीं है।"

"इन समस्त आसनों के कौन से प्रयोजन हैं ?"

"कुछ नियत समय तक एक ही आसन में बैठे या खड़े रहना, केवल इतना ही तुम्हारी नजर में क्या कुछ भी महत्त्व नहीं रखता ? यदि तुम्हें सफलता पानी है तो इन आसनों को साधे हुए तुम्हें अपने ध्यान को एकाग्र करना होगा ताकि तुम्हारे भीतर जो प्रसुप्त शक्तियाँ हैं वे जाग जावें। इन शक्तियों का सम्बन्ध प्रकृति की गुप्त महिमाओं से है। अतएव जब तक प्राणायाम के अभ्यासों का उपदेश प्राप्त न हो तब तक उन शक्तियों का पूरा उद्‌बोध नहीं किया जाता क्योंकि प्राण की भी बड़ी गम्भीर महिमा है। यद्यपि ऐसी शक्तियों को जगाना ही हमारे योग का प्रधान उद्देश्य है तो भी तुम्हें इस बात का स्मरण रखना चाहिए कि लगभग २० ऐसे भी अभ्यास हैं जो शरीर की बीमारियों को दूर करने और स्वास्थ्य की रक्षा करने में बड़ी मदद पहुँचाते हैं। कुछ ऐसे भी अभ्यास हैं जिनसे शरीर के कई प्रकार के मल और अशुद्धियाँ दूर हो जाती हैं। क्या ये कम प्रयोजन हैं ? अन्य अभ्यासों की सहायता से हम अपने मन और आत्मा को वश में कर लेते हैं क्योंकि इसमें कोई सन्देह नहीं है कि जैसे मन और विचार का शरीर पर प्रभाव पड़ता है उसी भाँति से शरीर का भी मन और विचार पर प्रभाव पड़ता ही है। योग के उच्च कोटि के अभ्यास करते समय, जब कि घंटों तक योगी ध्यान में डूबा रहता है, उचित आसनों से शरीर स्थिर रहकर मन को विक्षिप्त होने से केवल बचाता ही नहीं है बल्कि मन को उसके यत्नों में मदद भी पहुँचाता है। इन सबके अतिरिक्त अनवरत जो इन आसनों का अभ्यास करता रहता है उसकी संकल्प शक्ति बेहद बढ़ जाती है। ये सभी बातें हमारे योग मार्ग में कैसा महत्त्व रखती हैं यह तुम सहज ही समझ गये होंगे।"

"तब भी पैरों तथा शरीर के अन्य अवयवों को इतना टेढ़ा मेढ़ा करने की कौन सी ज़रूरत है?"

"सारे बदन में कई नाड़ी-चक्र बिखरे पड़े हैं। हर एक आसन का एक न एक नाड़ी-चक्र पर प्रभाव पड़ता है। नाड़ियों के ज़रिये हम अपने शरीर के अन्य अवयवों और मानसिक विचारों पर अधिकार पा सकते हैं। जिन नाड़ी-चक्रों पर हम और किसी प्रकार से दबाव नहीं डाल सकते, उनपर अवयवों के टेढ़े-मेढ़े करने से ज़ोर पड़ जाता है।"

"अब समझा।"

इस योग-व्यायाम का मूल अर्थ अब मेरे मन पर साफ़ साफ़ अंकित होने लगा। यूरोपीय और अमरीकन व्यायाम-पद्धतियों के मूल सिद्धान्तों के साथ इसकी तुलना बड़ी दिलचस्प मालूम पड़ने लगी। मैंने ब्रह्म से इन पाश्चात्य व्यायाम-पद्धतियों का उल्लेख किया।

"मैं इन बातों को नहीं जानता। किन्तु मैंने गोरे सिपाहियों को मद्रास के पास कसरत करते देखा है। उनको गौर से देखने पर शिक्षकों का आशय मुझ पर प्रकट हो गया। उनका प्रधान उद्देश्य मांस-पेशियों को दृढ़ बनाना मालूम हुआ, क्योंकि पाश्चात्य लोगों के अच्छे से अच्छे गुणों का प्रधान महत्त्व शारीरिक स्फूर्ति और सक्रियता ही है। यही वजह है कि तुम लोग बड़े वेग के साथ अपने अवयवों से बार बार व्यायाम कराते हो। तुम अपनी शक्ति का बड़े ज़ोर के साथ व्यय करते हो ताकि उसके बदले में तुम्हारी मांस-पेशियाँ दृढ़ हो जायँ और तुम्हारा बल और अधिक बढ़े। बेशक ठंडे देशों के लिए इस प्रकार का व्यायाम उत्तम है।"

"आपकी समझ से दोनों मार्गों में क्या प्रधान अन्तर है?"

"हमारे योगाभ्यास में आसन मुद्राएँ ही प्रधान हैं। एक बार आसन ग्रहण करने पर फिर हिलने तक की आवश्यकता नहीं होती। गति-प्रधान और सचल रहने के लिए और अधिक शक्ति चाहने के बदले हम अपनी सहन शक्ति को बढ़ाना चाहते हैं। यद्यपि स्नायुओं को और मज़बूत करने

से अवश्य ही लाभ होता है, तब भी हमारे विचार से उनके पीछे जो संचित शक्ति होती है उसी का अधिक महत्व है। उदाहरण के लिए यदि तुम से यह कहा जाय कि एक विशेष प्रकार से सर के बल खड़े होने से सारा मस्तिष्क रक्त से धुल जायगा और नाड़ियाँ शान्त होंगी और कुछ कमज़ोरियाँ भी दूर होंगी तो तुम पश्चिमी लोग एक क्षण में उसको कर डालोगे और बार बार बड़े वेग के साथ उसी को दुहराओगे। इस ढङ्ग से जिन मांस-पेशियों से काम लेना पड़ता है वे तो ज़रूर ही बलिष्ठ हो जायँगी लेकिन अपने ही ढंग से इसी अभ्यास को करने वाले योगी को जो लाभ प्राप्त होता है वह तुम को शायद ही नसीब होगा।"

"वह लाभ कौन सा है?"

"योगी उसी अभ्यास को बड़ी शान्ति के साथ, दृढ़ संकल्प से करेगा और उससे जहाँ तक बन पड़ेगा कुछ मिनटों तक आसन स्थिर रखने की चेष्टा करेगा। अच्छा, मैं तुमको सर्वाङ्ग आसन तो दिखा दूँ।"

यह कह कर ब्रह्म ने सर्वाङ्ग आसन का तरीका दिखा दिया। पाँच मिनट तक इसी आसन में रह कर फिर ब्रह्म ने उस आसन से होने वाले लाभ बताये। बोले :

"इस आसन से रक्त अपने ही दबाव के कारण कुछ ही मिनटों के अन्दर मस्तिष्क में आजावेगा। साधारणतया दिल के धड़कने से, उसकी गति के दबाव से रक्त ऊपर की ओर जाता है। इन दोनों मार्गों में अन्तर यही है कि यह आसन करने पर मस्तिष्क और नाड़ियाँ प्रसन्न और शान्त होंगी। दिमागी काम करने वाले विद्यार्थियों को दिमाग के थकने पर, चन्द मिनट तक यह आसन करने से बड़ी ही शान्ति और आराम मिलता है। किन्तु केवल यही उसका एकमात्र गुण नहीं है। जननेन्द्रियों को यह भी आसन दृढ़ बना देता है। लेकिन ये सभी लाभ तभी मिलेंगे जब सर्वाङ्ग आसन हमारे निर्धारित ढङ्ग से किया जाय न कि फुर्ती से जिसे पाश्चात्य लोगों में बहुत महत्व दिया जाता है।"

"यदि मैंने समझने में भूल नहीं की है तो आप का यही कहना है कि पूर्वीय पद्धति में शरीर सम और अचल रहता है जब कि पश्चिमीय तरीकों से शरीर में भारी उथल-पुथल हो जाती है।"

"हाँ, यही मेरा आशय है।"

ब्रह्म ने जो विभिन्न आसन दिखलाए उनमें से एक और अभ्यास को मैंने पसन्द किया क्योंकि यूरोपियनों के लिए कुछ शान्ति और तत्परता से काम लेने पर, वह बहुत आसान ठहरेगा और जल्द ही सिद्ध हो जायगा।

ब्रह्म ने मुझे सचेत करते हुए कहा—"एकबारगी इस आसन को जमा लेने की कोशिश मत करना। धीरे धीरे अपने घुटनों को माथे से लगाने का अभ्यास करना चाहिए। इस आसन के अभ्यास में सफलता प्राप्त होने में यदि कुछ हफ़्ते भी लग जायँ तो कोई हर्ज नहीं है। एक बार तुमने इस आसन को सिद्ध कर लिया तो फिर समझ लेना कि बरसों तक यह सिद्ध बना रहेगा।"

मुझको बतलाया गया कि इस आसन के अभ्यास से रीढ़ सीधी हो जायगी और उसकी कमज़ोरी के कारण होने वाली बीमारियाँ दूर हो जायँगी और शरीर में रक्त के बहाव में कई अद्‌भुत परिवर्तन दिखाई देंगे।

ब्रह्म ने फिर एक अन्य आसन का प्रदर्शन किया। घुटनों के पास अपने पैरों को घुमा कर उन्हें पीछे की ओर कर लिया जिससे दोनों एड़ियाँ नितम्ब में लग गईं। फिर वे अपने बदन को पीछे की ओर झुकाते झुकाते ज़मीन पर लेट गये जिससे उनके कंधे ज़मीन पर लग गये। अपने हाथों को फिर अपने सिर के तले एक के ऊपर दूसरा कर दिया और उन पर अपना सिर रख लिया। इस सुन्दर आसन पर वे चन्द मिनट तक रहे। फिर उठ कर उन्होंने मुझको बताया कि इस अभ्यास से कंठ और कंधों तथा पाँवों की नाड़ियों को बहुत ही लाभ पहुँचता है।

साधारणतया अंग्रेज़ों की प्रायः यह धारणा होती है कि औसत भारतीय झुलसाने वाली धूप और पौष्टिक भोजन के अभाव के कारण बहुत ही कमज़ोर

रहता है। अतः यह जान कर अँगरेजों को बेहद अचरज होगा कि बहुत ही प्राचीन काल से भारत में इतनी अच्छी तरह सोची हुई देशी व्यायाम की यह पद्धति प्रचलित रही है। यद्यपि आज पश्चिम की व्यायाम-पद्धतियों में इतनी तरक्की हो गई है कि कोई भी उनकी उपयोगिता के बारे में सपने में भी शङ्का नहीं कर सकता तो भी इसका यह अर्थ कदापि नहीं है कि शारीरिक उन्नति, स्वास्थ्य रक्षा और रोग निवारण के बारे में उनका ज्ञान चरम सीमा पर पहुँचा हुआ है। यदि पश्चिम अपनी वैज्ञानिक गवेषणा के ढंग से भारतीय योग-विज्ञान के अस्पष्ट अभ्यासों को किसी हद तक ग्रहण कर ले तो निश्चय ही हमें अपने शरीर-विज्ञान की अधिक पूर्ण जानकारी प्राप्त हो सकती है और हम शायद स्वस्थ जीवन की सीमा को और भी बढ़ा सकेंगे।

फिर भी मुझे यही प्रतीत हुआ कि श्रम और समय की उपयोगिता की दृष्टि से हमें लगभग एक दर्जन आसनों से अधिक की आवश्यकता नहीं है। बाकी जो ७० आसन हैं वे अधिक उत्साही साधकों से ही शायद पूर्णतया सिद्ध हो सकेंगे और वह भी तब जब कि वे इन अभ्यासों को अपनी कुमार अवस्था से ही जब कि अवयव अधिक कड़े नहीं रहते; शुरू कर दें।

ब्रह्म ने स्वयं भी यह बात निम्न शब्दों में स्वीकार की :

"हर दिन बड़ी तत्परता के साथ मैंने इन अभ्यासों को लगातार १२ वर्षों तक साधा है। तब भी मैंने कोई ६४ आसनों को ही सीख पाया है। यह भी खयाल करने की बात है कि मैंने बचपन से ही इनका अभ्यास शुरू कर दिया था क्योंकि उम्र बढ़ने पर इन अभ्यासों को शुरू करने से अङ्गों में बड़ी पीड़ा होती है। वयस्क हो जाने पर हड्डियाँ, मांस-पेशियाँ, आदि कठोर बन जाती हैं और बड़ी कठिनाई और पीड़ा से ही वे फिर काबू में लाई जा सकती हैं। किन्तु इस उम्र में भी निरन्तर अभ्यास से आसन लाभ कितनी सफलता के साथ प्राप्त हो जाता है यह देखकर आश्चर्य होगा।"

मुझे ब्रह्म की बातों में रत्ती भर भी शंका नहीं हुई कि निरन्तर अभ्यास से कई वर्ष में हरएक अवयव काबू में लाया जा सकता है। उन्होंने अपने

बचपन में ही योगाभ्यास शुरू कर दिया था और यह बात कुछ कम महत्त्व की नहीं है। जैसे बचपन से अपना इल्म सीखने वाले ही प्रायः हाथ की सफ़ाई दिखाने वाले सफल नट-बाजीगर बनते हैं ठीक उसी तरह हठयोग में सिद्धि लाभ के लिए यह बहुत ही आवश्यक है कि चढ़ती जवानी में ही, अर्थात् क़रीब २५ वर्ष की अवस्था से पूर्व, योगाभ्यास की शिक्षा प्रारम्भ की जाय। यह बात मेरी समझ में कदापि नहीं आती कि कोई प्रौढ़ यूरोपियन एक दो हड्डी तोड़े बिना इन अभ्यासों का प्रारम्भ ही कैसे कर सकेगा। जब इस बारे में मैंने ब्रह्म से बहस की तो उन्होंने एक अंश में मेरी बात मान ली पर वे ज़िद के साथ अपनी ही बात पर अड़े रहे कि यद्यपि हर एक को नहीं तो कम से कम बहुतों को निरन्तर अभ्यास से सफलता अवश्य प्राप्त होगी। लेकिन वे यह बात ज़रूर मानते हैं कि इस कार्य में यूरोपियनों को अपेक्षाकृत कुछ अधिक कठिनाई होगी।

"हम भारतीय बचपन से ही पालथी मार कर बैठा करते हैं। क्या कोई भी यूरोपियन किसी प्रकार के कष्ट के बिना एक साथ दो घंटे तक इस प्रकार बैठ सकता है ? और तब भी ध्यान देने की बात है कि पालथी मार कर बैठना (पद्मासन) ही अन्य आसनों की प्रारम्भिक क्रिया है। हमारे विचार से पद्मासन सबसे उत्तम है। क्या तुमको वह दिखा दूँ ?"

फिर ब्रह्म ने मुझको वह आसन दिखा दिया जो बुद्धदेव के असंख्य चित्र और मूर्तियों के ज़रिये यूरोपियनों को विदित हो गया है। अपने बदन को एकदम सीधा रखकर वे बैठ गये और फिर अपने दाहिने पैर को मोड़ कर बाँई जंघा से लगा लिया। इसी प्रकार बाँयें पैर को भी मोड़ कर दाहिने पैर के ऊपर से दाहिनी जंघा से लगा दिया। उनकी एड़ी पेट के निचले भाग में लगी हुई थी और पाँवों के तलवे ऊपर की ओर थे। वह आसन बहुत ही मनोज्ञ था। इसमें शरीर बहुत ही समतुलित था। मुझे जान पड़ा कि ऐसे सुन्दर आसन को ज़रूर सीखना चाहिए।

मैंने ब्रह्म का अनुकरण करने की चेष्टा की। मुझे अपने प्रयत्नों के

पुरस्कार में केवल पिंडलियों में सख्त दर्द ही प्राप्त हुआ। मैंने ब्रह्म से शिकायत की कि एक मिनट के लिए भी मुझसे यह आसन नहीं साधा जाता। जब एक अजायबघर में बुद्धदेव की एक पीतल की मूर्ति मैंने देखी थी तब इस पद्मासन में वे कितने सुन्दर और मनोज्ञ मालूम हुए थे! लेकिन अब यहाँ हिन्दुस्तान में उसी आसन का अनुकरण करने पर पैरों को इस प्रकार मोड़ना कितना अस्वाभाविक और दर्दनाक मालूम होने लगा। ब्रह्म मुस्कराते हुए मुझे उत्साह देने लगे पर उससे कुछ भी लाभ नहीं हुआ। मैंने उनसे कहा कि फिर कभी इसका अभ्यास करूँगा।

ब्रह्म ने कहा—"तुम्हारी सन्धियाँ, तुम्हारे अंगों के जोड़ बहुत ही कड़े हैं। भविष्य में अभ्यास करने के पहले, घुटनों और गट्ठों में थोड़ा तेल मल लेना। तुम लोग कुर्सियों पर बैठने के ऐसे आदी हो गये हो, कि इन आसनों में तुम्हारे अंगों पर कुछ जोर अवश्य पड़ेगा। लेकिन हर रोज कुछ न कुछ अभ्यास करते रहोगे तो सारी कठिनाई दूर होगी।"

मुझे इसमें सन्देह है कि मुझसे कभी भी यह आसन साधा जा सकेगा या नहीं।"

"असम्भव शब्द को भूल जाओ। तुम्हें इसमें कुछ अधिक समय अवश्य लगेगा, पर सफलता जरूर मिलेगी। अचानक एक दिन तुम अपने को इसमें सफल पाओगे; एकदम अचानक ही।"*

"इस समय तो यह एक यंत्रणा सा जान पड़ता है।"†

---

* मुझे कहना ही पड़ता है कि बुद्ध की मुद्रा की नकल करने के लालच में मैंने बड़ी कठिनता के साथ, असह्य वेदना को सहते हुए अपने आठ महीनों तक इस आसन का अभ्यास किया और आखिर को मुझे सफलता हाथ लगी। फिर तो मुझे किसी प्रकार की दिक्कत उठानी नहीं पड़ी।

† योग के आसनों के अभ्यास करने वालों को बड़ा ही सतर्क रहना चाहिए क्योंकि इस अभ्यास में कई जोखिमें उठानी पड़ती हैं। मैंने एक सर्जन से इसके बारे में बातें कीं तो उन्होंने कहा कि प्रायः इनसे कई स्नायु या तो टूट जाते हैं या गट्ठे में कोई ऐंठन पड़ जाती है।

"पीड़ा धीरे धीरे कम हो जायगी। यद्यपि पूर्ण सफलता हाथ लगने में बड़ी देरी लगेगी तो भी थोड़े ही समय में ऐसी स्थिति आ जायगी कि तब आसन लगाने में किसी प्रकार की पीड़ा नहीं होगी।"

"लेकिन क्या यह आसन इतनी मेहनत उठाने योग्य है भी?"

"बेशक! पद्मासन की इतनी महत्ता है कि इसको सीखे बिना और आसन सीखने की अनुमति ही नहीं मिलती। चाहे कोई और आसन भले ही न सीखे किन्तु योग को प्रारम्भ करने वाले हर एक साधक को पद्मासन सीखना ही पड़ता है। पहुँचे हुए योगी इसी आसन में रह कर ध्यान किया करते हैं क्योंकि कभी साधक के अनजान में ही, गम्भीर समाधि की नौबत आ जाती है और तब इस आसन में रहने से योगी गिरने से बच जायेगा। हाँ, पहुँचे हुए लोग अपनी इच्छा से समाधि में लीन हो सकते हैं। देखते नहीं हो कि पद्मासन में दोनों पाँव एक दूसरे में बँध से जाते हैं और तब शरीर निश्चल और स्थिर बन जाता है! चंचल और उद्वेग सहित शरीर से मन विक्षिप्त होता है। पर पद्मासन में शरीर काबू में आ जाता है और वह समतुलित हो जाता है। इस आसन में रहने से ध्यान और धारणा अत्यन्त सरल हो जाती हैं। यह भी एक ध्यान देने की बात है कि प्रायः इसी आसन में रह कर हम लोग प्राणायाम किया करते हैं क्योंकि इस आसन और प्राणायाम के मेल से शरीर में प्रसुप्त रहने वाली आध्यात्मिक शक्ति जाग्रत हो जाती है। जब इस अदृश्य शक्ति की ज्वाला प्रज्वलित हो उठती है सारे शरीर का रक्त पुनः प्रसारित होने लगता है और शरीर के मुख्य केन्द्रों को बड़ी तेजी के साथ शक्ति प्राप्त होने लगती है।"

इस कथन से मुझे तृप्त होना पड़ा और आसनों के बारे में हमारी बातचीत समाप्त हुई। इस बीच में ब्रह्म ने शरीर पर अपनी विजय को दरसाने और मुझे प्रोत्साहित करने के लिए तरह तरह के आसन दिखाए थे। इन सब जटिल अभ्यासों को वश में लाने का सब्र ही यूरोपियनों को कब होगा और यूरोपियनों के पास इन सब आसनों की साधना के लिए समय ही कहाँ है?

६

मृत्युंजय योग

ब्रह्म ने यह इच्छा प्रकट की कि मैं उनके यहाँ एक बार जाऊँ। उन्होंने मुझसे कहा कि वे अपने घर के प्रधान भाग में नहीं रहते बल्कि मकान के पिछवाड़े के बगीचे में। वहाँ उन्होंने अपने लिए एक विशाल कमरे के समान झोपड़ी बनवा ली थी ताकि उनकी स्वतंत्रता में किसी प्रकार की बाधा न पहुँचे।

अतः कुछ उत्कंठा के साथ एक दिन शाम के वक्त मैं उनके घर पर पहुँचा। उनका मकान एक कच्ची गली में था और कुछ सुनसान तथा उदासीन सा जान पड़ा। इस पुराने, चूने से पुते मकान के बाहर एक क्षण भर खड़े होकर मैंने ताका। उसकी उभड़ी हुई खिड़कियों को देख कर मध्य-कालीन यूरोप के मकानों की याद आती थी। मकान के भारी और पुराने किवाड़ों को जब मैंने पीछे ढकेला तो एक प्रकार की खड़खड़ाहट की गूँज सारे मकान में फैल गई।

उसके साथ ही एक बूढ़ी, जिसके चेहरे पर माता की स्नेहमयी वात्सल्य हँसी सोह रही थी, दरवाजे पर आई और मुझको देख कर बार बार प्रणाम करने लगी। वह बूढ़ी मुझको राह दिखाती हुई एक अँधेरे मार्ग से ले चली। अन्त में एक रसोई घर को पार करके हम पिछवाड़े के बाग में पहुँच गये।

सब से पहले मेरी नज़र एक विराट पीपल के पेड़ पर पड़ी जिसकी लम्बी शाखाओं की शीतल छाया में एक पुराना कुआँ था। बूढ़ी मुझे कुएँ के दूसरी ओर एक कुटी के पास जहाँ वृक्ष की छाया का कुछ आनन्द मैं ले सकता था, ले चली। बाँस के खम्भों के सहारे वह कुटी खड़ी थी। उसके शहतीर लकड़ी के पतले लट्ठों के थे। ऊपर पुआल का छप्पर पड़ा था।

वह बूढ़ी, जिसका चेहरा ब्रह्म के चेहरे के समान ही काला था, गद्‌गद् स्वर से कुछ तामिल वाक्य बोल उठी। मालूम होता था कि वह कुटी में रहने

वाले किसी व्यक्ति को सम्बोधन करके बोल रही है। किसी की सुरीली आवाज़ ने भीतर से जवाब दिया। दरवाजा धीरे से खुला और ब्रह्म की मूर्ति बाहर आती हुई दिखाई दी। वे बड़े प्रेम के साथ मुझे अपनी साधारण कुटी में ले चले। वे दरवाज़ा बन्द करना भूल गये। बूढ़ी कुछ देर तक मेरी ओर ताकती हुई फाटक पर ही खड़ी रही। उसके चेहरे से अकथनीय आनन्द टपका पड़ता था।

मैंने अपने को एक सादे कमरे में पाया। सामने एक नीचा सोफ़ा दीवार से लगा हुआ था। एक कोने में लकड़ी की एक बेंच पड़ी हुई थी। उस पर कई काग़ज़ बड़े अव्यवस्थित रूप से बिखरे पड़े थे। सुन्दर नकाशीदार पीतल का एक जल-कलश एक डोरी के सहारे शहतीर से लटक रहा था। फर्श पर एक बड़ी चटाई बिछी थी।

ब्रह्म ने ज़मीन की ओर इशारा करते हुए मुझसे कहा—"बैठ जाओ, अफसोस है हमारे यहाँ तुम्हारे लिए कोई कुर्सी नहीं है।"

चटाई पर हम बैठ गए; ब्रह्म, मैं और एक नौजवान विद्यार्थी जो अध्यापन का काम भी करता था। यह नौजवान मेरे लिए दुभाषिए का काम करता था। कुछ देर बाद बूढ़ी चली गई और फिर चाय की बरतन लेकर लौट आई। चटाई ही चाय पीने की मेज़ का काम दे रही थी। उसी पर पीतल की रकाबियों में बिस्कुट, नारंगी और केले रक्खे गये।

यह सुरुचिपूर्ण जलपान करने के पहले ब्रह्म मेरे गले में एक पीले गेंदे की माला पहनाने लगे। मैंने चकित होकर इसका विरोध किया। मुझे अच्छी तरह मालूम था कि हिन्दू लोग बड़े पूज्य व्यक्तियों को ही ऐसी मालाएँ पहना कर आदर करते हैं और मैंने कभी भी अपने को उन बड़ों में नहीं गिना था।

मुस्कराते हुए ब्रह्म बोले—"लेकिन भाई! मेरी बात सुनो; तुम पहले ही यूरोपियन व्यक्ति हो जिसने मेरे यहाँ पधार कर मुझसे मित्रता की है। मुझे अवश्य ही अपना और इस बूढ़ी महिला का आनन्द इस ढंग से तुम्हारा आदर करके प्रकट करना चाहिए।"

तब भी मैंने आपत्ति की, पर उसका कुछ भी असर नहीं हुआ ! मुझे विवश ही वहाँ चटाई पर अपने गले में आदर सूचक गेंदे की माला पहने बैठना पड़ा। मुझे इस बात का ख्याल करके खुशी हुई कि इस अजीब तमाशे को देखकर मेरी हँसी उड़ाने के लिए मेरा कोई यूरोपियन मित्र मेरे निकट नहीं था।

हम लोग थोड़ी देर तक चाय पीकर प्रसन्नता पूर्वक इधर उधर की बातें करते रहे। ब्रह्म ने मुझको बताया कि उन्होंने अपने हाथों से वह कुटी और सारा सामान बनाया था। कोने की बेंच पर जो काग़ज़ पड़े हुए थे उनको देखकर मेरे हौसिले बढ़े और मैंने उनसे प्रार्थना की कि वे उन चीज़ों के वहाँ रहने का कारण कृपा करके बतायें। मुझे दिखाई पड़ा कि वे सारे काग़ज़ गुलाबी रंग के थे और सबके सब हरी स्याही से लिखे गये थे। ब्रह्म ने कुछ काग़ज़ उठाये। उन पर अजीब प्रकार के अक्षर लिखे हुए थे। सहज ही में जाना जा सकता था कि वे अक्षर तामिल भाषा के थे। मेरे साथ जो नौजवान था, उसने इन काग़ज़ों को उठा कर देखा। वह बड़ी मुश्किल से उस लिपि को पढ़ पाता था। अब रही उसको समझने की बात; वह तो पढ़ने से भी अधिक कठिन थी। मेरे साथी युवक ने मुझको बताया कि वे काग़ज़ उच्चकोटि की अप्रचलित तामिल भाषा में लिखे हुए हैं। उसका कहना था कि वह भाषा आजकल की बोलचाल की भाषा नहीं थी। ग्रंथों में भी उसका अब प्रयोग प्रायः नहीं होता। वह प्राचीन तामिल साहित्य की भाषा थी। उसको अब बहुत कम लोग समझ पाते हैं। उसने बताया कि यह बदकिस्मती की बात है कि तामिल दर्शन और उत्तम साहित्य का रत्न-भांडार इसी प्राचीन तामिल में छिपा हुआ है और उसको समझने में आज की जीवित तामिल भाषा के जानने वालों को उससे भी अधिक कठिनाई होती है जो आजकल के साधारण अंग्रेज़ी पढ़े व्यक्ति को मध्यकालीन अंग्रेज़ी साहित्य के समझने में होती है।

ब्रह्म ने कहा—"मैंने इनमें से अधिकांश पत्रों को रात में लिखा है। कुछ मेरे योग की अनुभूतियों की पद्यात्मक रचनाएँ हैं और कुछ लम्बी कवि-

शास्त्रों में मेरे मन ने अपने धर्म का स्रोत खोल दिया है। मेरी इन रचनाओं को ज़ोर से पढ़ने का आनन्द उठाने के लिए कुछ युवक यहाँ प्रायः आया करते हैं और वे अपने को मेरा चेला कहते हैं।"

ब्रह्म ने काग़ज़ों का एक बंडल उठाया जो बहुत ही सुन्दर और सुघड़ मालूम होता था। उसमें गुलाबी रंग के कुछ काग़ज़ थे। उन पर लाल और हरी स्याहियों से कुछ लिखा हुआ था। वे सब एक हरे फ़ीते से बँधे थे! मुस्कराते हुए ब्रह्म ने वह बंडल मेरे हाथों में दिया और कहा—"यह खास-कर तुम्हारे लिए लिखे गये हैं।"

मेरे दुभाषिए ने बताया कि यह ८४ पंक्तियों की एक कविता है। इसके आरम्भ और अन्त में मेरे नाम का उल्लेख था। इससे अधिक मेरा साथी कुछ भी नहीं बता सका। वह कहीं कहीं दो चार शब्दों का अर्थ बता सकता था। उसने कहा कि यह कविता एक प्रकार का व्यक्तिगत संदेश है और ऐसी उत्तम शैली की तामिल में लिखी गई है कि उसका उचित अनुवाद करने की योग्यता उसमें नहीं है। जो हो इस अनपेक्षित पुरस्कार को पाकर मैं बहुत ही खुश हो गया क्योंकि यह योगी के शुभ अनुग्रह का एक स्थूल प्रतीक था।

मेरे आगमन के उपलक्ष्य के सब आडम्बरों के समाप्त होने पर बूढ़ी चली गई और हम लोग कुछ गहरे विषयों पर बातचीत करने लगे। मैंने फिर से प्राणायाम की बात छेड़ दी, जिसका योग-विज्ञान में बड़ा ही महत्व समझा जाता है और जो हमेशा ही बहुत रहस्यमय विषय रहा है। ब्रह्म ने खेद प्रकट किया कि वे अब मेरे सामने योग सम्बन्धी और अधिक अभ्यासों का प्रदर्शन नहीं कर सकते; पर अपने सिद्धान्तों के बारे में कुछ अधिक बताने के लिए वे राज़ी थे। ब्रह्म बोले :

"प्रकृति ने दिन और रात भर में हरएक मनुष्य के लिए २१६०० साँसें निर्धारित की हैं। मनुष्य को रात और दिन में एक सूर्योदय से दूसरे सूर्योदय तक इन साँसों को खर्चना पड़ता है। वेग के साथ तथा आवाज़ के साथ

इन साँसों को खर्चने में, अर्थात् जल्दी जल्दी साँस लेने और हाँफने आदि से, इनका अधिक खर्च होता है और नतीजा यह होता है कि मनुष्य की आयु कम हो जाती है। धीरे धीरे, बड़ी शान्ति के साथ गहरी साँस लेते रहने से इन साँसों के खर्चने में अधिक बचत होती है। अतः मनुष्य दीर्घायु बन जाता है। हरएक साँस की बचत से उसकी पूँजी बढ़ती जाती है। संचित पूँजी से लाभ उठाकर मनुष्य अपने जीवन की सीमा को बढ़ा सकता है। साधारण लोगों के समान योगी लोग उतनी साँसें नहीं लेते। उनको उतनी साँसों की जरूरत भी नहीं होती—लेकिन अफसोस की बात है कि अपनी प्रतिज्ञाओं का उल्लंघन किये बिना इससे अधिक मैं तुम्हें बता नहीं सकता।"

योगी के वचनों की इस आकस्मिक समाप्ति से मेरी उत्सुकता लहर मारने लगी। क्या इतनी सावधानी के साथ रखवाली किये जाने वाले गुप्त ज्ञान-भांडार का कोई मूल्य ही नहीं है? यदि ऐसी ही बात हो तो समझ में आ सकता है कि ये अजीब लोग अपने मार्ग को छिपाये क्यों रखते हैं, और अपने उपदेशों के खज़ाने को मानसिक और आध्यात्मिक अनधिकारियों से क्यों इतना पोशीदा और प्रच्छन्न रखते हैं। क्या सम्भव है कि मैं भी आखिर इन अनधिकारियों में गिना जाकर अपनी सारी खोज के बदले में खोज के श्रम के सिवा और कुछ भी न पाकर इस देश से बिदाई लूँ?

लेकिन ब्रह्म फिर बोल रहे थे—"प्राणों की शक्ति के उन्मीलन और निमीलन की कुंजी क्या हमारे गुरुजनों के पास नहीं है? प्राण और रक्त में कितना निकट सम्बन्ध है वे अच्छी तरह जानते हैं। वे यह भी जानते हैं कि मन की गति प्राण (साँसों) की गति के अनुसार कैसे होती है। उनसे वह मर्म भी छिपा नहीं है जिससे प्राण और विचारों की गतियों के संयमन, नियमन आदि से आत्मा की चेतनता का उद्बोधन किया जा सकता है। सचमुच, शरीर को धारण करने वाली जो सूक्ष्मतम शक्ति है उसकी इस पार्थिव संसार में एक स्थूल अभिव्यक्ति ही प्राण या साँसें हैं। यह शक्ति अदृश्य है। यह शरीर के मुख्य अवयवों में छिपी हुई है। जब यह शक्ति

चली जाती है, साँसें रुक जाती हैं और फलतः मृत्यु हो जाती है। लेकिन प्राणायाम के द्वारा इस अदृश्य शक्ति-लहरी पर कुछ कब्जा कर लेना असम्भव नहीं है। यद्यपि हम लोग अपने शरीर पर पूरा पूरा कब्जा पा लेते हैं—यहाँ तक कि हम अपने हृदय के स्पन्दनों पर भी संयम रखते हैं—परन्तु क्या आप समझते हैं कि हमारे उन बुजुर्गों का ध्यान, जिन्होंने इस योग मार्ग का सर्वप्रथम प्रतिपादन किया था, केवल शरीर और उसकी शक्तियों तक ही सीमित था ?"

प्राचीन योगियों और उनके विचारों तथा उद्देश्यों के बारे में मेरी जो कुछ भी धारणा रही वह तात्कालिक आश्चर्यपूर्ण जिज्ञासा की लहर में दब गई थी।

चकित होकर मैं पूछ बैठा—"क्या आप अपने दिल की धड़कन बन्द कर सकते हैं ?"

बिना किसी प्रकार के घमंड का परिचय दिए उन्होंने बड़ी शान्ति से कहा—"मेरे स्वतंत्र अवयव, दिल, पेट, जिगर और गुर्दे आदि, एक प्रकार से मेरे आज्ञाकारी हो गये हैं।"

"आप उनको अपने आधीन कैसे कर लेते हैं ?"

"कुछ आसन, प्राणायाम और धारणा आदि के एक विशेष तारतम्यपूर्ण अभ्यास से यह सम्भव हो जाता है। किन्तु यह शक्ति तो उच्च कोटि के कुछ योगियों में ही होती है ये अभ्यास इतने कठिन हैं कि बहुत कम लोग उन्हें सफलता के साथ कर पाते हैं। इन अभ्यासों के द्वारा दिल की मांस-पेशियों पर मैंने किसी हद तक अधिकार पाया है। और इन मांस-पेशियों के द्वारा मैंने अपने शरीर के अन्य अवयवों पर भी कब्जा पाने की चेष्टा सफलता के साथ की है।"

"यह तो एक अलौकिक बात मालूम होती है !"

"क्या आप का ऐसा ही विचार है ? आप अपना हाथ मेरे दिल पर रखिए।"

यों कहते हुए ब्रह्म ने एक विचित्र आसन साधा और अपनी आँखें बन्द कर लीं।

मैंने उनकी आज्ञा का पालन किया और यह देखने की प्रतीक्षा करने लगा कि क्या होगा। कुछ मिनट तक ब्रह्म पर्वत के समान अचल थे। फिर उनके दिल की धड़कन धीरे धीरे घटने लगी। मैं चकित था कि वह और भी धीमी होती आती थी। मेरी नसों में एक प्रकार की सनसनी फैल गई। इतने में उनके दिल की धड़कन बिलकुल ही रुक गई। सात सेकेंड तक मैं बड़ी उत्कंठा के साथ दिल की धड़कन को सुनने की प्रतीक्षा करता रहा।

मैंने अपने मन को यह समझाने की चेष्टा की कि मुझे कुछ भ्रम हो गया है पर मेरी नसों की कुछ ऐसी हालत हो गई कि मेरा यह प्रयत्न व्यर्थ हुआ। इस मृतप्राय दशा से लौट कर जैसे जैसे ब्रह्म का हृदय पार्थिव जीव जगत की दशा पर पहुँचने लगा मेरा क्षोभ कुछ कम हुआ और दिल कुछ शान्त हो गया। हृदय स्पंदनों की संख्या क्रमशः बढ़ी और थोड़ी देर में उनका हृदय अपनी पहली हालत को पहुँच गया।

कुछ मिनट और बीतने पर योगी अपनी आत्म-लीनता की अचल दशा से जागे। धीरे धीरे उन्होंने अपनी आँखें खोलीं और पूछा :

"क्या तुमको दिल के स्पंदन के रुकने का पता चला?"

"जी हाँ, एकदम साफ़ साफ़ प्रकट हुआ।" मुझे निश्चय हो गया था कि मैंने कोई स्वप्न नहीं देखा था और न मैं किसी कल्पित भ्रान्ति का ही शिकार हुआ था। मुझे आश्चर्य होने लगा कि ब्रह्म और कौन कौन सी निराली योग की करामातों को दिखा सकते हैं!

मेरे इस मूक विचार के उत्तर के रूप में ब्रह्म ने कहा :

"मेरे गुरुदेव जो करके दिखा सकते हैं उसके सामने यह एकदम तुच्छ है। उनकी किसी धमनी को—किसी नस को—काट डालिए तो भी वे अपने रक्त को बहने से रोक सकते हैं। रक्त के प्रसरण पर उनका कुछ ऐसा ही

अधिकार है। मैं भी अपने रक्त को कुछ कुछ अपने अधिकार में ले आया हूँ पर वैसा तो मुझसे नहीं होता।"

"क्या आप यह अद्भुत बात मुझको दिखा सकते हैं?"

उन्होंने मुझको उनकी कलाई पकड़ कर नब्ज़ पर हाथ रखने के लिए कहा जिसमें रक्त के प्रसार का अच्छी तरह पता चलता रहे। मैंने ऐसा ही किया।

दो तीन मिनट के भीतर ही मुझे मालूम हो गया कि धीरे धीरे नाड़ी की गति धीमी पड़ने लगी। जल्द ही वह पूरे तौर से रुक गई। ब्रह्म ने अपनी नाड़ी की गति रोक ली!

मैंने बड़ी व्यग्रता के साथ नाड़ी के फिर से चलने की इन्तजारी की। एक मिनट बीत गया पर कोई नई बात नहीं हुई। और एक मिनट मैंने बड़ी व्यग्रता के साथ बिताया। तीसरा मिनट भी यों ही चला। चौथे मिनट में आधा समय बीतने पर नाड़ी की गति कुछ कुछ लौटती सी भासने लगी। कुछ देर बाद नाड़ी की पहले की सी गति हो गई।

मैं यों ही बोल उठा—"कैसे अचरज की बात है!"

ब्रह्म ने नम्रता पूर्वक कहा—"कुछ भी तो नहीं।"

मैंने कहा—"आज का दिन अद्भुत मालूम होता है। आप और कुछ करामातें दिखा दीजियेगा!"

ब्रह्म कुछ आगा-पीछा करने लगे।

थोड़ी देर बाद उन्होंने कहा—"अच्छा एक और; फिर आपको सन्तुष्ट हो जाना चाहिए।"

उन्होंने सोच विचार के साथ फ़र्श की ओर ताका और कहा—"मैं साँस को रोक दूँगा।"

मैं सन हो गया। कातरता के साथ पुकार उठा—"तब तो आप मर ही जायँगे।" वे मुस्कराए पर मेरी बात की उन्होंने कुछ भी परवाह न की।

"अच्छा, मेरे नथुनों पर अपनी हथेली धरो तो।"

मैंने कुछ संकोच के साथ उनकी आज्ञा का पालन किया। मेरे हाथ को बार बार उसाँस की गरम हवा चूमने लगी। ब्रह्म ने अपनी आँखें मूँद लीं। उनका बदन मूर्तिवत् अचल हो गया। जान पड़ा कि वे एक प्रकार की समाधि में लीन हो गए हैं। मैं अपनो हथेली को उनकी नाक के नीचे लगा कर इन्तज़ार करने लगा। वे ऐसे स्थिर और अचल बन गये मानो कोई गढ़ी हुई मूर्ति रक्खी हो। बहुत ही धीरे धीरे और बड़ी ही समता के साथ उनकी साँसों की गति मंद होने लगी। अन्त में एकदम रुक गई।

मैंने उनके नथुनों और ओठों की ओर ताका, उनके कंधे और छाती को परख कर देखा; लेकिन एक भी ऐसी बात कहीं भी दिखाई नहीं दी जिससे श्वास-प्रश्वास की गति का पता चल जाय। मुझे मालूम था कि मेरी यह परख पूरी और पर्याप्त न थी। अतः मैंने और भी अच्छी तरह जाँच करके देखना चाहा। लेकिन करूँ क्या? मुझे एक उपाय सूझ गया।

कमरे में कोई आईना तो था नहीं किन्तु उसके बदले एक अच्छी चम-कीली पीतल की छोटी रकाबी मिली। उस रकाबी को मैंने उनके नथुनों के पास रखा लेकिन उसकी चमकीली सतह पर आर्द्रता या नमी का कोई भी निशान नहीं पड़ा।

मेरे लिए यह विश्वास करना असम्भव सा मालूम होता था कि इस सभ्य शहर के एक प्रशान्त सभ्य भवन की एक शान्त कुटी में मुझे एक ऐसी महिमामय बात का पता लग गया है जिसे पाश्चात्य विज्ञान को किसी न किसी दिन, अपनी इच्छा के विरुद्ध हो सही, लाचार होकर स्वीकार करना पड़ेगा। लेकिन क्या करूँ! आँखों के सामने इस बात का दृढ़ और अभ्रान्त प्रमाण उपस्थित था। योग केवल अनुपयोगी और मूल्य रहित गाथा ही नहीं है, वह कुछ मानो रखता है।

जब कुछ देर बाद ब्रह्म योग मुद्रा से जागे तो कुछ थके हुए मालूम पड़े। कुछ श्रमित हँसी के साथ वे बोले—"तुम्हें संतोष हुआ?"

"जी हाँ, जरूरत से ज्यादा। लेकिन आप यह सब करते किस प्रकार हैं इसका कुछ भी पता नहीं लगता !"

"यह बात न बतलाने के लिए मैं प्रतिज्ञाबद्ध हूँ। प्राण-रोध उच्च कोटि के योग के कष्ट-साध्य अभ्यासों में से एक है, उसका साधन शायद यूरोपियनों के लिए भले ही निरर्थक हो, उन्हें यह चाहे मूर्खता ही जान पड़े किन्तु हमारे लिए यह बहुत भारी महत्त्व रखता है।

"लेकिन हमको तो सदैव यही सिखलाया गया है कि प्राण-रोध होने पर मनुष्य जिन्दा नहीं रह सकता। सचमुच यह कथन मूर्खतापूर्ण तो नहीं है ?"

"नहीं, आपकी बात मूर्खतापूर्ण कदापि नहीं है, किन्तु साथ ही यह नितान्त सत्य नहीं है। यदि मैं चाहूँ तो पूरे दो घंटे तक अपने प्राणों का निरोध कर सकता हूँ। मैंने कई बार ऐसा किया भी है। पर तुम देखते हो कि मैं मरा नहीं हूँ।" यह कह कर ब्रह्म मुस्करा उठे।

यदि आप प्रतिज्ञाबद्ध हैं तो उस रहस्य को प्रकट न करें। लेकिन आपके अभ्यासों के जो मूल सिद्धान्त हैं उनका तो कुछ स्पष्टीकरण आप अवश्य कीजिये।"

"बहुत अच्छा; कुछ जानवरों को गौर से देखने पर हमें कुछ बातों का पता चलेगा। इस प्रकार से प्रत्यक्ष उदाहरण दे कर किसी बात का प्रतिपादन करना मेरे गुरुदेव बहुत ही पसन्द करते हैं। बन्दर की अपेक्षा हाथी अधिक मंद गति से साँस लेता है; और वह बन्दर से अधिक काल तक जीवित भी रहता है। कुछ दीर्घकाय साँप कुत्तों की अपेक्षा अधिक धीरे धीरे साँस लेते हैं पर उनकी बड़ी लम्बी आयु होती है। अतः संसार में ऐसे कुछ प्राणी हैं जिनको देखने से यह प्रमाणित होता है कि धीरे धीरे साँस लेने में आयु लम्बी हो सकती है। यदि आपने मेरी बात को यहाँ तक समझा है तो आगे की बात सहज ही समझ में आवेगी। हिमालय में कुछ ऐसे चमगादड़ हैं जो जाड़े के मौसम भर सोते रहते हैं। पहाड़ी गुफाओं में वे हफ्तों तक सोते हुए लटके रहते हैं और इस बीच में एक बार भी साँस नहीं लेते। कभी कभी

हिमालय के रीछ भी जाड़े के मौसिम भर गहरी नींद में पड़े रहते हैं। उनके शरीर लाशों के समान हो जाते हैं। जाड़े में जब कि खाने को कुछ नहीं मिलता, हिमालय की गहरी गुफाओं में वे महीनों तक सोते रहते हैं। यह नींद ऐसी होती है कि उसमें एक बार भी साँस नहीं लेनी पड़ती। यदि ये सब प्राणी साँस लिए बिना जीवित रह सकते हैं तो आदमी भी उसी प्रकार से क्यों नहीं जीवित रह सकता ?"

ब्रह्म की बतायी हुई सभी बातों का वर्णन बड़ा ही रोचक था परन्तु उनको सुन कर योग साधन के महत्त्व के प्रति उतना विश्वास नहीं जमा था जितना कि उनके आसनों तथा साँस रोकने आदि के प्रदर्शन से। परम्परागत तथा सर्वसाधारण में प्रचलित यह विश्वास कि मनुष्य को जीवित रहने के लिए साँस लेना परम आवश्यक है, इस प्रकार के थोड़े समय के प्रदर्शन के आधार पर गलत नहीं कहा जा सकता।

"साँस लेना बन्द करने पर भी जीवन बना रह सकता है इस बात को स्वीकार करना हम यूरोपियनों के लिए अत्यन्त कठिन है।"

ब्रह्म ने सूत्र रूप से इसके उत्तर में कहा—"जीवन हमेशा ही बना रहता है। मरण केवल शरीर का एक धर्म है।"

अविश्वास के साथ मैंने प्रश्न किया—"क्या आपका आशय यह तो नहीं है कि मृत्यु का जीतना भी मनुष्य के लिए सम्भव है ?"

ब्रह्म ने मेरी ओर अनोखे ढंग से देखा और बोले—"सम्भव क्यों नहीं है।"

फिर कुछ देर तक सन्नाटा रहा। तब मेरी ओर तीक्ष्ण परन्तु सौम्य दृष्टि दौड़ाते हुए ब्रह्म ने कहा —"चूँकि तुममें योग साधनों को सिद्ध कर सकने की सम्भावनाएँ दिखाई देती हैं मैं तुमको अपना एक प्राचीन रहस्य बताये देता हूँ। लेकिन इसको बतलाने के पहले तुम्हें प्रतिज्ञा करनी होगी।"

"वह है क्या ?"

"यह कि मैं जिन अभ्यासों को तुम्हें सिखाऊँगा उनको छोड़ कर और किसी प्रकार के प्राणायाम प्रयोगों को सिद्ध करने का प्रयत्न न करोगे।"

"इस शर्त को मैं मानता हूँ।"

"अपनी इस प्रतिज्ञा पर दृढ़ रहना। अच्छा, तुम्हारा अब तक यही विश्वास रहा है कि साँस रोकने से मृत्यु हो जाती है।"

"जी हाँ।"

"तो फिर तुम यह भी स्वीकार करोगे कि एक बार जो हवा साँस के रूप में शरीर के भीतर ली गई हो वह जब तक शरीर में सुरक्षित रहे तब तक तो जीवन बना ही रहेगा?"

"खैर—!"

"हमारा दावा इससे बढ़कर और कुछ नहीं है। हमारा यही कहना है कि प्राणायाम में जो सिद्धहस्त हैं, जो अपनी इच्छा के अनुसार प्राण-रोध कर सकते हैं, वे अपनी जीवन शक्ति के प्रवाह की रक्षा कर लेते हैं। समझे?"

"बात तो ठीक जान पड़ती है।"

"अब किसी ऐसे व्यक्ति का अनुमान करो जो योग में सिद्धहस्त हो, जो अपने प्राणों को भीतर ही भीतर निरोध करके रख सकता हो और वह भी चन्द मिनट के लिए नहीं बल्कि हफ़्तों, महीनों और वर्षों तक। अतः जब आप यह मानते हैं कि जहाँ साँस की हवा है वहाँ प्राण ज़रूर रहता है, तो क्या इससे यह सिद्ध नहीं होता कि मनुष्य के लिए दीर्घ जीवन अत्यन्त सम्भव है।"

मैंने इस तर्क को मौन रहकर स्वीकार किया। इस कथन को असंगत कहकर मैं कैसे टाल सकता था। और यह भी कैसे सम्भव है कि मैं उनकी बातों पर पूर्ण विश्वास कर लेता। इस कथन के सुनने पर मुझे मध्यकालीन यूरोप के कीमियागीरों के थोथे स्वप्नों का स्मरण हो आया जो जीवन को

अमर करने के लिए किसी संजीविनी बूटी की खोज में ही एक एक करके मृत्यु के मुँह का कौर बन गए। यदि ब्रह्म स्वयं भ्रम में नहीं फँसे हैं तो हमें धोखा देने में उनका क्या प्रयोजन हो सकता है! न तो उन्होंने अपनी ओर से मेरा पल्ला पकड़ने का प्रयत्न किया है और न उन्हें अपने चेले बनाने की ही कोई लालसा है।

मुझे एक विचित्र शंका पैदा हुई। क्या ब्रह्म पागल तो नहीं हैं? किन्तु नहीं; प्रायः सभी अन्य बातों में वे अत्यन्त युक्ति-संगत और बुद्धिमान मालूम होते हैं। बेहतर होगा कि उनको भ्रान्त ही समझा जाय। लेकिन मेरी अन्तरात्मा को यह बात भी स्वीकृत नहीं हो रही थी। मैं चकित था।

वे फिर बोले—"क्या मैं आपको विश्वास नहीं दिला सका? क्या आपने उस योगी के विषय में नहीं सुना है जिसको महाराज रणजीत सिंह ने लाहौर में एक तहखाने में बन्द कर दिया था। यह सारी घटना अंग्रेजी फ़ौज के अफ़सरों की उपस्थिति में हुई थी और सिक्खों के आखिरी बादशाह स्वयं भी उसे देख रहे थे। इस जीवित समाधि की छः हफ़्तों तक सिपाहियों ने रखवाली की थी पर आखिर को योगी चंगे और स्वस्थ रूप में अपनी क़ब्र से निकले थे। चाहें तो इसकी सचाई की आप जाँच कर सकते हैं। सुना है कि आपके सरकारी काग़ज़ातों में भी इसका उल्लेख है। उस फ़कीर ने अपने प्राणों पर ग़ज़ब का कब्ज़ा जमा लिया था और वह मनमाने तौर पर मृत्यु से डरे बिना प्राणों का निरोध कर सकता था। साथ ही यह भी याद रखिये कि वह फ़कीर

---

* इस बात की मैंने जाँच की है। यह घटना लाहौर में सन् १८३८ में हुई थी। फ़कीर को क़ब्र में बन्द करते समय सिक्खों के बादशाह रणजीत सिंह, सर क्लाड वेड, डाक्टर हानिगबरगर और अन्य कई सज्जन मौजूद थे। रात दिन समाधि पर सिक्ख सिपाहियों का पहरा बना रहता था ताकि कोई धोखा न हो सके। ४० दिन के बाद क़ब्र खोदी गई थी। कहने की ज़रूरत नहीं है कि फ़कीर जीवित था। इसका विशेष विवरण कलकत्ते में सुरक्षित सरकारी काग़ज़ातों में मिलेगा।

योग मार्ग में पहुँचा हुआ सिद्ध न था क्योंकि उससे परिचित एक बूढ़े आदमी से मुझे पता चला था कि उस फ़क़ीर का चरित्र अच्छा नहीं था। उस फ़क़ीर का नाम हरिदास था और वह उत्तर भारत का निवासी था। यदि उस फ़क़ीर को ऐसी शक्ति प्राप्त हो गई थी कि वह हवा से एकदम खाली जगह में उतने दिन जीवित रहकर, साँस लिये बिना गड़ा रह सका तब योग मार्ग में पहुँचे हुए सच्चे महात्माओं के लिए, जो छिपकर अभ्यास करते हैं और धन का लोभ जिनके दिल को छू नहीं गया है, इससे भी कहीं अधिक साधना प्राप्त होने में आश्चर्य ही क्या है?"

इस बातचीत के बाद सारगर्भित सन्नाटा छा गया।

वे फिर बोले—"हम योग मार्ग से और भी कई अद्भुत शक्तियों पर कब्ज़ा पा सकते हैं। लेकिन इस गये गुज़रे ज़माने में ऐसी सिद्धियों का मूल्य चुकाने के लिये कौन तय्यार होगा?"

फिर बातचीत का तार टूटा। मैंने अपने इस नये युग के समर्थन में बोलने की हिम्मत की—"दैनिक जीवन की उन्नति साधना में तत्पर रहने वाले हम संसारी व्यक्तियों को इन विभूतियों की खोज के अतिरिक्त काफ़ी काम करते हैं।"

"हाँ, मैं मानता हूँ। यह हठयोग का मार्ग इने-गिने लोगों के लिए ही है। यही कारण है कि इस विज्ञान के आचार्यों ने इसको इतनी सदियों से गोप्य रक्खा है। आचार्यगण स्वयं शिष्यों की खोज नहीं करते फिरते किन्तु शिष्यों को ही उन्हें ढूँढ़ निकालना पड़ता है।"

× × ×

हमारी दूसरी भेंट के समय ब्रह्म ने स्वयं मेरे घर पधारने की कृपा की। शाम का वक्त था। हम लोग शीघ्र ही भोजन करने बैठ गये। भोजन के बाद थोड़ी देर तक हमने आराम किया। फिर बरामदे में, जहाँ चाँदनी छिटकी हुई थी, जाकर मैं एक आराम कुर्सी पर लेट गया और ब्रह्म को फ़र्श पर बिछी हुई चटाई अधिक सुखद जान पड़ी।

कई मिनट तक हम दोनों चुपचाप पूर्ण चंद्र की विमल चाँदनी का आनन्द लूटते रहे।

पिछली भेंट के समय जो अजीब घटनाएँ मेरे देखने में आई थीं वे मुझे भूली नहीं थीं। अतः थोड़ी ही देर बाद मैंने फिर उन योगियों की चर्चा उठाई जो मृत्यु को धता बताने का अविश्वसनीय दावा उपस्थित करते हैं।

अपने सहज स्वभाव से ब्रह्म ने कहा—"क्यों नहीं। हठयोग में पहुँचे हुए एक योगी दक्षिण भारत के नीलगिरि पहाड़ में छिपे रहते हैं। वे अपने निवासस्थान को छोड़ कर कभी बाहर नहीं जाते। उत्तर में हिमालय पर्वत में एक अन्य श्रेष्ठ योगी का निवास है। इन लोगों से तुम्हारी भेंट होना असंभव है क्योंकि ये लोग जन-संगति से दूर रहते हैं। फिर भी इन योगियों के अस्तित्व की बात हम लोग परम्परा से सुनते चले आए हैं। कहते हैं कि इनकी उम्र कई सौ वर्ष की होगी।"

मैंने बड़े आदर के साथ अपनी शंका प्रकट करते हुए पूछा—"आप सचमुच ही इन बातों पर विश्वास करते हैं?"

"बेशक! मेरे सामने मेरे ही गुरू की जीती जागती मिसाल है।"

कई दिनों से मेरे मन में जो प्रश्न उठता रहा है वह इस समय फिर बल पकड़ने लगा। इतने दिनों से मैंने उसको प्रकट नहीं किया था। लेकिन अब चूँकि ब्रह्म के साथ हमारी दोस्ती गहरी हो गई थी मैंने प्रश्न पूछने की हिम्मत की। मैंने बड़ी उत्सुकता के साथ उनकी ओर ताका और पूछा :

"ब्रह्म, आपके गुरू कौन हैं?"

वे थोड़ी देर तक मेरी ओर वैसे ही ताकते रहे, पर उन्होंने कोई उत्तर देने की चेष्टा नहीं की। वे कुछ संकोच के साथ मेरी ओर देखने लगे।

अन्त में जब वे बोले तो उनकी आवाज़ बड़ी गम्भीर किन्तु धीमी थी :

"दक्षिण भारत में उनके चेले उन्हें येरुम्ब स्वामी के नाम से पुकारते हैं। इस नाम का अर्थ है 'चींटियों वाला स्वामी'।"

मैं बोल उठा—"कैसा अजीब नाम है !"

"मेरे गुरुदेव हमेशा चावल का आटा अपने साथ रखते हैं। वे कहीं भी रहें चींटियों को आटा खिलाते रहते हैं। लेकिन उत्तर में, और हिमालय की तराइयों के देहातों में उनका दूसरा ही नाम प्रचलित है।"

"तब बताइये क्या वे हठयोग में पूरे सिद्ध हो गये हैं ?"

"जी हाँ।"

"और आप यकीन करते हैं कि वे—!"

"कि उनकी आयु ४०० वर्ष से कुछ अधिक ही है।" यह कहते समय ब्रह्म बड़े ही प्रशान्त थे।

फिर सन्नाटा रहा।

चकित होकर मैं उनकी ओर घूर कर देखने लगा।

ब्रह्म अपनी बात का तार पकड़ते हुए बोले—"उन्होंने मुझको कई बार बताया है कि मुगल राज्य में क्या क्या हुआ था। उन्होंने मुझे उन दिनों की भी बात बताई है जब आपकी ईस्ट इण्डिया कम्पनी पहले पहल मद्रास में स्थापित हुई थी।"

शकी यूरोपियनों को भला इन बातों पर यकीन कैसे हो सकता है। अतः मैंने कहा :

"यह भी कोई प्रमाण है ! इतिहास पढ़नेवाला बच्चा बच्चा इन बातों से अच्छी तरह परिचित है।"

ब्रह्म ने मेरी बातों की कुछ भी परवाह नहीं की ! वे बोलते गये :

"मेरे गुरुदेव को पानीपत का पहला युद्ध[१] अच्छी तरह याद है। पलासी का युद्ध[२] भी उनको भूला नहीं है। मुझे याद है कि एक बार उन्होंने अपने एक अन्य चेले को ८० वर्ष का बच्चा कहकर पुकारा था !"

---

१ यह युद्ध सन् १५२६ में हुआ था।

२ इस युद्ध की तिथि सन् १७५७ है।

उस रात की निर्मल चाँदनी में मुझे साफ़ साफ़ दिखाई पड़ा कि इन अजीब बातों का बयान करते समय ब्रह्म का काला और चपटी नाक वाला चेहरा कितना प्रशान्त और गम्भीर था। इस ज़माने की वैज्ञानिक मनोवृत्ति में पला हुआ मेरा दिमाग खरी कसौटी पर कसे बिना ऐसी बातों पर कैसे विश्वास कर सकता था? आखिर को ब्रह्म भी तो हिन्दू होने के नाते, उन लोगों की जनश्रुति और ऐतिहासिक कपोल-कल्पना को सच मानने की आदत से एकदम मुक्त नहीं होंगे। उनसे बहस करना व्यर्थ था। अतः मैंने इरादा कर लिया कि चुप रहूँ।

योगी कहने लगे :

"ग्यारह वर्ष से कुछ अधिक काल के लिए मेरे गुरु नेपाल के पुराने महाराजाओं के आध्यात्मिक पथ-प्रदर्शक रह चुके हैं। वहाँ, हिमालय की तराइयों में रहने वाले देहाती लोग उनको खूब जानते हैं और उनपर उन लोगों का बड़ा हार्दिक प्रेम है। जब मेरे गुरुदेव उन देहातों में पधारते थे उनका देवतुल्य सत्कार किया जाता था। तो भी मेरे गुरुदेव उनसे प्रेम और वात्सल्य के साथ बात किया करते थे कि मानो कोई पिता अपने बच्चों से बोल रहा हो। वे जाति-पाँति के भेदों की कुछ भी परवाह नहीं करते हैं और मत्स्य-मांस को छूते तक नहीं।"

अकस्मात् मेरे विचार मुँह से निकल पड़े—"इतने वर्ष तक जीवित रहना कैसे सम्भव हो सकता है?"

ब्रह्म अपनी दृष्टि दूर गड़ाए हुए थे। शायद मेरी उपस्थिति का उनको ख्याल तक न था।

वे बोले—"यह तीन प्रकार से हो सकता है। पहला उपाय यह है कि हठयोग के बताए हुए समस्त आसन, प्राणायाम के भेद और सभी रहस्यपूर्ण अभ्यासों का पालन किया जाय। यह अभ्यास तब तक जारी रक्खा जाय जब तक कि पूरी सिद्धि प्राप्त न हो। यह तभी हो सकता है जब साधक को कोई ऐसा गुरु मिले जो स्वयं ही अपने उपदेशों का सच्चा और जीवित

उदाहरण हो। दूसरा उपाय यह है कि योग शास्त्र का गहरा अध्ययन करने वाले व्यक्तियों द्वारा बताई हुई कुछ जड़ी-बूटियों का नियम पूर्वक सेवन किया जाय। सिद्धहस्त योगी इन बूटियों को सफ़र करते समय अपने कपड़ों में छिपा कर या और किसी गुप्त प्रकार से साथ लिए रहते हैं। जब ऐसे योगियों के निधन का समय निकट आ पहुँचता है तो वे किसी योग्य शिष्य को बुलाकर उसे अपने मूल रहस्य को बता देते हैं और अपनी जड़ी-बूटी उसे सौंप देते हैं। ये बूटियाँ और किसी को नहीं दी जातीं। तीसरा उपाय सहज से समझाया नहीं जा सकता है।" यह कहकर ब्रह्म ने एकबारगी बोलना बन्द कर दिया।

मैंने ज़ोर देकर कहा—"क्या उसे समझाने का प्रयत्न भी न कीजियेगा?"

"मुमकिन है कि आप मेरी बातों पर हँसें।"

मैंने उनको यक़ीन दिलाया कि ऐसा कभी नहीं करूँगा और उनके बयान को बड़े आदर से सुन लूँगा।

"अच्छा समझाता हूँ। मनुष्य के मस्तिष्क के अन्दर एक सूक्ष्म रंध्र है। इसी ब्रह्मरंध्र के अन्दर जीवात्मा का निवास है। इस ब्रह्मरंध्र को सुरक्षित रखने वाली एक प्रकार की ढकनी भी मौजूद है। रीढ़ के निचले सिरे से एक अदृश्य जीवन-स्रोत बहता है। इसके बारे में मैंने तुमसे कई बार ज़िक्र भी किया है। इस जीवन-कोष के अनवरत व्यय होने से आदमी बूढ़ा हो जाता है। उसपर अधिकार पा लेने से मांस-पेशियों में एक अद्भुत शक्ति पैदा हो जाती है और जीवन की परिमिति बढ़ जाती है। जब मनुष्य अपनी इंद्रियों पर विजयी हो जाता है तब कुछ ऐसे अभ्यासों से, जो हमारे योग मार्ग के पहुँचे हुए महात्माओं को विदित हैं, वह इस जीवन प्रवाह पर अधिकार प्राप्त कर सकता है। और जब मनुष्य इस जीवन-स्रोत अर्थात संचित शक्ति को उद्बुद्ध करके उसे रीढ़ के मार्ग के द्वारा ऊपर की ओर बहा ले जा सके तब फिर वह उस शक्ति को ब्रह्मरंध्र में केंद्रीभूत करने की चेष्टा कर सकेगा। लेकिन

जब तक उसको ऐसा गुरू न मिले जो ब्रह्मरंध्र की ढकनी खोलने में चेले की मदद कर सके तब तक यह सफलता हाथ नहीं लगेगी। यदि ऐसे गुरुदेव को प्राप्त करने का सौभाग्य मिल गया तो फिर इस अदृश्य जीवन-स्रोत के उस रंध्र के अन्दर प्रवेश करने में देर ही नहीं लगती और एक बार उस रंध्र में पहुँच जाते ही यह स्रोत अमर जीवन का अमृतसिंधु बन जाता है। यह कोई हँसी-खेल नहीं है। इस मार्ग पर चलना तलवार की धार पर चलने के समान खतरनाक है। बिना गुरू की मदद के इस प्रयत्न में हाथ डालने को सत्यानाश का सामना करना पड़ेगा। लेकिन जिसको सफलता हाथ लगती है वह जब चाहे तब मृत्यु-कल्प दशा में पहुँच सकता है और इस प्रकार सच्ची मृत्यु उसकी खोज करने निकले तो भी योगी उसपर विजय पा सकता है। वास्तव में ऐसे योगी की इच्छा-मृत्यु होती है। जब वह मृत्यु कल्प दशा को प्राप्त होता है आप कैसी भी कड़ी जाँच कीजिये पर आपको यही मालूम पड़ेगा कि उसकी स्वाभाविक मृत्यु हुई है। जिसने इन तीनों मार्गों पर विजय पा ली हो, वह योगी सैकड़ों वर्ष जीवित रह सकता है। मुझे यही शिक्षा दी गई है। ऐसे योगी के मरने पर कीड़े-मकोड़े उसके शव पर आक्रमण नहीं करेंगे। १०० वर्ष बीत जाने पर भी ऐसे योगी की मांस-पेशियों में नश्वरता के कोई भी चिह्न नज़र नहीं आयेंगे।"

मैंने इस वर्णन के लिए ब्रह्म को बहुत धन्यवाद दिया, लेकिन मैं आश्चर्य में डूब गया था। मुझे इन बातों में बहुत ही अधिक दिलचस्पी थी लेकिन मेरे दिल को विश्वास नहीं होता था। शरीर-विज्ञान में इस प्रकार के किसी भी जीवन-स्रोत का कोई उल्लेख नहीं है। शरीर-विज्ञान को उस अमृतसिंधु का निश्चय ही पता नहीं है। शरीर सम्बन्धी ये अलौकिक कहानियाँ क्या कुछ अंधविश्वासियों की कल्पित ग़लतफ़हमियाँ तो नहीं हैं? ये लोग कल्पित कहानियों के उस युग के जीव जान पड़ते हैं जब दीर्घजीवी जादूगर आबे-हयात या जीवन-सुधा को अपने क़ब्ज़े में समझ बैठे थे। तिस पर भी ब्रह्म ने जिन योग के अभ्यासों का प्रदर्शन मुझे दिखाया था, उन प्राण और रक्त-प्रसार के निरोध आदि से मुझे कम से कम इतना विश्वास पैदा हो गया कि

योग की विभूतियाँ सिर्फ़ झूठमूठ की गपोड़बाजियाँ और टोने-टोटके नहीं हैं। इसके विपरीत मुझे जान पड़ा कि योग के मर्म से अनभिज्ञ लोगों को योग के आसन तथा क्रियाएँ निश्चय ही आश्चर्य में डालने वाली तथा अविश्वसनीय जान पड़ेंगी। ब्रह्म की बातों का इससे अधिक विश्वास और समर्थन करना मेरे लिए असम्भव है।*

मैंने अदब के साथ मौन धारण किया और सावधानी से अपने दिमाग में उठनेवाली शंकाओं की झलक तक चेहरे पर प्रकट नहीं होने दी।

ब्रह्म ने फिर कहा—"जो लोग मौत के घाट के निकट पहुँचने वाले हैं वे ऐसी शक्तियों को हासिल करने के लिए बहुत उत्सुक होंगे लेकिन यह बात कभी भी भुलानी न चाहिए कि इस मार्ग में तीखे काँटे हैं। इन अभ्यासों के बारे में हमारे आचार्यों के इस कथन पर कि 'इनको ऐसी सावधानी के साथ छिपाये रखना चाहिए मानो ये हीरों की पेटी हों' लोगों को तनिक भी आश्चर्य न करना चाहिए।"

"तब आप कदाचित् इन रहस्यों को मुझे न बतलाना चाहेंगे?"

एक मन्द मुस्कराहट उनके ओठों पर खिल उठी। बोले :

"जो सिद्ध होना चाहते हैं उनको तो चाहिए कि वे दौड़ने से पहले चलना सीखें।"

---

* ब्रह्म की समस्त आश्चर्यपूर्ण कथन और आत्म-विश्वास से भरी हुई योग सम्बन्धी उक्तियाँ इस समय मुझे एक विचित्र स्वप्न के समान जान पड़ती हैं। उनको लिपिबद्ध करते समय कई बार मेरे मन में यह विचार प्रबल रूप से उठा है कि मैं उन्हें अपनी पुस्तक में स्थान न दूँ; यहाँ तक कि उसके कितने ही अंश अन्त में मैंने पुस्तक में नहीं दिये हैं। मैं यह समझता हूँ कि विज्ञ अंग्रेज पुस्तक के इस भाग को पढ़ कर उन्हें भ्रमपूर्ण अंधविश्वास मात्र ही मानेंगे और उनकी उपेक्षा की दृष्टि से देखेंगे। अपने स्वतंत्र निर्णय से नहीं किन्तु दूसरे मित्रों के कहने पर मैंने अन्त में इस प्रसंग को अपनी पुस्तक में स्थान दिया है।

"ब्रह्म, अब मैं अपना अन्तिम प्रश्न पूछना चाहता हूँ।"

ब्रह्म ने हामी भर ली।

"क्या आपके गुरु अब भी जीवित हैं ?"

"नेपाल की तराई के जंगल के उस पार पहाड़ों में एक मन्दिर है। उसी में वे निवास करते हैं।"

"उनके इस देश में फिर लौटने की कोई संभावना नहीं है ?"

"उनके गमनागमन के बारे में कोई भी नहीं कह सकता। हो सकता है कि वे नेपाल में कई वर्ष तक रह जायँ, हो सकता है कि वे फिर सफर पर चल दें। वे नेपाल को बहुत ही पसन्द करते हैं क्योंकि वहाँ भारत की अपेक्षा हठयोग पद्धति अधिक फूलती-फलती है। आपको जानना चाहिए कि हठयोग के भी आचार्यों और सम्प्रदायों के भेद से कई भेद हो गये हैं। हमारा मार्ग तंत्रमार्ग है। हिन्दुओं की अपेक्षा नेपाली लोग उसको अधिक अच्छी तरह समझ पाते हैं।

ब्रह्म चुप हो गये। मैंने ताड़ लिया कि वे अपने गुरुदेव की रहस्यमय मूर्ति के ध्यान में लीन हो गये हैं। भला ! आज की रात में जो बातें मेरे सुनने में आई हैं वे यदि कल्पित कहानियाँ न होकर वास्तविक तथ्य हों तो अज्ञान की यवनिका के पीछे जो कुछ हो उसकी—मनुष्य के अमर जीवन के मर्म की—एक झलक हम ज़रूर ही पा सकते हैं।

× × ×

यदि मैं अपनी क़लम तेज़ी के साथ न चलाऊँ तो यह परिच्छेद कभी समाप्त नहीं होगा। अतः अब मैं पाँच नाम वाले इस योगी के साथ अपनी सबसे अंतिम भेंट के संस्मरण लिखूँगा।

हिन्दुस्तान में शाम के बाद रात बहुत ही जल्दी आ जाती है; यूरोप के समान संध्या बहुत देर तक फैली नहीं रहती। शीघ्र ही गोधूलि का धुँधलापन ब्रह्म की कुटिया पर फैलने लगा। ब्रह्म ने एक छोटा दिया जला दिया

और एक डोरी के सहारे उसको छप्पर से लटका दिया। हम दोनों बैठ गये। बूढ़ी बड़ी बुद्धिमानी के साथ चली गयी और हम तीन—मैं, ब्रह्म और मेरा दुभाषिया—अकेले रह गये। धूप की सुगंधि चारों ओर फैल गयी और उसने कमरे के रहस्यपूर्ण वातावरण को और भी बढ़ा दिया।

आज के दिन मेरे मन पर वियोग के विषाद की छाया पड़ी थी। मैंने उसको हटाने की चेष्टा व्यर्थ ही की। दुभाषिए के द्वारा ब्रह्म को मैं साफ़ साफ़ अपने दिल की बात नहीं बता सका। उनके प्रतिपादित विचित्र सिद्धान्त और अनोखी बातें कहाँ तक ठीक हैं, यह मैं निश्चित रूप से नहीं कह सकता, पर उन्होंने जो मुझे अपनी तनहाई में दखल देने दिया था उनकी इस तत्परता की तारीफ़ किये बिना मुझ से रहा नहीं जाता। कभी कभी मुझे अनुभव होने लगता था कि सहानुभूति के कारण हम दोनों के हृदय एक दूसरे के बहुत समीप आ गये हैं। अब मुझे अच्छी तरह मालूम हो गया कि मुझे अपने अन्तरंग तक पहुँचने देने में ब्रह्म ने मेरे साथ कितनी बड़ी रिआयत की है और मुझे कितना आदर प्रदान किया है।

भावी वियोग की छाया के तले, उनको अपने गहरे मर्मों के निगूढ़ रहस्यों का प्रतिपादन करने के लिए प्रेरित करने की मैंने आज अंतिम चेष्टा की।

उन्होंने मानो मेरी तह लेते हुए पूछा:

"क्या शहरों के जीवन को तिलांजलि देकर कुछ वर्ष तक पहाड़ों या जंगलों के किसी निर्जन स्थान में रहने के लिए तय्यार हो?"

"इसका उत्तर मैं खूब सोच-विचार करने के बाद ही दे सकता हूँ।"

"अपने अन्य सारे काम-काज को, अपने सारे भोग-भाग्य को, अपनी सारी फ़ुरसत को हमारे योग मार्ग के अभ्यासों पर चन्द महीनों के लिए नहीं, कुछ वर्ष तक निछावर करने को तय्यार हो?"

"मैं समझता हूँ—नहीं, मैं तय्यार नहीं हूँ। शायद एक दिन—"

तो फिर मैं आपको इससे अधिक कुछ भी नहीं बता सकता। हठयोग

का मार्ग अपनी फ़ुरसत के समय दिल बहलाने का खेल नहीं है। यह तो बड़ी ही टेढ़ी खीर है—बड़ा ही खतरनाक मार्ग है।"

मैंने देखा कि मेरी योगी बनने की सारी सुविधाएँ शीघ्र ही शून्य में विलीन हो रही हैं। खेद के साथ मुझे मानना पड़ा कि सम्पूर्ण योग मार्ग कई वर्षों तक की कड़ी शिक्षा, उसके कठोर और संयत यम-नियम मेरे लिए नहीं हैं। लेकिन शरीर पर विजय पाने से भी परे एक और बात मेरे मन में जमी हुई थी। मैंने ब्रह्म पर अपने मन की बात प्रकट कर दी।

"ब्रह्म, ये विभूतियाँ सच ही अद्‌भुत और मन को खींच लेने वाली हैं। एक दिन सचमुच आपको इस परिपाटी में अपने आप को शिक्षित करने का मेरा विचार है। तब भी उनसे चिर आनन्द कहाँ तक मिल सकता है? इससे भी सूक्ष्मतर कोई दूसरा योग मार्ग नहीं है? शायद मेरी बातें स्पष्ट नहीं हैं? क्यों?"

ब्रह्म ने सर हिलाते हुए कहा :

"हाँ समझा।"

हम दोनों मुस्कराये।

धीरे धीरे ब्रह्म बोले :

"हमारे ग्रंथों में कहा गया है कि विद्वान योगी हठयोग के बाद मनोयोग या राजयोग का भी अभ्यास अवश्य करेगा। लेकिन यह कहा जा सकता है कि हठयोग कर लेने के बाद राजयोग का मार्ग साफ़ हो जाता है। जब हमारे प्राचीन ऋषियों को सहयोगी भगवान महादेव ने हठयोग के सिद्धान्त प्रदान किये थे तो यह बता दिया था कि जड़ शरीर पर विजय पाकर ही संतोष न करना चाहिए। हमारे ऋषि जानते थे कि हठयोग की सिद्धि मनोविजय का एक सोपान मात्र है और राजयोग भी आध्यात्मिक सम्पूर्णता के मार्ग में एक और सीढ़ी ही है। अतः आपको ज्ञात हुआ होगा कि हमारी प्रणाली पहले अत्यन्त स्थूल और निकटवर्ती वस्तु, अर्थात शरीर से ही शुरू होती है और वह भी आत्मा की गहराई का पता लगाने में एक उत्तम साधन

की हैसियत से ही। इसी कारण मेरे गुरुदेव ने मुझे आदेश दिया था: 'पहले हठयोग की सिद्धि कर लो तब राजयोग का अवलम्बन कर सकते हो।' याद रखना, जिसका शरीर क़ाबू में आ गया है उसका मन चंचल या विक्षिप्त हो ही नहीं सकता। बहुत कम लोग ऐसे होंगे जो सीधे चित्तवृत्ति-निरोध के मार्ग पर आरूढ़ हो सकेंगे। इस पर भी राजयोग की ओर अपने को जो ज़ोर के साथ आकृष्ट पावे उसको तो हम उस मार्ग से निवृत्त करने की चेष्टा ही नहीं करते। उसके लिए वही मार्ग अनुकूल होगा।"

"तो वह केवल मानसिक योग है?"

"ऐसा ही है। उसमें चित्त को एक अचल स्थिर ज्योति बनाने की चेष्टा की जाती है। फिर उस ज्योति को उलट कर उसके केन्द्र पर, उसकी उत्पत्ति के स्थान पर, आत्मा को लगाने की चेष्टा की जाती है।"

"उसके शिक्षण का प्रारम्भ किस प्रकार किया जा सकता है?"

"उसके लिए भी गुरू की आवश्यकता है।"

"गुरू कहाँ मिले?"

ब्रह्म ने अपने कन्धे उछालते हुए कहा—"भाई, जो सचमुच भूखे हों वे बड़ी व्यग्रता के साथ भोजन को खोजेंगे। जो भोजन न मिलने के कारण उपवास करते हों वे पागलों के समान भोजन की तलाश करेंगे। भूखा, फ़ाक़ा करने वाला जैसे खाने के लिए बावला होता है उसी प्रकार तुम भी गुरू के वास्ते यदि बावले हो उठोगे तो गुरू सचमुच तुम्हें मिल जायँगे। हार्दिक इच्छा के साथ जो गुरू को खोजेंगे उनको निस्सन्देह निश्चित समय पर, गुरू प्राप्त हो ही जायँगे।"

"तो आपका विचार यह है कि इसमें भी विधि का बदा हुआ निश्चित समय है।"

"आपका कहना ठीक है।"

"मैंने कुछ किताबों में पढ़ा है कि—"

"गुरू बिना उन किताबों का कोई मूल्य नहीं। गुरू के न रहने पर वे किताबें रद्दी काग़ज़ों के समान हैं। हम जो 'गुरू' शब्द कहते हैं, उसका एक विशेष अर्थ है। वह है 'अन्धकार (अज्ञान) को दूर करने वाला'। जो पर्याप्त प्रयत्न करे और साथ ही जिसके भाग्य में सच्चा गुरू पाना बदा हो, वह शीघ्र ही ज्योति-लाभ कर लेगा, क्योंकि सच्चे गुरू अपने शिष्य को अपनी उत्तम सिद्धियों से मदद पहुँचाये बिना नहीं रहते।"

ब्रह्म अपनी बेंच के पास गये जहाँ काग़ज़ों का ढेर लगा था और एक बड़ी पोथी ले आये। उन्होंने उसको मेरे हाथों में रक्खा। उस पर एक क्रम से कुछ रहस्यपूर्ण संकेत और अजीब प्रतीकों के चित्र खींचे गये थे। कहीं कहीं लाल, हरी और काली स्याही से तामिल भाषा में कुछ अक्षर लिखे हुए थे। मुख-पृष्ठ पर एक बड़ा रहस्यमय प्रतीक अंकित था। उसमें मुझे सूर्य, चन्द्र और मनुष्य की आँखों की रेखाएँ दिखाई दीं। चित्र के बीच में कुछ जगह खाली रक्खी गई थी जिसके चारों ओर तरह तरह के कई खाके बने हुए थे।

ब्रह्म ने कहा—"कल रात को इसके तय्यार करने में मुझे कई घंटे लगे। जब तुम घर लौट जाना तब मेरा एक फोटो बीच के रिक्त स्थान पर चिपका देना।"

ब्रह्म ने मुझ से कहा कि यदि मैं उस विचित्र पत्र पर रात को सोने से पहले पाँच मिनट तक ध्यान जमाऊँगा तो उनके बारे में अथवा उन्हीं का साफ़ और स्पष्ट सपना देखूँगा।

"हम दोनों के बीच में चाहे हज़ारों मील का फ़ासला हो तो भी यदि आप इस पत्र पर ध्यान जमायेंगे तो रात के वक्त हम दोनों की आत्माएँ मिल जायेंगी।" उन्होंने यह भी विश्वास दिलाया कि स्वप्न की यह भेंट उतनी ही सच्ची होगी जितना कि हम दोनों का उस समय सामने बैठ कर बातचीत करना।

इसको सुन कर मैंने उनसे कहा कि मेरा सब सामान बँध गया है और

मैं जल्द ही उनसे विदा लेने वाला हूँ। साथ ही मैं निश्चित रूप से यह नहीं कह सकता था कि फिर से मैं उनका कब और कहाँ दर्शन कर सकूँगा।

उन्होंने उत्तर देते हुए कहा कि जो हो विधि का बदा ज़रूर होकर रहेगा। फिर मुझ पर विश्वास दिलाते हुए बोले :

"मैं इस बसन्त ऋतु में यहाँ से रवाना होने वाला हूँ। तब मैं तंजौर जाऊँगा क्योंकि वहाँ दो शिष्य मेरी इन्तजारी में हैं। बाद को क्या होगा कौन कह सकता है। तो भी आप जानते हैं कि मेरा दृढ़ विश्वास है कि एक दिन मेरे गुरु मुझे अवश्य बुला भेजेंगे।"

फिर बड़ी देर तक खामोशी छाई रही। तब बड़े आहिस्ते, अत्यन्त धीमी आवाज़ में, ब्रह्म बोलने लगे और मैं भी कुछ नवीन उपदेश सुनने की उत्कंठा के साथ दुभाषिए की ओर फिरा।

"कल रात को मेरे गुरुदेव ने मुझे दर्शन दिये। उन्होंने तुम्हारे बारे में ही कहा था : 'तुम्हारा मित्र, ज्ञान पाने के लिए लालायित है। अपने पिछले जन्म में वह हमारे बीच में था। उसने योग का अभ्यास किया, लेकिन हमारे योग की पद्धति के अनुसार नहीं। आज वह फिर भारत में आया है, लेकिन गोरे चमड़े में। पिछले जन्म में वह जो जानता था अब भूल गया है। लेकिन यह विस्मृति बहुत दिन तक नहीं बनी रहेगी। जब तक गुरु की उस पर कृपा नहीं होगी तब तक वह उस पुराने ज्ञान की याद नहीं कर सकेगा। गुरु की कृपा होते ही इसी शरीर में उसे अपने पूर्व ज्ञान की स्मृति हो जायगी। अपने दोस्त से कह दो कि उसे गुरु जल्द ही मिलेंगे। फिर तो उसको अपने आप ही ज्ञान प्राप्त हो जायगा। इसमें किसी प्रकार का सन्देह नहीं है। उससे कह दो कि वह बेचैन न हो। जब तक मेरी बात चरितार्थ न हो तब तक वह इस भूमि को छोड़ कर न जाय। विधि ने ही लिख डाला है कि वह खाली हाथ से भारतवर्ष नहीं जायगा।"

मैं हैरान था।

दीपक की मन्द किरणें हम लोगों पर पड़ रही थीं। उसके पीले आलोक

में दिखाई पड़ा कि मेरे दुभाषिए का चेहरा संभ्रम और आश्चर्य के कारण पीला पड़ गया है।

मैंने सन्देह प्रकट करते हुए प्रश्न किया—"आपने तो मुझको बताया था कि आपके गुरु सुदूर नेपाल में हैं।"

"हाँ, बेशक ! वे अब भी वहीं हैं।"

"तो यह कैसे हो सकता है कि एक ही रात में वे १२०० मील का फ़ासला तय कर बैठें।" .

ब्रह्म गूढ़ आशय के साथ मुस्करा पड़े और बोले :

"हिन्दुस्तान के एक छोर से दूसरे छोर तक का सारा फ़ासला भले ही हमारे बीच में हो, तब भी वे हमेशा मेरे लिए उपस्थित रहते हैं। बिना किसी प्रकार के डाकिये या चिट्ठी-पत्री के ही मुझे उनका संदेश मिल जाता है। हवा में से उनके विचार मेरे पास पहुँच जाते हैं। वह जब मेरे निकट आ जाते हैं, मैं समझ जाता हूँ।

"क्या यह कोई मानसिक बे-तार के तार की व्यवस्था है ?"

"यदि आप चाहें तो ऐसा ही समझ लें।"

जाने का वक्त निकट था। मैं उठ खड़ा हुआ। आखिरी बार चाँदनी में एक साथ घूमने के लिए हम बाहर निकले। ब्रह्म के घर के पास जो मंदिर था उसकी पुरानी दीवारों को हम पार कर गये। चाँद वृक्षों की विरल शाखाओं से आँखमिचौनी खेल रहा था। अन्त में हम ताड़ों के एक सुन्दर झुरमुट के नीचे सड़क से हट कर खड़े हो गये। मुझसे विदा होते हुए ब्रह्म गुनगुनाए :

"तुम जानते हो कि मेरी बहुत थोड़ी सांसारिक सम्पत्ति है। देखो, इस अंगूठी को मैं बहुत प्यार करता हूँ। तुम इसे ले लो।

उन्होंने अंगूठी अपनी उँगली से निकाली और अपनी दाहिनी हथेली पर रख कर मेरी ओर हाथ बढ़ाया। चाँद की किरणों में उनकी हथेली के

बीच सोने की अंगूठी चमक रही थी। अंगूठी के बीच में एक हरा रत्न जग-मगा रहा था। उस रत्न पर लालिमा मिश्रित भूरे रंग की महीन रेखाएँ दीख पड़ती थीं। जब हम उनसे गले मिले तो ब्रह्म ने अंगूठी मेरे हाथ में रख दी। मैंने उसको लौटाने की चेष्टा की पर उन्होंने और भी ज़ोर दिया और मुझे उसे ले लेना पड़ा।

वे बोले :

"योग में पहुँचे हुए एक महात्मा ने मुझे यह अंगूठी दी थी। उन दिनों ज्ञान-संग्रह के लिए मैं बहुत घूमा करता था। अब आपसे मेरी प्रार्थना है कि आप यह अंगूठी पहन लें।

मैंने उनको धन्यवाद दिया और कुछ परिहास के ढंग में कहा :

"क्या इससे मेरा भाग्य जागेगा ?"

"नहीं। यह अंगूठी ऐसा तो नहीं कर सकती; किन्तु इस रत्न में एक शक्तिशाली जादू है। इसकी मदद से तुम बड़े बड़े महात्माओं से और छिपे हुए योगिराजों से भेंट कर सकोगे। इसकी मदद से तुम अपनी आध्यात्मिक शक्तियों से भी परिचित हो जाओगे। इसकी सचाई तुम्हें अनुभव से ही मालूम होगी। जब तुम्हें इन चीज़ों की ज़रूरत हो तो इसको पहन लेना।"

फिर बड़े प्रेम के साथ हम बिछुड़े और अपनी अपनी राह पकड़ कर चल दिये।

मैं धीरे धीरे चलने लगा। मेरे दिमाग़ में अजीब प्रकार के विचारों का संघर्ष मचा हुआ था। ब्रह्म के दूरवर्ती गुरुदेव के संदेश पर मैं मनन करने लगा। यह इतना अलौकिक था कि मैं उसका विरोध भी नहीं कर सका। उस संदेश के सामने मैंने हार मान कर चुप्पी साध ली, पर मेरे दिल के भीतर विश्वास और शंका का तुमुल युद्ध चल रहा था।

मैंने उस अंगूठी की ओर देख कर अपने से पूछा—इन मामलों में अंगूठी की क्या महत्ता हो सकती है ? वह किस प्रकार से अपना प्रभाव दिखा सकती थी यह बात मेरी समझ के बाहर थी।

यह विश्वास करना कि वह मानसिक या आध्यात्मिक, किसी भी रूप से, मेरे या दूसरों के ऊपर प्रभाव डाल सकती है, घोर अंध-विश्वास ही प्रतीत होने लगा। लेकिन उसकी महिमा के बारे में ब्रह्म को कैसा अटल विश्वास था ! क्या वैसा होना सम्भव है ? प्रेरणावश मुझे कहना ही पड़ा—हाँ ऐसा ही मालूम पड़ता था—कि इस अजीब देश में कोई भी बात भला असम्भव है ! लेकिन विवेक ने मेरे मन को प्रश्नार्थक चिह्नों से भर दिया।

मैं सोचते सोचते, ध्यान और मनन में लीन होकर अपने को ही भूला जा रहा था। अतः मैं वहाँ से आगे चलने लगा कि अचानक किसी चीज़ से अपना माथा टकरा जाने से मैं चौंक पड़ा। सामने ताड़ का एक विराट वृक्ष अपने उन्नत मस्तक को अनन्त आकाश की ओर उठाये हुए मानो उन्नत जीवन की अमर गाथा सुना रहा था। उसके विरल पत्तों के बीच में अगणित जुगनू चमक चमक कर आशामय ज्योतियों के साथ नाच रहे थे।

रात का विमल गगन अथाह नीलिमा में मग्न था। शुभ्र ज्योति वाला शुक्रतारा हमारे इस भूमंडल के बहुत ही निकट मालूम पड़ रहा था। मैं चलने लगा तो सारा मार्ग अनन्त शान्ति से आवृत्त प्रतीत होने लगा। एक अद्भुत शान्ति मेरे भीतर फैल गयी थी और मैं एकदम आनन्द की उद्वेग रहित प्रशान्ति में लीन हो गया। वे चमगादड़ भी जो बीच बीच में मेरे ऊपर से उड़ते हुए निकल जाते थे अपने पंखों को धीरे-धीरे डुलाते हुए प्रतीत होने लगे। सारा दृश्य मन को मोहित कर रहा था। मैं एक क्षण भर खड़ा हो गया। चन्द्रमा की चाँदनी ऐसी छिटकती थी कि उसने मेरे निकट पहुँचने वाले एक व्यक्ति को मेरी दृष्टि में एक सफ़ेद उड़ता हुआ भूत सा बना दिया।

मैं घर पहुँचा। बहुत रात बीतने पर भी मुझे नींद नहीं आई। सबेरा होने से कुछ ही पहले मुझे गहरी नींद ने घर दबाया और मेरे मानसिक संघर्ष को सुखद विस्मृति के तहखाने में बन्द कर दिया।

७

मौनीबाबा

अपनी राम कहानी के सिलसिले को कुछ देर के लिए मुझे तोड़ना पड़ रहा है क्योंकि एक दिलचस्प बात का ज़िक्र करने के लिए मुझे एक दो हफ्ते पहले की बातें बतानी हैं।

मद्रास शहर के निकट मैं जब रहता था तब शहर में रहने वाले भारतीयों से ऐसे व्यक्तियों के सम्बन्ध में पूछ-ताँछ बराबर करता रहता था जिनकी खोज करने के लिए मैं निकला था। मैंने जजों, वकीलों, अध्यापकों, सेठ-साहूकारों और एक-दो मशहूर धार्मिक व्यक्तियों से भी इस बारे में बातचीत की। मैंने अपने हमपेशे के व्यक्तियों, अर्थात् सम्वाददाताओं और अखबारनवीसों, से मिलने में भी कुछ समय बिताया। इनमें से मुझे एक सहायक सम्पादक का परिचय प्राप्त करने का अवसर मिला जिन्होंने मुझे बताया कि युवावस्था में उन्होंने योग का रुचि पूर्वक अध्ययन किया था। उन्होंने उस समय एक ऐसे गुरू की चरण सेवा की थी जो उनकी समझ में राजयोग में पूर्ण सिद्ध थे परन्तु उनके वे गुरु लगभग १० वर्ष पूर्व स्वर्ग सिधार चुके थे।

यह महाशय, जो किसी समय योग के विद्यार्थी रहे थे, बड़े बुद्धिमान और रसिक व्यक्ति थे। वे जाति के हिन्दू थे। बेचारे इस समय यह बतलाने में असमर्थ थे कि उत्तम श्रेणी के योगी मुझे कहाँ मिल सकते हैं।

इन के अतिरिक्त अन्य लोगों ने योग के विषय में मुझे जो बतलाया वह अस्पष्ट गाथाओं, मूर्खता में पगी हुई दन्तकथाओं और कहीं कहीं निठुर झिड़कियों के सिवा और कुछ भी नहीं था। हाँ एक ऐसा व्यक्ति मुझे अवश्य मिला जिसका ईसा मसीह से मिलता हुआ चेहरा और वेश-भूषा लन्दन के पिकैडिली जैसे कामकाजी मोहल्ले में भी सनसनी पैदा कर देता। पर ये सज्जन स्वयं भी उत्तम जीवन की खोज में देश भर में भटकते फिर रहे थे। भिक्षा पर निर्भर रहने वाले सन्यासी जीवन के लिए लालायित हो कर उन्होंने

अपनी कई एकड़ उपजाऊ भूमि का त्याग कर दिया था। वे अपनी सारी जायदाद मुझे दे देने के लिए राज़ी थे किन्तु इस शर्त पर कि मैं वहीं बस कर अन्धविश्वासी, अपढ़, दीन-दरिद्र भारतीयों की सेवा करूँ। लेकिन मैं भी तो एक अज्ञानी दीन-दरिद्र, और सताया हुआ व्यक्ति था। अतः धन्यवाद पूर्वक उनका प्रस्ताव मुझे अस्वीकृत करना पड़ा।

एक दिन मुझे एक सिद्ध योगी की खबर मिली जिनकी बड़ी ख्याति सुन पड़ी। वे मद्रास शहर से बाहर आध मील की दूरी पर रहते थे परन्तु स्वभाव से एकान्तप्रिय होने के कारण बहुत कम लोगों को उनका पता था। उनसे मिलने की मेरी इच्छा प्रबल हो उठी और मैंने उनसे भेंट करने का पक्का इरादा कर लिया।

इन महात्मा का निवासस्थान चारों ओर से लम्बे लम्बे बाँसों से घिरे हुए अहाते के अन्दर एक एकान्त खेत के बीच में था।

मेरे साथी ने अहाते की ओर इशारा किया और कहा :

"मैंने सुना है कि दिन में अधिकतर ये महात्मा समाधि में लीन रहते हैं। दरवाज़े पर हम भले ही खटखटाएँ, उनका नाम लेकर कितने भी ज़ोर से पुकारें पर वे शायद ही सुन पायेंगे। साथ ही ऐसा करना बड़ी अशिष्टता की बात होगी।"

अहाते में प्रवेश करने के लिए एक अनगढ़े फाटक से हो कर जाना था; लेकिन फाटक का दरवाजा ताले से बहुत ही मज़बूती से बन्द था और हमारी समझ में न आया कि क्यों कर भीतर प्रवेश करें। सारी जगह घोर सन्नाटा छाया हुआ था। खेत के चारों ओर हम चक्कर लगाने लगे। हमें एक लड़का मिला जो योगी के परिचारक का ठिकाना जानता था। एक घुमावदार रास्ते से हो कर हम किसी प्रकार उस व्यक्ति के पास पहुँचे। पता चला कि यह व्यक्ति साधु की सेवा करने के लिए नौकर रक्खा गया है। उसकी बीबी और बाल-बच्चे हमें देखने के लिए कुटिया से बाहर आये और उसके पीछे पीछे चलने लगे। हमने अपनी इच्छा उस पर प्रकट की पर उसने हमारी एक

न मानी। उसने दृढ़ता पूर्वक कहा कि कोई भी अजनबी मौनीबाबा से भेंट नहीं कर सकता क्योंकि वे बिलकुल ही एकान्त में रहते हैं। योगी अधिकांश समय गहरी समाधि में लीन रहते हैं और यदि कोई अपरिचित व्यक्ति उनकी शान्ति में बाधा पहुँचावेगा तो वे ज़रूर ही बुरा मानेंगे।

मैंने उस नौकर से प्रार्थना की कि वह मेरे साथ कुछ रिआयत करे पर वह टस से मस न हुआ। मेरे मित्र ने उसको धमकी दी कि यदि वह हमें भीतर न जाने देगा तो उसे पुलिस के हवाले कर देंगे। ऐसा कहने का वास्तव में हमें कोई अधिकार तो था नहीं, किन्तु क्या करें हम लाचार थे। अतः धमकी देते हुए हम आपस में आँख से इशारा करने लगे। फल यह हुआ कि नौकर कुछ बहस करने लगा। धमकी के साथ ही पर्याप्त इनाम का लालच भी हमने उसे दिखाया। अन्त को नौकर ने हमारी बात बड़ी ही अनिच्छा के साथ मान ली और ताले की कुंजी ले आया। मेरे साथी ने कहा कि वह आदमी निश्चय ही मौनीबाबा का नौकर मात्र है क्योंकि यदि वह उनका चेला होता तो हज़ार धमकियाँ और कितना भी लालच देना कारगर न होता।

हम फिर उस फाटक के दरवाजे पर पहुँचे। लोहे का एक बड़ा ताला उसमें पड़ा था। उसे खोल कर नौकर ने हमसे कहा कि योगी का माल-असबाब इतना थोड़ा है कि उसके लिए ताला-कुंजी रखना आवश्यक है। योगी को भीतर छोड़ कर बाहर से ताला बन्द किया जाता है और वे तब तक बाहर नहीं आ सकते जब तक कि ताला बाहर से न खोला जाय। नौकर दिन में दो बार दरवजा खोला करता था। हमसे यह भी बतलाया गया कि दिन भर योगी समाधि में लीन रहते हैं पर शाम को कुछ मेवा, मिठाई और एक प्याला दूध पीते हैं। लेकिन कितनी ही बार शाम को भी यह देखा गया है कि भोजन ज्यों का त्यों रक्खा हुआ है। अँधेरा हो जाने पर कभी कभी मौनीबाबा कुटिया के बाहर आते हैं और तब खेतों में घूमने के सिवा और किसी प्रकार की कसरत वे नहीं करते। अहाते को पार कर हम आधुनिक ढंग की बनी हुई एक कुटिया पर पहुँचे। वह मजबूत पत्थर की पटियों की बनी

थी और उसके लकड़ी के खम्भे सुन्दर ढंग से रंगे हुए थे। नौकर ने और एक कुंजी निकाली और एक भारी दरवाज़ा खोल दिया। यह सब इन्तज़ाम देख कर मैंने आश्चर्य प्रकट किया क्योंकि उस आदमी ने मुझसे कहा था कि योगी के पास कोई ख़ास निजी सम्पत्ति नहीं है। तब उस आदमी ने यह रहस्य समझाने के लिए एक छोटी कहानी सुनाई।

कुछ वर्ष पूर्व योगी एक अन्य कुटिया में रहते थे। उस समय दरवाज़ों में ताला नहीं लगाया जाता था। बदकिस्मती से एक दिन कोई व्यक्ति ताड़ी के नशे में चूर भीतर घुस पड़ा और योगी की असहाय स्थिति को देख कर उन पर आक्रमण कर बैठा। उन्हें मनमानी गालियां दीं, उनकी दाढ़ी नोच ली और उनके ऊपर लाठी तान दी।

इत्तिफ़ाक की बात थी कि कुछ लड़के गेंद खेलते हुए उसी खेत पर आ गये। आक्रमण की आवाज़ पाकर सब के सब दौड़ पड़े और मौनीबाबा को उस मतवाले के हाथों से बचा लिया। उनमें से एक ने बाहर दौड़ कर लोगों को यह खबर दी। फिर क्या था। कई उत्तेजित व्यक्तियों का एक खासा जमघट हो गया। वे उस मतवाले को पकड़ कर उसके दुस्साहस के लिए खूब पीटने लगे। सम्भव था कि वह बेचारा जान से ही मारा जाता।

अब तक योगी पूर्ण रूप से शान्त बने रहे और उन्होंने उस जन समुदाय के बीच आकर नीचे का वाक्य लिख दिया : 'यदि तुम लोग इस आदमी को मारते हो तो समझो कि मुझको ही मार रहे हो। मैंने उसे क्षमा कर दिया है। उसको जाने दो।'

योगी की बातें अलिखित क़ानून हैं। अतः उनकी आज्ञा का सहर्ष पालन किया गया और अपराधी छोड़ दिया गया।

× × ×

टहलुए ने अन्दर झाँक कर देखा और हमें सचेत कर दिया कि हम बिलकुल चुपचाप रहें। योगी समाधि में लीन थे। मैंने हिन्दुओं के निश्चित सिद्धान्त के अनुसार जूते खोल कर बरामदे में छोड़ दिये। झुकते समय मेरी

आँख एक दीवार के पत्थर पर पड़ी। उस पर बड़े बड़े तामिल अक्षरों में कुछ लिखा हुआ था जिसका अनुवाद करके मेरे साथी ने मुझे बतलाया 'मौनी बाबा का निवास स्थान।'

हमने उस एक कमरे वाली कुटी में प्रवेश किया। वह कमरा बड़ा स्वच्छ था। उसकी छत खूब ऊँची थी और वहाँ की सफाई देखने योग्य थी। फर्श के बीच में एक फुट ऊँचा एक संगमरमर का चबूतरा था। उस पर बेश-कीमती, बेल-बूटेदार, फारस का एक कम्बल बिछा हुआ था। इसी कम्बल पर समाधि लीन मौनीबाबा जी की दिव्य मूर्ति शोभ रही थी।

एक गेहुँआ रंग के सुडौल शरीर की आसन जमाए हुए कल्पना कीजिये। उनका वह विचित्र आसन मेरे लिए नया न था क्योंकि ब्रह्म वह आसन मुझे दिखा चुके थे। उनका बायाँ पाँव मुड़ा था और उसी पर उनके शरीर का सारा बोझ पड़ रहा था। दायाँ पाँव बाईं जाँघ पर रक्खा था। योगी की पीठ, कंठ और शिर सभी सतर थे। उनके काले लम्बे बालों की लटें भुजाओं तक फैली हुई थीं। एक काली लंबी दाढ़ी भी लटक रही थी और हाथ घुटनों पर रक्खे हुए थे। उनका शरीर खूब ही हृष्ट-पुष्ट था। उनकी पेशियाँ खूब गठी हुई थीं और वे बड़े ही स्वस्थ मालूम होते थे। वे सिर्फ़ एक लँगोटी ही पहने थे।

उनकी मुख-मुद्रा मानो जीवन पर विजय पाकर मुस्करा रही थी। हम दुर्बल मानव इच्छा या अनिच्छा से जिन कमज़ोरियों को प्रतिदिन सहते रहते हैं उन पर उन्होंने सचमुच ही विजय प्राप्त कर ली थी। उनकी वह मूर्ति मेरे मन पर उसी ढंग से अब भी अंकित है। उनका मुँह ज़रा सा खुला हुआ था मानो एक मंद मुसकान उनके ओठों पर थिरकने ही वाली हो। उनकी नाक सीधी और छोटी थी। आँखें एकदम खुली हुई थीं और सामने की ओर उनकी निर्निमेष दृष्टि लगी हुई प्रतीत होती थी। वे ऐसे अचल भाव से बैठे हुए थे मानो कोई गढ़ी हुई प्रतिमा हो।

मेरे साथी ने मुझको पहले ही बता दिया था कि मौनीबाबा एक ऐसी

समाधि की स्थिति पर पहुँच गये हैं जहाँ उनकी मानव प्रकृति थोड़ी देर तक प्रसुप्त हो जाती है और उन्हें अपने इर्द-गिर्द के प्राकृतिक अथवा भौतिक वायुमंडल का कोई पता ही नहीं रहता। मैंने योगी की ओर बड़े ध्यान से देखा पर मुझको एक भी ऐसी बात नजर नहीं आई जिससे उनकी उस बाह्य-ज्ञान-शून्य गहरी समाधि में किसी प्रकार का संदेह हो। मिनट बीतते बीतते कई घंटे टल गये पर उनकी वह अचल मूर्ति हिली तक नहीं। सब से अधिक आश्चर्य मुझे उनकी वह निर्निमेष दृष्टि देख कर हुआ। मैंने अब तक किसी भी ऐसे शरीरधारी से भेंट नहीं की थी जो लगातार दो घंटे बिना पलक मारे ताक सके। क्रमशः मुझे मानना ही पड़ा कि यदि योगी की आँखें इतनी देर तक खुली बनी रही हैं तो वे सचमुच ही कुछ भी देखती नहीं हैं। उनका मन यदि काम कर भी रहा हो तो उसको इस पार्थिक जगत का भान न होगा। ज्ञान होता था कि उनकी शारीरिक शक्तियाँ पूर्ण रूप से सुप्त हैं। बीच बीच में मोती जैसे एक दो आँसू उनकी आँखों से ढरकते थे। पलकों की गति हीनता के कारण उनके आँसू भी स्वाभाविक रूप से आँखों से बाहर नहीं आते थे।

एक छिपकली धीरे धीरे उनके निकट आई और कम्बल पर से हो कर फिर योगी के एक पाँव पर से रेंगती हुई पीछे की ओर चली गई। यदि वह किसी पथरीली दीवार पर चलती तो भी योगी के शरीर की अपेक्षा अधिक निश्चल भित्ति उसको न मिलती। बीच बीच में मक्खियाँ उनके चेहरे पर बैठ जाती थीं किन्तु उनके शरीर में उसकी कोई भी प्रतिक्रिया नहीं दिखाई देती थी। यदि वे किसी लोहे की मूर्ति पर बैठ जातीं तो भी वही नतीजा देखने में आता।

मैं उनकी साँसों की गति देखने लगा। वह बिलकुल ही मन्द थी। इतनी मन्द कि वह मुश्किल से जानी जा सकती थी। साँसों की ध्वनि सुनाई तो नहीं पड़ती थी पर वह एकदम क्रमबद्ध थी। यही एक बात ऐसी थी जिससे उनके जीवित होने का प्रमाण मिलता था।

इस इन्तजारी के बीच ही में उस प्रभावशाली मूर्ति के एक दो फोटो उतार लेने का मैंने निश्चय किया। मैंने अपना जेबी केमरा निकाला और अपनी जगह से उनके चेहरे पर केमरे के लेन्स को केंद्रीभूत करना चाहा। कमरे में रोशनी अनुकूल नहीं थी अतः मैंने एक-दो फोटो खींचे।

मैंने घड़ी की ओर ताका तो पूरे दो घंटे बीत चुके थे और अब भी योगी की समाधि के टूटने की कोई सूरत नजर नहीं आती थी। उनकी वह अचलता आश्चर्यजनक थी।

इस विचित्र योगी से भेंट करने के लिए मैं दिन भर प्रतीक्षा करने को तय्यार था। पर योगी के सेवक ने पास आकर हमारे कान में कहा कि अब प्रतीक्षा करना व्यर्थ है। एक-दो दिन बाद फिर आने पर शायद भेंट हो सके। परन्तु उस बार भी भेंट हो ही जायगी यह बात निश्चित रूप से वह नहीं बतला सका।

अपने उद्देश्य में असफल होकर हमने आश्रम छोड़ा और शहर की ओर क़दम बढ़ाया। मेरी उत्सुकता किसी प्रकार कम नहीं हुई, उलटे वह और तेज़ हो गई।

दो दिन तक मैं मौनीबाबा के सम्बन्ध में विशेष जानकारी प्राप्त करने में लगा रहा। मेरी जाँच का सिलसिला बड़ा ही अस्तव्यस्त रहा। कुछ बिखरी हुई बातें ही मालूम हो सकीं। हमारा यह प्रयत्न योगी के सेवक से लम्बी जिरह करने से शुरू हो कर एक पुलिस के दरोगा से चन्द मिनट की मुलाकात करने तक समाप्त हुआ। इस तरीके से मौनीबाबा की संक्षिप्त जीवनी का मुझे पता लग गया।

मौनीबाबा लगभग ८ वर्ष पूर्व मद्रास में पधारे थे। कोई जानता न था कि वे कौन हैं और कहाँ से आये हैं। इस समय उनकी कुटिया के पास जो खेत है उसी से सटी हुई एक बंजर भूमि थी। वहीं उन्होंने अपना डेरा जमाया। उनका पता आदि जानने की उत्सुकता को शान्त करने के लिए कुछ लोगों ने विफल प्रयत्न भी किये। वे किसी से बोलते न थे, न किसी की

परवाह करते थे और भूल कर भी किसी साधारण बातचीत में भी भाग न लेते थे। कभी कभी कमंडल उठा कर भिक्षा माँग लाते।

इस नीरस परिस्थिति में उसी बंजर भूमि पर वे नियमित रूप से रहने लगे। गर्मी की कड़ाकेदार धूप और धूल, बरसात की मूसलाधार वृष्टि, जाड़े की सर्दी तथा कीड़े-मकोड़े आदि की उन्होंने कुछ भी परवाह नहीं की। कभी उन्होंने किसी प्रकार के आश्रय की चाह नहीं की और हमेशा मौसमी परिवर्तनों और बाह्य परिस्थितियों की ओर ध्यान नहीं दिया। उनके सिर पर किसी भी प्रकार की छाँह न थी और न बदन पर कोई कपड़ा था। उनकी सारी संपत्ति एक छोटी लँगोटी मात्र थी। वे सदा एक ही आसन पर बैठते थे। ऐसे योगी के लिए जो खुले स्थान में बैठ कर बड़ी देर तक निर्विकल्प समाधि में लीन होना चाहे मद्रास नगर के निकट का कोई स्थान कितना प्रतिकूल होगा यह कहने की आवश्यकता नहीं है। पुराने ज़माने में भारतवर्ष में ऐसे योगियों की बड़ी ही खातिरदारी होती थी, पर इस ज़माने में ऐसे किसी व्यक्ति के लिए जंगल, पहाड़ी गुफाएँ या एकान्त कुटी आदि को छोड़ उपयुक्त स्थान और कहाँ प्राप्त हो सकता है?

अतः इस अजीब योगी ने ऐसी प्रतिकूल जगह क्यों पसन्द की? एक घृणित घटना से इस आचरण का मर्म लोगों पर प्रकट हुआ था।

एक दिन कुछ नौजवान गुंडों ने इस योगी को देख पाया और वे उन्हें बहुत ही दिक करने लगे। निन्दनीय मुस्तैदी के साथ वे हर दिन शहर से चलते और बेचारे मौनीबाबा पर पत्थर, कूड़ा-करकट आदि की बौछार करते और बेहूदी गाली-गलौज का तो कोई ठिकाना ही न रहता। यद्यपि योगी उन सबकी खूब ही खबर लेने की ताकत रखते थे, वे टस से मस न होते और सारी यातनाएँ बड़ी शान्ति से सहन किया करते थे। चूँकि उन्होंने मौन दीक्षा ली थी गुंडों को फटकार सुनाने के लिए भी मुँह नहीं खोलते थे।

उन ऊधमी पाजियों की शैतानी का तब अन्त हुआ जब एक दिन एक भलेमानस ने उनको इस करतूत में लगे हुए देखा। साधु की यह दुर्गति

उनसे देखी नहीं गई। तुरन्त मद्रास लौट कर उन्होंने पुलिस को खबर दी और उस मौन असहाय योगी की रक्षा की याचना की। पुलिस से मदद मिली और वे घृणित बदमाश उस दिन से लापता हो गये।

इसके बाद पुलिस के एक अफसर ने योगी के बारे में कुछ पूछ ताँछ करने की ठानी। लेकिन उसे एक भी ऐसा आदमी नहीं मिला जो योगी को जानता हो। लाचार होकर उसे योगी से ही प्रश्न करने पड़े और इसमें अपनी अफसरी के सारे अधिकार से उसने प्रश्नों का जवाब तलब किया। बहुत देर तक योगी संकोच में पड़े रहे। फिर एक तख्ते पर अपना निम्न संक्षिप्त परिचय लिख दिया—'मैं मरकयार का चेला हूँ। मेरे गुरु ने मुझे मैदानों को पार कर दक्षिण की ओर मद्रास जाने का आदेश दिया था। उन्होंने इस जगह का पूरा वर्णन किया था और बताया भी था कि मुझे यह जगह कैसे मालूम हो सकेगी। उन्होंने मुझे आदेश दिया था कि मैं यहीं पर रह कर अपना योगाभ्यास तब तक जारी रक्खूँ जब तक कि मुझे पूरी सिद्धि प्राप्त न हो जाय। मैंने सांसारिक जीवन को तिलांजलि दे डाली है और मेरी यह प्रार्थना है कि आप लोग मुझे अपने भाग्य पर छोड़ दें। मद्रास की बातों में मुझे कोई दिलचस्पी नहीं है और अपने आध्यात्मिक मार्ग पर आरूढ़ होने के सिवा मेरी कोई और चाह नहीं है।'

पुलिस अफसर को यह जान कर बड़ी ही खुशी हुई कि योगी उच्च कोटि के फ़क़ीर हैं। उन्होंने योगी की चौकसी करने का भार अपने ऊपर ले लिया। उनको पता चला कि मरकयार एक सिद्ध फक़ीर थे जिनकी मृत्यु कुछ ही दिन पहले हो गई थी।

एक पुरानी अंग्रेजी कहावत है कि 'बुराई में भी अच्छाई होती है'। इस घृणित घटना का सुपरिणाम यह हुआ कि मद्रास के एक धनी और भक्त नागरिक को मौनीबाबा का पता लगा। उन्होंने मौनीबाबा से विनती की कि उनके रहने के लिए एक सुन्दर मकान का प्रबन्ध कर दिया जाय, पर योगी इस प्रस्ताव को भला कब मानने वाले थे! अन्त में इस नये भक्त ने योगी

के लिए उसी खेत में आजकल जो कुटी है उसे बनवाया था। उसका बहुत अच्छा छप्पर छवाया गया जिससे मौसमी परिवर्तनों की क्रूरता से उनकी अच्छी तरह रक्षा हुई।

नये भक्त ने अपने गुरु की टहल आदि के लिए एक नौकर भी तैनात कर दिया। अतः अब योगी को भीख माँगने की कोई ज़रूरत नहीं पड़ती थी। सारी भोजन सामग्री का यह नौकर ही प्रबन्ध कर देता था। कोई भी नहीं कह सकता कि योगी के गुरु मरकबार को पहले से ही मालूम था या नहीं कि उनके शिष्य को एक तुच्छ घटना के परिणामस्वरूप इतना सुभीता मिलेगा लेकिन यह बात तो तय है कि शिष्य की मौजूदा हालत पहली स्थिति से कहीं सुखद सिद्ध हुई।

मुझे मालूम हुआ कि मौनीबाबा का कोई भी चेला नहीं है और वे किसी को भी अपना चेला नहीं बनाना चाहते हैं। वे साधना द्वारा मुक्ति प्राप्त करने वाले एकान्तवासी विरक्त योगियों की कोटि के हैं। इस 'स्वीय-मुक्ति' में यदि कोई लाभ भी हो, तो भी हम पश्चिमी व्यक्तियों की नज़र में यह निरा स्वार्थ जँचेगा। तब भी जब उस मतवाले व्यक्ति के साथ मौनीबाबा के दयापूर्ण बर्ताव का ध्यान आता है, जब गुंडों से बदला लेने से उनकी विमुखता की याद आती है तो चकित हो जाना पड़ता है कि ऐसे योगिवर को स्वार्थी कैसे कहें!

× × ×

अन्य दो आदमियों को साथ लेकर मौनीबाबा से भेंट करने की मैंने दुबारा चेष्टा की। मेरे साथियों में एक तो मेरा दुभाषिया था और दूसरे मेरे स्नेही योगी ब्रह्म थे। ब्रह्म ने मुझे बहुत कुछ सिखा दिया था। वे कभी भी शहर में प्रवेश करने के इच्छुक नहीं हैं; लेकिन जब मैंने अपनी चाह उन पर प्रकट की और अपने साथ चलने की प्रार्थना की तो बिना किसी प्रकार की आपत्ति उठाये वे राज़ी हो गये।

अहाते में हमें एक और आगन्तुक मिले। वे अपनी बड़ी मोटर सड़क

पर छोड़ कर खेतों को पार करते हुए उस कुटी पर उसी उद्देश्य से आये थे जिससे मैं वहाँ पहुँचा था। उनको भी मौनीबाबा से भेंट करने की बड़ी लालसा थी। उनसे मेरी थोड़ी बातचीत हुई। उन्होंने मुझको बताया कि वे हैदराबाद निज़ाम के मातहत गदवाल नामक एक छोटी रियासत की रानी के भाई हैं। वे भी योगी के अभिभावकों में से एक थे। योगी के आश्रम के खर्च के लिए एक नियत रकम वे हर साल भेजा करते थे। वे कुछ दिन के लिए मद्रास आये हुए थे और योगी के दर्शन करके उनसे आशीर्वाद पाये बिना वे घर लौटना नहीं चाहते थे। योगी के आशीर्वाद की महिमा के बारे में उस आगन्तुक ने मुझे एक घटना बताई।

गदवाल दरबार की किसी भद्र महिला के एक लड़का था। उस बच्चे को एक खतरनाक बीमारी हो गई। खुशकिस्मती से मौनीबाबा की महिमा उन्हें मालूम हुई। उस माता की ऐसी उत्कंठा हुई कि वह मद्रास के सफ़र पर चल पड़ी और योगी का दर्शन किया। उनसे माता ने प्रार्थना की कि वे अपने अनुग्रह से बच्चे को बचावें। योगी ने आशीर्वाद दिया। उसी दिन से अपूर्व रूप से बच्चे की हालत सुधरने लगी और जल्द ही लड़का चंगा हो गया। रानी ने यह खबर सुनी तो उन्होंने स्वयं भी योगी का दर्शन किया। उन्होंने मौनीबाबा को ६०० रु० की थैली भेंट करनी चाही पर योगी ने उसे लेने से साफ़ इनकार कर दिया। रानी के ज़ोर देने पर योगी ने लिख कर बता दिया कि वह रकम उनकी कुटी को सुधारने में लगाई जाय और कुटी के चारों ओर एक घेरा बनवाया जाय ताकि उनके एकान्त में किसी प्रकार की विघ्न-बाधा न पहुँचे। रानी ने इसका इन्तज़ाम करा दिया और फलतः आज बाँसों का एक घेरा खड़ा है।

टहलुए ने फिर हमें भीतर जाने दिया। अब भी मौनीबाबा उसी प्रकार की समाधि में लीन दिखाई पड़े।

हम फर्श पर चुपचाप बैठ गये और संगमरमर की वेदी पर आसीन उस दिव्य मूर्ति के सामने बड़ी शान्ति के साथ प्रतीक्षा करने लगे। एक घंटा बीत

गया और दूसरा घंटा भी आधे से कुछ अधिक ही बीता होगा कि योगी के शरीर में चेतना का बोध होने लगा। उनकी साँसें अधिक गहरी होती गईं और उसके चलने की ध्वनि भी सुनाई देने लगी। पलकें हिलने लगीं, पुतलियाँ भयानक रूप से फिरने लगीं और उनकी सफेदी चमकने लगी। फिर आँखें अपनी साधारण स्थिति को पहुँच गईं। उनके बदन के कुछ कुछ हिलने का भी पता चला।

पाँच मिनट और बीते। उनकी आँखों में वह नूर आ गया जिससे हमें अनुमान हुआ कि उनको चारों ओर का कुछ भान हो रहा है।

उन्होंने बड़े ग़ौर से दुभाषिए की ओर देखा, अचानक सिर घुमाकर ब्रह्म की ओर ताका, फिर उस नये आगन्तुक को और अन्त में मुझे ताका।

मैंने उससे लाभ उठाकर एक पेंसिल और कागज़ उनके चरणों के पास रक्खा। उन्होंने कुछ संकोच में आकर फिर बड़े बड़े तामिल अक्षरों में लिख दिया—'कुछ दिन पहले किसने आकर फोटो उतारने की चेष्टा की थी?'

मुझे लाचार होकर अपना अपराध स्वीकार करना पड़ा। हक़ीक़त में मेरी वह कोशिश सफल नहीं हुई थी क्योंकि तसवीर ठीक नहीं उतरी थी। मौनी बाबा ने फिर लिखा:

'गहरी समाधि में रहने वाले योगियों के पास फिर कभी जाने पर भूल कर भी ऐसी बातों से उन्हें बाधा न पहुँचाना। मेरी बात छोड़ दीजिये, लेकिन दूसरे योगियों से मिलने जाने के लिए मैं तुम्हें सचेत किये देता हूँ। इस प्रकार के हस्तक्षेप से उनको जोखिम पहुँच सकती है। वे तुम्हें शायद शाप भी दें।'

यह स्पष्ट था कि किसी ऐसे योगी के एकान्त में दखल देना उनका एक प्रकार से अनादर करना था। अतः मैंने उनसे माफ़ी माँगी।

अब गढ़वाल की रानी के भाई ने अपना निवेदन किया। जब उनका कहना समाप्त हुआ तो मैंने भी कुछ कहने की हिम्मत की—"भारतवर्ष के

प्राचीन विज्ञान के प्रति मेरी गहरी श्रद्धा है। समुद्र पार मैंने सुन लिया था कि अब भी भारतवर्ष में योगसिद्ध महात्मा लोग मौजूद हैं। उनके ही दर्शन के लिए मैं भटक रहा हूँ। क्या आप मेरे योग्य कोई बात बताने का अनुग्रह करेंगे ?"

योगी मूर्तिवत् अचल बैठे रहे। उनके चेहरे पर मेरे अनुकूल या प्रतिकूल किसी प्रकार की भावना की छाया नहीं फैली। मुझे भय हुआ कि शायद मेरी प्रार्थना बेकार हो गई क्योंकि वे सम्भवतः जड़वादी पश्चिम की सन्तान को ज्ञान के लवलेश के भी योग्य नहीं समझते थे। शायद मेरी फोटो उतारने की चेष्टा से मुझसे उन्हें घृणा तो पैदा नहीं हुई ? एकान्त सेवी मौनी योगियों के संप्रदाय के इस योगिवर से एक विदेशी जाति के नास्तिक के लिए ज्ञान पाने की आशा करना दुराशा मात्र तो नहीं है ? मेरे मन ही मन एक प्रकार की खीझ और अप्रसन्नता पैदा हुई।

लेकिन मेरी यह निराशा असामयिक थी क्योंकि कुछ देर बाद मौनीबाबा ने पेंसिल उठा कर कागज़ पर कुछ लिख दिया। जब वे लिख चुके तो झुक कर मैंने उसे ले लिया और दुभाषिए के हाथों में रक्खा। धीरे-धीरे उसने अनुवाद किया—'समझने के लिए है ही क्या ?' उनकी लिखावट को पढ़ना बहुत ही कठिन था।

खेद में आकर मैं बोल उठा—"दुनिया में न जाने कितनी समस्याएँ सुलझाने के लिये हैं।"

योगी के ओठों पर एक मंद मुसकान थिरकती हुई दिखाई दी। उन्होंने पूछा :

"जब तुम अपने आप को ही नहीं जानते हो तो दुनिया को समझने की झूठी आशा बाँधे क्यों घूमते हो ?"

वे सीधे मेरी आँखों की ओर ताक कर देखने लगे। मुझे भान हुआ कि उनकी उस स्थिर दृष्टि के पीछे कोई छिपा हुआ ज्ञान का खज़ाना है, ऐसे मर्मों का कोई भांडार है जिसकी वे बड़ी सावधानी के साथ रखवाली कर रहे हों। इस अजीब विचार का मैं कोई कारण तो नहीं बता सकता।

मैं साहस करके यही कह सका—"फिर भी मैं बड़ा ही हैरान हो गया हूँ।"

"जब निर्मल मधु की अमन्द धारा ही तुम्हारी प्रतीक्षा कर रही है तुम ज्ञान-मकरंद के बिन्दुओं को चूसने वाली मधुमक्खी के समान यत्र-तत्र क्यों भटकते हो!"

उनके इस जवाब को सुन कर मेरा जी ललचा गया। वह जवाब किसी प्राच्य संतान के लिए एकान्ततया पर्याप्त होता। लेकिन यद्यपि उसकी मार्मिक अस्पष्टता मुझे एक सुमधुर कविता के समान मुग्ध कर रही थी तिस पर भी जब जीवन की समस्याओं का उपयोगी समाधान उसमें ढूँढ़ने लगा तो अस्पष्टता के धुँधलेपन के सिवा कुछ भी हाथ नहीं लगा।

"लेकिन उस मधु-स्रोत की प्राप्ति के लिए कहाँ खोज करूँ!"

"अपनी ही आत्मा में खोज कर देखो। तुम्हारे अंतरतम तल में ही वह सद्-वस्तु तुम्हें भासित होगी।"

"मुझे तो अविद्या का अंधकार ही नजर आता है।"

"अविद्या तुम्हारे विचारों को ही आवृत कर रही है।"

"स्वामी जी, माफ कीजियेगा। आप के जवाब से मैं और भी अंधेरे में गिरा जा रहा हूँ।"

मेरे इस दुस्साहस को देख कर मौनीबाबा मुस्करा उठे। थोड़ी देर तक किसी संकोच में पड़े रहे। भौंहें चढ़ाकर लिख डाला:

"तुमने ही अपने को इस अविद्या में फँसा हुआ समझ लिया है। फिर अपने को ज्ञान प्राप्ति की ओर अग्रसर करते रहने से एक दिन ज्ञान उदय अवश्य होगा। इसी का नाम स्वरूपानुसंधान या आत्म-बोध है। विचारधारा उस बैलगाड़ी के समान है जो आदमी को पहाड़ी गुफा के अंधेरे में ले जाती है। उसे पीछे की ओर घुमा लो तो फिर गाड़ी के दिन के प्रकाश में पहुँचने में क्या देरी लगेगी!"

मैंने उनकी बातों पर मनन किया। वे अब भी मुझे कुछ कुछ चकित कर

रही थीं। यह देखकर मुनि ने फिर काग़ज़ों के तख्ते के लिए इशारा किया और कुछ देर पेंसिल को यों ही पकड़े रहे। तब लिख दिया :

"यह प्रत्याहार—यह प्रत्यागमन—योग की उत्तमोत्तम प्रक्रिया है। समझे ?"

मुझ पर किसी प्रकाश की आभा फैलने लगी। मुझे भान हुआ कि इन बातों के मनन के लिए यदि मुझे पर्याप्त समय मिला तो हम एक दूसरे को अच्छी तरह समझ लेंगे। अतः इस बात पर और अधिक ज़ोर देने का विचार मैंने त्याग दिया। मैं उनकी ओर इतने ध्यान पूर्वक देख रहा था कि एक नये आगन्तुक का, जिन्होंने खुले हुए दरवाज़े से लाभ उठा कर भीतर प्रवेश किया था, मुझे पता ही नहीं चला। उनकी उपस्थिति का ज्ञान मुझे तभी हुआ जब उन्होंने मेरे कान में एक अजीब बात कह डाली। वे मेरी बगल में ही बैठे थे। मौनीबाबा के एक उत्तर पर मनन करने में मैं व्यग्र था, उनके संक्षिप्त अर्थगर्भित वचनों के कारण कुछ कुछ निराश सा हो रहा था। इतने ही में किसी की कुछ विचित्र मार्मिक बातें मेरे कानों में पड़ीं—"मेरे गुरुदेव तुम्हें वह उत्तर दे सकते हैं जिसकी प्रतीक्षा में तुम बैठे हो।"

मैंने घूम कर उस आगन्तुक की ओर देखा। उनकी उम्र करीब ४० वर्ष के लगभग होगी। विचरने वाले योगियों के से गेरुआ वस्त्र वे पहने हुए थे। उनका चेहरा मँजी हुई पीतल के समान चमक रहा था। वे खूब हट्टे-कट्टे थे। भुजाएँ उनकी लम्बी और कंधे विशाल थे। उनके रूप-रंग से रौब टपका पड़ता था। उनकी पतली और सुडौल नाक तोते की चोंच सी थी। उनकी आँखें छोटी और अनवरत हँसी के कारण कुछ मुँदी हुई सी थीं। वे आराम से बैठ गये और आँखें मिलते ही मेरी ओर देख कर शिष्टता के साथ हँसने लगे।

लेकिन मैं किसी ऐरे-गैरे से कोई बेतुकी बातचीत शुरू करके अपनी धृष्टता और अशिष्टता का परिचय देने की हिम्मत नहीं कर सकता था। अतः मैंने उनकी ओर पीठ फेर कर मौनीबाबा पर ही अपना सारा ध्यान जमा दिया।

मेरे दिमाग़ में और एक प्रश्न उठा। शायद वह बिलकुल ही असम्बद्ध था या मेरे दुस्साहस का परिचायक मात्र था। बोला :

"स्वामी जी, दुनिया मदद चाहती है। आप जैसे महानुभावों को इस प्रकार के एकान्तवास में लीन होकर दूर रहना क्या सोहता है?"

उनके प्रशान्त मुखमंडल पर परिहास की एक छाया झलक गई। बोले :

"बेटा, जब तुम अपने आपको ही समझ नहीं सकते फिर मेरे व्यवहार का अर्थ स्वप्न में भी क्या समझ सकोगे? आत्मा की बातें करने से कुछ भी लाभ हाथ नहीं लगता। योगाभ्यास से अपने ही अन्दर गोता लगाने की चेष्टा करो। इस मार्ग पर आरूढ़ होकर तुम्हें बड़ी दिलेरी के साथ आगे बढ़ना होगा। तब कहीं तुम्हारी सारी शंकाएं अपने आप छिन्न-भिन्न होंगी।"

फिर भी आखिरी बार उन्हें आकृष्ट करने की मैंने चेष्टा की। बोला :

"दुनिया इस समय की अपेक्षा और अधिक गहरी ज्योति के लिए लालायित है। मैं उसको पाकर औरों के साथ बाँट लेना चाहता हूँ। मैं क्या करूँ?"

"जब तुम पर सत्य की शुभ्र ज्योत्स्ना खिल उठेगी तुम्हें ठीक ठीक पता चलेगा कि संसार की सेवा के लिए तुम्हें क्या करना होगा? उस समय ऐसी सेवा करने की ताकत की कोई कमी भी नहीं रहेगी। जब फूल में शहद है, तो मक्खी को स्वयं ही पता चल जायगा। यदि कोई मानव आत्म-विज्ञान और आत्म-बल का स्वामी हो जाय तो फिर उसको लोगों की खोज में नहीं निकलना पड़ेगा। बिना माँगे ही सरस भौंरे उसके चारों ओर मधु की आशा लगाये मँडराने लग जायँगे। अपनी आत्मा की साधना तब तक करते रहो जब तक उसका पूरा पूरा रहस्य तुम पर खुल न जाय। और किसी दूसरी शिक्षा की कोई आवश्यकता नहीं है। यही एक बात करनी है।"

इसके बाद उन्होंने मुझे जता दिया कि अब उनके ध्यान में लीन होने का समय आ गया है। मैंने आखिरी संदेश की याचना की।

मौनीबाबा ने मेरे सिर के ऊपर से शून्य आकाश की ओर ताका। एक मिनट बीतने पर कागज़ पर उत्तर लिखकर मेरे पास फेंक दिया। हमने पढ़ा तो देखा कि उस पर लिखा हुआ था : "तुम्हारे यहाँ आने से मैं बहुत प्रसन्न हुआ हूँ। इसी को मेरी दी हुई दीक्षा समझो।"

मैंने इस उत्तर का पूरा पूरा अर्थ समझ भी न पाया था कि इतने में कोई अजीब शक्ति मुझ में अचानक पैठती हुई प्रतीत हुई। वह शक्ति मेरे मेरुदण्ड में से होकर बहने लगी। मेरा गला कुछ कड़ा हो गया और सिर कुछ ऊपर उठा। मालूम पड़ा कि मेरी संकल्प शक्ति चरम सीमा को पहुँच गई। मुझे अपने ही भीतर आत्म-विजय के लिए और इस शरीर को परम पुरुषार्थ साधने के अपने शुभ संकल्प के अनुकूल बनाने के लिए उद्बोध करने वाली एक प्रबल प्रेरणा का बोध हुआ।

अपने ही आप मुझे भान होने लगा था कि यह पुरुषार्थ और ये आदर्श मेरी ही स्वच्छ अन्तरात्मा से प्रस्फुटित हैं और वही शाश्वत आनन्द प्रदान कर सकती है।

मुझे एक अजीब अनुभूति होने लगी कि हो न हो किसी अज्ञात और अदृश्य ढंग से मौनीबाबा के शरीर से मुझ में कोई शक्ति प्रवेश करके प्रसारित हो रही है। क्या इसका यह अर्थ हो सकता है कि मौनीबाबा अपनी ही संसिद्धि का एक अंश कृपापूर्वक मुझे प्रदान कर रहे थे ?

योगी की आँखें फिर स्थिर हो गई और वे एकदम शून्य सी प्रकट होने लगीं। अपने स्वाभाविक आसन पर स्थिरता के साथ आरूढ़ होते ही उनका शरीर फिर से तन गया। मुझे साफ़ ही दिखाई देने लगा कि वे अपने ध्यान को आत्मा के अंतरतम तल पर पहुँचा रहे थे, जो कदाचित विचार से भी परे है; वे अपनी चेतना को आत्मा की उस गम्भीरता में निमग्न कर रहे हैं जो दुनिया से भी बढ़ कर उनको सुखद और प्रिय मालूम होती थी। तब क्या ये सच्चे योगी हैं ? कदाचित् दुनिया के लिए कुछ मानी रखने वाली—हाँ मुझे कुछ कुछ ऐसा ही अनुमान होने लग गया—किसी रहस्य भरी आत्म-

गवेषणा में वे लीन तो नहीं हो गये हैं ? कौन कह सकता है कि बात क्या थी ?

जब हम अहाते से बाहर हुए तो योगी ब्रह्म मेरी ओर घूम कर प्रशान्त स्वर में कहने लगे—"यह योगिवर यद्यपि पूरा सिद्धि को अभी प्राप्त नहीं हुए हैं तो भी बहुत ही पहुँचे हुए हैं। उन्हें विभूतियाँ प्राप्त हो गई हैं पर वे अपने आत्म-साधन में ही अधिक व्यस्त हैं। उनका सुन्दर शरीर इस बात का अचूक गवाह है कि उन्होंने बहुत काल तक हठयोग की साधना की है। लेकिन अब तो यह भी स्पष्ट भासने लगा है कि राजयोग में भी इन्होंने काफ़ी उन्नति की है। मैं इनको पहले से ही जानता हूँ।"

"कब से ?"

"जब यहाँ कुटिया नहीं बनी थी और ये खुले मैदान में रहते थे तब कुछ वर्ष पूर्व मैंने इन्हें पहचाना था। मैंने जान लिया था कि वे योग मार्ग का अनुसरण करने वाले, अभ्यास दशा के योगी हैं। इन्होंने मुझे यह भी लिख कर बता दिया था कि वे फौज़ में एक सिपाही थे। जब इनकी नौकरी की अवधि पूरी हुई तो संसार से विरक्त हो गए और एकान्त सेवन करने लगे। इसी अवस्था में इनकी भेंट प्रसिद्ध फ़क़ीर मरकयार से हुई थी और ये मरकयार के चेले बन गये।"

हम चुपचाप अपने ही विचारों में डूबे हुए खेत को पार कर धूल भरी सड़क पर पहुँच गये। कुटी में मुझको जो विचित्र अनुभव हुआ था उसका मैंने किसी से ज़िक्र भी नहीं किया। जब तक कि यह मेरे दिल में तरोताज़ा रहे, उसकी गूँज सुनाई दे तभी मैं उस पर ध्यान पूर्वक मनन करना चाहता था।

मैंने मौनीबाबा को फिर कभी नहीं देखा। उनकी प्रशान्ति में बाधा पड़ना उन्हें पसन्द नहीं था और मेरा कर्त्तव्य था कि मैं उनकी इस इच्छा का आदर करूँ। अगम्य और दुरूह आत्मचिन्ता में लीन उस योगिवर से मुझे अलग होना ही पड़ा। वे कोई संप्रदाय या संस्था स्थापित नहीं करना चाहते थे, न

चेलों को अपने पास इकट्ठा करना ही उनको पसन्द था। उनकी परम अभिलाषा यही प्रतीत होती थी कि वे चुपचाप बिना किसी के ध्यान को आकृष्ट किये इस दुनिया से कूच कर जावें। मुझसे उन्हें और कोई बात कहनी न थी। वे हम पश्चिमी व्यक्तियों के समान न थे जो बहुधा अपनी वाक्पटुता के प्रदर्शन के लिए ही बातचीत करने को एक महत्वपूर्ण विषय समझते हैं।

८

जगद्गुरु श्री शंकराचार्य

मद्रास जाने वाली सड़क पर पहुँचने से पूर्व कोई मेरे निकट आकर खड़ा हो गया। मैंने घूम कर देखा। वे ही गेरुआवस्त्रधारी योगी जिनसे अभी अभी मौनीबाबा की कुटी में भेंट हुई थी, मुस्कराते हुए मुझे कृतार्थ कर रहे थे। उनका मुख कानों तक विकट हँसी में फैल गया था। आँखें उनकी सिकुड़ कर बन्द सी हो गई थीं।

मैंने पूछा—"क्या मुझसे कुछ कहना है?"

विशुद्ध अंग्रेज़ी में बोलते हुए उन्होंने उत्तर दिया :

"जी हाँ! क्या मैं आपसे पूछ सकता हूँ कि हमारे देश में आप किस उद्देश्य से घूम रहे हैं?"

इस अनुचित हस्तक्षेप से कुछ देर तक मैं संकोच में पड़ गया। इच्छा हुई कि कुछ अंटसंट बक डालूँ।

"कुछ नहीं; यों ही भटक रहा हूँ।"

"नहीं, मुझे तो मालूम होता है कि आपको हमारे महात्माओं की सोहबत पसन्द आती है।"

"हाँ, एक हद तक।"

"जी, मैं भी एक योगी हूँ।"

उनके जैसे हट्टे कट्टे आदमी मैंने बहुत कम देखे हैं। पूछा :

"कब से आप योगी हुए हैं ?"

"तीन साल हुए।"

"क्षमा कीजियेगा; आपको शायद इस मार्ग में शारीरिक कठिनाइयाँ झेलनी नहीं पड़ीं।"

वे गर्व के साथ तनकर सतर्क रूप से खड़े हो गये। वे नंगे पैर थे, अतः तनकर खड़े होने पर उनकी एड़ियों के मिलने की आहट सुनाई पड़ी।

"सात साल तक मैं फ़ौज में सिपाही रह चुका हूँ।"

"सच !"

"जी हाँ। मेसोपोटामिया के धावे में हिन्दुस्तानी पलटनों के साथ मैंने भी युद्ध में भाग लिया था। युद्ध के बाद पढ़ा-लिखा देखकर और मेरी योग्यता पर रीझ कर अफसरों ने मुझे 'मिलिटरी एकाउन्ट' विभाग में नियुक्त कर दिया।"

उनकी इस अकारण आत्म-प्रशंसा को सुनकर मैं अपनी हँसी रोक नहीं सका। योगी बोलते गये—"पारिवारिक असुविधाओं के कारण मुझे नौकरी छोड़नी पड़ी। बाद को कई मुसीबतों का सामना करना पड़ा। इनके मारे मैं बहुत तंग आ गया। मेरा मन बदल गया। मैं आत्मोन्मुख बनकर योगी हो गया।"

अपना परिचय-पत्र देते हुए मैं उनसे बोला—"हम एक दूसरे का परिचय तो प्राप्त कर लें।"

तुरन्त योगी ने कहा—"मुझे सुब्रह्मण्य अय्यर कहते हैं।"

"अच्छा सुब्रह्मण्य जी, आपने मौनीबाबा के यहाँ मेरे कान में जो कहा था उसका कुछ खुलासा मैं जान सकता हूँ ?"

"इसी के लिए तो मैं आपको इतनी देर से ढूँढ़ रहा हूँ। आप अपने

सारे प्रश्न हमारे गुरुदेव जी से पूछ लें। सारे हिन्दुस्तान में उनका सा बुद्धिमान और विवेकी दूसरा नहीं है। वे योगियों से भी बढ़े हुए हैं।"

"ऐसी बात है! क्या आपने सारे भारत का भ्रमण किया है? सभी बड़े बड़े योगियों से आपकी भेंट हुई है कि आप एकदम ऐसी बात कह रहे हैं!"

"क्यों नहीं! कितने ही योगियों से मेरी भेंट हुई है। कुमारी अंतरीप से लेकर हिमालय तक सारा देश मेरे पैरों से रौंदा पड़ा है।"

"अच्छा!"

"मेरी बात मानिये। उनका सा दूसरा योगी मुझे अभी तक नहीं मिला। वे महर्षि हैं। मेरी हार्दिक इच्छा है कि आप उनका दर्शन अवश्य करें।"

"किस वास्ते?"

"क्योंकि उन्होंने ही आपसे मेरी भेंट कराई है। आप उन्हीं की प्रेरणा के कारण सुदूर पश्चिम से इस देश तक खिंच आये हैं।"

योगी की ये लम्बी-चौड़ी बातें मुझे अत्युक्तिपूर्ण भासने लगीं। लेकिन इस आदमी की बातों में कुछ ऐसी जान थी कि वे मुझे एक प्रकार से खींचती हुई मालूम हुईं। भावुक व्यक्तियों की अलंकारिक भाषा से, अत्युक्तियों से, मेरा जी घबड़ा उठता है। यह स्पष्ट था कि ये गेरुआवस्त्रधारी योगी बहुत भावुक हैं। उनका स्वर, उनकी चेष्टा, उनकी सूरत, सभी इस बात की गवाही दे रही थीं।

मैंने कुछ रूखेपन के साथ कहा—"आप कह क्या रहे हैं, कुछ समझ में आवे तब न?"

वे मेरे कथन की उपेक्षा करते हुए कहते गये :

"आठ महीने हुए उनसे मेरी भेंट हुई थी। पाँच महीने तक मैं उन्हीं के यहाँ ठहरा। फिर मुझे भ्रमण करने का आदेश दिया गया। मेरा विश्वास है कि आपको उनके बराबर कोई दूसरा नहीं मिलेगा। उनकी आध्यात्मिक विभूति इस कोटि की है कि वे आपके मूक विचारों का भी उत्तर दे सकते हैं।

यदि आप थोड़ी देर तक भी उनके निकट रहें तो उनकी सिद्धि का पता चलते क्या देर लगेगी ?"

"आप सचमुच समझते हैं कि वे प्रसन्नता के साथ मुझे अपनायेंगे ?"

"जी हाँ, अवश्य। उनकी प्रेरणा ने ही मुझे आपके पास यहाँ भेजा है।"

"वे रहते कहाँ हैं ?"

"अरुणाचल पर।"

"अरुणाचल कहाँ है ?"

"एकदम और दक्षिण की ओर, आर्काट जिले के उत्तरी भाग में। मैं आपका पथ-प्रदर्शक बनूँगा। आप मुझे अनुमति दे दें कि मैं आपको वहाँ पहुँचाऊँ। मेरे गुरुदेव आपकी सारी शंकाओं को दूर कर देंगे। आपकी सारी समस्याओं को सुलझा देंगे, क्योंकि उन्हें सच्चा ज्ञान प्राप्त है।"

लापरवाही के साथ मैंने स्वीकार कर लिया—"हाँ भाई, यह तो बड़ी दिलचस्प बात है। लेकिन खेद की बात यह है कि इस समय मैं वहाँ नहीं जा सकूँगा। बोरा-बँधना ठीक-ठाक करके सफर के लिए तैयार बैठा हूँ। शीघ्र ही मुझे उत्तर-पूर्व की ओर रवाना होना है। वहाँ मुझे अपने दो वादे पूरे करने हैं।"

"लेकिन, यह काम सबसे अधिक महत्व का है।"

"खेद है, अब मेरा कुछ वश नहीं है। सब इन्तजाम हो गया है और अब सहज में कुछ भी परिवर्तन नहीं हो सकता। संभव है कि बाद को मैं दक्षिण की भी यात्रा कर लूँ। लेकिन इस वक्त वह यात्रा स्थगित रखनी पड़ेगी।।"

स्पष्ट ही योगी के चेहरे पर निराशा छा गयी।

"देखिये, आप अच्छे मौके को हाथ से खो रहे हैं।"

मैंने ताड़ लिया कि व्यर्थ वाद-विवाद के सिवा और कुछ भी हाथ नहीं लगेगा। अतः उनकी बात काटकर मैं बोल उठा :

"माफ़ कीजिये। मेरा बहुत सा काम यों ही पड़ा हुआ है। धन्यवाद है आपको।"

उन्होंने ज़िद के साथ कहा—"आपकी इस अस्वीकृति को मानने के लिए मैं तैयार नहीं हूँ। कल शाम को फिर आपके दर्शन के लिए आऊँगा। उम्मीद है कि तब तक आपका मन बदलने का शुभ संवाद सुनूँ।"

हमारी बातचीत बीच ही में रुक गई। मैंने गेरुआवस्त्रधारी उस साधु के हृष्ट-पुष्ट शरीर को सड़क पर गायब होते देखा।

जब मैं घर पहुँचा मुझे संदेह होने लगा कि शायद मुझ से भूल हुई है। यदि गुरुदेव की महत्ता चेले के दावे से आधी भी हुई तो दक्षिणी प्रदेश की खाक़ छानना फ़िज़ूल नहीं कहा जा सकता। किन्तु जोशीले चेलों की बातों से मेरा दिल उचट गया था। वे अपने गुरुओं के विजय गीत गाते हैं, उनकी प्रशंसा के पुल बाँधते हैं, पर वे गुरू अन्त में जाँच की कसौटी पर बहुत ही कोरे उतरते हैं। एक बात यह भी थी कि बेचैनी से लगातार कई रातों तक जागने के कारण मेरी नसें ढीली हो गई थीं। मेरी गम्भीरता और मानसिक समता का कुछ लोप सा हो गया था। इसलिए यह विचार अनावश्यक रूप से महत्वपूर्ण मालूम होने लगा कि यह नया सफ़र केवल एक हवाई किला ही सिद्ध न हो।

तिस पर भी दलीलों से मन का विश्वास और भावना का आवेग कभी नहीं मिटता। मेरे दिल में एक विचित्र गुदगुदी पैदा होने लगी। उसकी प्रेरणा में मुझे अनुभव होने लगा कि इस योगी के ज़िद्दी अनुरोध में, अपने गुरू की विलक्षण विभूतियों के आग्रह के साथ बयान करने में, शायद कुछ सच्चाई हो। मुझे बारम्बार भासने लगा कि मैंने अपने आपको धोखे में डाल दिया।

× × ×

नाश्ते का समय था। नौकर ने किसी आगन्तुक की सूचना दी। ये प्रसिद्ध लेखक श्री वेंकटरमणि थे जो कलम की कमाई से रोज़ी चलाने वाले मेरे ही पेशे के एक स्वनामधन्य सज्जन हैं।

मेरे पास कई सिफ़ारिशी पत्र बिखरे पड़े थे। उनको काम में लाने की मेरी तनिक भी इच्छा नहीं थी। तो भी अपने भारत-भ्रमण के प्रारम्भ में बम्बई में उनमें से एक से मैंने काम लिया था। दूसरे का मैंने मद्रास में उपयोग किया क्योंकि उसके साथ कुछ खानगी संदेश सुनाने का भार भी मुझे सौंपा गया था। इस दूसरे पत्र के कारण वेंकटरमणि जी मेरे गरीबखाने के अतिथि हुए।

वेंकटरमणि जी मद्रास विश्वविद्यालय की सेनेट के सदस्य हैं, पर वे देहाती जीवन के उच्च कोटि के उपन्यास और लेखों के लेखक की हैसियत से अधिक विख्यात हैं। मद्रास प्रान्त के लेखकों में अंग्रेज़ी भाषा के द्वारा उच्चकोटि की साहित्य सेवा करने के परिणाम स्वरूप जनता ने इन्हीं को सब से पहले हाथी दाँत का एक स्मृति चिन्ह भेंट कर के इनका आदर किया है।

इनकी रचना-शैली इतनी ललित होती है कि कवीन्द्र रवीन्द्र और इंगलैंड के स्वर्गीय लार्ड हालडेन जैसे महानुभावों ने इनकी बड़ी तारीफ़ की है। इनकी गद्य रचना अति सुन्दर उपमाओं की शृंखला सी जान पड़ती है। इनकी कहानियों में गरीब देहातियों के कारुणिक जीवन की गूँज सुनाई देती है।

जब वे मेरे कमरे में आये तो उनका लम्बा छरहरा शरीर, गोष्पाद जैसी मोटी शिखा, छोटा सा शिर, छोटी ठुड्डी, चश्मेवाली आँखें, सभी ने मेरी दृष्टि को बरबस खींच लिया। उनकी आँखों में उनके कवि, विचारक और आदर्शवादी व्यक्ति होने की झलक एक साथ प्रकट हुई। साथ ही पीड़ित किसानों की करुणामय दुःख-यंत्रणा उनकी आँखों की पुतलियों से क्या ही अच्छी तरह झलक रही थीं!

थोड़े ही समय में मुझे मालूम हो गया कि कितने ही विषयों पर हम दोनों

के विचार मेल खाते हैं। कई विषयों पर आपस में विचार-विनिमय तथा मत-परिवर्तन होने, राजनीतिक विषयों की उपेक्षापूर्ण चर्चा करने और अपनी अपनी रुचि के लेखकों की भरपूर प्रशंसा कर चुकने के पश्चात् मेरे दिल में एकबारगी यह प्रेरणा उठी कि मैं अपनी इस भारत यात्रा का सच्चा उद्देश स्पष्ट रूप से उन पर प्रकट कर दूँ। मैंने अपना उद्देश उनके सामने खोलकर रख दिया और उनसे पूछा कि क्या उनको किसी सच्चे योगी का पता है जो वास्तव में सिद्ध हो। साथ ही मैंने उन्हें यह चेतावनी भी दे दी कि कोरी भभूत रमाने वाले तथा कुछ हाथ की सफ़ाई दिखाने वाले फ़क़ीरों आदि से भेंट करने की मेरी विशेष अभिरुचि नहीं है।

वे इनकारी के रूप में अपना सिर हिलाते हुए कहने लगे :

"अब यह देश ऐसे सच्चे योगियों की मातृभूमि नहीं रह गया है। निरन्तर रूप से बढ़ने वाले जड़ अनात्मवाद तथा सर्वतोमुख अवनति और आध्यात्मिकता की धुँधली ज्योति से भी वंचित पश्चिमी सभ्यता के पंजे में फँसने से हमारे देश में ऐसे महात्माओं का सर्वथा लोप हो गया है। तो भी मेरा पक्का निश्चय है, मेरा दृढ़ विश्वास है कि कुछ सच्चे योगी तो जरूर ही विजन जंगलों में रहते होंगे। लेकिन सारा जीवन उन्हीं की खोज में लगा देने की लगन न होने पर उनका पता लगना अत्यन्त कठिन है। आज-कल हम भारतीयों को ही ऐसी खोज में बहुत दिन दूर दूर तक घूमना पड़ता है। ऐसी हालत में आप जैसे विदेशी के लिए यह कितना कठिन होगा इसका आप सहज ही अनुमान कर सकते हैं।"

मैंने पूछा—"तो फिर क्या कोई आशा नहीं है?"

"कुछ कहा नहीं जा सकता। कौन जाने, शायद आप का भाग्य प्रबल हो।"

किसी भावना से प्रेरित हो कर मैं अचानक पूछ उठा :

"उत्तर आर्काट के पहाड़ों पर रहने वाले एक महात्मा को आप जानते हैं।"

उन्होंने अपनी अनभिज्ञता प्रकट की।

फिर हम साहित्यिक विषयों की चर्चा में मग्न हो गये।

मैं उन्हें एक सिगरेट देने लगा तो उन्होंने शिष्टता के साथ इनकार किया। मैंने एक सिगरेट सुलगाई औ धूम्रपान का आनन्द उठाने लगा।

वेंकटरमणि जी बड़े आवेग के साथ शीघ्रता से लुप्त होने वाली प्राचीन हिन्दू संस्कृति के आदर्शों की प्रशंसा के पुल बाँधते गये। उन्होंने खास कर हिन्दुओं के जीवन की सादगी, समाज सेवा की तत्परता, उनकी जटिलता-रहित रहन-सहन तथा आध्यात्मिक ध्येय आदि का ज़िक्र किया। उनकी हार्दिक इच्छा है कि हिन्दू समाज का जीवन-रक्त चूसने वाले अंध विश्वासों रूपी घुन नष्ट कर डाले जायँ। उनका सबसे बड़ा स्वप्न यह है कि हिन्दुस्तान के देहातों में रहने वाले लाखों लोगों को व्यावसायिक शहरों की मैली गलियों में आकर बसने और वहाँ की गर्द फाँकने से बचाया जाय। हालाँकि हिन्दुस्तान में अभी यह मर्ज़ पूरी तरह से नहीं फैला है तो भी अग्रसोची होने और पाश्चात्य देशों के व्यावसायिक इतिहास का अध्ययन करने के परिणाम स्वरूप वे आज कल की प्रवृत्तियों के अवश्यम्भावी फलों से अच्छी तरह परिचित थे। वेंकटरमणि जी ने मुझ से बताया कि उनका जन्म दक्षिण भारत के एक अत्यन्त प्राचीन ग्राम के एक सम्पन्न कुटुम्ब में हुआ था और उन्हें देहाती जीवन की सांस्कृतिक अवनति और आर्थिक ह्रास को देख कर बड़ा ही दुःख होता है।

वेंकटरमणि जी भोले भाले देहातियों के जीवन को उज्ज्वल करने की कई तदबीरें बड़े प्रेम से सोचते हैं और जब तक उन ग़रीब किसानों को सुख नसीब नहीं होता, वे स्वयं सुखी नहीं हो सकते।

उनके दृष्टिकोण को समझने के लिए, मैंने कान लगा कर बड़ी शान्ति से उनकी बातें सुनीं। अन्त में वे चलने के लिए उठे और उनकी लम्बी मूर्ति सड़क पर जाती हुई आँखों से ओझल हो गई।

दूसरे दिन तड़के ही वे अचानक मेरे यहाँ उपस्थित हुए। मैं चकित
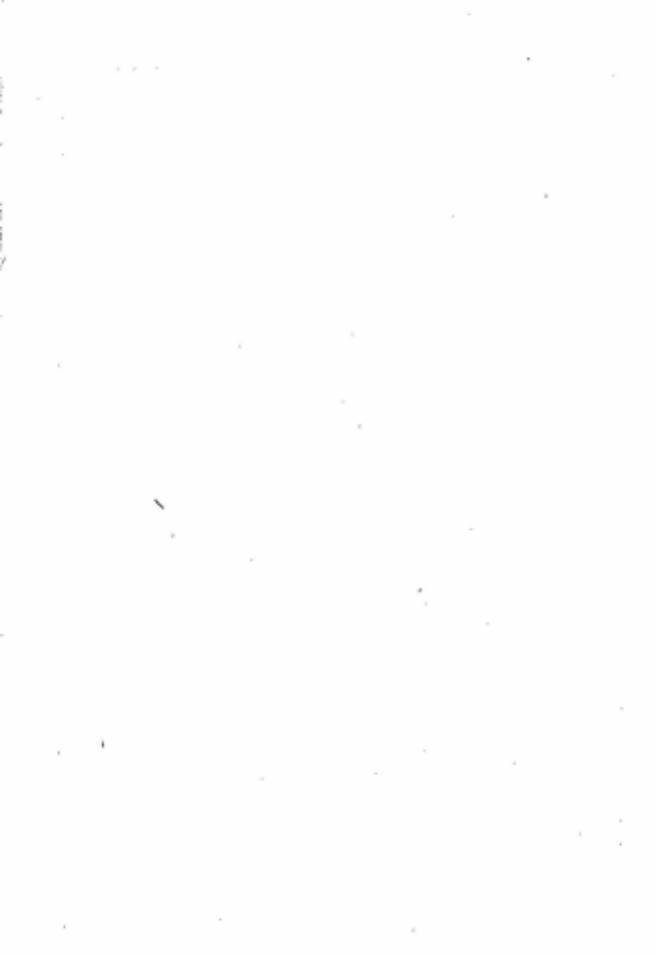
जगद्गुरु श्री शंकराचार्य जी (कुंभकोणम)

हुआ। उनकी गाड़ी बड़ी जल्दी फाटक पर आ पहुँची, क्योंकि उन्हें सन्देह था कि मैं कहीं घूमने न चला जाऊँ। मुझे देखते ही वे बोल उठे :

"कल रात को मुझे खबर मिली कि मेरे सब से बड़े अभिभावक चेंगल-पट में एक दिन तक ठहरेंगे।"

कुछ शान्त होकर वे फिर कहने लगे :

"श्री जगद्‌गुरु, कुम्भकोणम के शंकराचार्य जी, दक्षिण भारत के धार्मिक गुरु हैं। लाखों आदमी उनका बड़े आदर से सत्कार करते हैं और उन्हें ईश्वर का भेजा हुआ आचार्य मानते हैं। मुझ पर उनकी बड़ी कृपा है। उन्होंने मेरे साहित्य प्रेम को काफी प्रोत्साहन दिया है। जब कभी मुझे आध्यात्मिक शान्ति की आवश्यकता होती है मैं उन्हीं की सेवा में उपस्थित होता हूँ। कल मैंने आपसे एक बात छिपाई थी। उसे अब बताये देता हूँ। हम श्री स्वामी जी को अत्यन्त पहुँचा हुआ सिद्ध मानते हैं। पर वे योगी नहीं हैं। वे दक्षिण भारत के हिन्दू संसार के प्रधान आचार्य हैं, सच्चे साधु और बड़े भारी धार्मिक दार्शनिक हैं। इस ज़माने की अनेक आध्यात्मिक विचार-धाराओं से वे भली प्रकार परिचित हैं। स्वयं भी उन्होंने काफी सिद्धि प्राप्त कर ली है। अतः वे सच्चे योगियों को ज़रूर जानते होंगे। वे एक गाँव से दूसरे गाँव, एक शहर से दूसरे शहर, घूमते हुए बहुत लम्बे सफ़र किया करते हैं। अतः ऐसी बातों का उन्हें विशेष ज्ञान होगा ही। जहाँ कहीं वे जाते हैं, महात्मा, साधु-सज्जन आदि उनका आदर सत्कार करके अपने को धन्य मानते हैं। शायद आपको उनसे कोई मतलब की बात मालूम हो जाय। आप उनका दर्शन अवश्य करें।"

"धन्यवाद, आप की यह बड़ी कृपा है। चेंगलपट यहाँ से कितनी दूर होगा?"

"केवल ३५ मील का रास्ता है। लेकिन—?"

"हाँ, लेकिन—?"

"इस बात का सन्देह है कि वे आपसे मिलेंगे या नहीं। मैं अपनी शक्ति भर कोशिश करके देखूँगा। पर यदि—।"

"हाँ, समझ गया। मैं यूरोप का निवासी म्लेच्छ हूँ न ?"

"यदि वे इनकार कर बैठें तो आप बुरा तो न मानेंगे ?"

"जी नहीं; चलिए !"

हलका भोजन करके हम चेंगलपट के लिए रवाना हो गये। जिनसे भेंट करने के लिए मैं जा रहा था उनके बारे में प्रश्न पूछ कर अपने मित्र को मैं तंग करने लगा। मुझे मालूम हुआ कि श्री शङ्कराचार्य जी ओढ़ने-पहनने और खाने-पीने के मामलों में एकदम योगियों के ही समान सादगी से रहते हैं। लेकिन अपनी ऊँची पदवी के कारण, सफर करते समय उनको राजाओं का सा ठाट रखना पड़ता है। जहाँ कहीं वे जाते हैं, उनके पीछे पीछे हाथी, ऊँट आदि का एक खासा दल भी चलता है। पंडित, विद्यार्थी, दूत और नौकर आदि के जत्थे उनके साथ लगे फिरते हैं। हर कहीं, पास-पड़ोस के गाँवों के लोग झुंड के झुंड उनके दर्शन के लिए इकट्ठे होते हैं। कोई आध्यात्मिक, कोई मानसिक, कोई शारीरिक, कोई आर्थिक सहायता के लिए उनसे प्रार्थना करता है। हर दिन धनी लोग हज़ारों रुपयों की उनको भेंट चढ़ाते हैं। लेकिन उन्होंने अपरिग्रह और अस्तेय की दीक्षा ली है। अतः यह सारा धन उचित दान और धर्म में व्यय होता है। गरीबों की हाय हाय को दूर करने, विद्यालयों को प्रोत्साहन देने, जीर्णमंदिरों का पुनरुद्धार करने और ताल-तलैयों की मरम्मत करा कर दक्षिण भारत के नदी-रहित भूमिभागों की पानी की तंगी को दूर करने, आदि सत्कार्यों में वे धन लुटा देते हैं। किन्तु उनका मुख्य कार्य आध्यात्मिक उपदेशक का है। हर एक मंज़िल पर वे लोगों को उनके पूर्वजों के बड़प्पन तथा पवित्र हिन्दू धर्म के निगूढ़ तत्वों को सोचने समझने और अपने जीवन को उदात्त बनाने की ओर प्रवृत्त करते हैं। स्थानीय मंदिर में उनका प्रायः कोई न कोई प्रवचन होता है और उनके पास

शंका समाधान करने के लिए जो झुंड इकठा होता है उसको अलग अलग उत्तर देकर वे संतुष्ट करते हैं।

मुझे विदित हुआ कि आदि शंकर की गद्दी पर आरूढ़ आचार्यों में वे साठवें हैं। इनकी पदवी, प्रभाव तथा महिमा की ठीक ठीक तसवीर खींचने के लिए आदि शंकर के बारे में भी वेंकटरमणि जी से मुझे कुछ प्रश्न पूछने पड़े। कहते हैं कि २००० वर्ष पूर्व आदि शंकर का अवतार हुआ था। वे ऐतिहासिक ब्राह्मण ऋषियों में सबसे बड़े माने जाते हैं। उनको यदि उच्च कोटि का दार्शनिक कहें तो कुछ भी अनुचित न होगा। उन्होंने अपने ज़माने में हिन्दू धर्म को बड़ा ही अव्यवस्थित और पतनोन्मुख पाया। उन्होंने देखा कि उसका आध्यात्मिक अन्तःसत्व शीघ्र ही लुप्त होता जा रहा है। उनकी जीवनी को देखने से यही प्रकट होता है कि वे किसी उद्देश्य को लेकर ही पैदा हुए थे। १८ वर्ष की अवस्था से ही उन्होंने भारत का पैदल भ्रमण शुरू कर दिया था। अपने सफ़र में उन्होंने कई विद्वानों और मठाधीशों से वाद-विवाद किया। हर जगह वे अपने प्रतिपादित सिद्धान्तों का उपदेश करते और पर्याप्त अनुयायियों का समुदाय एकत्रित करते गये। उनकी बुद्धि इतनी कुशाग्र थी कि कोई भी तर्क-वितर्क में उनसे टक्कर नहीं ले सकता था। उनका यह बड़ा भाग्य था कि अन्य धर्म प्रवर्तकों के समान दिवङ्गत होने के बाद नहीं, किन्तु उनके जीवन काल में ही उनका मान बढ़ा था। सभी लोगों ने उन्हें एक विशिष्ट धर्म प्रवर्तक माना और उनका सर्वत्र बड़ा ही सत्कार हुआ।

उनके जीवन के कई ध्येय थे। उन्होंने प्रधानतया अपने देश को अपना धार्मिक संदेश सुनाने का बीड़ा उठाया था परन्तु इतने से ही उन्होंने सन्तोष नहीं किया। धर्म के नाम पर जो अनेक हेय आदतें और संस्कार प्रचलित थे उनका समूल उच्छेद करने की उन्होंने कोशिश की थी। लोगों को शील और सच्चरित्रता का सबक सिखाने का भार उन्होंने अपने कंधों पर लिया था। अर्थ रहित कर्मकांड के आडम्बरों का थोथापन और उनकी अग्राह्यता का उन्होंने प्रतिपादन किया। उन्होंने बताया कि पुरुषार्थ को छोड़कर थोथे कर्म-

कांड पर ही निर्भर रहना टूटी लकड़ी का सहारा लेना है। पुरोहितों के बहिष्कार से कुछ भी विचलित न होकर, आश्रम धर्मों का एकदम उल्लंघन कर, उन्होंने अपनी माँ की अंत्येष्टि क्रिया की थी। जाति-पाँति के सर्वप्रथम तोड़ने वाले बुद्धदेव के समान ही शंकराचार्य जी भी इन मामलों में दृढ़ थे। धर्माचार्यों के विरोध की कुछ भी परवाह न करते हुए उन्होंने बताया कि जाति और वर्ण की अपेक्षा रक्खे बिना, क्या ब्राह्मण, क्या शूद्र सभी ईश्वर के प्रणिधान के पात्र और परमार्थतत्व के आवेदन के पूर्ण अधिकारी बन सकते हैं। उन्होंने किसी पृथक जाति या धर्म की स्थापना नहीं की, पर उन्होंने यह अवश्य बताया था कि सभी धर्मों का एक ही गम्यस्थान, ईश्वर है। उन्होंने कहा था कि यदि लोग सचाई के साथ अपने अपने सम्प्रदायों के रहस्यपूर्ण अन्तः सत्यों का पर्यवेक्षण करें तो सभी धर्म एक ही ईश्वर की प्राप्ति के अनेक मार्ग मात्र सिद्ध होंगे। अपने मत की स्थापना के लिए उन्होंने सूक्ष्म और गम्भीर अर्थ वाले एक पृथक दर्शन का ही निर्माण कर डाला। यही नहीं बल्कि उसके प्रतिपादन करने वाले अनेक अमूल्य ग्रंथ भी वे छोड़ गये। जहाँ जहाँ अध्ययन अब भी जारी है वहाँ हर कहीं उन ग्रन्थों का पठन-पाठन जारी रहता है। पंडित लोग उस ग्रन्थराशि अर्थात् उनकी दार्शनिक और धार्मिक थाती को बड़े गर्व के साथ रक्षा करते हैं; पर खेद है कि वे उनके ग्रंथों के अर्थ के बारे में आपस में झगड़ पड़ते हैं, और ऐसा होना स्वाभाविक ही है।

श्री शंकराचार्य जी ने भगवा वस्त्र पहनकर और हाथ में दण्ड लेकर सारे भारत का भ्रमण किया था। अच्छी तरह सोच समझ कर भारत की चारों दिशाओं में चार बड़े बड़े मठों की उन्होंने स्थापना की। उत्तर के बद्रीनाथ, पूरब के पुरी जगन्नाथ, आदि स्थानों पर उन्होंने अपने पीठ स्थापित किए। दक्षिण भारत में, जहाँ से उन्होंने अपना कार्य शुरू किया था, एक मन्दिर और मठ, जो उनके अन्य चारों मठों के केन्द्र हैं अब भी विद्यमान हैं। आज तक दक्षिण भारत हिन्दू धर्म की पवित्र से पवित्र धर्म-भूमि रही है। चातुर्मास के बीतने पर इन मठों से सुशिक्षित सन्यासी निकल कर सारे देश में भ्रमण

करके श्री शंकर के संदेश को फैलाते रहते हैं। इस महान् अवतार का निर्वाण ३२ वर्ष की अल्प अवस्था में ही हुआ था। देश में यह भी एक जनश्रुति है कि वे सशरीर ही अंतर्ध्यान हो गए थे। इन सब बातों की जानकारी मेरे लिए यह महत्व रखती थी कि इस समय मैं जिन शंकराचार्य का दर्शन करने जा रहा था वे भी उन्हीं आदि शंकर के संदेश के प्रचारक थे। इस बारे में भी एक जनश्रुति है। कहा जाता है कि श्री आदि शंकर ने अपने चेलों से यह बताया था कि उनके स्वर्ग सिधारने पर भी उनकी आत्मा संसारी लोगों के साथ रहेगी और ऐसा होना पर-काय-प्रवेश की अनुपम योग-सिद्धि के द्वारा ही साध्य है। तिब्बत के दलाई लामा की बात भी इसी से कुछ मिलती-जुलती है। मरणासन्न दलाई लामा अपनी मृत्यु के आखिरी क्षणों में अपनी गद्दी के उत्तराधिकारी को बतला जाते हैं। प्रायः यह नया अधिकारी कोई शिशु ही होता है। दलाई लामा के स्वर्गवास के बाद उस बच्चे की बड़ी देख-रेख होती है। उसकी देख-भाल की ज़िम्मेदारी देश के नामी विद्वानों के सुपुर्द की जाती है। वे लोग उत्तम शिक्षा देकर उस बालक को उस उच्च पद के योग्य बनाते हैं। उसकी शिक्षा केवल धार्मिक और बौद्धिक विषयों तक ही सीमित नहीं रहती वरन् उत्तम योगमार्ग और ध्यान की प्रक्रियाओं में भी वह बालक दीक्षा पाता है। शिक्षा के बाद वह लामा जनता की सेवा में प्राणपण से लग जाता है। इस परम्परा का कई सदियों से अनुसरण होता आया है। अचरज यह है कि आज तक इस पदवी के धारण करने वाले किसी भी दलाई लामा में कभी भी उज्वल तथा ,स्वार्थ रहित चरित्र के अतिरिक्त कोई बट्टा लगाने वाला दोष देखने में नहीं आया।

श्री वेंकटरमणि ने अपने कथन को श्री शंकराचार्य जी की अनूठी विभूतियों की कथाओं से रोचक बना दिया। उन्होंने अपने चचेरे भाई के आश्चर्यजनक इलाज की बात भी बताई। वे कई साल तक आमवात रोग से पीड़ित रहे थे। श्री शंकराचार्य जी ने उनको छू दिया और तीन घंटे बाद ही रोगी की हालत यहाँ तक सुधरी कि वह पलंग छोड़कर खड़ा हुआ और थोड़े ही दिनों में एकदम चंगा हो गया।

एक दूसरा दावा यह था कि श्री आचार्य जी दूसरों के अव्यक्त विचारों को जान सकते हैं। जो हो, वेंकटरमणि जी इन बातों की सच्चाई पर पूर्ण विश्वास रखते हैं।

× × ×

चेंगलपट जानेवाली सड़क बड़ी ही सुन्दर थी। दोनों ओर ताल वृक्षों का तांता सा लगा हुआ था। चेंगलपट चूने से पुते मकानों की एक अस्तव्यस्त राशि मात्र है। वहाँ की गलियाँ बहुत ही तंग हैं। मकानों के लाल छप्पर आपस में सटे हुए रहते हैं। हम गाड़ी से उतर कर बीच नगर की ओर चलने लगे। वहाँ बड़ी भीड़ लगी हुई थी। वेंकटरमणि जी मुझे एक घर में ले गये जहाँ कई व्यक्ति श्री शंकराचार्य जी की डाक के ढेर की, जो कुंभकोणम से आई थी, उचित व्यवस्था कर रहे थे। वेंकटरमणि जी ने उनमें से एक को अपना कुछ संवाद देकर श्री शंकराचार्य जी के पास भेज दिया। हम लोग वहीं प्रतीक्षा करने लगे। वहाँ बैठने के लिए कुर्सी तक न थी। आध घंटे से कुछ अधिक ही बीता होगा कि वह आदमी लौटकर आया और उसने बताया कि स्वामी जी ने मुझसे मिलना अस्वीकार कर दिया है। वे किसी भी यूरोपियन से भेंट करना नहीं चाहते थे। इसके अतिरिक्त वहाँ कोई २०० से अधिक व्यक्ति स्वामी जी के दर्शन की प्रतीक्षा में बैठे थे। कितने ही तो स्वामी जी से मिलने की अनुमति पाने के लिए कई दिन से आकर शहर में ठहरे थे। स्वामी जी के सेक्रेटरी महाशय इस मजबूरी के लिए अपनी बेबसी प्रकट करते हुए मुझसे माफी माँगने लगे।

मैंने विरक्ति के साथ इस परिस्थिति को स्वीकार कर लिया, पर वेंकटरमणि जी ने कहा कि वे स्वामी जी के विशेष कृपापात्र हैं और वे स्वामी जी से भेंट करके एक बार फिर उनसे अनुरोध करेंगे कि शंकराचार्य जी मेरे सम्बन्ध में अपना निर्णय बदल दें। उपस्थित भीड़ में से कई लोग, अपनी बारी की प्रतीक्षा किये बिना श्री स्वामी जी के दर्शन की अनुचित चेष्टा करने वाले वेंकटरमणि जी को देखकर बड़बड़ाने लगे। बहुत समझा-बुझाकर और

अनुनय-विनय करके वेंकटरमणि जी किसी तरह भीतर जाने पाये। थोड़ी देर बाद आनन्द से मुस्कराते हुए वे विजयगर्व के साथ लौट आये और बोले :

"श्री आचार्य जी ने आपके बारे में रिआयत कर दी है। एक घंटे के भीतर आप की उनसे भेंट होगी।"

तब तक नगर के प्रधान मन्दिर की ओर ले जाने वाली सुन्दर गलियों की मैं अलस भाव से सैर करता रहा। मैंने कुछ नौकरों को हाथियों के एक झुंड और ऊँचे ऊँचे ऊँटों की एक पंक्ति को पनघट की ओर ले जाते हुए देखा। किसी ने मुझे वह बढ़िया हाथी दिखाया जिसके ऊपर दक्षिण भारत के प्रधान आचार्य विराजमान होते हैं। स्वामी जी एक विशाल ऊँचे हाथी की पीठ पर एक बेशकीमत हौदे पर बैठकर चलते हैं। हौदे की खूब ही सजावट होती है। चारों ओर सुन्दर सुनहरे काम की झूल लटकती रहती है। हाथी की पीठ पर बेशकीमती सुनहले बेल-बूटे कढ़े हुए दुशाले डाले जाते हैं। मैंने देखा कि बीच बीच में अपनी सूँड़ को कभी उठाते और कभी लटकाते हुए वह गम्भीर गजराज गलियों में अलस भाव से झूमते झामते आ रहा है।

यह एक प्राचीन शिष्टाचार है कि किसी साधु-संत से भेंट के लिए जाते समय फल-फूल, मेवे-मिठाई आदि का उपहार उपस्थित किया जाता है। इसका स्मरण करके पूज्य स्वामी जी की भेंट चढ़ाने के लिए मैंने कुछ तुच्छ उपहारों का संग्रह कर लिया। सामने नारंगियाँ और फूल नजर आये और अपनी सुविधा के अनुसार मैंने उन्हें मोल लिया।

श्री स्वामी जी के दरबार के सामने बड़ी भीड़ एकत्रित हुई थी और उसके कोलाहल में मैं शिष्टाचार की एक और मुख्य बात भूल गया। वेंकटरमणि जी ने तुरन्त मुझे सहेजा—"जूते बाहर ही उतार दीजिये।" यह आशा करते हुए कि लौटने पर मेरे जूते वहीं मिल जावेंगे मैंने उनको बाहर ही छोड़ दिया।

हम एक छोटे फाटक से होकर एक डेवढ़ी पर पहुँच गये। उस दालान

के एक धुँधले कोने में मैंने नाटे क़द के एक व्यक्ति को खड़े हुए पाया। मैंने उनके निकट जा कर भेंट का पूजा-द्रव्य उनके चरणों के समीप रख दिया और झुक कर प्रणाम किया। आदर और अभिनन्दन का आवश्यक बाह्य प्रदर्शन होने के अतिरिक्त उस प्रणाम की एक बड़ी ही कलात्मक महत्ता है जो मेरे मन को बहुत ही रुचिकर है। मुझे अच्छी तरह मालूम है कि श्री शंकराचार्य जी ईसाई धर्म के पोप के समान नहीं हैं, क्योंकि हिन्दू-धर्म में 'पोप' जैसी कोई पदवी है ही नहीं। वे सच्चे उपदेशक और आचार्य हैं और धार्मिक जनता के बड़े विराट समूह में जान फूँकते हैं। उनके इस आचार्यत्व को सारा दक्षिण भारत सहर्ष मानता है।

× × ×

चुपचाप मैंने उनकी ओर देखा। वे छोटे क़द के थे और गेरुआ वस्त्र पहने हुए तथा अपने दंड का सहारा ले कर खड़े हुए थे। मुझे बतलाया गया था कि उनकी आयु ४० वर्ष से भी कम है। अतः उनके एकदम पके बाल देख कर मैं चकित हो गया।

उनका वह गेहुँआ रंग का तेजपूर्ण चेहरा कितने ही दिन तक मेरे स्मृति-मन्दिर की चित्रशाला में बहुत ही ऊँचे स्थान पर स्थित रहेगा। एक अवर्णनीय आध्यात्मिक दीप्ति जो सामान्य मानवों की दृष्टि से परे रहती है, उनके मुख-मंडल पर मौजूद रहती है। उनकी काली विशाल आँखें अत्यन्त प्रशान्त और सुन्दर हैं। उनके चेहरे की आकृति सौम्य और आडम्बरशून्य है। नाक उनकी छोटी और सीधी थी मानो किसी साँचे में ढली हुई हो। उनकी ठुड्डी पर छोटी दाढ़ी बढ़ी हुई थी। उनके मुँह की गम्भीरता साफ़ ही नज़र आ रही थी। उनके चेहरे को देख कर मध्यकालीन ईसाई महात्माओं की याद आ जाती थी, यद्यपि उन ईसाई महात्माओं की अपेक्षा शंकराचार्य जी में एक विशेषता थी कि इनके चेहरे से बुद्धिकुशलता भी टपकी पड़ती थी। मेरा अनुमान है कि हम पश्चिमी लोग उनको देख कर यही कह उठेंगे कि इनकी किसी सपना देखने वाले की सी आँखें हैं। जो हो, एक अकथनीय ढंग से

मुझे भान होने लगा कि उन भारी पलकों के तले सपनों से भी अधिक महत्व रखने वाली कोई बात अवश्य छिपी है।

अपना परिचय देने के तौर पर मैं बोला :

"जगद्गुरु महाराज ने अपने दर्शन की अनुमति देकर मेरे ऊपर बड़ा अनुग्रह किया है।"

स्वामी जी मेरे साथी के ओर घूमे और अपनी मातृभाषा में कुछ बोले। मैंने उसका ठीक-ठीक अर्थ ताड़ लिया।

वेंकटरमणि जी ने कहा—"स्वामी जी आपकी अंग्रेजी अच्छी तरह समझ लेते हैं पर उन्हें संकोच इस बात का है कि उनकी अंग्रेजी आप शायद समझ नहीं पावेंगे। इस कारण वे यही अधिक पसन्द करते हैं कि आपके लिए उनके वचनों का अनुवाद कर दूँ।"

इस भेंट की प्रारम्भिक और छोटी-मोटी बातों की मैं चर्चा नहीं करूँगा क्योंकि उनका स्वामी जी की अपेक्षा मुझसे अधिक सम्बन्ध है। उन्होंने हिन्दुस्तान के मेरे अनुभवों के बारे में प्रश्न किये। भारतीय व्यक्तियों तथा संस्थाओं का किसी विदेशी के मन पर क्या प्रभाव पड़ता है यह जानने की उन्होंने बड़ी उत्कंठा दिखाई। मैंने उनके सामने अपना दिल खोल कर रख दिया और बिना कुछ छिपाये प्रशंसा और आलोचना से मिले हुए अपने सच्चे भाव साफ़ साफ़ बता दिये।

इसके बाद हमारी बातचीत का रूप बदला। बड़े गम्भीर और गहन विषयों की चर्चा होने लगी। यह जानकर मुझे बड़ा ही आश्चर्य हुआ कि वे नियमपूर्वक अंग्रेजी अखबार पढ़ा करते हैं और बाहरी दुनिया में आजकल जो कुछ हो रहा है उसकी अच्छी जानकारी रखते हैं। वे यह तो अवश्य नहीं जानते कि वेस्ट मिनिस्टर में आजकल क्या नया गुल खिल रहा है, पर वे यह स्पष्ट रूप से समझते हैं कि यूरोप का प्रजातन्त्र रूपी शिशु किन दर्दनाक बाल-अरिष्टों के पंजे में फँसकर कैसे तड़प रहा है।

वेंकटरमणि जी का यह दृढ़ विश्वास भी मुझसे छिपा नहीं है कि श्री

शंकराचार्य जी को अंतर्दृष्टि भी प्राप्त है और वे भविष्य के ज्ञाता हैं। मेरा हौसला हुआ कि दुनिया के भविष्य के बारे में इनकी राय जान लूँ।

"आपकी राय में, दुनिया की राजनैतिक और आर्थिक दुरवस्था कब तक सुधर सकती है?"

"निकट भविष्य में उसका सुधरना एक अनहोनी बात है। सुधार के लिए पर्याप्त समय चाहिए। जब कि हर साल संहारक हथियारों के बनाने में दुनिया की सभी जातियाँ करोड़ों रुपये फूँक रही हैं तो दुनिया की हालत कैसे सुधर सकती है?"

"लेकिन हर जगह निःशस्त्रीकरण की चर्चा भी तो जारी है, उससे क्या कुछ भी आशा नहीं की जा सकती?"

"तुम चाहे अपने जंगी जहाजों के टुकड़े टुकड़े कर डालो, अपनी तोपों में जंग लगने दो, तो भी युद्ध नहीं रुकेगा। लड़ने के लिए लोगों के पास यदि केवल लाठी ही बच रही तो भी लोग अवश्य ही लड़ेंगे।"

"तो फिर क्या इससे बचने की कोई सूरत नहीं है?"

"जब तक जातियों के आपस में, गरीब तथा अमीर दोनों के बीच में, वास्तविक अभिन्नता की तात्त्विक बात तथा आध्यात्मिक एकता की समझ पैदा नहीं होगी तब तक लोगों में सौजन्य, पारस्परिक शुभाकांक्षा, सच्ची शान्ति और उन्नति विराज नहीं सकती।"

"लेकिन यह दूर की बात है। तो क्या हमारी रक्षा का कोई उपाय, कोई आशा, नहीं है?"

श्री स्वामी जी दंड पर कुछ अधिक भार देकर, कोमल स्वर में बोले—"तब भी ईश्वर तो हैं ही।"

बड़ी दिलेरी के साथ मैं बोल उठा—"यदि हों भी तो जान पड़ता है कि वह ही दूर पर हैं।"

इसका मृदु उत्तर था—"ईश्वर का मानवों पर प्रेम ही प्रेम है।"

भावावेग के कारण, अपने स्वर में गूँजने वाले कठोर तिरस्कार को मैं नहीं छिपा सका। बोल उठा—"दुनिया आजकल जिस दुःख-दरिद्र में, जिस दीनता में, घुली जा रही है उसको देख कर यही अनुमान करना पड़ता है कि ईश्वर मानवों के प्रति अत्यन्त उदासीन है।"

स्वामी जी ने चकित होकर मेरी ओर ताका। तुरन्त अपने शब्दों के लिए मैं बहुत पछताने लगा।

स्वामी जी ने कहा—धैर्यवान व्यक्ति अधिक गहराई तक पहुँच सकता है। निश्चित समय पर सब कुछ सँभालने के लिए ईश्वर मानवों को ही साधन बनायेगा। जातियों का संघर्ष, जनता का नैतिक पतन, लाखों करोड़ों की घोर दयनीय गरीबी व्यर्थ नहीं जायगी। इनकी जरूर ही कोई प्रतिक्रिया होगी; और उसी प्रतिक्रिया के रूप में ईश्वर की दैवी प्रेरणा से प्रेरित कोई महान् व्यक्ति रक्षा करने के लिए आगे बढ़ेगा। हर एक सदी में इस प्रकार का कोई रक्षक अथवा अवतार पैदा होता है। यह दैवी नियम भौतिक विज्ञान के नियमों के समान ही चालू होता है। आध्यात्मिक अज्ञान और जड़ अनात्मवाद से जितनी अधिक मात्रा में दुनिया की दुर्दशा बढ़ेगी उतने ही बड़े महात्मा दुनिया की रक्षा में तत्पर होकर अवतार ग्रहण करेंगे।"

"तो आपको उम्मीद है कि हमारे इस ज़माने में भी किसी रक्षक का अवतार होगा?"

"इस ज़माने में क्यों इसी सदी में। बेशक! दुनिया के लिए रक्षक की इतनी बड़ी जरूरत है, आध्यात्मिक अन्धकार इतने घोर रूप से फैल गया है कि ईश्वरीय प्रेरणा से प्रेरित कोई महात्मा अवश्य ही अवतार लेंगे।"

"तो आपका यही विचार है कि मानव दिन प्रतिदिन अधिक गिरता जा रहा है!"

"नहीं, मेरा ऐसा विचार नहीं है। हर एक मनुष्य में दैवी आत्मा रहती है। वही आत्मा कभी न कभी उसकी ईश्वर से भेंट करा देगी।"

मैंने अपने यहाँ के आधुनिक डकैतों को ध्यान में रखते हुए कहा—

"लेकिन हमारे पश्चिम में ऐसे भी व्यक्ति देखने में आते हैं जिनमें दैवी आत्मा की अपेक्षा शैतान निवास करता हुआ जान पड़ता है।"

"लोगों को उतना दोषी मत ठहराओ जितना कि वातावरण को। जन्म से ही वे ऐसे वातावरण में रहते हैं और उनकी परिस्थितियाँ कुछ ऐसी रहती हैं जिनके कारण उनको लाचार होकर अपने सच्चे स्वभाव से बहुत ही नीचे उतर जाना पड़ता है। यह बात पश्चिम ही में क्यों पूर्व में भी उसी प्रकार लागू होती है। समाज को ही इतना उत्तम बनाना होगा कि उसके ताने बाने से एक मधुरिमा छा जाए। जड़वाद के साथ आदर्शवाद का उचित सामंजस्य स्थापित होना चाहिए। इसके अतिरिक्त संसार के संकटों का और कोई इलाज नहीं है। हर एक राष्ट्र मुसीबतों में फँसा जा रहा है। ये ही मुसीबतें, ये ही यंत्रणाएँ, भावी परिवर्तन और सुधार के सच्चे कारण अवश्य साबित होंगी, जैसे कि प्रायः कोई असफलता सच्ची सफलता का मार्ग बताने का अच्छा साधन बन जाती है।"

"तो आपको यह पसन्द है कि लोग संसारी व्यवहार में भी आध्यात्मिकता के सिद्धान्तों को बरतें!"

"जी हाँ। यह असम्भव नहीं है, क्योंकि अन्त को इसी मार्ग के अवलम्बन से स्थायी और सभी के समान रूप से लाभ पहुँचाने वाले सुपरिणाम प्राप्त होंगे। यदि दुनिया में आध्यात्मिक ज्योति की प्राप्ति कर लेने वालों की संख्या अधिक हो जाय तो यह मार्ग शीघ्र ही सुगम हो जायगा। भारत के लिए यह गौरव की बात है कि वह अब भी अपने सच्चे आध्यात्मिक व्यक्तियों की रक्षा और आदर करता है, यद्यपि पहले की अपेक्षा इस समय इस बात में काफ़ी कमी है। यदि सारी दुनिया भारत का अनुकरण करे और अंतर्दृष्टि वाले महात्माओं के आदेश पर चले, तो शीघ्र ही दुनिया में सुख-शान्ति विराजेगी और सारा संसार सुखी और संपन्न होगा।"

हमारी बातचीत जारी रही। मुझे प्रकट हुआ कि श्री शंकराचार्य जी अपने देश की महिमा को बढ़ाने के लिए अपने अन्य देश भाइयों की तरह

पश्चिम की निन्दा और तिरस्कार नहीं करते। वे मानते हैं कि प्राच्य और पाश्चात्य दोनों देशों में अपने अपने अच्छे और बुरे गुण अवश्य हैं। इन दोनों वर्गों के देशों को गुण-दोष में एक समान मानते हुए श्री शंकराचार्य जी यह आशा करते हैं कि अधिक बुद्धिमान भावी संतान दोनों सभ्यताओं और संस्कृतियों की उत्तम बातों के सुन्दर समावेश से एक श्रेष्ठ और सुसंगठित समाज की रचना करेगी।

मैंने विषय बदल कर कुछ उनकी निजी बातें पूछने की अनुमति माँगी। बिना किसी प्रकार की आपत्ति के मेरी माँग स्वीकृत हुई।

"कितने वर्षों से जगद्गुरु जी इस पीठ की शोभा बढ़ा रहे हैं?"

"१६०७ ईसवी से। उस समय मैं केवल १२ वर्ष का था। अपनी नियुक्ति के बाद मैं कावेरी नदी के किनारे के एक गाँव में रहकर तीन वर्ष तक सारा समय ध्यान और अध्ययन में बिताता रहा। बाद को मैं जन-साधारण की सेवा करने लगा।"

"मैं समझता हूँ कि आप कुम्भकोणम में बहुत ही कम रहते हैं?"

"हाँ। इसकी वजह यह है कि सन् १६१८ में नेपाल के महाराज ने मुझसे प्रार्थना की थी कि कुछ दिन तक मैं उनका आतिथ्य स्वीकार करूँ। मैंने इस निमंत्रण को स्वीकार कर लिया और तभी से नेपाल पहुँचने के लिए धीरे धीरे सफ़र कर रहा हूँ। लेकिन देखो, इतने वर्ष में मैंने बहुत ही कम रास्ता तय कर पाया है। पीठाधिपति का धर्म है कि वह रास्ते के हर गाँव व शहर में, या कम से कम उन नज़दीक शहरों में जहाँ से न्योता मिल जाय, ठहरे और स्थानीय मन्दिर में आध्यात्मिक विषयों की कुछ चर्चा करे तथा लोगों को कुछ न कुछ उपदेश दे।"

मैंने अपनी खोज की बात छेड़ी। श्री स्वामी जी ने मुझ से प्रश्न किया कि किन किन योगियों से अब तक मेरी भेंट हुई थी और उनके बारे में मेरे क्या विचार बने थे। मैंने उनसे स्पष्ट ही बता दिया:

"मैं ऐसे योगी से मिलने के लिए बड़ा ही उत्सुक हूँ, जिसने उत्तम उत्तम सिद्धि प्राप्त की हो और उन सिद्धियों का कुछ न कुछ प्रत्यक्ष प्रमाण दिखा सके। देश में ऐसे अनेक साधु हैं जो प्रमाण के बदले एक लम्बा चौड़ा उपदेश ही झाड़ देते हैं। क्या मेरा उत्साह उचित नहीं है!"

उनकी प्रशान्त दृष्टि मेरी ओर लगी हुई थी।

मिनट भर सन्नाटा छाया रहा। धीरे धीरे श्री शंकर जी अपनी अंगुलियों से दाढ़ी सुहलाने लगे।

"यदि उत्तम योग-दीक्षा पाने की तुम्हारी अभिलाषा हो तो कुछ अनुचित नहीं है। तुम्हारे दृढ़ संकल्प को समझ कर मेरा विचार है कि तुम्हारा सच्चा उद्योग अवश्य ही तुम्हारी मदद करेगा। पर सुनो, तुम्हारे ही अंदर एक ज्योति जाग्रत होकर चमकने लगी है। निस्संदेह वही तुम को रास्ता दिखायेगी और तुम्हारे अभिलषित ध्येय पर पहुँचायेगी।"

मुझे विश्वास नहीं हुआ कि मैं उनकी बातों का ठीक ठीक अर्थ समझ सका हूँ। साहस बाँध कर मैंने कहा :

"अब तक मैं अपने ही भरोसे रहा हूँ। कोई राह दिखाने वाला मुझे नहीं मिला। आपके यहाँ के कुछ प्राचीन ऋषि भी यही कह गये हैं कि अंतर्यामी को छोड़ कर और कोई ईश्वर नहीं है!"

तुरन्त ही स्वामी जी का उत्तर मिला :

"भगवान सर्वत्र है। एक ही व्यक्ति की आत्मा में 'वह' सीमित कैसे हो सकता है! वही सारे विश्व का धर्ता है।"

मुझे मालूम हुआ कि बातचीत अब मेरी समझ से परे होती जा रही है। अतः शीघ्र ही इस अर्ध-धार्मिक विषय को पलट कर बोला :

"कौन सा मार्ग मेरे लिए सब से अधिक आचरण योग्य है!"

"अपना सफ़र जारी रक्खो। जब वह समाप्त हो तो जिन जिन से तुम्हारी भेंट हुई हो उन महात्माओं की एक बार याद करो। उनमें जो तुम्हारे दिल

को बरबस खींचते हुए प्रतीत हों उनके पास लौट जाओ। वे जरूर तुम्हें दीक्षा प्रदान करेंगे।"

मैंने उनकी उस प्रशांत मूर्ति की ओर आँख भर ताका। मुझे आश्चर्य होने लगा कि वे कितने गम्भीर और कितने निराले हैं।

"लेकिन स्वामी जी, यदि कोई भी मेरे मन को आकर्षित न करे तब ?"

"ऐसी सूरत में तुम अपने मार्ग का अकेले ही अनुसरण करो जब तक कि ईश्वर ही स्वयं तुम्हें दीक्षा प्रदान न करे। नियमपूर्वक त्याग का अभ्यास करो। प्रेम के साथ उत्तम विषयों का ध्यान लगाओ। अधिकतर आत्मा के विषय में मनन करो। यही तुम्हारे हृदय को आत्मज्ञान की ज्योति से आलोकित करेगा। अभ्यास के लिए सबसे उत्तम मुहूर्त ब्राह्म मुहूर्त है। तब सारी प्रकृति जाग्रत होने लगती है। इसके बाद गोधूलि का समय है। उस समय भी संसार प्रशान्त रहता है। इन समयों पर तुम्हारे ध्यान में बहुत ही कम अड़चनें पड़ेंगी।"

बड़ी दया के साथ वे मेरी ओर ताकने लगे। उनके उस दाढ़ीयुक्त चेहरे पर जो महात्मापन की शान्ति विराज रही थी, उसे देखकर मुझे ईर्ष्या सी होने लगी। निश्चय ही मेरे हृदय को जिन उपद्रवी तूफानों ने उथल-पुथल कर दिया था वैसे तूफान उनके हृदय में शायद ही उठे होंगे। प्रेरणावश मैं पूछ उठा :

"यदि मुझे असफलता हाथ लगी तो आपकी शरण में आजाऊँ ?"

श्री स्वामी जी ने सिर हिला दिया। कहा :

"मैं एक सार्वजनिक संस्था का अध्यक्ष हूँ, अतः मेरा कोई भी समय अपना नहीं रहता। मेरा सारा समय अपने पद के कर्तव्यों के पालन ही में लग जाता है। वर्षों से लगातार तीन घंटे की नींद शायद ही मैंने कभी पाई हो। मैं किसी को अपना खास चेला कैसे बना सकता हूँ ? तुमको किसी ऐसे गुरु को खोजना चाहिए जो तुम्हारे लिए अपना सारा समय दे सके।"

"लेकिन मैंने सुना है कि सच्चे गुरु विरले ही किसी को भाग्य से मिलते हैं। यह भी कहा गया है कि यूरोपियनों को वे नहीं ही मिलेंगे।"

उन्हों ने मेरी बात मान ली और कहा :

"हाँ बात सच है। तब भी तुम को गुरु मिल ही जायँगे।"

"तो आप कृपया मुझे कोई ऐसा गुरु बता दिजिये जो आपकी राय में उच्चकोटि के योग का अस्तित्व सफलता पूर्वक प्रमाणित कर सकें।"

स्वामीजी बड़ी देर तक मौन रहे और तब उत्तर दिया :

"तुम्हारी इच्छा की पूर्ति कर सकने की योग्यता रखने वाले केवल दो योगी ही इस देश में हैं। उनमें से एक काशी में एक बड़े भारी मकान में छिपे रहते हैं! वह मकान भी साधारण जनता की दृष्टि से छिपा रहता है। बहुत कम लोग उनका दर्शन कर पाते हैं। निश्चय ही अब तक कोई अंगरेज उनकी शान्ति और एकान्त में बाधा नहीं पहुँचा पाया है। मैं तुम्हें वहाँ भेज सकता हूँ। पर मुझे यही आशंका है कि वे शायद किसी अंगरेज को अपना चेला बनाने को राज़ी न होंगे।"

मेरी उत्कंठा अब प्रबल हो गई। मैं बोल उठा :

"और दूसरे ?"

"दूसरे योगी इस स्थान से भी दक्षिण की ओर रहते हैं। मैंने उनका दर्शन एक बार किया है और मैं जानता हूँ कि वे बहुत ही उच्च कोटि के योगी हैं। मैं समझता हूँ कि उनके पास जाने से तुम्हारी साध पूरी होगी।"

"उनका नाम क्या है।"

"वे महर्षि कहलाते हैं और वे ज्योतिर्गिरि अरुणाचल पर निवास करते हैं। वह स्थान उत्तरी आर्काट प्रदेश में है। मैं तुम्हें सारी बातों का पता बत्ता दूँगा ताकि तुम उन्हें सहज ही में खोज लो।"

अचानक मेरे मन पर एक तसवीर खिंच गई।

मुझे उन गेरुआवस्त्रधारी साधु की याद आई जिन्होंने मुझे अपने गुरुदेव

के दर्शन करने का न्योता दिया था किन्तु जिसे मैंने अस्वीकृत कर दिया था। उनके बताए हुए पर्वत का नाम अब भी मेरे कानों में गूँज रहा था। 'ज्योतिर्गिरि अरुणाचल।'

मैंने उत्तर दिया—"आपका मैं चिरऋणी रहूँगा, लेकिन स्वामीजी, वहीं के एक आदमी ने मुझे वहाँ ले जाने का बीड़ा उठा लिया है।"

"तो तुम वहाँ जाओगे ?"

मैं संकोच में पड़ गया। कुछ अनिश्चित भाव से मैं कह उठा—"दक्षिण से कल ही चले जाने का सारा इन्तजाम हो चुका है।"

"तो मेरी एक बात मान लो।"

"हाँ बताइये।"

"प्रतिज्ञा करो कि महर्षि के दर्शन किये बिना दक्षिण भारत नहीं छोड़ोगे।"

"मैंने उनकी आँखों की ओर ताका। मुझे मदद पहुँचाने की सच्ची चाह उन आँखों से साफ ही झलक रही थी। मैंने कुछ हीला हवाला किये बिना प्रतिज्ञा कर डाली।

उनके चेहरे पर बड़ी ही कृपापूर्ण मंद मुस्कान खिल उठी।

"उतावले मत होना। जिसको खोजते फिर रहे हो वह जरूर ही तुम्हें मिल जायेगा।"

बाहर लोगों की भीड़ की अशान्ति और गुनगुनाहट बढ़ती जा रही थी। मैंने नम्रतापूर्वक कहा :

"क्षमा किजिये, मैंने आपका बहुत सा अमूल्य समय लिया है। इसका मुझे बड़ा खेद है।"

शंकराचार्य जी के मुख की गम्भीरता कुछ कम हो गई। वे मेरे साथ दालान के किनारे तक चले और वहाँ पर रुक कर मेरे साथी के कानों में उन्होंने कुछ कहा। उनके ओठों के हिलने से मुझे भास गया कि वे मेरे ही बारे में बातें कर रहे हैं।

द्वार पर पहुँचते ही मैंने घूम कर, बड़ी नम्रता के साथ स्वामी जी से विदा ली। श्री स्वामी जी ने अपना एक संदेश सुनाने के लिए मुझे फिर बुला लिया और कहा :

"तुम सदा ही मेरी याद रक्खोगे और हम भी तुम्हें कभी नहीं भूलेंगे।"

इन संक्षिप्त किन्तु सारपूर्ण वाक्य का मनन करते अनिच्छा के साथ इस महात्मा से, जिसने बचपन से ही अपना सारा जीवन ईश्वर के ध्यान में अर्पण कर रक्खा है, मैंने विदा ली।

वे ऐसे धर्माचार्य हैं जिनको सांसारिक विषयों की गंध भी नहीं छू गई है क्योंकि उन्होंने संसार से पूर्ण विरक्ति कर ली है। जो कुछ माया-ममता उनके साथ लगी रहती है वह उन्हीं लोगों के लिए है जो उनकी जरूरत महसूस करते हैं। उनका वह सुन्दर तथा सौम्य व्यक्तित्व सदा के लिए मेरे मन-मन्दिर में स्थिर रहेगा।

शाम तक चेंगलपट की गलियों में, नगर की कलामय प्राचीन सुन्दरता का दर्शन करते घूमता रहा। तब स्वामी जी के फिर से अन्तिम दर्शन करके घर लौटा।

उस समय वे शहर के सबसे बड़े मन्दिर में बैठे हुए थे। उनकी वह गेरुआ वस्त्र पहने हुई सुडौल सौम्य मूर्ति हजारों की भीड़ में आसीन थी। सारी जगह एक विचित्र सन्नाटा छाया हुआ था। उनकी बातों को मैं कुछ भी नहीं समझ सका क्योंकि वे अपनी मातृभाषा में बोल रहे थे। किन्तु मुझे अच्छी तरह मालूम हो गया कि विद्वान ब्राह्मण से लेकर अपढ़ किसान तक कितनी श्रद्धा और ध्यान से उनकी बातें सुन रहे थे। मैं समझ तो नहीं पाया किन्तु मैंने अनुमान किया कि वे अति गूढ़ विषयों को भी बहुत ही सरल ढंग से समझा रहे थे। उनके व्यक्तित्व के सम्बन्ध में मेरी धारणा कुछ ऐसी ही बन गई है।

उनकी आत्मा की उज्ज्वलता पर मैं जितना लट्टू हो रहा था, उनके अनुयाइयों पर उनके सरल विश्वास के लिए मैं उतना ही डाह करने लगा था। शंकाओं के झोंकों ने जीवन भर में उनको शायद ही कभी विचलित

किया होगा। वे इसी बात पर खुश हो जाते हैं कि 'ईश्वर है'। बस, फिर शंका-समाधान, चर्चा-बहस आदि के लिए स्थान ही कहाँ है? उन निरीह मंत्र-मुग्ध आत्माओं को चारों ओर से घिरने वाली अंधकारमय घोर निशा की सुध ही कहाँ जिसमें सारा संसार किसी भयानक जंगली युद्ध के समान दीखने लगता है, ईश्वर आँखों के सामने से ओझल होते होते केवल छायामय शून्यता में लीन हो जाता है और मानव इस नश्वर विश्व के क्षुद्र भूमिखंड पर अपनी ही सत्ता को चन्द रोज़ की तुच्छ मुसाफ़िरी समझने लग जाता है।

तारा-जटित नील अम्बर के सारे आडम्बर की बहार लूटते हुए हम दोनों चेंगलपट छोड़ कर चले। किसी आकस्मिक पवन के मन्द झोंके से ताल-वृक्ष बड़े ठाट से अपनी पत्रमय शाखाओं से पास के जलाशयों के किनारों को हिलोरते हुए एक निराली कहानी सुना रहे थे।

मेरे साथी ने अचानक इस सुखद सुन्दर शान्ति में बाधा पहुँचाई।

"सचमुच ही तुम बड़े भाग्यवान हो।"

"क्यों?"

"क्योंकि यह पहला ही अवसर है जब कि स्वामी जी ने किसी यूरोपियन से बातें की हैं।"

"खैर—?"

"इस भेंट के कारण उनका शुभ आशीर्वाद भी तुम्हें प्राप्त हुआ है।"

× × ×

घर पहुँचते पहुँचते आधी रात हो गई। सिर उठाकर आसमान की ओर मैंने नज़र दौड़ाई। आकाश का वह महान कलश अगणित तारात्रों से जटित होकर बड़ा ही सुन्दर लग रहा था। यूरोप भर में कहीं भी इतने तारात्रों की उज्ज्वल शोभा किसी ने नहीं देखी होगी। बिजली की बत्ती जला कर मैंने सीढ़ियों को तेज़ी से पार किया और बरामदे में पहुँचा।

अँधेरे में किसी की दबकी हुई मूर्ति ने उठकर मेरा स्वागत किया।

चकित होकर मैं चिल्ला उठा—"सुब्रह्मण्य जी ! आप यहाँ कर क्या रहे हैं ?"

सन्यासी फिर से एक विकट हँसी हँसने लगे।

कुछ भर्त्सनायुक्त आवाज़ में उन्होंने मुझे याद दिलाई—"मैंने आपसे कहा नहीं था कि आपके दर्शन के लिए मैं फिर से आऊँगा ?"

"हाँ कहा तो था।"

उस विशाल कमरे में मैं अचानक ही उनसे प्रश्न कर बैठा :

"आपके गुरुदेव को क्या महर्षि कहते हैं ?"

अब उनके चकित होने की बारी थी। वे कुछ खिच से गये और बोले :

"आप कैसे जानते हैं ? आपने किससे जान लिया ?"

"इसकी जरूरत ही क्या है ? कल सुबह हम दोनों उनके यहाँ चलेंगे। मैं अपना कार्यक्रम बदल दूँगा।"

"यह बड़ी खुशी की बात है।"

"लेकिन मैं आपके गुरुदेव के यहाँ बहुत दिन तक रह नहीं सकूँगा। हाँ, दो-चार दिन तक रहने का अवश्य ही विचार हो रहा है।"

इसके बाद आध घंटे तक मैंने उनसे प्रश्नों की झड़ी लगा दी। फिर खूब थककर पलंग पर लेट गया। सुब्रह्मण्य जी ने फर्श पर एक चटाई बिछा ली और बड़े आनन्द से पैर पसार कर लेट गये। वे एक सूती चादर से ही सन्तुष्ट थे। वही उनके ओढ़ने और बिछाने का काम दे रही थी। मैं उन्हें एक मुलायम बिस्तर देने लगा पर उन्होंने इनकार कर दिया।

फिर जब मेरी आँख खुली तो देखा कि कमरे में एकदम अँधेरा था। मेरी नसें अजीब तौर से तन गई थीं। चारों ओर की आबहवा में एक तरह की बिजली दौड़ती हुई प्रतीत हो रही थी तकिये के तले से घड़ी निकाली और उसके अँधेरे में चमकने वाले अक्षरों पर निगाह डाली तो देखा कि पौने तीन

बज गये थे। तब मुझे भान हुआ कि बिस्तर के पैताने कोई चीज़ चमक रही है। मैं एकदम उठ बैठा और सीधी नजर से उसको देखने लगा।

मेरी चकित दृष्टि के सामने श्री स्वामी शंकराचार्य जी की दिव्य मूर्ति दिखाई दी। निश्चय ही मुझे किसी प्रकार का भ्रम नहीं हुआ था और वह मूर्ति साफ साफ दिखाई पड़ रही थी। वह शरीरधारी मनुष्य की ठोस मूर्ति थी। चारों ओर के अंधकार से उस मूर्ति को अलग करते हुए एक विचित्र तेज-पुंज घिरा हुआ था।

वास्तव में क्या यह सारा दृश्य भ्रम नहीं था ? क्या मैंने चेंगलपट में श्री स्वामी जी से विदा नहीं ली थी ? इस घटना की सचाई की जाँच करने के लिए मैंने मजबूती से आँखें बंद करलीं। लेकिन इससे कोई अन्तर नहीं पड़ा। मुझे अब भी उनकी वह दिव्य मूर्ति स्पष्ट रूप से दीख पड़ रही थी।

मुझे प्रतीत हुआ कि उस मूर्ति से एक गरिमामय स्नेह भाव प्रसारित हो रहा है। मैंने अपनी आँखें खोल कर एक बार फिर उस गेरुआवस्त्रधारी मूर्ति की ओर देखा।

मूर्ति की मुख-मुद्रा कुछ बदली और उसके मुस्कराते हुए होंठ कुछ कहते हुए जान पड़े :

"विनम्र बनो और तुम्हें अपनी साधना की वस्तु अवश्य ही प्राप्त होगी।"

पता नहीं क्यों मैंने इस दर्शन को प्रेत-बाधा नहीं समझा। मुझे तो यही जान पड़ा कि शंकराचार्य जी का सजीव शरीर मेरे सामने खड़ा होकर बातें कर रहा है।

वह दृश्य जिस रहस्यमय ढंग से मेरे सामने उपस्थित हुआ था उसी प्रकार एकदम मिट गया। इस असाधारण घटना के परिणाम-स्वरूप मैं और अधिक उत्साहमय, प्रसन्न और अविचलित बन गया। क्या मैं इसे कोरा सपना ही समझूँ ? परन्तु ऐसा समझने से भी अन्तर ही क्या पड़ता है।

बाकी रात भर मुझे तनिक भी नींद नहीं आई। मैं जागता हुआ लेटा

ब्रह्मा और कुंभकोणम के जगद्गुरु श्री शंकराचार्य, जिन्हें दक्षिण भारत की भोली हिन्दू जनता स्वयं ईश्वर का प्रतिनिधि मानती है, के साथ अपनी भेंट पर मनन करने लगा।

९

ज्योतिर्गिरि अरुणाचल

साउथ इंडियन रेलवे मद्रास में आकर खतम हो जाती है। वहीं पर सुब्रह्मण्य जी के साथ सीलोन बोट मेल पर मैं सवार हो गया। कई घंटे तक विचित्र दृश्यों से होकर गाड़ी आगे बढ़ रही थी। जहाँ तक आँख जाती थी हरे-भरे धान के खेत चित्त को मोह रहे थे। बीच बीच में लाल टीले अपने मस्तक ऊँचे उठाए दिखाई दे रहे थे। कहीं खेतों के अगल बगल में और कहीं खेतों के बीच में बड़े ही ठाट से नारियल के वृक्ष अपने पत्र-मय मुकुटों को धीरे धीरे हिलाते हुए चारों ओर छाया बिखेर रहे थे। उनके पीछे खेतों में यत्र-तत्र किसान धान के खेतों में अपने पसीने से स्वर्णराशि लूटने की आशा से काम में लगे हुए थे।

मैं रेल में खिड़की के पास ही बैठा था। बहुत ही जल्द गोधूलि का समय हो गया और सारा दृश्य गायब सा होने लगा। मैं अपना चित्त एकाग्र करके अन्य बातों के बारे में मनन करने लगा। मुझे अचरज होने लगा कि जब से मैंने ब्रह्म की दी हुई सोने की अँगूठी पहन ली है तब से आकस्मिक बातें होने लगी हैं। मेरी सारी तजवीज़ें पलट गई थीं, अनसोची घटनाओं के विचित्र समावेश ने मुझे दूर दक्षिण की ओर पयान करने को मजबूर किया, यद्यपि इसके विपरीत मेरा कार्यक्रम पूर्व की ओर जाने का था। मैं अपने मन में शंका करने लगा कि क्या सचमुच ही इस जड़ाऊ अँगूठी में ब्रह्म का बताया हुआ तिलिस्म मौजूद है ! मैं इस बात पर खुले दिल से विचार करना चाहता था। वैज्ञानिक मार्गों में सुशिक्षित पश्चिमी व्यक्ति बड़ी ही कठिनाई से ऐसी

बातों पर विश्वास कर सकेगा। इस विचार को मैंने अपने मन से निकाल दिया कि मेरी यात्रा के कार्यक्रम में परिवर्तन अँगूठी के कारण हुआ है लेकिन उन विचारों के तले जो अनिश्चित भाव छिपा था उसको मैं पूर्णतया दूर नहीं कर सका। इस पहाड़ी आश्रम की ओर किस लिए मैं बेबस ही खिंचा जा रहा हूँ? मुझ लापरवाह श्रद्धा-रहित व्यक्ति को महर्षि की ओर आकर्षित करने में दो व्यक्ति, जो दोनों ही संन्यासी थे, नियति के दूत बने। 'नियति' का नाम मैंने इसलिए लिया है कि इससे अच्छा शब्द मुझे मिल ही नहीं रहा है। पर इसका मैंने एक खास अर्थ में प्रयोग किया है। गत अनुभूतियों ने मुझे अच्छी तरह बतला दिया था कि स्थूल रूप से तुच्छ जँचनेवाली छोटी घटनाएँ कभी कभी मनुष्य के जीवन में प्रधान हो जाती हैं।

हम डाकगाड़ी से उतर कर छोटी लाइन पर सफर करने की इन्तजारी में थे। हम भारत के फ्रेंच साम्राज्य के अवशिष्ट करुणाजनक चिह्न, पांडिचेरी से लगभग ४० मील के फ़ासले पर थे। एक ठंडे, धुँधले प्रकाश वाले वेटिंग रूम में करीब दो घंटे तक हम छोटी लाइन से देश के और भी भीतरी भाग की ओर ले जाने वाली गाड़ी की प्रतीक्षा करने लगे। इस लाइन से बहुत ही कम आमदरफ़्त होती थी। अतः गाड़ियाँ भी बड़ी देर बाद और बहुत कम संख्या में छूटा करती थीं। मेरे साथी प्लेटफार्म की ओर भी ठंडी हवा में इधर उधर टहलने लगे। ताराओं के अल्प प्रकाश में उनकी बड़ी लम्बी मूर्ति अस्ति-नास्ति का भ्रम पैदा करती थी। अन्त में किसी प्रकार वह गाड़ी आ ही गयी और हमें अपने साथ ले चली। गाड़ी में बहुत ही कम यात्री थे।

मुझे अच्छी नींद आई और बीच बीच में कुछ सपने भी दिखाई पड़ रहे थे। इतने ही में मेरे साथी ने मुझे जगाया। हम एक छोटे स्टेशन पर उतर गये और गाड़ी चीख मार कर धीरे-धीरे मूक अंधकार में विलीन हो गई। अभी रात बाकी थी, इसलिए हम वेटिंग रूम में बैठ गये। उसमें आराम का कोई सामान न था। हमें ही वहाँ चिराग भी जलाना पड़ा।

हम बड़े सब्र के साथ पौफट की लाली की राह देख रहे थे। धीरे धीरे

हमारे कमरे की पिछली दीवार के झरोखे में से ऊषा देवी के दर्शन होने लगे। अभी मुँह अँधेरा छाया था। बाहर की चीज़ें कुछ कुछ दीखने लगीं। सुबह के धुँधले प्रकाश में कुछ ही मील की दूरी पर एक अकेले पर्वत की अस्फुट रेखाएँ दिखाई पड़ीं। पर्वत की तलहटी विशाल थी। मध्य भाग का घेरा काफी बड़ा था। लेकिन उस पर्वतराज का उन्नत मस्तक अभी सबेरे के कुहरे में ढँका था।

मेरे साथी बाहर चले और सामने एक छोटी बैलगाड़ी में गाड़ीवान को सोते पाया। दो तीन बार पुकारने पर उसकी मीठी नींद टूटी और उसे मालूम हो गया कि हाथ में काम आ गया। अपने गंतव्य स्थान की उसे खबर दी तो उसका हौसला बढ़ा। कुछ संदेह के साथ मैंने उसकी गाड़ी पर नज़र दौड़ाई। वह बहुत ही तंग थी। हम उस पर सवार हो गये। गाड़ीवान ने हमारा बोरा-बँधना गाड़ी पर लाद लिया। मेरे साथी बहुत ही थोड़ी जगह में किसी प्रकार बैठे। मैं उस गाड़ी पर झुक कर बैठ गया क्योंकि उसकी छत ऊँची न थी। मेरे पाँव गाड़ी के बाहर थे। गाड़ीवान अपने बैलों के बीच एक काठ के तख्ते पर बैठ गया। उसकी ठुड्डी घुटनों से लगी थी। इस तरह किसी प्रकार जब सब लोग बैठ गये तो गाड़ीवान ने गाड़ी हाँक दी।

उसके छोटे सफेद बैल बहुत मजबूत थे। कंधा झुकाये वे गाड़ी खींचे लिए जा रहे थे। तो भी गाड़ी की चाल बड़ी धीमी थी। इस देश में भार खींचने में बैल बहुत काम आते हैं। हिन्दुस्तान के अधिकांश स्थानों में गरमी इतनी होती है कि घोड़ों की अपेक्षा बैल उसे अधिक सह सकते हैं। उनका पालन-पोषण भी उतना कठिन नहीं है। वे साधारण चारा खा कर ही सन्तोष कर लेते हैं। सदियाँ बीतने पर भी इन शान्त देहातियों तथा समुद्र से दूर छोटे शहरों के लोगों के रस्म-रिवाजों में कोई अधिक परिवर्तन नहीं हुआ है। ईसा से पूर्व पहली सदी में जो आमदरफ़्त के साधन थे, आज २००० वर्ष बीतने पर भी वे ही बैल और वे ही छकड़े काम आते हैं।

हमारा गाड़ीवान अपने बैलों पर लट्टू था, नहीं तो वह उनके बड़े बड़े टेढ़े

सींगों को चमकदार आभूषणों से क्यों सजाता ? उनकी पतली टाँगों पर छोटी छोटी पीतल की घंटियाँ बँधी थीं। उनके नथुनों को छेद कर एक रस्सी डाली गई थी और उसी रस्सी के सहारे वह गाड़ीवान बैल हाँकता था। धूल भरी सड़क पर वे बैल मौज के साथ झूमते-झामते चले जाते थे और मैं प्रभात के सुन्दर दृश्य में तल्लीन बैठा था। हमारे दोनों ओर सड़क के दोनों बाजू पर मनोहर दृश्य उपस्थित थे। यह कोई रूखा मैदान न था। जहाँ तक क्षितिज की ओर आँख दौड़ाते थे पर्वत-मालाएँ नज़र आती थीं। सड़क पर लाल मिट्टी कुटी हुई थी और सारी जगह जहाँ तहाँ कँटीली झाड़ियाँ उगी हुई थीं। बीच बीच में हरे-भरे सुन्दर खेत भी नज़र आते थे।

हमारी बगल से एक किसान गुजरा। उसके मुँह पर उसके जीवन की सारी कठिनाइयाँ साफ़ साफ़ अंकित थीं। वह अपना पसीना बहा कर धरती माता को प्रसन्न करने के लिए जा रहा था। एक छोटी लड़की अपने सिर पर एक पीतल की गगरी रक्खे दिखाई दी। उसका बदन एक लाल साड़ी से ढका हुआ था। उसके कंधे खुले हुए थे। उसकी नाक में लाल मणि की एक नथनी झूल रही थी। प्रभात के सूर्य की धुंधली रोशनी में उसकी बाँहों पर सोने के कड़े चमक रहे थे। उसके बदन का कालापन साफ़ ही बता रहा था कि वह द्रविड़ कन्या है। इन प्रान्तों में ब्राह्मणों और मुसलमानों को छोड़ प्रायः सभी द्रविड़ ही हैं। स्वभाव से ही द्रविड़ बालिकाएँ आनंदमग्न और मोदमयी होती हैं। वे प्रायः औरों की अपेक्षा अधिक बातूनी होती हैं और उनके स्वर में एक प्रकार की लोच भरी रहती है जो औरों में नहीं पाई जाती। वह लड़की हमारी ओर अकृत्रिम आश्चर्य से आँख भर ताकने लगी जिससे मैंने समझ लिया कि इस प्रदेश में बिरले ही गोरे व्यक्तियों का आगमन होता है।

इस प्रकार हम शहर में पहुँच गये। वहाँ के मकान सम्पन्न दीखते थे और एक विराट मन्दिर के दोनों पार्श्व में सट कर बनाये गये थे। उनके बीच में से होकर अच्छी सड़कें जाती थीं। यदि मैं भूलता नहीं हूँ तो मन्दिर

दो फर्लांङ्ग लम्बा होगा। बाद में हम उस मन्दिर के विशाल फाटक पर पहुँचे। उस विराट शिल्प की एक मोटी तसवीर मेरे मन पर अंकित हो गयी। एक दो मिनट तक हम वहाँ ठहरे और मैंने भीतर की ओर झाँका ताकि उसका एक धुँधला चित्र मेरे मन पर खिंच जाय। उसकी महत्ता के समान उसका निरालापन भी मेरे मन पर असर करने लगा। कभी भी मैंने इस ढंग की शिल्पकला नहीं देखी थी। मन्दिर के भीतरी भाग के चारों ओर एक भूलभुलैया सा चतुष्कोण बना हुआ था। चारों ओर जो ऊँचे ऊँचे प्राकार खड़े थे वे सदियों की प्रखर धूप के कारण जल कर विवर्ण हो गये थे। हर एक प्राकार में एक विराट द्वार था जिसके ऊपर ऊँचे ऊँचे गोपुर रचे गये थे। वे गोपुर रंग-बिरंगे चित्रों, प्रतिमाओं आदि से अलंकृत मीनारों जैसे दीख पड़ते थे। उन गोपुरों का निचला हिस्सा पत्थर का बना हुआ था पर ऊपरी भाग ईंटों का था जिसके ऊपर सुन्दर काम किया हुआ था। गोपुर में कई मंजिलें थीं। उसका सादा बाहरी भाग भिन्न भिन्न प्रकार की मूर्तियों और प्रतिमाओं से सजा हुआ था। इन बाहर के गोपुरों के अतिरिक्त मन्दिर के भीतर और भी पाँच मेरे देखने में आये। इनको देख कर मिस्र के पिरमिडों की याद आना अत्यन्त स्वाभाविक था।

आखिर को मैंने लम्बे छप्पर वाले मकानों, अनेक समतल पत्थरों के खंभों वाली पंक्तियों, धुँधले प्रार्थना गृहों, अँधेरे बरामदों तथा अन्य अनेक छोटे छोटे मकानों को देखा। इस विचित्र मन्दिर के दर्शन करने का मैंने मन ही मन संकल्प कर लिया।

हमारी बैलगाड़ी और आगे बढ़ी, हम फिर शहर के बाहर पहुँचे। सामने सुन्दर दृश्य दिखाई देने लगे। राह पर लाल धूल पड़ी हुई थी। दोनों ओर छोटी छोटी झाड़ियाँ और कभी कभी ऊँचे वृक्षों के झुरमुट नज़र आने लगे। उनकी शाखाओं में विविध प्रकार के पक्षी निवास करते थे। मुझे उनके परों के फड़फड़ाने की आवाज़ साफ़ सुनाई पड़ती थी और सारे संसार को नींद से मीठी प्रभाती से जगाने वाला पक्षियों का वह सुन्दर कलरव कानों को बहुत ही प्यारा लगता था।

राह भर यत्र-तत्र सुन्दर मंडप दिखाई देते थे। शिल्प की दृष्टि से उनमें काफ़ी अन्तर नज़र आता था। अतः मुझे अनुमान हुआ कि वे भिन्न भिन्न समयों के हैं। कुछ तो हिन्दू शिल्पकला के अनुसार बहुत ही आडम्बर के साथ नकाशे गये थे। लेकिन जो बड़े मंडप थे उनके लम्बे खंभे बहुत बड़े थे जिनकी बराबरी दक्षिण भारत को छोड़ और कहीं भी मेरे देखने में नहीं आई। दो-तीन ऐसे भी मंडप थे जो अपने ढाँचे में यूनानी शिल्प कला की याद दिलाते थे।

मेरा अनुमान था कि हमने चार-पाँच मील का फ़ासला तय किया होगा कि हम उस पहाड़ की तलहटी पर पहुँच गये जो अस्फुट रूप से स्टेशन ही से हमें दिखाई पड़ी थी। सुबह के निर्मल उज्ज्वल प्रकाश में वह पर्वतराज मानो एक उठा हुआ लाल राक्षस सा था। कुहरा अब फट गया था। पर्वत का विराट शिखर आसमान को चूमता नज़र आया। पहाड़ पर कोई वृक्ष नहीं दिखाई दिए। उसका शिखर लाल और भूरे रंग से मिश्रित एक अकेला शिलाखंड है। पहाड़ पर हर कहीं बड़ी बड़ी शिलाएँ अव्यवस्थित रूप से बिखरी पड़ी थीं।

मेरे साथी मेरा रुख देख कर बड़ी उमंग में बोल उठे—"पुनीत पर्वतराज अरुणाचल!" उनके चेहरे से श्रद्धा और भक्ति का आवेग साफ़ झलकने लगा। वह आनन्द के अतिरेक में किसी मध्यकालीन साधु के समान तल्लीन हो गये।

मैंने उनसे पूछा—"इस नाम का कोई अर्थ भी है?"

मुस्कराते हुए उन्होंने कहा—"मैंने अभी तो बताया है। इस नाम के दो खंड हैं, एक 'अरुण' और दूसरा 'अचल' जिनका अर्थ है 'लाल पहाड़'। चूँकि मन्दिर के देवता का भी अरुणाचल ही नाम है, इस शब्द का पूरा अर्थ हुआ 'पवित्र लाल पहाड़'।

"तो आखिर पुनीत ज्योति की बात कहाँ से आई?"

"साल में एक बार मन्दिर के पुजारी एक खास त्योहार मनाते हैं। जैसे

ही मन्दिर में उत्सव का प्रारंभ होता है पहाड़ की चोटी पर एक अखंड ज्योति जलाई जाती है। घी और कपूर आदि से वह गगनचुम्बी ज्वाला पुष्ट की जाती है। वह कई दिन तक उसी ढंग से प्रज्वलित होती रहती है और चारों ओर कई मील तक अपना आलोक फैलाती रहती है। जो कोई उस पवित्र ज्योति को देख लेता है उसके सामने दंडवत् करता है। इसका अर्थ ही यह है कि यह पर्वत परम पावन है और उसका अधिष्ठाता कोई महान देवता है।"

अब पहाड़ का उन्नत मस्तक हमारे पास ही ऊपर आसमान में विराजता दिखाई पड़ने लगा। यह अकेला शिखर, जो हर जगह लाल-भूरे शिलाखंडों से भरा हुआ था, अपने चपटे मस्तक को मुक्तोज्ज्वल गगन में हज़ारों हाथों की ऊँचाई पर बड़े ही प्राकृतिक शोभा के साथ उठाये हुए है। उस सन्यासी की बातों से या और किसी कारण से, मैं ठीक ठीक नहीं बता सकता हूँ किससे, न जाने क्यों उस पर्वतराज के चित्र के मेरे दिल में समाते ही, उस पावन पर्वत के सीधे ढाल पर आश्चर्य के साथ नज़र डालते ही, एक प्रकार की अजीब विस्मयता सारे शरीर में दौड़ने लगी।

मेरे साथी ने मेरे कान में कहा—"जानते हो कि यह पर्वत केवल पवित्र भूमि ही नहीं समझा जाता बल्कि स्थानीय विश्वासों के अनुसार यह कहा जाता है कि देवताओं ने संसार के आध्यात्मिक केन्द्र को जताने के लिए ही इस पर्वत को यहाँ खड़ा किया है।"

इस छोटी पौराणिक गाथा को सुनकर मैं अपनी हँसी नहीं रोक सका। यह कितना सरल विश्वास था!

अन्त को मुझे मालूम हुआ कि हम महर्षि के आश्रम के निकट पहुँच रहे हैं। सड़क छोड़ एक छोटी खुरदुरी राह से हम नारियल और आम के पेड़ों के घने झुरमुट पर पहुँच गये। वहीं रास्ते का अन्त हुआ। फाटक बन्द था। गाड़ीवान गाड़ी से उतर पड़ा और किवाड़ों को ढकेल कर उसने गाड़ी अन्दर हाँकी। वह आश्रम का आँगन था। वह पत्थरों से पटा हुआ न था। मैंने अपने ऐंठे हुए अवयवों को तान दिया और नीचे उतर कर चारों ओर नज़र दौड़ाई।

महर्षि के इस आश्रम को सामने की ओर निविड़ वृक्षराज और बाग के पेड़-पौदों के झुरमुट राहगीरों की दृष्टि से बचाते हैं। पिछवाड़े और अगल-बगल नागफनी तथा अन्य प्रकार की झाड़ियाँ कसरत से उग कर आश्रम की सीमा बताती हैं। दूर पश्चिम की ओर एक झाड़खंड खूब ही उगा हुआ दीख पड़ता था जो सचमुच एक घने जंगल का भ्रम पैदा करता था। यह आश्रम पर्वत की तलहटी की रमणीय गोद में निचली ओर स्थित है। सर्व साधारण की आँख से दूर और संसार के कारोबार से विरक्त यह आश्रम ध्यान आदि योग साधनों के लिए बहुत ही उपयोगी मालूम होता था।

सहन की बायीं ओर छप्पर छाये हुए दो छोटे मकान खड़े थे। उन्हीं से सट कर एक लम्बा, आजकल के मकानों से मिलता हुआ, एक दालान था। उसका लाल खपरैल वाला छप्पर सामने की ओर झुका हुआ था। सामने के एक भाग पर एक छोटा बरामदा रचा गया था।

आँगन के बीच में एक बड़ा कुआँ था। मैंने देखा कि एक लड़का, जो कमर तक एकदम नंगा और रंग में बिलकुल काला है, धीरे धीरे एक चरखी की सहायता से एक बालटी पानी निकाल रहा है।

हमारे वहाँ पहुँचने की आहट से उन मकानों में रहने वाले कुछ लोग सहन में आये। वे कई किस्म के कपड़े पहने हुए थे। एक तो एक अँगोछे के सिवा और कुछ भी नहीं पहने था, लेकिन एक दूसरा रेशम का बेशक़ीमती पहनावा धारण किए हुए था, उनकी आँखों से मेरे बारे में कुछ जान लेने की उनकी चाह साफ ही प्रकट हो रही थी। मेरे साथी उनके विस्मय को देख कर खुश हुए। वे उनके पास जाकर तामिल भाषा में कुछ बोले। तुरन्त उन लोगों के चेहरे खिल उठे और मुझे देख कर वे बहुत ही प्रसन्न होते दिखाई दिये। उनका वह रंग-रूप और चाल-ढाल मुझे बहुत ही अच्छी लगी।

मेरे साथी ने मुझे अपने पीछे चलने का आदेश दिया और कहा—"हम अब महर्षि के दालान में प्रवेश करेंगे। मैंने उस खुले हुए पत्थर के

बरामदे में कुछ देर ठहर कर अपने जूते निकाले। महर्षि के चरणों में चढ़ाने के लिए जो फल-फूल मैं ले आया था उनको हाथ में लेकर एक खुले द्वार से मैं भीतर पैठा।

× × ×

लगभग २० चेहरे मेरी ओर घूमे। वे सब लोग लाल पत्थर से पटी ज़मीन पर अर्ध-वलयाकार में बैठे हुए थे। वे बड़ी श्रद्धा के साथ दरवाजे की दाहिनी ओर सबसे दूर के कोने से काफ़ी दूर पर इकट्ठे हुए थे। यह स्पष्ट था कि हमारे वहाँ पहुँचने के पूर्व वे सभी उसी कोने की ओर ताक रहे थे। मैंने एक क्षण भर के लिए उधर नज़र डाली तो देखा कि एक लम्बे सफेद आसन पर एक व्यक्ति आसीन थे। लेकिन इतना ही उनको महर्षि समझने के लिए काफ़ी था।

मेरे साथी आसन के नज़दीक गये और महर्षि के सामने साष्टांग दंडवत की।

उस आसन से कुछ ही दूर पर दीवार में एक बड़ी भारी खिड़की थी। उसमें से होकर रोशनी सीधे महर्षि के ऊपर पड़ रही थी। उससे मैं महर्षि के रूप-रंग का पूरा पूरा ब्योरा जान सका क्योंकि वे उस समय एकदम अचल हो कर खिड़की में से बाहर की ओर ठीक उसी तरफ़ जिधर से कि हम आये थे स्थिर दृष्टि से ताक रहे थे। उनका सिर तनिक भी हिलता डुलता न था। अतः उनका ध्यान आकर्षित करने के लिए और भेंट चढ़ाते हुए उनको अपना प्रणाम सूचित करने के लिए मैं चुपचाप खिड़की की ओर चला और उनके सामने फल-फूल रख दिये। फिर दो एक कदम पीछे की ओर हट गया।

उनकी गद्दी के सामने एक पीतल की छोटी अंगीठी थी। उसमें जलते हुए अंगारे भरे थे। चारों ओर एक खुशबू फैली थी। अतः मैंने समझ लिया कि उसमें कोई धूप-द्रव्य डाला गया है। पास ही एक धूपदान पर अगरबत्तियाँ जल रही थीं। नीले धूम की छोटी पंक्तियाँ उनसे उठकर उड़ते उड़ते हवा में मिल रही थीं। उनकी गंध कुछ निराली ही थी।
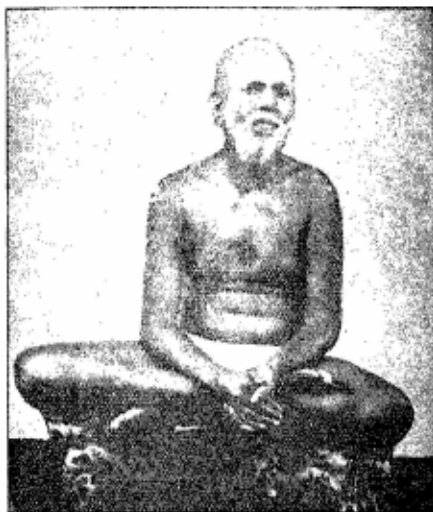
महर्षि जी

मैंने एक गद्दी तह करके ज़मीन पर बिछाई और बैठ कर आसन पर उतनी गम्भीरता के साथ मौन साधे बैठने वाली मूर्ति की ओर आशा भरी निगाह दौड़ाने लगा। महर्षि एक कोपीन के अतिरिक्त और कुछ भी नहीं पहने थे। बदन का रंग कुछ कुछ ताँबे का सा था। तब भी और दक्षिणियों के रंग की अपेक्षा वह अधिक सुन्दर था। मुझे वे काफ़ी लम्बे जान पड़े; उमर उनकी ५०-६० के करीब होगी। उनके सिर का ढाँचा खूब गठा हुआ था। बाल उनके छोटे और पके हुए थे। उनका विशाल और उन्नत ललाट उनके भावों की बौद्धिक विशिष्टता का परिचायक था। उनका रंग-ढंग भारतीयों का सा नहीं वरन् यूरोपियनों के समान था। पहली मुलाकात में मेरी कुछ ऐसी ही धारणा बन गई।

आसन पर सफ़ेद मसनद बिछी हुई थी। महर्षि के चरणों के तले एक बहुत ही सुन्दर बाघम्बर सोह रहा था।

उस लम्बे दालान में एकदम सन्नाटा छाया हुआ था। महर्षि बिलकुल ही स्थिर और अचल थे, हमारे आगमन से वे कुछ भी विचलित नहीं हुए। एक मोटा तगड़ा चेला आसन के पैताने कुछ दूर पर बैठ गया और पंखे की डोरी खींचने लगा। पंखा बाँस और चटाइयों का बना था। वह महर्षि के सिर के ऊपर लटकाया गया था। महर्षि की दृष्टि को अपनी ओर खींचने के प्रयत्न में मैं बराबर उन्हीं की आँखों की ओर टकटकी लगा कर देखने लगा। पंखे की क्रमबद्ध आवाज़ के सिवा और कोई शब्द सुनाई नहीं पड़ता था। महर्षि की आँखें एकदम काली और खुली हुई थीं।

यदि मेरी उपस्थिति का पता उन्हें लग भी गया हो तो भी वे कोई ऐसा चिन्ह प्रकट नहीं कर रहे थे। उनकी देह अलौकिक निश्चलता की मूर्ति बनी थी। वे मानो गड़ी हुई पुतली के समान थे। उन्होंने एक बार भी मेरी ओर नहीं ताका। वे दूर, अनन्त दूरी पर रहने वाली शून्यता की ओर, निहार रहे थे। इस अजीब दृश्य से मुझे और एक विचित्र बात का स्मरण हो आया। इसी प्रकार का दृश्य मैंने कहाँ देखा था? मैं अपने स्मृति-मन्दिर की चित्रशाला

का खोज करने लगा। हाँ, मुझे याद आ गई। ठीक इन्हीं की सी मूर्ति मैंने देखी थी। कहाँ! मद्रास के निकट एक निर्जन कुटी में मौनी बाबा को मैंने देखा था। वे भी यों ही गढ़े हुए शिल्प के मानिन्द एकदम निश्चल थे। इन दोनों व्यक्तियों के शरीरों की अपूर्व निश्चलता में एक विचित्र समानता थी।

मेरा एक पुराना विश्वास था कि किसी की आँखों से उसकी आत्मा के स्वरूप का ठीक ठीक पता लग सकता है। पर महर्षि के दिव्य नेत्रों के आगे मेरा मन चकराया जा रहा था।

अकथ अलस भाव से मिनट गुज़रते गये। धीरे धीरे आश्रम की दीवार पर जो घड़ी थी उसके अनुसार आधा घंटा गुज़र गया; वह भी बीता, फिर एक घंटा गुज़रा। तब भी दालान में बैठने वाले न हिलते थे न डुलते थे। कोई मुँह खोल कर बोलने की हिम्मत सचमुच ही नहीं करता था। मुझे भी एक प्रकार का दृष्टि-ध्यान सा हो गया। मुझे और किसी का पता नहीं चलता था। केवल एक ही व्यक्ति का, चौकी पर आसीन उस दिव्य मूर्ति का ही बोध हो रहा था। मैंने जो फूल-फल चढ़ाया था, उसकी किसी ने खबर तक नहीं ली और मेरी वह भेंट वहीं एक छोटी तिपाई पर पड़ी रही।

सुब्रह्मण्य जी ने तो मुझसे कहा था कि उनके गुरु ठीक मौनीबाबा के समान ही मेरी आवभगत करेंगे। महर्षि का यह रूखापन मुझे कुछ अखरा। घोर उदासीनता के साथ मेरी यह उपेक्षा! किसी भी यूरोपियन के मन में महर्षि को देख कर सब से पहले यह विचार अवश्य उठेगा कि क्या अपने भक्तों के चित्त को आकृष्ट करने के लिए उन्होंने यह मुद्रा ग्रहण की है? मेरे मन में यही विचार एक दो बार उठता दिखाई दिया। यद्यपि सुब्रह्मण्य जी ने मुझ को नहीं बताया था, इस बात में कोई शक न था कि महर्षि समाधि में लीन थे। फिर मेरे मन में जो विचार की लहर उठी वह और कुछ समय तक बनी रही। क्या इस प्रकार के रहस्यमय ध्यान का तात्पर्य अर्थरहित शून्यता में अपने को लय कर लेना तो नहीं है? पर मैंने इस सन्देह को भी छोड़ दिया क्योंकि मैं इस प्रश्न का कोई उत्तर नहीं दे सका।

जरूर इन महात्मा में कोई विशेषता थी। जैसे चुम्बक पत्थर लोहे को खींच लेता है ठीक उसी तरह वह मेरे ध्यान को बरबस अपनी ओर आकृष्ट कर रहे थे। उनके ऊपर मेरी दृष्टि जो एक बार पड़ी तो वहीं वह अड़ गयी और हटने का नाम न लेती थी। शुरू में मैं चकित था; उनकी घोर उदासीनता से मेरा मन चकराने लगा था। पर धीरे धीरे इस विचित्र आकर्षण का प्रभाव मेरे ऊपर अधिक होते होते मेरी सारी बेकली दूर होने लगी। लेकिन इस अजीब परिस्थिति और दृश्य में करीब दो घंटे मैंने बिताये तो मुझे पता चलने लगा कि मेरे अंतरंग के भीतर ही भीतर एक मूक, प्रशान्तिमय दुर्निवार परिवर्तन हो रहा था। रेल में सफर करते समय बड़ी सावधानी के साथ महर्षि से पूछने के लिए मैंने प्रश्नों की एक तालिका तय्यार कर ली थी। लेकिन एक एक करके वे अब गायब होने लगे। मुझे भासने लगा कि उनका पूछना या न पूछना एक सा था, फिर जो शंकाएँ मेरे मन को सता रही थीं उनको हल करने का भी मुझे कुछ आग्रह या प्रयोजन नहीं दिखलाई पड़ा। मुझे केवल इसी बात का अभ्रान्त बोध हो रहा था कि शान्ति का गम्भीर प्रवाह मेरे निकट बह रहा है, मेरे अंतस्तल के अंतरतम पट तक महान् शान्ति पैठती जा रही है और इतने दिनों के बाद विचारों के तुमुल युद्ध से थकित मेरा मन किसी न किसी प्रकार के आराम का स्वाद लेने लगा है।

कितनी ही बार जो प्रश्न मेरे दिल में उठा करते थे वे अन्त में कितने तुच्छ मालूम पड़े! मेरे अतीत जीवन के सारे दृश्य एकदम हेय जँचने लगे। अचानक बड़ी स्पष्टता के साथ मेरे मन पर यह बात प्रकट हो गई कि मन ही मानव के बंधन का असली कारण है, वही अपने गले में आप ही समस्याओं का फंदा डाल लेता है और उसी कल्पित चक्र में पड़ कर उनको सुलझाने के प्रयत्न में हाय-हाय मचाता रहता है। इतने दिन तक बुद्धि को बड़े महत्व की चीज़ समझने वाले मेरे मन में इस विचार का उठना एकदम आश्चर्यजनक था। यह मेरे लिए एक बिलकुल ही नयी बात थी।

दो घंटे तक इस शान्ति-धारा की अनवरत बढ़ने वाली गहराई में अपने आप को मैंने डुबो लिया। अब समय का गुज़रना मुझे नहीं अखरता था क्योंकि

मुझे साफ़ ही प्रतीत हो रहा था कि मनोकल्पित समस्याओं की जंजीरें एक एक करके तावड़-तोड़ टूटती जा रही हैं। फिर धीरे धीरे एक नये प्रश्न ने अपना कोमल शिर उठाया और मन पर कब्जा पा लिया।

जैसे पुष्प से सुगंधि चारों ओर प्रसारित होती रहती है क्या ठीक उसी तरह महर्षि से आध्यात्मिक शान्ति की सुगंधि फैल रही है ? आध्यात्मिकता को पहचानने की मुझमें यद्यपि योग्यता नहीं थी तथापि दूसरों की आध्यात्मिकता का प्रभाव मेरे मन पर अवश्य पड़ता है।

मेरे मन में एक शंका पैदा हो रही थी कि मेरे भीतर जो शान्ति अजीब प्रकार से विराज रही थी उसका कारण केवल मेरे चारों ओर का तात्कालिक वायुमंडल था। महर्षि के सामने मेरी यह शंका एक प्रतिक्रिया मात्र थी। मुझे अचरज हो रहा था कि क्या किसी अज्ञात आत्मिक विभूति से या किसी अजनबी मानसिक शक्ति की प्रक्रिया से, महर्षि से ही मेरी कल्लोलमय आत्मा को डुबाने वाली परम शान्ति प्रसारित हो रही थी ? तब भी वे बिलकुल ही उदासीन, यहाँ तक कि मेरी उपस्थिति के ज्ञान से शून्य, प्रतीत होते थे।

धीरे धीरे दिल में एक छोटी हिलकोरी लहराने लगी। कोई मेरे निकट आया और कान में कहने लगा—"आप महर्षि से कुछ पूछना नहीं चाहते !"

मेरे मार्ग दिखाने वाले महाशय शायद अब उठे थे। कदाचित् वे समझे होंगे कि मैं, एक चंचल योरप निवासी, क्षमता की पराकाष्ठा को पहुँच गया हूँ। हाय मेरे उत्सुक मित्र ! सचमुच मैं आपके गुरु से प्रश्न करने के लिए ही आया था लेकिन अब मेरे दिल में शान्ति ही शान्ति विराज रही है, मेरे अपने ही दिल में संघर्ष का, अशान्ति का नामोनिशान नहीं है। तब मैं प्रश्नों को सोच सोच कर व्यर्थ ही अपना माथा-पच्ची क्यों करूँ ? मुझे साफ़ साफ़ भासने लगा कि मेरी जीवन-नैया का खेवनहार मिल गया है। मुझे अभी एक अद्भुत सागर को पार करना है, तब क्या मैं फिर से तुमुल संघर्षमय संसार के दाँव-पेंचों में अपने को फँसा दूँ। और वह भी तब जब कि मैं किसी तरह खेवनहार को पाकर उसके साथ आगे बढ़ने जा रहा हूँ।

जो कुछ हो, जादू टूट ही गया। दालान में मूर्तियाँ उठकर इधर उधर चलने लगीं, लोगों के बोलने की भनक मेरे कानों में पड़ने लगी, मानो मेरे मित्र का यह अनुचित हस्तक्षेप इस सारी अशान्ति के लिए एक इशारा था। खास बात यह हुई कि महर्षि की काली चमकीली आँखों की पलकें एक दो बार झपक गईं। फिर उनका सिर घूमा। धीरे धीरे उनकी दृष्टि फिर कर एक कोने में नीचे की ओर लग गई। कुछ ही क्षण बाद उनकी पूरी दृष्टि मेरे ऊपर पड़ने लगी। पहली ही बार उनकी विचित्र रहस्यमय चितवन मेरे ऊपर पड़ी। यह साफ़ था कि वे अपनी दीर्घ समाधि से जाग उठे थे।

मेरे मित्र ने मेरे मौन का कुछ दूसरा ही अर्थ समझा। सोचा कि मैंने उनकी बात नहीं सुनी। अतः उन्होंने कुछ ज़ोर से अपना प्रश्न दुहराया। पर उन ज्योतिर्मय नेत्रों में, जो बड़ी प्रशान्ति के साथ मेरी ओर लगे हुए थे, मुझे एक दूसरा ही मूक प्रश्न सूझ रहा था।

क्या यह हो सकता है, क्या यह सम्भव है, कि तुमने जब एक बार अपने अन्दर रहने वाली पराशान्ति की एक झाँकी पा ली है—जिसको कि हर एक अवश्य पा सकता है—अब भी चित्त की शान्ति में खलल पहुँचाने वाली क्षोभमय शंकाएं तुम्हें सताती हों?

शान्ति मेरी आत्मा को प्लावित करने लगी। मैंने अपने मित्र की ओर घूमकर उत्तर दिया:

"नहीं, नहीं, मुझे अब कुछ पूछना नहीं है। किसी और समय—।"

मुझे जान पड़ा कि अपने आने का कुछ हाल मुझे सुनाना है, महर्षि को नहीं बल्कि बहुत ही उत्सुकता के साथ मेरे निकट एकत्रित एक छोटी भीड़ को। अपने मित्र से मुझे मालूम हो गया था कि उनमें से बहुत थोड़े ही लोग आश्रमवासी थे। बाकी लोग महर्षि के दर्शनों के लिए अन्य स्थानों से आये हुए थे। आश्चर्य की बात यह हुई कि ठीक इसी समय मेरे मित्र मेरा परिचय देने लग गये। बड़े उत्साह के साथ ज़ोरदार तामिल में वे उस छोटी मंडली को मेरे बारे में कुछ बता रहे थे। मुझे संकोच होने लगा कि शायद वे सच्ची

बातों के साथ कुछ कल्पित बातें भी कह रहे थे क्योंकि उस मंडली में मेरे सम्बन्ध में प्रशंसापूर्ण चर्चा होने लगी।

× × ×

दोपहर का भोजन हो गया। सूर्य बड़ी निठुरता के साथ सब कुछ जला रहे थे। मैंने इससे पहले इतनी कड़ाके की धूप का अनुभव नहीं किया था। हम विषुवत् रेखा के निकट ही तो थे। मैं भारत की आलस्य पैदा करने वाली आबहवा का एहसान मानने लगा, क्योंकि सभी आश्रमवासी आराम करने के लिए झुरमुटों की छाया की खोज में चले गये। अतः मुझे अपनी इच्छा के अनुकूल, बिना किसी प्रकार की हलचल पैदा किए, अकेले महर्षि से भेंट करने का सौभाग्य प्राप्त हुआ।

मैंने दालान में प्रवेश किया और महर्षि के निकट ही बैठ गया। वे चौकी पर तकियों का थोड़ा सहारा लेकर बैठे थे। एक चेला धीरे धीरे पंखा खींच रहा था। उसकी डोरी के खींचने से जो घर-घर की आवाज़ आ रही थी पंखे के इधर उधर डुलने की ध्वनि से मिलकर कानों को सुहावनी लगती थी।

महर्षि के हाथों में तहाई हुई एक पांडुलिपि थी। वे बहुत ही धीरे कुछ लिख रहे थे। मेरे वहाँ बैठने के कुछ मिनट बीतने पर उन्होंने वह पांडुलिपि एक ओर रख दी और एक चेले को बुलाया। फिर उससे उन्होंने तामिल में कुछ कहा। उसे सुनकर चेले ने मुझसे कहा—"महर्षि को बड़ा खेद है कि आप आश्रम का आतिथ्य ग्रहण नहीं कर सके। आश्रम में रूखा-सूखा भोजन ही मिलता है। इससे पहले कभी किसी यूरोपियन की मेज़बानी न होने के कारण आश्रमवासी नहीं जानते हैं कि आप लोगों की क्या रुचि है।" मैंने महर्षि को धन्यवाद दिया और विनय की कि उन लोगों के रूखे-सूखे भोजन में ही मुझे आनन्द है। बाकी आवश्यक चीजें मैं शहर से मँगा लूँगा। भोजन का प्रश्न बहुत बड़े महत्व का तो नहीं है। आश्रम को ढूँढ़ कर मैं जिस खोज में आया हूँ वही खोज मेरे लिए अधिक प्रधान है।

महर्षि ने बड़े ध्यान के साथ मेरी बातें सुनीं। उनका मुखमंडल बड़ा ही प्रशान्त और उदासीन तथा स्थिर था।

कुछ देर के बाद उन्होंने कहा—"यह तो बड़ा अच्छा उद्देश्य है।"

इस जवाब से मुझको कुछ बढ़ावा मिल गया और इसी विषय की ओर चर्चा करने का साहस प्राप्त हुआ।

"भगवन्, मैंने अपने पश्चिम के सारे दर्शनों को पढ़ा है। विज्ञानों का भी अध्ययन किया है। खचाखच भरे हुए पश्चिम के शहरों में रह कर लोगों के बीच में काम भी किया है। उनके सुखों का स्वाद भी मैंने चक्खा है। उनकी लालसाओं के जाल में अपने को फँसने भी दिया है। मुझे निर्जन स्थानों में रहने का सौभाग्य प्राप्त हुआ है। उन एकान्त स्थानों में रह कर गहरे विचारों की विविक्तता के बीचोबीच भूला-भटका भी हूँ। मैंने पश्चिम के विद्वानों से पूछ कर देखा, और अब मैं पूर्व की ओर आशा लगा कर आया हूँ। भगवन्, मुझे ज्योति का आलोक चाहिए।"

महर्षि ने सिर हिला दिया मानो कह रहे थे 'बहुत अच्छा, अच्छी तरह समझा।'

"मैंने कई मत और कई सिद्धान्त सुने हैं। मेरे चारों ओर बुद्धि कुशलता से पगे हुए एक न एक धार्मिक विश्वास के प्रमाण ढेर के ढेर पड़े हुए हैं। मेरा उनसे जी ऊब उठा है। जिसका प्रत्यक्ष अनुभूति प्रमाण नहीं है उस बात के बारे में मुझे शंका होने लगी है। माफ़ कीजियेगा मैं धार्मिक नहीं हूँ। मेरा किसी धर्म पर विश्वास नहीं है। भौतिक अनुभूति के परे क्या और किसी चीज की सत्ता है? यदि हो तो मैं उसको कैसे जान सकता हूँ?"

मेरे निकट जो तीन चार भक्त बैठे हुए थे वे चकित होकर मेरी ओर ताकने लगे। इतनी अशिष्टता और हिम्मत के साथ उनके गुरु के साथ बोलने में आश्रम की नाज़ुक सभ्यता और शिष्टाचार में तो मैंने बाधा नहीं पहुँचाई है? मुझे मालूम नहीं था कि मुझसे कोई भूल हुई या नहीं, पर मैंने उनकी कोई परवाह भी नहीं की। कई वर्षों की निरुद्ध और संचित इच्छा के आवेग ने

अचानक मेरे जाने बिना ही मेरे मुँह को खोल दिया था। मैं लाचार था, शब्द मुँह से निकल गये थे। यदि महर्षि सच्चे सिद्ध होंगे तो अवश्य ही वे मेरा मतलब समझ जायेंगे और शिष्टता की भूल-चूक को ताक पर रख देंगे।

उन्होंने कोई ज़बानी जवाब नहीं दिया, पर किसी विचार की धारा में डूबे हुए प्रतीत हुए। चूँकि मुझे और कुछ तो करना नहीं था और मेरी ज़बान एक बार खुल चुकी थी अतः तीसरी बार उनको सम्बोधन करके मैं बोलने लगा :

"पश्चिम के विद्वान, हमारे वैज्ञानिक, अपनी बुद्धिमत्ता के लिए बड़े ही मशहूर हैं और लोग उनका बड़ा आदर-सत्कार करते हैं। तिसपर भी उन्होंने मान लिया है कि जीवन के तले जो प्रच्छन्न सत्य है उस पर कुछ भी रोशनी वे नहीं डाल सकते। कहा जाता है कि आप के देश में कुछ ऐसे लोग हैं जो उस सत्य को बता सकते हैं जो पश्चिमी विद्वानों के लिए असंभव ही है। क्या यह बात ठीक है? ज्ञान के आलोक का अनुभव कर लेने में आप मेरी मदद कर सकते हैं? या यह सारी जिज्ञासा ही एक भारी मिथ्या मात्र है?"

मैं अब बातचीत के परम उद्देश्य पर पहुँच चुका था। अतः महर्षि के उत्तर की प्रतीक्षा करने का इरादा कर लिया। मननयुक्त दृष्टि से वे मेरी ओर आँखें फाड़ कर देखते ही रहे। शायद वे मेरे प्रश्नों पर विचार कर रहे थे। सन्नाटे में ही और दस मिनट बीत गये।

अंततोगत्वा उनके ओंठ खुले। बड़ी मृदुता के साथ वे बोले : "तुम 'मैं' कहते हो; मैं जानना चाहता हूँ कि यह 'मैं' कौन सी चीज है!"

उनका मतलब क्या था? अब दुभाषिए की उन्हें ज़रूरत नहीं थी। मुझ से सीधे वे अंग्रेज़ी में बोलने लगे। मेरा मन हैरानी में भूला सा जा रहा था।

साफ़ साफ़ बिना कुछ छिपाये मैं बोल उठा—"खेद है मैंने आपके प्रश्न का आशय नहीं समझा।"

"क्या मतलब स्पष्ट नहीं है? फिर सोच कर देखो!"

फिर उनके शब्दों ने मुझे चकित कर दिया। अचानक मेरे दिमाग में एक बात चमक गई। मैंने उँगली से अपना निर्देश करके अपना नाम बता दिया।

"तुम उसको जानते हो?"

मुस्कराते हुए मैं बोला—"क्यों नहीं, सारी उम्र मैंने उसे जाना है।"

"लेकिन यह तो तुम्हारा शरीर है। मेरा फिर यही प्रश्न है, 'तुम कौन हो?'।"

इस अजीब प्रश्न का, मैं कोई तात्कालिक उत्तर नहीं दे सका।

महर्षि फिर बोलने लगे :

"पहले उस 'मैं' को जान लो, फिर तुमको सत्य मालूम हो जायगा।"

फिर भी मेरे मन में अस्पष्टता का कुहरा छाया रहा। मैं बिलकुल ही चकित हो गया था। इस हैरानी ने शब्दों में अपने को प्रकट कर ही दिया। पर महर्षि अपनी अंग्रेजी की हद तक स्पष्ट ही पहुँच चुके थे क्योंकि उन्होंने दुभाषिए से कुछ कह दिया। धीरे धीरे उसका अनुवाद मुझको कुछ बता दिया गया :

"करना तो एक ही काम है। अपनी आत्मा की झाँकी ले लो। इसको ठीक और सही मार्ग से कर लोगे तो फिर तुम्हारी सारी समस्याएँ हल हो जायँगी।"

यह एक अजीब जवाब था। तब भी मैंने प्रश्न किया :

"तब क्या करना होगा? मुझे किस मार्ग का अनुसरण करना चाहिए?"

"अपनी आत्मा के स्वरूप के बारे में गहरा ध्यान लगाने से तथा निरंतर मनन से ही क्या ज्योति नहीं पाई जा सकती?"

"मैंने बहुधा मग्न होकर तत्व का ध्यान किया है पर मुझे उन्नति के कोई चिन्ह नजर नहीं आ रहे हैं।"

"तुम्हें क्योंकर मालूम हुआ कि कुछ भी उन्नति नहीं हुई है। आध्यात्मिक साधना में अपनी उन्नति का ठीक ठीक अंदाज लगा लेना कोई आसान बात नहीं है।"

"इस मार्ग में गुरू की कोई आवश्यकता होगी ?"

"हो सकती है।"

"आप के कहे अनुसार आत्मा की झाँकी ले लेने में साधक को गुरू कोई सहायता पहुँचा सकते हैं ?"

"इस जिज्ञासा के लिए, इस खोज के लिए जो कुछ भी साधक को आवश्यक जँचे गुरू प्रदान कर सकते हैं, पर वास्तविक झाँकी तो साधक को अपने आप ही लेनी पड़ेगी।"

"गुरू की सहायता के रहते कितने समय में साधक अपने ध्येय पर पहुँच सकता है ?"

"यह सब जिज्ञासु के मन के परिपाक पर निर्भर है। बारूद में आग लगते देरी क्या लगती है, पर कोयले में आग लगने में कितनी देरी लगती है ! तुम्हीं सोच कर देखो।"

मुझे न मालूम क्यों एक अजीब प्रकार से भान होने लगा कि गुरू और चेले की बातें महर्षि को पसन्द नहीं हैं। किन्तु तब भी मेरे मन में ऐसी ज़िद समा गई थी कि इस भावना की मैंने कोई परवाह ही नहीं की और इसी विषय पर फिर भी एक प्रश्न पूछने का साहस किया। उन्होंने मानो अनसुनी करके अपना मुँह घुमा लिया और दूर के पहाड़ी दृश्य की विपुलता की ओर निगाह दौड़ाने लगे। कुछ भी उत्तर न मिलने की सूरत देख कर मैंने उस बात का सिलसिला छोड़ दिया और बातचीत का रुख ही बदल दिया। पूछा :

"हम बड़े विकट ज़माने में फँसे हुए हैं। दुनिया का आगे क्या होगा, महर्षि कृपया बता देंगे ?"

"भावी की तुम्हें चिन्ता करने की ज़रूरत ही क्या है ? वर्तमान को भी

तो अच्छी तरह पहचान नहीं पाते हो। वर्तमान की फिक्र करो, फिर भावी अपनी खबर आप ही ले लेगी।"

फिर भी तिरस्कार। लेकिन अबकी बार मैंने सहज में अपनी हार नहीं मानी। मैं दुनिया के एक ऐसे भाग से आया हुआ था जहाँ जीवन की दुःखद परिस्थितियों का प्रभाव इस शान्त निर्जन आश्रम के नितान्त विपरीत है।

हठ के साथ मैंने पूछा—"क्या निकट भविष्य में ही दुनिया में मैत्री और करुणा का नया युग अवतरित होगा, या वह इसी युद्ध और अशान्ति के विकट कल्लोल में और भी गिरती फँसती चली जायगी?"

मुझे ज्ञात हुआ कि महर्षि की अप्रसन्नता अधिक होती जा रही है। उनको मेरा प्रश्न बिलकुल ही पसन्द न आया। तब भी उन्होंने उत्तर दिया :

"सारी दुनिया का एक ही ईश्वर है। वही दुनिया की खबर लेगा। जिसने संसार की सृष्टि की है, वह अवश्य ही उसकी रक्षा करना भी जानता है। दुनिया का भार वह अपने माथे उठाये हुए है, तुम तो नहीं।"

मैंने आपत्ति उठाई :

"पक्षपात को छोड़ कर चारों ओर नजर दौड़ाने से उसके इस कृपामय भार-वहन की बात पर विश्वास करना ही मुश्किल हो गया है।"

महर्षि और भी अप्रसन्न होते दिखाई दिये। तिस पर भी उत्तर मिल ही गया :

"जैसे तुम हो, वैसे दुनिया भी है। अपने को जाने बिना दुनिया को समझ लेने की चेष्टा करना व्यर्थ है। जिज्ञासुओं को इस प्रश्न के पीछे पड़ने की कोई जरूरत नहीं है। ऐसे सारे प्रश्नों के पीछे लग कर लोग अपनी ताकत को व्यर्थ ही खोते रहते हैं। पहले अपने ही सत्य स्वरूप को जान लो, तब दुनिया के तले जो तत्त्व छिपा हुआ है उसको समझ लेने की अधिक योग्यता प्राप्त होगी, क्योंकि तुम भी दुनिया के एक भाग ही हो।"

एकबारगी उनकी बातों की धारा रुक गई। कोई परिचारक निकट आया और उसने एक अगरबत्ती जलाई। उसकी नील धूम-रेखा बल खाती हुई ऊपर की ओर उड़ रही थी। कुछ देर तक महर्षि उसी की ओर ताकते रहे। फिर उन्होंने अपनी पांडुलिपि उठा ली और पन्ने खोलकर अपने ही काम में लग गये। उनको मेरी उपस्थिति की बात ही मानो भूल सी गई।

उनकी इस घोर उदासीनता के कारण मेरे आत्माभिमान पर पानी पड़ गया। मैं १५ मिनट तक और वहीं बैठा रहा पर मेरे प्रश्नों का उत्तर देने का महर्षि का रुख नहीं देख पड़ा। मुझे भासने लगा कि हमारी बातचीत अब रुक ही गई। मैं फर्श पर से उठा, हाथ जोड़ कर महर्षि को नमस्कार किया और विदा ले ली।

× × ×

मैं अरुणाचलेश का मन्दिर देखने शहर जाना चाहता था। इसलिए गाड़ी बुलाने के लिए एक व्यक्ति को नगर में भेज दिया। उससे मैंने कहा था कि हो सके तो घोड़ागाड़ी ही लावे क्योंकि बैलगाड़ी देखने में चाहे सुन्दर लगे तो भी वह जल्द मुझे नहीं ले जा सकती थी।

सहन में आते ही मैंने देखा कि एक घोड़ागाड़ी मेरी इन्तजारी में खड़ी है। उसमें कोई आसन नहीं था। फिर भी मुझे अब ऐसी बातें अखरती नहीं थीं। गाड़ीवान का चेहरा कुछ खौफ़नाक था। उसके सिर पर एक मटमैला साफा बँधा हुआ था। वह एक कोरे कपड़े की धोती पहने था।

एक लम्बी धूल भरी सड़क पार कर हम मन्दिर के द्वार-देश पर पहुँच गये। वह मानो अपने सुन्दर कलशों से मेरा स्वागत कर रहा था। मैं गाड़ी से उतर कर सरसरी निगाह से मन्दिर की ओर निहारने लगा।

मेरे पूछने पर मेरे साथी ने कहा—"मन्दिर कितना पुराना है मैं नहीं बता सकता। पर देखने से वह कुछ सदियों का मालूम होता है।"

मन्दिर के सिंहद्वार के अगल बगल में छोटी छोटी दूकानें थीं। उनमें

साधारण वेष के व्यापारी बैठे थे और वे पवित्र मूर्तियाँ तथा तसवीरें और शिव तथा अन्य देवताओं की पीतल की बनी मूर्तियाँ बेचते थे। जब दूसरे शहरों में कृष्ण और राम की मूर्तियों का आधिक्य है, यहाँ शिव की प्रधानता देखकर मुझे कुछ आश्चर्य हुआ। मेरे साथी ने मुझे इसका कारण बताया :

"हमारे पवित्र ग्रंथों तथा इतिहासों के अनुसार एक बार महादेव ने एक ज्योति के रूप में पवित्र अरुणागिरि के शिखर पर दर्शन दिया था। इस कारण मन्दिर के पुजारी लोग साल में एक बार इसी पुरानी घटना की याद में एक महान् ज्योति पर्वत शिखर पर प्रज्ज्वलित करते हैं। यह घटना ज़रूर ही कई हज़ार वर्ष पूर्व घटी होगी। मेरा अनुमान है कि मन्दिर उसी घटना को एक स्थाई रूप देने के लिए बनाया गया था। अब भी यह पवित्र पर्वत शिव जी की छत्रछाया में है।"

कुछ यात्री अलस भाव से दूकानें देख रहे थे। वहाँ केवल पीतल की मूर्तियाँ ही नहीं किन्तु रंग-बिरंगी तसवीरें, जिनमें किसी न किसी धार्मिक घटना का चित्रण था, तामिल और टेलुगू भाषाओं में छपे धर्मग्रंथ, तिलक धारण करने के लिए उपयोगी श्रीचूर्ण, भभूत, चन्दन आदि वस्तुएँ भी मिलती थीं।

एक कोढ़ी हिचकिचाते हुए मेरी ओर भीख माँगने के लिए बढ़ा आ रहा था। उसके अंगों का मांस कहीं कहीं गल गया था। वह डरता था कि शायद मैं उसे खदेड़ दूँगा। उसे यह निश्चय नहीं था कि उसको देखकर मेरे दिल में करुणा उत्पन्न होगी अथवा नहीं। उस भयानक बीमारी के कारण उसका चेहरा विरूप हो गया था। उसके लिए कुछ भीख जमीन पर रखते हुए मुझे लज्जा होने लगी, पर क्या करूँ उसको छूने में मुझे भय मालूम होता था।

द्वारदेश का कलश बड़ा ही चित्ताकर्षक था। उस पर कई मूर्तियाँ खोद कर बनाई गई थीं। उसकी वह गगनचुम्बी ड्योढ़ी मिस्र के किसी पिरामिड, जिसकी चोटी गिरा दी गयी हो, के समान दिखाई पड़ती थी। अपने तीन और

साथियों के साथ यह कलश मानो इर्द-गिर्द पर अपना प्रभुत्व जमा रहा था। मीलों की दूरी से भी ये कलश दिखाई देते थे।

कलश के ऊपर खोदकर अनेक चित्र बनाये गये थे। यत्र-तत्र अजीब मूर्तियाँ भी दिखाई देती थीं। इन चित्रों का आधार पुराणों की कथाएँ थीं। अनेक घटनाओं के मिश्रित प्रतिनिधि कुछ हिन्दू देवता पवित्र समाधि में लीन नजर आते थे। उन्हीं के आस-पास वे चित्र भी थे जिनमें देवताओं का मोहक आलिंगन आदि का चित्रण किया गया था। इन बेजोड़ और अनमिल चित्रों को देखकर प्रेक्षकों को आश्चर्य होता है। इनको देखकर भान हुए बिना नहीं रहता है कि हर एक दर्जे के आदमी के लिए विशाल हिन्दू धर्म में स्थान है। हिन्दू धर्म की उदारता कुछ ऐसी ही है।

मैंने मन्दिर में प्रवेश किया तो भीतर एक विशाल आँगन था। उसमें बड़ी बड़ी सोपान-पंक्तियाँ, छोटे बड़े मन्दिर, कमरे, हजारों खम्भों की कतारें, छज्जे, मठ आदि रचे दिखाई देते थे। एथेन्स के देवताओं के आश्चर्य चकित करने वाले शिल्पों के समान यहाँ कोई शिल्प नहीं था। उसके विपरीत इन धुँधले शिल्पों में कोई प्रच्छन्न मर्म, कोई अजीब रहस्य छिपा नजर आता था। इन विशाल शिल्पों की विविक्तता की शीतलता मुझे चकित और भयभीत कर रही थी। वह मन्दिर मानो एक भूलभुलैया था, पर मेरे साथी विश्वास के साथ डग आगे बढ़ाते चले जा रहे थे। बाहर से कलशों की शिलाओं की लाली आँखों को खींच रही थी, पर भीतर की शिलाओं का रंग मटमैला था।

हम धीरे धीरे आगे बढ़े जा रहे थे कि मेरे मित्र अचानक बोल उठे—"हजार खंभों वाला मंडप"! वह जगह एकदम सूनी थी। मेरी आँखों के सामने दूर तक विराट शिला-स्तंभों की पंक्तियाँ खड़ी दिखाई पड़ीं। कोई चिड़िया का पूत तक वहाँ नहीं था। मंद आलोक में से अनेक भीमकाय स्तंभ ऊपर उठते अस्पष्टता के साथ दिखाई देते थे। मैं भीतर प्रवेश कर समीप हो उन स्तंभों पर खुदे हुए चित्रों का परिशीलन करने लगा। एक एक स्तंभ, एक ही शिलाखंड से बनाया गया था। ऊपर की छत भी बड़े शिला-

प्रस्तरों से पटी हुई थी। फिर मैंने देखा कि देवी-देवता शिल्पियों की कला के साथ मग्न होकर कलोलें कर रहे हैं। जान पड़ा कि परिचित और अपरिचित जानवरों के खुदे हुए चेहरे मेरी ओर घूर रहे हैं।

हम इन अंधकारपूर्ण गलियों को पार कर, दीप-बत्तियों के मन्द आलोक को देखते हुए एक घेरे में आ पहुँचे। उस घेरे में जाते हुए एक बार सूर्य की रश्मि के दर्शन से मेरा मन प्रफुल्लित हो उठा। अब हमें मन्दिर के भीतर पाँच छोटे कलश दिखलाई पड़े। वे ठीक ठीक बाहर के कलशों के ही रूपक थे। मैंने अपने निकट के कलश को गौर से देखा और निश्चय कर लिया कि वह ईंटों का बना है। उसके ऊपरी भाग में जो सजावट की गई है वह लाल पत्थर की बनी न थी बल्कि पकी चिकनी मिट्टी या कोई टिकाऊ पलस्तर की बनी थी। उस पर कई रंग-बिरंगे चित्र बनाये गये थे जिनका रंग अब जाता रहा था।

हमने अब घेरे में प्रवेश किया और आगे बढ़ने लगे। मेरे साथी ने मुझे सहेज दिया कि हम गर्भगृह के निकट पहुँचने वाले हैं जहाँ यूरोपियनों को प्रवेश करने का अधिकार नहीं है। पर यद्यपि परम-पिता का दर्शन अविश्वासियों को मना है तो भी आँगन के पास से जाने वाली एक तंग राह से उस देवाधिदेव की एक झाँकी ली जा सकती है। उनकी चेतावनी की पुष्टि में मानो ढोल पिटने की आवाजें, शंख और घंटों का निनाद, उस पुराने पवित्र स्थल में कुछ बेमेल जँचनेवाले पुरोहितों के मंत्र आदि पढ़ने के मायूस स्वर मेरे कानों में गूँजने लगे।

चाह भरी दृष्टि से मैंने एक झाँकी ले ली। भीतर के धुंध में एक मूर्ति के सामने एक सुनहली ज्योति चमक रही थी। पास ही की वेदी पर दो-तीन दीपक टिटिमा रहे थे और कुछ उपासक किसी धार्मिक पूजा के क्रम में लगे हुए थे। मैं ठीक ठीक पुजारियों को पहचान नहीं सका। अब शंख, शृङ्ग आदि का तुमुल कोलाहल भी गाने आदि की ध्वनि में मिल गया।

मेरे साथी ने मेरे कान में कहा कि यहाँ देर तक ठहरना अच्छा न होगा

क्योंकि मेरी मौजूदगी अवश्य ही पुजारियों को अखरेगी। तब हम वहाँ से हट कर मन्दिर के बाहर की निद्रालु पवित्रता की गोद में आ गये।

द्वारदेश पर पहुँचते पहुँचते मुझे हट कर चलना पड़ा क्योंकि कोई वृद्ध ब्राह्मण बीच राह में एक छोटे लोटे में पानी लेकर बैठा हुआ था। उसके एक हाथ में टूटे शीशे का एक टुकड़ा था। उसकी सहायता से उसने अपने ललाट पर बड़े ठाट का तिलक सँवारा। मन्दिर के द्वार-देश के पास की एक दूकान में एक सिकुड़ा हुआ बूढ़ा बैठ कर महादेव की मूर्तियाँ बेच रहा था। उसने अपनी आँखें उठा कर मुझे देखा तो मैं ठिठक कर सोचने लगा कि उस बूढ़े की मूक प्रार्थना को स्वीकार कर कुछ खरीद लूँ।

शहर में कहीं दूर पर से मुझे एक चमकती हुई मीनार दिखाई दे रही थी। अतः मैं मन्दिर को छोड़ कर स्थानीय मसजिद देखने चला। मसजिदों के खूबसूरत मेहराबों और सुन्दर मीनारों तथा गुम्बजों को देखते ही न जाने क्यों हमेशा ही मेरे दिल में खुशी की एक लहर उठने लगती है। अपने जूते निकाल कर उस लुभाने वाली सफ़ेद इमारत में मैं दाखिल हुआ। उसके भीतर क़दम रखते ही आत्मा बड़ी ही शान्त हो गई। भीतर कुछ मोमिन मौजूद थे। वे बैठ कर अपनी अपनी जानमाज़ों पर या तो सिजदा कर रहे थे या चुपचाप ही बैठे थे। यहाँ पर न तो कोई रहस्यपूर्ण इमारत ही थी और न कोई ठाट की मूर्तियाँ ही नज़र आती थीं, क्योंकि पैग़म्बर ने लिखा है कि खुदा के बन्दे और खुदा के बीच में किसी तीसरे की—मुल्ला तक की—कोई जगह नहीं है। अल्लाह के सामने सभी मोमिन एकसाँ हैं। खुदा के दरबार में मुल्ला या मौलवी, छोटे या बड़े का कोई स्थान नहीं जो क़िबले की ओर चेहरा करते ही इनसान के ख़यालों तथा अल्लाहताला के बीच में बोल सकें।

जब हम खास सड़क से होकर आश्रम को लौटने लगे तो मैंने देखा कि सड़क के दोनों बाज़ू में तरह तरह की दूकानें हैं। ये सब यात्री लोगों की आवश्यकताओं को पूरा करने के लिए थीं।

मैं अब जल्दी महर्षि के यहाँ पहुँचने के लिए लालायित होने लगा ! गाड़ीवान अपने टट्टू को बेतहाशा दौड़ाने लगा। मैंने पीछे घूम कर और एक बार अरुणाचलेश के मन्दिर की ओर निगाह दौड़ाई। नवों कलश आसमान की ओर उठे हुए थे। वे मानो मुझको बता रहे थे कि ईश्वर के नाम पर कितना क्षमतापूर्ण परिश्रम इस मन्दिर के निर्माण में किया गया था। इसमें कोई सन्देह न था कि मन्दिर किसी एक व्यक्ति के जीवन काल में तैयार नहीं हुआ होगा। फिर भी मिस्र देश की बातें मुझे याद आने लगीं। सड़कों के तैयार करने का ढंग, उनकी सजावट और रचना, सड़कों के बाजू के कम ऊँचे मकानों की श्रेणी और उसकी मोटी भीतें सब कुछ मानो मिस्र देश की कोई जीती जागती प्रतिछवि थी।

क्या कभी वह दिन भी होगा जब ये मन्दिर शून्य नीरवता में डूब कर धीरे धीरे ढह कर उसी लाल या मटमैली धूल में मिल जावेंगे जिससे वे बनवाये गये थे ? या मानव ही नये देवताओं का आविष्कार करके उनकी उपासना के लिए नये मन्दिर रचेगा ?

अरुणागिरि की तलहटी में स्थित आश्रम की ओर हमारी गाड़ी चली आ रही थी। सामने प्रकृति की निराली शोभा छलक रही थी। रात को अपनी आराम की सेज पर सुख पाने के लिए बड़े भारी ठाट के साथ सूर्य जब चलने लगता है उस घड़ी की प्रतीक्षा करते इस पूर्वीय भूभाग में मैंने कितनी आशा से कितने ही घंटे बिताये हैं। पूर्वीय देशों में अपने स्फुट वर्णों की चित्रसारी से सूर्य की अस्तमय वेला मन को बरबस मोह लेती है। तब भी समस्त दृश्य बहुत ही जल्दी आँखों से ओझल हो जाता है। शायद इस मनोमोहक दृश्य की शोभा केवल आध घंटे से कुछ कम ही फ़ैली रहती है।

दूर, पश्चिम के क्षितिज पर एक प्रचंड प्रज्वलित कंदुक जंगल में नील गगन से उतरते हुए दिखाई देता है। अपनी शीघ्र निष्क्रान्ति के पूर्व ही वह एक निराले नारंगी रंग को धारण कर लेता है। उसके आस-पास सारा आकाश चित्र-विचित्र वर्णों से भर जाता है और अपनी छटा से प्रेक्षकों के रसिक नेत्रों

को आनन्द विभोर कर देता है। उस अनूठी बेला की सारी बहार को किस चितेरे की निपुण कूँची चित्रित कर सकती है ? हमारे चारों ओर सारे खेत और वृक्षों के झुरमुट मानो ध्यानस्थ, नीरव तथा प्रशान्त हुए। छोटी चिड़ियों की मीठी कल-कल की तान भी अब सुनने को नहीं मिल रही थी। जंगली बन्दरों की गुर-गुर ध्वनि शान्त सी हो गई थी। उस रक्त-ज्वाला का महान चक्र जल्द ही संकुचित होते होते गायब हुआ ही चाहता था। साँझ की यवनिका और भी गाढ़ी होने लगी और चमकने वाली अग्निशिखाओं का वह सारा दृश्य अनन्त अंधकार में विलीन हो गया।

बाह्य प्रशान्ति मेरे विचारों पर अपना साया डालने लगी। दृश्य की वह मधुरिमा मेरे दिल को छूने लगी। ईश्वरीय कृपा की ये उदात्त घड़ियाँ, जब कि हमारे दिल में जीवन के क्रूर अवगुंठन के तले भी एक परम कृपामय सत्य शिव सुन्दर रूपी महान् शक्ति के अस्तित्व की सद्भावना लहर मारने लगती है, भुलाये नहीं भूलतीं। इस अपूर्व पर्वकाल की घड़ियों के सामने सामान्य जीवन की घड़ियाँ लज्जित होकर विस्मृत हो जाती हैं। शून्य के अतल गर्भ से आशा की एक नश्वर ज्योति चमकाने के लिए ये उल्काओं के समान कौंध उठती हैं और देखते देखते हमारी नज़रों से ओझल भी हो जाती हैं !

× × ×

अंधकार की भित्ति पर अपनी कान्ति झलकाते हुए जुगनू आश्रम के बगीचे में हर कहीं चमक रहे थे। आँगन के चारों ओर नारियल के पेड़ खड़े थे। उसी मार्ग से होकर मैंने दालान में प्रवेश किया और नीचे फ़र्श पर बैठ गया। मालूम पड़ता था कि यहाँ की हवा में ही एक उदात्त प्रशान्ति समा गई थी।

दालान में लोग घेरा बाँध कर बैठे थे, पर उनमें न कोई बातचीत होती थी न उनसे किसी प्रकार की आवाज़ ही निकलती थी। कोनेवाली चौकी पर आसन मारे महर्षि बैठे हुए थे। उनके हाथ यों ही उनके घुटने पर लगे हुए थे। मुझे वे इस समय भी सरलता और नम्रता की मूर्ति दिखलाई पड़े; साथ

ही वे बड़े ही उदात्त और रौबीले प्रतीत हो रहे थे। 'होमर' के समय के किसी ऋषिवर के समान उनका उन्नत मस्तक सोह रहा था। दालान के दूर के सिरे की ओर वे टकटकी लगाये देख रहे थे। क्या वे खिड़की के उस पार सूर्य की आखिरी किरन को अस्त होते देख रहे थे, या किसी स्वप्न के से ध्यान में इतने विलीन हो गये थे कि उन्हें इस मर्त्य जगत की कुछ भी सुधि नहीं थी? सदा की भाँति आज भी अगरबत्तियों से सुगंधित धूम-रेखाओं के छोटे छोटे बादल छत की ओर उड़ रहे थे। मैं सावधानी के साथ बैठ कर महर्षि के चेहरे पर अपनी चितवन को संलग्न करने की चेष्टा करने लगा। पर थोड़ी ही देर बाद किसी कोमल प्रेरणा के वश मेरी आँखें आप ही बंद होने लगीं। बहुत समय नहीं बीता होगा कि मैं अपने को एक तंद्रा सी अवस्था में पाने लगा और धीरे धीरे महर्षि के सामीप्य में एक अस्पष्ट शांति की लहर मेरी आत्मा में और भी गहरे तक पैठने लगी। अन्त में मेरी चेतना लुप्त हो गई और मैं एक स्वप्न का स्पष्ट चित्र देखने लगा।

भान हुआ था कि मैं पाँच वर्ष का एक छोटा बालक बन गया हूँ। पवित्र अरुणगिरि पर घूम फिर कर ले जाने वाली एक पेचदार खुरदुरी पग-डंडी पर मैं खड़ा हुआ था। मैंने महर्षि का हाथ थाम लिया था, लेकिन अब मेरी बगल में वे एक अत्यंत दीर्घकाय मूर्त्ति धारण किये दिखलाई दिये। वे सचमुच बड़े ही भीमकाय जान पड़े। वे मुझे आश्रम से दूर ले चले। रात का समय था, एकदम अंधेरा था। तो भी वे मुझे एक सड़क से लिये जा रहे थे। हम दोनों धीमी चाल से आगे बढ़ रहे थे। कुछ देर बाद चाँद और तारे षड्यंत्र रच कर हमारे चारों ओर कुछ धुँधली रोशनी छिटकाने लगे। मैंने साफ़ देख लिया कि महर्षि मुझे एक बड़ी ही विकट बाट से लिए जा रहे थे, पर बड़ी सावधानी के साथ। हमारी राह पहाड़ी घाटियों में से होकर जाती थी। चारों ओर बड़े भयानक शिलाखंड सिर पर मानो टूट कर गिरना ही चाहते थे। पहाड़ का चढ़ाव बड़ा ही खतरनाक था। हमारी चाल अत्यन्त मंद थी। पत्थरों के बीच में से कहीं कहीं झाड़खंडों में लुकी छिपी क्षुद्र कुटियाँ और आश्रमियों से शोभित पहाड़ी गुफायें दीखती थीं। हम चलने

लगे तो उन निवासों से तपस्वी निकल निकल कर हमारी आवभगत करने लगे। यद्यपि ताराओं के मंद आलोक में उनकी भूतों की सी मूर्तियाँ मुझे चकित करने लगीं, तो भी मुझे स्पष्ट ही भासने लगा कि वे भिन्न भिन्न प्रकार के योगी हैं। उनके लिए हम कहीं न रुके और चोटी पर पहुँचने तक चलते ही रहे। अन्त को हम रुके और मेरा दिल किसी भावी महत्त्वपूर्ण घटना की विचित्र आशा में धड़कने लगा।

महर्षि मेरी ओर घूम कर सीधे मेरे चेहरे को ताकने लगे; मैं भी बड़ी उत्सुकता के साथ उनकी ओर देख रहा था। मुझे प्रतीत होने लगा कि मेरे मन और हृदय में बड़ी तेज़ी के साथ एक अजीब परिवर्तन हो रहा है। मुझे लुभाने वाले सभी पुराने विचारों तथा आशाओं ने एक एक करके मुझे छोड़ दिया। अविश्वास तथा तेज़ी के साथ उमड़ने वाली इच्छाएँ, जिनका शिकार बन कर मैं अब तक मारा मारा फिरता था, न मालूम कैसे गायब होने लगीं। अपने साथियों के प्रति व्यवहार में जो गलतफ़हमियाँ, जो स्वार्थ-परायणता, निठुरता आदि मेरे व्यवहार में साफ़ झलका करती थीं, सब की सब किसी शून्य के अंधकूप में अदृश्य हो गईं। एक अकथनीय शांति मुझे आवृत करने लगी। मुझे सचमुच ही दृढ़ता के साथ भासने लगा कि जिन्दगी में इससे बढ़ कर और किसी भी वस्तु की चाह नहीं ही करूँगा।

सहसा महर्षि की आज्ञा सुनाई पड़ी। पहाड़ के नीचे अपनी दृष्टि डालने की मुझे ताकीद मिली। देखा तो क्या था? वहाँ पहाड़ के पद-तल में, कहीं नीचे की ओर हमारे पश्चिमी भूभाग फैले पड़े थे। असंख्य लोगों की भीड़ लगी थी। कुछ अस्पष्टता के साथ उनकी मूर्त्तियों का मुझे भान होने लगा, पर अभी उनको घेर कर रात का परदा पड़ा हुआ था।

महर्षि की आवाज़ मेरे कानों में गूँजने लगी। वे धीरे पर स्पष्टता के साथ बोल रहे थे—"जब तुम फिर वहाँ लौट जाओगे, अब जिस शांति का तुम अनुभव कर रहे हो वह तुम्हारा साथ न छोड़ेगी। लेकिन तुम्हें उसका दाम चुकाना पड़ेगा। आज से कभी तुम्हें सोचना नहीं चाहिए कि तुम ही यह शरीर

हो, तुम ही मन हो। जब इस शांति की बाद तुम में पैठेगी, तुम्हें फिर अपनी ही आत्मा को भूलना पड़ेगा क्योंकि उस समय तुम्हारा जीवन ही 'तत्' में लीन रहेगा !"

और महर्षि ने एक रुपहली ज्योति-शलाका का एक सिरा मेरे हाथ में पकड़ा दिया।

इस अनूठे, आश्चर्यजनक पर स्पष्ट स्वप्न से मैं जाग उठा। तब भी उदात्तता की छाया मेरे ऊपर पड़ी हुई थी। तुरन्त महर्षि की और मेरी चार आँखें हुईं। उनका चेहरा मेरी ओर घूमा हुआ था और वे स्थिर दृष्टि से मेरी आँखों की ओर ताक रहे थे।

इस स्वप्न के तल में क्या मर्म छिपा था ? जीवन की सारी कालिमा अब शून्य में विलीन हो गई थी। स्वप्न में अपने प्रति जिस उदात्त उदासीनता का और अपने सहयात्रियों के प्रति जिस करुणा का मैंने अनुभव किया था उनका प्रभाव अब भी, जागने पर भी, मेरे मन पर अंकित था। वह एक अपूर्व अनुभूति थी। यदि इस स्वप्न में कोई सचाई रही हो तो भी वह मेरे लिए नहीं ही रहेगी क्योंकि मैं अभी उतना आगे नहीं बढ़ा था।

मैं कितनी देर तक स्वप्न में मग्न रहा ? अवश्य ही इसमें बहुत समय बीता होगा, क्योंकि दालान में सब कोई उठ रहे थे और सोने की तय्यारियाँ कर रहे थे। शायद मुझे भी लाचार होकर उनका अनुकरण करना था।

दालान में सोना कठिन था। उसमें हवा कम घुसने पाती थी और चारों ओर उमस थी। किसी लम्बे भूरी दाढ़ी वाले चेले ने मेरे लिए एक लालटेन का प्रबंध कर दिया। उसने मुझसे कहा कि रात भर मैं बत्ती को गुल न करूँ क्योंकि वहाँ साँपों और चीतों का भय था जो लालटेन के पास नहीं फटकते।

जमीन जल-भुन कर कड़ी हो गयी थी। मेरे पास कोई बिछावन न था। फलतः मुझे घंटों नींद नहीं आई। तो भी कोई परवाह न थी क्योंकि मेरे मनन करने के लिए काफ़ी मसाला मौजूद था। मुझे प्रतीत होने लगा कि अपनी

ज़िन्दगी भर महर्षि का सा अद्भुत अनुभव, उनके से रहस्यपूर्ण महात्मा को देखने को मेरा सौभाग्य नहीं हुआ था।

मालूम पड़ता था कि मेरे जीवन पर इनका बड़ा ही महत्त्वपूर्ण प्रभाव रहेगा पर उसका ठीक ठीक रूप क्या होगा यह मुझे सूझ नहीं पड़ता था। वह अज्ञेय, अविगत और शायद आध्यात्मिक होगा। उस रात को मैंने इस प्रश्न पर जितने बार विचार किया, मुझे उसी स्वप्न का प्रत्यक्ष रूप दिखाई देता था और कोई निराली सनसनी मेरी रग रग में दौड़ कर मेरे हृदय को अस्पष्ट परन्तु अति उदात्त आशाओं से उछाल रही थी।

× × ×

इसके बाद मैं आश्रम में कुछ दिन तक रहा। उन दिनों मैंने महर्षि के अत्यंत निकट पहुँचने की चेष्टा की, पर मुझे सफलता नहीं मिली। मेरी इस विफलता के मुख्यतया तीन कारण थे। सब से पहला कारण महर्षि की कुछ खिंचे से रहने की प्रवृत्ति थी। वे दलीलें और वादविवादों को बिलकुल ही पसंद नहीं करते। दूसरों के विश्वासों तथा मतों के प्रति वे एकदम उदासीन थे। यह स्पष्टतया झलकने लगा था कि किसी को अपने मत में मिला लेने या किसी के मत को अपने अनुकूल बना लेने के लिए वे उतावले न थे।

दूसरा कारण कुछ निराला अवश्य था, किन्तु वह एक कारण ज़रूर था। उस विचित्र स्वप्न के बाद से उनके सामने आते जाते मुझे एक प्रकार के आदर मिश्रित भय का अनुभव होने लगा था। किसी दूसरी परिस्थिति में अपने आप ही मेरे ओठों से उमड़ने वाली प्रश्नों की झड़ी न जाने क्यों शांत होने लगती। बराबरी के दावे पर वाद-विवाद में उन्हें लगाने की चेष्टा ही मुझे एकदम कुत्सित प्रतीत होने लगी थी।

मेरी असफलता का तीसरा कारण बहुत ही स्पष्ट था। प्रायः लगातार कोई न कोई दालान में मौजूद रहता और उनकी उपस्थिति में अपने दिल की बातें प्रकट करने में मुझे संकोच होता था। मैं उन लोगों के लिए एक अजनबी था। मेरा अन्य भाषा-भाषी होना उतना महत्त्व नहीं रखता था; पर

जब मैं अपने निजी भावों को प्रकट करना चाहता, धार्मिक आवेश से एकदम कोरे, अपने शक्कीपन तथा अविश्वास का मुझे भान हो जाता जिससे उन लोगों के मन में मेरे विपरीत राय कायम होने की संभावना थी। उनके धार्मिक विश्वासों पर किसी ढंग का धक्का पहुँचाने की मेरी तनिक भी इच्छा न थी, पर साथ ही अपने दिल के दृढ़ विश्वास का गला घोंट कर दूसरे ही प्रकार से अपने विचारों को प्रकट करना मुझे बिलकुल ही पसंद नहीं था। अतः मुझे कुछ हद तक अपना मुँह बंद रखना पड़ा।

इन सभी अड़चनों को दूर करने की कोई राह मुझे सहज में नहीं सूझती थी। जब कभी भी मैं महर्षि से प्रश्न पूछना चाहता था इन रुकावटों में कोई न कोई बीच में आकर मेरी उमंगों पर पानी फेर देतीं।

मेरी वहाँ रहने की निर्दिष्ट अवधि पूरी होने वाली थी। मैंने अपना कार्यक्रम बदल कर और भी एक सप्ताह तक आश्रम में रहने का निश्चय किया। महर्षि के साथ नाममात्र की जो मेरी पहली बातचीत हुई, वही आखिरी भी सिद्ध हुई। एक-दो मामूली प्रश्नों या बेमतलब की बातचीत के सिवा उनके साथ मेरा कोई महत्त्वपूर्ण वार्तालाप नहीं हुआ।

सप्ताह समाप्त हुआ। मैंने और एक पक्ष तक रहने का इरादा कर लिया। हर दिन मुझे महर्षि के चित्त की सुंदर शांति और उनके चारों ओर छिटकने वाले प्रशांत गाम्भीर्य का अनुभव होने लगता था।

मेरे आश्रम निवास की अवधि पूरी हुआ ही चाहती थी; अन्तिम दिन भी आया पर अब तक मैं महर्षि के दिल में पैठ नहीं सका था। मेरे वहाँ रहने के दिन आशा और निराशा के विचित्र संयोग से भरे हुए थे। मैंने आँख उठाकर दालान के चारों ओर निगाह दौड़ाई तो मुझे एक प्रकार निरुत्साह होने लगा। इन लोगों में बहुतेरे तो मन से और मुँह से भी एक भिन्न भाषा-भाषी थे। उनके दिल में मेरे लिए क्योंकर स्थान मिल सकता था ? मैंने महर्षि की ओर ताक कर देखा। वे कहीं उन्नत हिमशिखर पर बैठे, संसार की चहल पहल से कहीं दूर, तटस्थ बने दिखाई दिए। उनमें कोई

अनूठी विशेषता थी जो मेरे परिचित अन्य महात्माओं से उन्हें पृथक कर देती थी। न जाने क्यों मुझे प्रतीत होने लगा कि वे इस दुनिया के न थे; यहाँ तक कि चारों ओर बिखरी हुई प्रकृति माता से, आश्रम के पीछे ही अपने उन्नत मस्तक को उठाये आसमान को चूमने वाले अरुणगिरि से, दूर के जंगलों तक फैल कर उनमें विलीन होने वाली ऊजड़ झाड़ियों से, दुरूह आकाश की नीलिमा की अनन्तता से वे इतने एकरूप, इतने अभिन्न प्रतीत हो रहे थे।

मालूम होता था कि उस निराली अरुणगिरि की जड़ अचलता के अंश ने महर्षि में प्रवेश किया है। मुझे बतलाया गया कि महर्षि ने ३० साल तक इस पर्वत पर निवास किया है और अब भी वे किसी छोटे सफ़र के लिए भी उसकी गोद को छोड़ना नहीं चाहते। इस प्रकार के निकट संबंध का मानव के चरित्र पर असर पड़ना अवश्यम्भावी है। मुझे मालूम है कि वे इस गिरि को बड़ा प्यार करते हैं। किसी ने महर्षि की लिखी एक सुन्दर कविता का अनुवाद किया है जो वास्तव में गिरि के प्रति महर्षि के प्रेम को बहुत ही मनोहर रूप से प्रकट करती है। इस न्यारे पर्वत का उन्नतकाय जंगल के एक छोर से गगन की ओर उभड़ उठता है और उसका उन्नत मस्तक नीले आकाश के निरालेपन का अनुभव करता है। उसी प्रकार इन महात्मा की भी साधारण जनता के बीच में अपने ढंग की एक विचित्र निराली शोभा है। जिस प्रकार ज्योतिर्गिरि अरुणाचल चारों ओर घिरी रहने वाली पर्वतावली से दूर अकेले खड़ा है, उसी प्रकार महर्षि भी अपने चारों ओर श्रद्धालु शिष्यों तथा भक्तों से घिर कर भी उनसे दूर किसी एक दूसरे ही रहस्यमय ज़गत में रहते हैं। इस पवित्र गिरि में इतने विभिन्न रूप से अभिव्यक्त होने वाली प्रकृति की दुरूहता और अव्यक्त निरालापन न जाने कैसे महर्षि में पैठ गया है। शायद सदा के लिए वे अपने इन गुणों के कारण अपने दुर्बल भाइयों से पृथक हो गये हैं। कभी कभी मेरे दिल में यह लालसा लहर मारती दिखाई देती कि यदि वे थोड़ा और मानवीय रहते, हमारे लिए प्रायः साधारण लगने वाली, किन्तु उनकी सन्निधि में एक तुच्छ और निंद्य कमज़ोरी प्रतीत होने

वाली सांसारिकता को वे कुछ समझते तो क्या ही अच्छा होता। तब भी यदि उन्होंने सच ही साधारण जनता की पहुँच के परे किसी अलौकिक अनुभूति या सिद्धि को प्राप्त किया है, तो साधारण मानव की सीमा को लाँघे बिना वे ऐसा क्योंकर कर सकते थे! उनकी निराली दृष्टि के तले मुझे नियति रूप से एक विचित्र आशा की, मानो शीघ्र ही किसी महान् दैवी संदेश की प्राप्ति होने वाली है, क्योंकर अनुभूति होती है?

तब भी शांति की स्फुट छाया में, स्मृति के विमल गगन में, जगमगाने वाले एक स्वप्न के सिवा और किसी प्रकार का उपदेश या और किसी भाँति का संदेश मुझे प्राप्त नहीं हुआ। काल को गुज़र जाते देख मुझे कुछ साहस हो जाता था। करीब एक पाख बीत गया और केवल एक ही बार बात-चीत करने का सौभाग्य; और वह भी ऐसा जिसका कोई खास महत्त्व नहीं था। महर्षि का स्वर कुछ खिंचा-सा रहता था। यह भी मुझे उनसे दूर रखने में काफ़ी सफलता पाता था। उनकी वह उदासीनता मेरी आशा के एकदम विपरीत थी, क्योंकि यहाँ पर आने के लिए सुब्रह्मण्य जी ने जो उज्ज्वल बातें मुझसे कही थीं वे सब मुझे भूली नहीं थीं। सबसे अधिक ललचाने वाली बात यह थी कि मैं सच्चे हृदय से महर्षि के वचनों को सुनने के लिए बहुत ही तरस रहा था क्योंकि किसी भाँति एक विचार ने मेरे मन पर अधिकार जमा लिया था। वह विचार मेरे मन में किसी तर्कोपतर्क से पैदा नहीं हुआ था, वह अपने आप, मेरी ओर से कोई प्रयत्न किये बिना ही, दिल में उठा था और उस पर सर्वतोमुख अधिकार प्राप्त कर लिया था।

'महर्षि सारी समस्याओं से एकदम छूटे हुए हैं, उनकी सारी शंकाओं का उच्छेद हो गया है, किसी प्रकार की दुःख-चिंता उनको आकुल नहीं कर सकती।'

यही मेरे मन में लहर मारने वाले विचार का सारभूत आशय था।

मैंने अपने प्रश्नों को शब्द-रूप में किसी प्रकार प्रकट करने की फिर से चेष्टा करने और महर्षि को उनके उत्तर देने में लगा देने की ठान ली।

उनके एक पुराने शिष्य बगल की एक कुटी में कुछ काम कर रहे थे। उनकी मेरे ऊपर बड़ी ही दया थी। मैंने उनके निकट पहुँच कर साफ़ साफ़ बता डाला कि उनके गुरुदेव से अंतिम बार बात करने की मेरी कैसी गहरी अभिलाषा थी। मैंने स्वीकार कर लिया कि महर्षि से स्वयं अनुमति माँगने में मुझे बड़ा ही संकोच हो रहा था। वे बड़ी हमदर्दी के साथ मुस्कराने लगे। मुझे वे वहीं छोड़ कर चले गये और जल्द ही यह खबर ले आये कि उनके गुरु मुझे बात-चीत का मौका देने के लिए राज़ी हैं।

मैंने उतावली के साथ दालान में प्रवेश किया और महर्षि की चौकी के पास आराम के साथ बैठ गया। तुरन्त महर्षि मेरी ओर घूमे और बड़े हर्ष के साथ मेरे स्वागत में मुस्कराने लगे। फिर तो मुझे कोई संकोच न रहा और सीधे उनसे प्रश्न कर बैठा: "योगी लोगों का कहना है कि सत्य की खोज के लिए संसार का त्याग करके निर्जन वन और पर्वतों का आश्रय लेना पड़ता है। पश्चिम में ऐसी बातें हो ही नहीं सकतीं; हम लोगों की ज़िन्दगी ही कुछ और प्रकार की है। क्या आप योगियों के मत से सहमत हैं?"

महर्षि ने एक सभ्य सज्जन की ओर ताका। उन्होंने महर्षि के वाक्यों का अनुवाद किया—"कर्म सन्यास की आवश्यकता नहीं है। यदि तुम हर रोज़ एक-दो घंटे तक ध्यान करोगे तो अपने सांसारिक कर्तव्यों का त्याग करने की ज़रूरत नहीं होगी। तुम यदि ठीक मार्ग पर ध्यान करोगे तो उससे एक प्रकार की विचार-धारा उत्पन्न होगी। फिर तुम कोई भी काम करते रहो वह धारा तुम्हारे मन में बहती ही रहेगी। यह कुछ उसी प्रकार की बात है कि एक ही भाव को व्यक्त करने के दो भिन्न मार्ग हैं; ध्यान में तुम जिस मार्ग का अनुकरण करोगे, वह तुम्हारे कार्य-कलाप में भी अपने को प्रकट करेगा ही।"

"उस मार्ग का अनुसरण करने का क्या फल होगा?"

"मार्ग पर आरूढ़ हो कर जैसे जैसे तुम उन्नति करने लगोगे वैसे वैसे लोगों के प्रति और अन्य घटनाओं तथा वस्तुओं के प्रति जो तुम्हारा दृष्टिकोण

है, उसमें क्रमशः भारी परिवर्तन नज़र आने लगेगा। तुम्हारे कार्य-कलाप आप ही तुम्हारे ध्यान-मार्ग का अनुकरण करने को उन्मुख हो जायँगे।"

मैंने महर्षि की ठीक और सही राय जानने के लिए एक जटिल प्रश्न किया—"तब आप योगियों से सहमत नहीं हैं?"

महर्षि ने सीधा जवाब नहीं दिया। बोले—"इस संसार में साधक को अपने निजी स्वार्थ का समर्पण कर डालना होगा। अपने झूठे अहं को छोड़ना ही सच्चा सन्यास है।"

"सांसारिक जीवन व्यतीत करते हुए नितान्त स्वार्थ-रहित होना क्योंकर संभव है?"

"कर्म और ज्ञान में कोई विरोध नहीं है।"

"तो आपका यही कहना है कि अपने पुराने पेशे के सारे कार्य-कलाप को करते हुए भी उसके साथ ही ज्ञान प्राप्त करने की आशा भी रख सकते हैं?"

"क्यों नहीं? लेकिन उस सूरत में साधक कभी नहीं समझेगा कि उसका पुराना 'अहं' कार्य कर रहा है, क्योंकि साधक के चैतन्य या बोध का क्रमिक विकास तब तक होता ही रहेगा जब तक कि वह क्षुद्र अहं के परे होकर परम-आत्मा में केंद्रीभूत न हो जाय।"

"यदि कोई काम-काज में डूबा रहे तो फिर ध्यान करने के लिए उसको वक्त ही कहाँ मिलेगा?" मेरे इस जटिल प्रश्न से महर्षि कुछ भी नहीं विचले। उन्होंने उत्तर में कहा :

"ध्यान के लिए अलग एक निश्चित समय रखने की केवल अभ्यास में कच्चे रहने वालों को ही जरूरत पड़ती है। मार्ग पर उन्नति करने वाला, चाहे काम में मग्न रहे या न रहे, अपने अंतरतम में सुख का भोग करता रहता है। एक ओर तो वह समाज के काम-काज में लीन रहता है पर दूसरी ओर वह अपने मन को शांत एकान्त में क़ायम रख सकता है।"

"तो आप योग मार्ग का उपदेश नहीं देते ?"

"जैसे ग्वाला हाथ में लकड़ी लेकर बैल को गंतव्य स्थान की ओर चलाता है, योगी भी कुछ उसी भाँति से गंतव्य की ओर चलने लगता है। लेकिन इस मार्ग में जिज्ञासु हाथ में घास-फूस लिए बैल को ललचाते हुए गंतव्य पर पहुँचा देता है।"

"ऐसा क्योंकर किया जाता है ?"

"तुम्हें अपने से प्रश्न करना होगा 'मैं कौन हूँ ?'। इसी खोज का अनुसरण करने से तुम्हें अपने अन्दर ही एक ऐसी चीज़ दीख पड़ेगी जो मन के भी परे है। उस महान समस्या को सुलझा लोगे तो उसी से अन्य सारी समस्यायें सुलझ जायेंगी।"

इन बातों का आशय समझ लेने में मुझे कुछ देर लगी। सामने की खिड़की में से पावन अरुणगिरि की रम्य तटी की झाँकी मन को बरबस खींच रही थी। उसकी वह गंभीर बाह्य-मूर्ति प्रभातवेला के बाल अरुण की सुनहली किरणों में मानो स्नान कर रही थी।

महर्षि ने फिर कहा :

"क्यों ? इस प्रकार कहें तो आसान होगा कि सभी मानव ऐसे शाश्वत आनन्द के लिए लालायित हैं, जिसमें दुःख का किसी प्रकार का पुट न हो। वे एक नित्य आनन्द को पाना चाहते हैं। उनकी यह वासना एकदम सच्ची और सही है। पर कभी यह भी तुम्हारे ध्यान में आया है कि ये सभी लोग अपने आपको ही सब से अधिक प्यार करते हैं ?"

"अच्छा, तो ?"

"तो उसके साथ इस बात का भी विचार करो कि वे हमेशा किसी-न-किसी ज़रिये से आनंद ही पाना चाहते हैं; चाहे शराब पीकर या धार्मिक होकर। इन दोनों बातों का एक साथ ध्यान करके देखोगे तो मानव के असली स्वरूप का तुम्हें मूल-मंत्र मिल जायेगा।"

"ये बातें मेरी समझ में नहीं आतीं !"

महर्षि का स्वर कुछ उच्च हो गया। बोले :

"मानव की सहज स्थिति, सहज प्रकृति, आनन्द भोगी है। आत्मा का यह सहज स्वरूप है। आनंद के लिए मानव की जो खोज है, वह वास्तव में एक अव्यक्त, एक अज्ञात आत्म-अन्वेषण ही है। सद्-आत्मा अविनाशी है, अव्यय है, अमर है। अतः मानव जब उसको पहचानता है, वह एक अव्यय, नित्य आनंद का भागी बन जाता है; वह अमर हो जाता है।"

"लेकिन दुनिया में तो इतना दुःख है ?"

"ठीक है। पर संसार इसीलिए दुःखी है कि वह अनात्मविद् है, अपनी सद्-आत्मा को नहीं पहचानता है। सभी मानव जाने या अनजाने उसी की खोज कर रहे हैं।"

"सभी मानव ! लुच्चे, बदमाश, जालिम भी ?"

"हाँ ! वे भी अपने हर एक पाप में अपनी आत्मा का ही सच्चा आनंद पाने की चेष्टा करते हैं। आनंद की आशा से ही वे पापाचरण करते हैं। आनंद पाने की वह चेष्टा मानव के लिए स्वाभाविक है। लेकिन वे नहीं जानते कि वे अपनी सद्-आत्मा को ही वास्तव में खोज रहे हैं। इसीलिए वे पहले पहल आनंद का साधन मान कर कुमार्ग पर चल पड़ते हैं। निस्संदेह वे बुरे मार्ग ही हैं, क्योंकि मानव के कर्मों की छाया उसी पर ही तो पड़ जाती है।"

"तो सदात्मा को पहचानने पर हमें शाश्वत आनंद की अनुभूति प्राप्त होगी ?"

महर्षि ने सिर हिलाया।

खिड़की के ज़रिये सूर्य की एक तिरछी किरण महर्षि के मुखमंडल पर पड़ी। उस प्रशांत मुख-बिंब पर एक गंभीरता छाई रही। उस स्थिर मुख पर संतोष की छाया झलक रही थी और उन उज्ज्वल नेत्रों में मंदिर की सी

शांति टपकी पड़ती थी। उनका वह चेहरा उनकी उन दिव्य बातों का सच्चा प्रमाण दे रहा था।

महर्षि की इन आसान दीखने वाली बातों का क्या मतलब था? दुभाषिए ने उनका बाह्य अर्थ ही मुझको बता दिया था। पर उनमें कुछ गंभीर अर्थ छिपा था जिसका अनुवाद उनसे करते नहीं बना। मुझे मालूम था कि मुझको ही वह अर्थ ढूँढ़ निकालना पड़ेगा। मुझे प्रतीत हुआ कि महर्षि अपने सिद्धांत की स्थापना करने वाले किसी पंडित या दार्शनिक के समान बोल नहीं रहे थे किन्तु अपने ही दिल की गंभीरतम तह से बोल रहे थे। क्या उनकी बातें उन्हीं की सौभाग्यमय अनुभूति के बाह्य चिह्न थीं?

"आप जिस आत्मा की बात कह रहे हैं उसका अन्तिम और ठीक ठीक स्वरूप क्या है? आपकी बात यदि सत्य है तो मानना पड़ेगा कि मानव के भीतर एक और सूक्ष्म आत्मा भी है।"

क्षण भर के लिए महर्षि के ओठों पर मुस्कान खिल उठी।

"क्या मानव के भीतर दो आत्माएँ रह सकती हैं? इस बात को समझने के लिए आदमी को चाहिए कि वह पहले अपने ही चित्त का विकलन करे। सदा से वह दूसरों की दृष्टि से ही अपने को देखता आया है। सच्चे ढंग पर 'मैं' का अर्थ समझने की उसने चेष्टा नहीं की है। उसको अपनी ही सच्ची तसवीर का वास्तविक अंदाज नहीं है। बहुत ही दीर्घ काल से अपने शरीर और दिमाग को ही वह अपनी आत्मा मान बैठा है। इसीलिए मेरा तुमसे यही कहना है कि आत्म-जिज्ञासा करो, अपने से प्रश्न करते जाओ 'मैं कौन हूँ?'।"

इन बातों का असर मेरे ऊपर पड़ जाय और इनका अर्थ मेरे दिमाग में पैठ जाय इस विचार से महर्षि थोड़ी देर तक चुप रहे। फिर उनकी बातों को मैं बड़ी व्यग्रता के साथ सुनने लगा।

"तुम चाहते हो कि मैं तुम्हारे लिए सदात्मा का वर्णन करूँ, पर कहा ही क्या जा सकता है? जिससे तुम्हारी क्षुद्र अहंता या 'मैं' का बोध उदित हो और जिसमें वह विलुप्त होता जान पड़े वही सद्-आत्मा है।"

"विलुप्त हो ? अपने ही अस्तित्व का बोध कोई भी कैसे खो सकता है ?"

"हर एक मनुष्य का सबसे पहला, सबसे प्रधान और सबसे प्राचीन विचार 'अहं' का विचार है। इस विचार की उत्पत्ति के बाद ही अन्य विचारों का उदय संभव है। प्रथम पुरुष सर्वनाम 'मैं' के उत्पन्न होने के बाद ही द्वितीय पुरुष सर्वनाम 'तू' का आविर्भाव होता है। इस 'मैं' के विचार-सूत्र को पकड़ कर, मानसिक रूप से, उसकी उत्पत्ति के स्थान पर पहुँचने तक अपनी दृष्टि को भीतर की ओर मुड़ा कर ले जा सकते हो। तब तुमको पता लग जायगा कि जैसे वह उत्पन्न होने वाले सभी विचारों में पहला है उसी प्रकार वह विलुप्त होने वाले सभी विचारों में आखिरी है। यह तो अनुभूति से जाना जा सकता है।"

"आपका यही विचार है कि इस प्रकार अपनी ही आत्मा का विकलन करके देखना एकदम संभव है ?"

"निस्संदेह ! प्रत्याहार से, दृष्टि को भीतर की ओर मोड़ कर अंतरंग का विकलन करते करते, अंतिम विचार 'मैं' के गुम होने तक अंतरंग में डुबकी लगाई जा सकती है।"

"तो अन्त में बच क्या रहेगा ? उस हालत में आदमी या तो एकदम बेसुध हो जायगा या वह मूर्ख बन जायगा ?"

"कभी नहीं। उलटे, वह नित्य-बोध का भागी बनेगा। जब मानव अपने सत्य-स्वरूप, अपनी सद्-आत्मा को पहचान जायगा तो वह वास्तव में मूर्ख नहीं, बड़ा भारी ज्ञानी बनेगा ?"

"लेकिन उस बोध को भी वह 'मैं' ही तो कहेगा ? वह बोध भी तो अहं-प्रत्यय-गोचर होगा ?"

महर्षि ने बड़ी शांति के साथ उत्तर दिया :

"अहं-प्रत्यय से व्यक्ति, शरीर और मन संबद्ध हैं। पहली बार जब साधक अपनी सद्-आत्मा की झाँकी ले ले, तो उसकी अंतरतम सत्ता से

और एक प्रकार की निराली वस्तु उमड़ उठेगी और उसके सारे शरीर पर अधिकार जमा लेगी। वह निराली वस्तु मन के परे है। वह अनंत है, दिव्य है, नित्य है। कोई उसको 'स्वर्ग राज्य कहते हैं' और कोई उसे 'आत्मा' के नाम से पुकारते हैं, कुछ अन्य उसको 'निर्वाण' का नाम देते हैं। हम हिन्दुओं में उस स्थिति की संज्ञा 'मुक्ति' है। तुम उसको जैसे चाहो पुकारो, जो चाहो नाम दो। जब यह अद्‌भुत दशा मानव को प्राप्त होती है तब वह अपने को खोता तो नहीं है, वास्तव में वह अपने को पाता है।"

अनुवादक के मुँह से अंतिम शब्द मेरे कानों में पहुँचते ही मेरे मन में गैलिली के उस परिव्राजक-प्रवर्तक की चिर-स्मरणीय उक्ति बिजली के समान कौंध गई—वह उक्ति जिसने बड़े से बड़ों को भी चकरा दिया है!

'जो अपने जीवन की रक्षा करने का प्रयत्न करेगा वह उसे खो बैठेगा, और जो अपने जीवन को खो बैठे वही उसकी रक्षा कर लेगा।' इन दोनों की बातों में कैसी आश्चर्यजनक समानता है!

लेकिन भारतवर्ष के ये महर्षि अपने ही प्रत्याहार के मानसिक रूप से, जो बड़ा ही विकट और अज्ञात मालूम पड़ा, इसी सिद्धांत पर पहुँच गये।

महर्षि फिर बोलने लगे। उनके वचन मेरे विचारों में पैठने लगे :

"जब तक कि मानव सदात्मा की खोज में अपने को तल्लीन न कर ले, तब तक अपने जीवन भर शंका और संदेह से वह अपने को मुक्त नहीं कर सकेगा। बड़े बड़े सम्राट् और राजनीतिज्ञ यह खूब जानते हुए भी कि उनका स्वयं अपने ही ऊपर अधिकार नहीं है, दूसरों के ऊपर प्रभुता करने की चेष्टा करते हैं। तब भी जो अपनी अंतरतम तह तक पहुँच गया हो उसकी मुट्ठी में सबसे जबरदस्त शक्ति रहती है। दुनिया में कई विषयों की गवेषणा करते हुए अपना सारा जीवन व्यतीत करने वाले बड़े बुद्धिशाली, अत्यंत मेधावी कितने नहीं हैं? उनसे पूछो कि क्या मानव का रहस्य उन्होंने सुलझाया है? पूछो कि क्या उन लोगों ने अपने ऊपर विजय पा ली है? इसका वे क्या उत्तर दे सकते हैं। वे तो सिर्फ मौन धारण कर शरम के मारे मुँह लटकायेंगे।

भाई, जब तुम अपने ही बारे में जान नहीं पाये कि तुम कौन हो तो फिर संसार भर की बातों का मर्म जानने की चेष्टा किस काम की ? लोग इस आत्म-जिज्ञासा से बचना चाहते हैं। पर सोच कर देखो इससे उत्तम और क्या करणीय है ?"

"लेकिन यह बात तो बड़ी ही टेढ़ी और मानव की शक्ति के एकदम परे है।"

महर्षि के कंधे कुछ सिकुड़ते से दीख पड़े। बोले—"यह बात संभव है कि नहीं यह तो अपनी अपनी अनुभूति से ही जाना जा सकता है। तुम जिसको कठिनाई समझ रहे हो वह कोई सच्ची कठिनाई तो शायद नहीं है। हाँ, वह कुछ कठिन-सा भास सकती है।"

"हम चलते-फिरते काम-काजी पश्चिमियों के लिए इस प्रकार के प्रत्य-वेक्षण—?" मुझे स्वयं ही अपने कथन पर शंका होने लगी और मेरा वाक्य अधूरा ही हवा में गूँजता रह गया।

महर्षि ने झुक कर एक अगरबत्ती जलाई और बुतने वाली के स्थान पर उसे खोंस दिया। फिर बोले—"सत्य का अन्वेषण, तत्त्व का ज्ञान लेना, हिंदुओं और यूरोपियनों दोनों के लिए एकसा है। निस्संदेह, जो दुनियावी काम-काज में तन-मन से लग गये हों उनके लिए यह मार्ग कुछ अधिक कठिन हो सकता है। तब भी उनको यह बात जान लेनी चाहिए और उनमें इसको जानने की ताकत भी अवश्यमेव है। ध्यान के समय जो विचार-धारा, जो विमर्श-धारा जाग पड़ेगी, अभ्यास से उसको जारी रक्खा जा सकता है। तब उस धारा में ही रह कर आदमी अपना दुनियावी काम-काज कर सकता है। इस प्रकार के आचरण में कहीं किसी प्रकार का विच्छेद नहीं होगा। तब ध्यान तथा बाह्य क्रियाओं में कोई अंतर रह नहीं जायगा। यदि तुम विचारो कि 'मैं कौन हूँ ?', यदि तुम इसी ध्यान की रट लगाओ, यदि तुम पहचान लो कि 'मैं' सचमुच न शरीर है, न बुद्धि है, न कामनाएँ ही हैं, तो जिज्ञासा की यह पद्धति ही, विचार का यह प्रकार ही, तुम्हारे अन्तस्तल से

इस प्रश्न का जवाब अपने आप गूँजा देगा; सदुत्तर अपने आप तत्त्वानुभूति या आत्म-विज्ञान के रूप में प्रकट हो जावेगा।"

मैं उनके वचनों पर फिर मनन करने लगा। वे बोलते गये—"सच्ची सद्-आत्मा को जान लो तो तुम्हारा मन सत्य-सूर्य के स्वच्छ प्रकाश से आलोकित हो जावेगा। मन की सारी अशांति दूर होगी और वास्तविक आनन्द का समुद्र उमड़ उठेगा क्योंकि सत्-आनंद और आत्मा एकदम अभिन्न हैं, अद्वय हैं। इस आत्म-विमर्श की उपलब्धि के पश्चात् तुम्हारी सारी शंकाएँ छिन्न भिन्न हो जायेंगी।"

महर्षि ने अपना सिर घुमा लिया और दालान के परले सिरे पर अपनी स्थिर दृष्टि से ताकने लगे। मुझे मालूम हो गया कि वे बात-चीत की सीमा तक पहुँच गये और अब नहीं बोलेंगे। इस प्रकार से हमारी अन्तिम बात-चीत खतम हुई और मैंने अपने भाग्य को खूब ही सराहा कि इस स्थान से विदा होने के पहले किसी तरह महर्षि को उनके स्वाभाविक मौन के आवरण से हटा कर अपनी ओर आकृष्ट करने में मैं सफल हो ही गया।

× × ×

मैंने महर्षि को छोड़कर दूर तक भटकते भटकते जंगल के एक शांत कोने का आश्रय लिया। वहाँ बैठकर मैंने दिन का अधिक भाग नोट लेने तथा पुस्तकावलोकन में बिताया। गोधूलि की वेला निकट होते ही मैं दालान में लौट आया क्योंकि दो-एक घंटे में मुझे आश्रम से ले जाने वाली घोड़ागाड़ी या कोई छकड़ा आने वाला था।

अगरबत्तियों के धुएँ से सारा दालान महक रहा था। पंखा झूल रहा था और उसके नीचे महर्षि अपने आसन पर आधे लेटे हुए थे। मेरे दालान में प्रवेश करते ही वे उठ बैठे और उन्होंने अपना प्रिय आसन जमा लिया। उस आसन का नाम सुखासन है। यह एक प्रकार का अर्ध-पद्मासन ही था। इसके साधने में मुझे कोई कठिनाई प्रतीत नहीं होती थी। मुझे इसी आसन को और कहीं देखने की बात याद आ गई। जहां सुखानंद जी ने मुझे यह

आसन दिखाया था। महर्षि यही आसन जमाए हुए थे और अपनी आदत के अनुसार अपने दाहिने हाथ से ठुड्डी पकड़े थे। उनकी दाहिनी कुहनी उनके घुटने पर रक्खी थी। मेरी ओर वे स्थिर दृष्टि से ताक रहे थे पर एकदम मौन होकर। फ़र्श पर उनकी बगल में उनका कमंडल और दंड पड़ा था। कौपीन के अतिरिक्त ये ही उनकी एक मात्र संसारी संपत्ति थे। पाश्चात्य व्यक्तियों की संग्रह करने की प्रबल उत्कंठा की यह कैसी मूक टिप्पणी थी।

सदा चमकने वाली उनकी आँखें धीरे धीरे और भी स्थिर होकर और चमकने लगीं। उनका बदन एकदम निश्चल था। उनका माथा कुछ कुछ काँपकर फिर स्थिर हो गया। कुछ मिनट और गुजरे। मुझे साफ़ भासने लगा कि वे समाधिस्थ हो गये। जब मैंने उनसे पहले पहल भेंट की थी उनकी यही दशा थी। कितने आश्चर्य की बात थी कि मेरे विदा लेते समय उनकी वही दशा थी जो प्रथम मिलाप के समय थी। किसी ने मेरे कान तक झुक कर कहा—"महर्षि समाधिस्थ हो गये। अब बात-चीत करना व्यर्थ है।"

दालान के सभी लोगों पर सन्नाटे की छाया पड़ी हुई थी। धीरे धीरे मिनट गुजरते जा रहे थे, पर सन्नाटा और भी गहरा होता गया। मैं कोई धार्मिक पुरुष न था, परन्तु जैसे भौंरा सरस कुसुम के लुभावने विकास को देख कर अपने मन पर काबू ही भूल बैठता है उसी प्रकार अब मुझ से उस धार्मिक श्रद्धा का क्षण क्षण बढ़नेवाला प्रभाव रोका नहीं जाता था।

सारा दालान एक सूक्ष्म अकथनीय और अगोचर शक्ति के प्रसार से ओत-प्रोत होने लगा। इस वायुमंडल का मुझ पर गहरा असर पड़ रहा था। मुझे कुछ भी शंका या संकोच नहीं रहा कि इस रहस्यपूर्ण शक्ति प्रसार का केंद्र महर्षि को छोड़ और कोई नहीं था।

उनकी आँखों की चमक मुझे चौंधिया रही थी। अजीब वेदनायें मेरे बदन में दौड़ने लगीं। भान होने लगा कि वे ज्योतिर्मय नेत्र मेरी आत्मा के अंतरतम तल की झाँकी ले रहे थे। मुझे साफ़ साफ़ प्रतीत होने लगा कि मेरे दिल की कौन कौन सी बातें वे देख रहे थे। उनकी वह मर्म भेदी दृष्टि मेरे विचार, मेरे भाव,

मेरी इच्छाएँ, सभी में पैठी जा रही थीं। उनके सामने मैं बेबस हो गया था। पहले उनकी दृष्टि ने मुझे कुछ कुछ व्याकुल बना दिया, न जाने क्यों मुझे एक अस्पष्ट बेचैनी मालूम हो रही थी। मुझे भासने लगा कि उन्होंने मुझसे विस्मृत मेरे अतीत इतिहास के पन्ने उलट दिये हैं। मुझे निश्चय था कि उन्होंने सब कुछ जान लिया है। उनकी उस दृष्टि से मैं बच नहीं सकता था, और वास्तव में बचने की मेरी चाह भी न थी। उस निर्मम दृष्टि को किसी भावी लाभ की आकांक्षा की प्रेरणा से मैं विवश ही सह रहा था।

इस प्रकार महर्षि मेरी आत्मा के ओछेपन, उसकी निर्बलता, मुझे इधर उधर प्रेरित करने वाले भावों के विचित्र जमघट आदि का पता लगाते जा रहे थे। पर मेरा विश्वास है कि वे यह भी जानते थे कि मन को हराने वाली कैसी तीव्र उत्कंठा और उनके जैसे महात्माओं को खोजने की कैसी प्रबल जिज्ञासा मुझे साधारण जनता के मार्ग से कहीं दूर ले गई है।

हम दोनों के बीच में जो गुप्त शक्ति की लहरें बह रही थीं उनमें एक परिवर्तन साफ़ नज़र आने लगा। उनकी आँखों के पलक झपकते तक न थे, पर मेरी आँखें बारंबार मिच जाने लगीं। मुझे स्पष्ट रूप से मालूम हुआ कि सचमुच मेरे मन को अपने से बाँध रहे हैं, वे मेरे दिल को इस प्रकार से उद्बुद्ध कर रहे हैं कि उसमें एक तरह की उज्ज्वल शान्ति विराजे और मैं भी उन्हीं के से शाश्वत आनन्द का स्वाद ले लूँ। इस अलौकिक शान्ति के बीच में मुझे एक प्रकार की उदात्तता और हलकेपन का भान होने लगा। प्रतीत होता था कि काल-चक्र की गति रुक गई है। मेरा दिल चिंताओं की ऐंचा-तानी से एकदम मुक्त था। मुझे विश्वास होने लगा कि अब फिर कभी क्रोध की विषम ज्वाला, और अतृप्त वासनाओं की व्याकुलता मेरी शांति में खलल नहीं पहुँचावेंगी। मुझे अच्छी तरह अवगत होने लगा कि मानव को आगे बढ़ने की प्रेरणा देने वाली, हमेशा मस्तक ऊँचा किये उन्नति की ओर कदम बढ़ाने को मानव को सदा उकसाने वाली अँधेरे की विकट घड़ियों में उसे दिलासा देकर धीरज बँधाने वाली वह वासना एक बिलकुल ही स्वाभाविक और सहज वासना है, वह एक सच्ची वासना है क्योंकि उसके अस्तित्व का सार ही अच्छाई है।

इस अनुत्तम शान्ति की भव्य घड़ी में, जब कि घड़ी ही रुकी सी दीखती थी, जब अतीत के दुःख और प्रमाद सब अत्यंत तुच्छ दीखने लगे, मेरी क्षुद्र जीवन नदी का महर्षि के समुद्र जैसे गम्भीर मन में लोप हो रहा था और मेरी बुद्धि अब पराकाष्ठा को पहुँच गयी थी। इन महात्मा की दृष्टि मेरी अपवित्र दृष्टि के सामने अनाकांक्षित गुप्त जगत की निराली शोभा का उन्मीलन करने वाली कुंजी नहीं तो और क्या थी ?

कभी कभी मेरे मन में यह प्रश्न उठा था कि बिना बात-चीत किये, बहुत सी तकलीफों को झेलते हुए भी, किसी प्रकार के दिलबहलाव की सामग्री के बिना, इतने शिष्य वर्षों तक महर्षि के पास क्यों कर रहते हैं ? अब मुझे धीरे धीरे मालूम हो रहा था—मनन के कारण नहीं वरन् एक बिजली जैसी ज्योति के चमक उठने से—कि इन शिष्यों को इतने दिनों से एक अमूल्य गहरा महत्त्वपूर्ण पर मूक प्रतिफल मिलता रहा है।

अब तक दालान में हर किसी पर मूर्छा सी विचित्र खामोशी छाई रही। अन्त को कोई चुपचाप उठ कर बाहर चला गया। उनके पीछे और एक, फिर एक एक करके सभी चले गये और दालान में महर्षि के साथ मैं ही अकेला रह गया।

इससे पहले कभी भी ऐसी बात मेरे देखने में नहीं आई थी। उनकी आँखों में एक प्रकार का परिवर्तन होने लगा। वे मिचते मिचते इतनी सूक्ष्म हो गईं मानो वे सुइयों की नोक हों। उनकी पलकों के बीच में उनकी पुतलियों की भव्य ज्योति अब चरम सीमा को पहुँच गई। सहसा मुझे भासने लगा कि मेरा शरीर गिरा सा जा रहा है, और हम दोनों अनन्त आकाश में हैं।

यह बहुत ही नाज़ुक घड़ी थी। मैं संकोच में पड़ गया। ठान लिया कि इस जादूगर की जादू से अवश्य छूटना होगा। संकल्प से कुछ शक्ति पैदा होती है और फिर मेरा शरीर-बोध मुझमें लौट आया। मैं फिर दालान में बैठा था।

वे मुझसे कुछ नहीं बोले। मैंने अपने विचारों को बटोर लिया, घड़ी देखी, और चुपचाप उठ खड़ा हुआ। विदा लेने का समय आ पहुँचा।

सिर झुका कर मैंने विदा माँगी। मूक ही उन्होंने मेरी बात सुन ली। मैंने अपना एहसान जताया। फिर भी मूक भाव से ही उन्होंने सिर हिलाया।

चौखट पर कुछ देर के लिए मेरा मन डाँवाडोल होने लगा। फाटक के पास एक घंटी की आवाज़ सुनाई दी। मेरे जाने के लिए सवारी आ गई थी, फिर मैंने हाथ जोड़ कर प्रणाम किया।

यों मैं महर्षि से विदा हो ही गया।

१०

जादूगर तथा महात्मा

काल और देश, मानव के उद्धत शत्रु, फिर एक बार मुझे अपनी लेखनी को ज़ोर से चलाने पर विवश कर रहे हैं। मेरी कलम ने लिखने योग्य कुछ मुख्य बातों को लिपि-बद्ध कर दिया है। फिर भी मुझे लम्बी डग भरते हुए अपने भ्रमण को समाप्त करना था।

यदि राह का फक़ीर, जो कुछ हाथ की सफाई, कुछ टोना-टटका, कर सकता है जैसे सभी के दिल को खींच लेता है वैसे मेरे चित्त को भी स्वभावतः अपनी ओर खींच ले तो इसमें आश्चर्य ही क्या है? लेकिन अंतर यही है कि मेरी उत्सुकता शीघ्र नष्ट होने वाली है, क्योंकि मानव के गंभीर विचार के योग्य जो मानव जीवन के गहरे रहस्य हैं, उन पर बेचारे जादूगर क्या रोशनी डाल सकेंगे? तब भी जादूगरों की उपस्थिति ही एक ऐसी बात है जो चन्द मिनट के लिए मेरे दिल को मोह लेती है। यह एक तरह का दिलबहलाव है। इसलिए कभी कभी मैं ऐसों की खोज में भी निकल पड़ा हूँ।

भ्रमण में जिन थोड़े जादूगरों से मेरी भेंट हुई थी उनमें से कुछ की कहानी सुनाना अनुचित न होगा। वे आपस में एक दूसरे से इतने भिन्न हैं कि उनके बारे में चन्द बातें जानना अरुचिकर नहीं हो सकता। मेरे स्मृति-पट

पर एक ऐसे जादूगर की तसवीर अभी ताजी है। वह कोई बड़ा जादूगर न था। मद्रास प्रान्त से उत्तर-पूर्व की ओर राजमहेन्द्री नाम का एक छोटा शहर है। वहीं उससे मेरी भेंट हुई थी।

मैं उस शहर की गश्त करने लगा तो एक ऐसी जगह पहुँच गया जहाँ की नरम बालू में मेरे जूते धँसे जा रहे थे। वहाँ से चल कर मैं एक तंग गली में चलने लगा जो कि बाजार की ओर जाती थी। बहुत ही अधिक उमस हवा में भरी हुई थी। बूढ़े लोग घर के दरवाजे खोल कर बैठे थे, बच्चे मस्त हो कर धूल में खेल-कूद कर रहे थे। एक नंग-धड़ंग लड़का घर से बाहर उछलते-कूदते दौड़ पड़ा पर मुझ अजनबी को देख फिर घर में छिप गया।

शहर के लम्बे बाजार में अधेड़ उम्र के सौदागर अपनी छोटी दूकानों पर बैठे ग्राहकों की ताक में अपनी दाढ़ियाँ सुहला रहे थे। नाज के व्यापारी अपने माल के खुले ढेरों के पीछे बैठे हुए थे और मक्खियों का झुण्ड बेधड़क माल पर टूट कर भिनभिनाता था। कुछ देर बाद मैंने अपने को एक मंदिर के कुछ भड़कीले विशाल भवन के सामने पाया। मेरे वहाँ पर पहुँचते ही वहाँ की धूल पर बैठा मर्दों और औरतों का एक छोटा झुण्ड मेरी नजर में आया। वे मुझे देख कर अपनी जगह पर हिलने-डुलने लगे। भारत के कई शहरों में गरीब, कोढ़ी और दीन मुफ़लिस प्रायः मंदिरों और स्टेशनों के पास ही यात्रियों के दिल खींच लेने के लिए अपना अड्डा जमा लेते हैं। यात्री लोग चुपचाप नंगे पाँव मंदिर में पैठ रहे थे। क्या मैं भी मंदिर में घुस पड़ूँ और पुजारियों की पूजा आदि का विधान देख लूँ? मैंने इस बात पर खूब विचार किया और अन्दर न जाने का इरादा कर लिया।

यों ही बहुत दूर तक घूमते-घामते मैं चल रहा था कि मुझे एक नौजवान दिखाई पड़ा। उसके दाहिने हाथ में कुछ कपड़े की जिल्द वाली किताबें थीं। जब हम दोनों मिले तो उसने स्वभावतः अपना सिर उठाया; हमारी आँखें मिलीं और परिचय शुरू हुआ।

अपने पेशे के सिलसिले में जरूरत के अनुकूल आचार और परिपाटियों

का, रस्म और रिवाजों का, पालना अथवा त्याग मैं खूब ही सीख गया था। जब कभी मेरे और मेरे उद्देश्य के बीच में रस्म और रिवाजों से कोई बाधा पहुँचने की आशंका होती तो मैं उनको ताक़ पर रख देता। मैं सफर को बहुत ही पसन्द करता हूँ, साधारण लोगों के जैसे सफर मुझे नहीं रुचते। इसलिए मेरी भारतवर्ष की मुसाफिरी अन्य विदेशियों की मुसाफ़िरी से भिन्न मालूम होगी।

वह नौजवान स्थानीय कालेज का एक छात्र निकला। वह अच्छी तरह संसार का सामान्य ज्ञान रखता प्रतीत होता था। अतएव वह मेरे दिल को खींच रहा था। यही नहीं, उसके चेहरे से अपनी पुरानी संस्कृति के प्रति उसका आदर और प्रेम साफ़ ही झलक रहा था। जब मैंने उसको बताया कि प्राचीन भारतीय संस्कृति का मैं कितना प्रेमी हूँ उसके आनन्द की कोई सीमा न रही। भारतवर्ष के अनेक नौजवान, प्रायः शहरों में रहने वाले विद्यार्थी, राजनीति के शिकार बने हुए थे। देश के कोने कोने में राजनैतिक आंदोलन मचा हुआ था। तब भी उस नौजवान को ये बातें छू भी नहीं गई थीं।

आधा घंटा बीता। वह नौजवान मुझे एक खुली जगह की ओर ले चला जहाँ पर एक भीड़ बड़ी उत्सुकता से खड़ी हुई किसी आदमी की वक्तृता सुन रही थी। वक्ता भीड़ के ऐन बीच में था। अपनी शक्ति भर ऊँची आवाज़ में वह कुछ बता रहा था। पूछने पर मालूम हुआ कि वह अपनी योग विभूतियों की डुग्गी पीट रहा है।

अपनी हाँकने वाला वह योगी खूब मजबूत था। उसका बदन गठा हुआ था, माथा लंबा और ऊँचा, विशाल मांसल भुजाएँ, और उसकी कसी लँगोटी के कारण उभड़ने वाली तोंद, बड़ी ही विचित्र थी। उसने अपनी कमर पर बड़ा भारी कमरबन्द बाँधा था। वह एक ढीला, लम्बा सफ़ेद चोग़ा पहने था। इस आदमी की बातों में आत्मश्लाघा का काफ़ी मिश्रण था। जब काफ़ी पैसे मिलने पर धूल से आम का पौधा उगाने की बात उसने कही तो औरों के साथ मैंने भी कुछ पैसे उसके पैरों की ओर फेंके।

उसने करामात शुरू की। मिट्टी के एक बड़े मटके को सामने रख कर उसी के पास स्वयं बैठ गया। मटके में लाल और भूरे रंग की मिट्टी भरी हुई थी। उसने हमको आम की एक छोटी गुठली दिखा दी और उसको मिट्टी में बो दिया। उसके बाद उसने अपनी झोली से एक बड़ा कपड़ा निकाल कर घड़े और अपने घुटने तथा जाँघों पर डाल लिया।

कई मिनट तक वह कुछ अजीब मंत्र पढ़ता रहा। बाद को कपड़ा हटा दिया गया। आम का छोटा अंकुर धीरे धीरे मिट्टी के तल से अपना सिर उठा रहा था।

फिर उसने पहले जैसे कपड़ा ढक दिया और बाँसुरी बजाने लगा। उससे एक अजीब आवाज़ निकलने लगी। शायद हमें उसको संगीत ही समझ लेना था। कुछ मिनट बाद उसने कपड़ा हटा कर हमें दिखा दिया कि आम का एक कोमल पौधा उगा हुआ है। इसी प्रकार कपड़े से ढाँकते और फिर हटाते, बीच बीच में बाँसुरी बजाते उसने अन्त में मिट्टी से नौ-दस अंगुल ऊँचा आम का एक पौधा खड़ा कर दिया। वह आम का वृक्ष तो था नहीं, किन्तु उस छोटे पौधे की सब से ऊँची टहनी से एक सुनहला पका हुआ आम भी लटक रहा था।

विजय गर्व के साथ योगी बोल उठा—"देखो यह सब उसी आम की गुठली से उगा हुआ है।"

मेरे दिमाग की बनावट ही कुछ ऐसी है कि मैं उसी क्षण उसकी बातों को स्वीकार नहीं कर सका। मुझे, न मालूम क्यों, प्रतीत होने लगा कि यह सारी बात इंद्रजाल का एक अच्छा उदाहरण है।

मेरे साथी ने अपनी राय ज़ाहिर की:

"साहब, ये तो योगी हैं। ऐसे लोग कई विचित्र बातें दिखा सकते हैं।"

लेकिन मुझे उसकी बातों से कुछ भी संतोष नहीं हुआ। इस मर्म के रहस्य को जानने की मैंने कोशिश की। मुझे पश्चिम के कुछ ऐसे ही लोग,

और ऐसे लोगों की संस्थाएँ, याद आयीं पर अभी मेरी कोई निश्चित राय क़ायम नहीं हुई थी।

योगी ने अपनी झोली आदि ले ली और अपने पुट्ठों के बल बैठ कर भीड़ को चले जाते हुए देखा।

अचानक मुझे एक बात सूझ गई। जब एकान्त हुआ, मैं योगी के निकट पहुँचा और पाँच रुपये का नोट दिखा कर विद्यार्थी से कहा :

"भाई, उससे कह दो कि इस जादू का रहस्य यदि यह बता दे तो ये रुपये मिलेंगे।"

उस नौजवान ने मेरी बातों का अनुवाद करके योगी को सुना दिया। योगी ने दिखावे भर को इनकार कर दी लेकिन उसकी आँखों में साफ़ ही लालच की झलक दिखाई दे रही थी।

"सात रुपये देंगे।"

तब भी योगी टस से मस न हुआ और मेरे सौदे पर कुछ तिरस्कार की बात कही।

"तो उससे कह दो कि हमें उसका रहस्य जानने की कोई उत्कंठा नहीं है। लो, हम चले जाते हैं।"

हम चलने लगे, पर मैं जान-बूझ कर धीरे धीरे कदम बढ़ा रहा था। चन्द सेकण्ड नहीं गुज़रे होंगे कि योगी ने हमें पुकार कर बुलाया। उसने कहा :

"सौ रुपये दें तो मैं अपना मर्म बता दूँगा।"

"नहीं, सात रुपये; इससे अधिक नहीं आप अपना रहस्य अपने ही पास रखिए।"

हम फिर आगे चले। फिर एक पुकार। हम पीछे लौटे।

"योगी सात रुपये पर राज़ी है।"

योगी सारी करामात का मर्म समझाने लगा।

उसने अपनी थैली खोली और प्रदर्शन की सारी सामग्री बाहर निकाल कर रख दी। उसमें एक अंकुरित आम की गुठली और एक-से-एक बड़े आम के कई छोटे छोटे पौधे थे। सब से छोटे पौधे को दबाकर उसने खाली सीप के सम्पुट में रख दिया। वह छोटा पौधा इस प्रकार एक तंग जगह में बंद कर दिया गया और मिट्टी के तले गाड़ कर रक्खा गया। आम का अंकुर दिखाने के लिए जादूगर को सिर्फ अंगुलियाँ मिट्टी के तले गाड़कर धीरे से ढक्कन निकालना ही था। फिर वह छोटा पौधा अपना छोटा सिर उठा सकता था।

इससे कुछ लम्बे जो पौधे थे, उनको उसने अपने कटि-फेंट में छिपा रक्खा था। बीच बीच में कपड़ा ढाँकते और गाते-बजाते, मंत्रों का उच्चारण करते, वह कपड़ा उठा कर देखा करता था कि पौधा कैसे उग रहा है। याद रहे कि वह दूसरों को तो ऐसे देखने नहीं देता था। इस आडम्बर के बीच में समय पाकर बड़ी फुर्ती से लम्बे पौधे को फेंट से निकाल कर, वह उसे मिट्टी में रोप देता था और छोटे पौधे को छिपा लेता था। इस प्रकार आम की गुठली से पौधे के उगने का भ्रम देखने वालों को हो जाता था।

पहले से इन बातों के बारे में मुझे कुछ अधिक ज्ञान अवश्य हुआ था पर मेरे मन में एक विचार उठने लगा। शायद योगियों के बारे में जो कुछ ख्याल मेरे मन में थे वे सब पतझड़ के पीले पत्तों के समान झड़ तो नहीं जायँगे?

मुझे अड्यार नदी के किनारे रहने वाले योगी ब्रह्म की चेतावनी याद आने लगी। उन्होंने मुझसे साफ़ साफ़ कह दिया कि तुच्छ श्रेणी के फ़क़ीर और नामधारी योगी गलियों में अपनी करामातें दिखाते रहते हैं पर वह सब टोना-टोटका के सिवा और कुछ नहीं है। ऐसे लोगों को देख कर ही पढ़े-लिखे लोग और नौजवान योग के नाम से चिढ़ने लगते हैं।

यह जो आधे घंटे में आम का पेड़ उगा सकता है सच्चा योगी कैसे बन सकता है ! यह तो अव्वल दर्जे का धोखेबाज़ निकला !

× × ×

फिर भी सच्ची जादू दिखाने वाले फ़क़ीर भी हैं। ऐसा ही एक फ़क़ीर जब बरहमपुर में मैं टिका हुआ था मेरे यहाँ आया था। पुरी में भी एक अन्य ऐसे फ़क़ीर से मेरी भेंट हुई थी।

बरहमपुर ऐसा शहर है जहाँ पुराने विचार और हिंदू जीवन के गंदे रस्म और रिवाज अभी मज़बूती से कदम जमाये हुए हैं। मैं एक डाक-बँगले में टिका था। बँगले में एक लम्बा और अच्छा बरामदा था। एक शाम को जब कि ऊमस के मारे भीतर दम घुट रहा था मैं बरामदे में बैठ गया और शीतल छाया का मज़ा लूटने लगा। बाग में पौधे हर कहीं उगे हुए थे और सारी जगह ऐसी सुन्दर थी मानो हरी मखमल का बिछौना बिछा हो। सूरज की किरणें उस सुन्दर फर्श पर अति कोमलता के साथ थिरक रही थीं। मैं अपनी आरामकुर्सी पर लेटे लेटे दृश्य की बहार लूट रहा था।

अहाते के निकट कोई अजनबी पहुँचता दिखाई दिया। उसके पाँव नंगे थे और वह इतनी दबी चाल से चल रहा था कि उसकी आहट ही न मिलती थी। उसके हाथ में बाँस की एक छोटी टोकरी थी। उसके लम्बे और काले बालों की उलझी हुई जटाएँ लटक रही थीं। उसकी आँखों में एक प्रकार की लालिमा छाई हुई थी। वह और भी नज़दीक आया, टोकरी नीचे ज़मीन पर रख दी और माथा छू कर, हाथ जोड़े, नमस्कार किया। वह मुझसे एक खिचड़ी भाषा बोलने लगा जिसमें किसी देशी भाषा के साथ कुछ अस्पष्ट अंग्रेज़ी शब्द भी मिले हुए थे। शायद वह तेलुगू भाषा बोल रहा था। उसका अंग्रेज़ी-उच्चारण इतना भद्दा और भ्रष्ट था कि मुश्किल से मैं दो तीन शब्द ही समझ पाया। मैं भी उससे अंग्रेज़ी में बोलने लगा पर वह अंग्रेज़ी बहुत कम समझ पाता था। अतः उसने मेरा मतलब नहीं समझा। पर उसका मतलब समझने

के लिए मेरा तेलुगू का ज्ञान इससे कहीं कम पर्याप्त था। थोड़ी देर तक आपस में कुछ बोलने की चेष्टा करके हम दोनों जान गये कि दोनों एक दूसरे के लिए अस्पष्ट ध्वनियों के अतिरिक्त और कुछ बोल नहीं रहे हैं। आखिर उसने एक सांकेतिक भाषा का आविष्कार करने की चेष्टा की। उसके इशारों और मौखिक चेष्टाओं से मैं समझ गया कि टोकरी में कोई खास चीज़ है जिसको मुझे अवश्य ही देखना चाहिए।

मैंने बँगले के भीतर जाकर एक नौकर को बुलाया जो कम-से-कम इतनी अंग्रेज़ी जानता था कि उस अजनबी के शब्दों का मेरे लिए कुछ अर्थ बतला सके। मैंने उसको आज्ञा दी कि वह यथाशक्ति अजनबी की बातों का मेरे लिए अनुवाद करे।

"वह साहब को कुछ जादू दिखाना चाहता है।"

"खैर, दिखावे। पर वह कितने पैसे चाहता है?"

"जो आपकी खुशी हो।"

"उससे कहो कि जादू शुरू कर दे।"

उस फ़कीर की भद्दी सूरत और अज्ञात वंश और जाति सभी एक साथ मेरे मन में घृणा का भाव पैदा कर रही थीं। उसके चेहरे के भावों की तह तक पहुँचना कोई सरल बात न थी। उससे एक प्रकार की मनहूसियत झलक रही थी, पर उस पर किसी प्रकार की बुराई का मुझे पता नहीं चला। इस व्यक्ति के चारों ओर अज्ञात शक्तियों और निराली विभूतियों का एक घेरा मुझे भासने लगा था।

उसने बरामदे की सीढ़ियों पर चढ़ने की कोई चेष्टा नहीं की। सामने बरगद का एक विशाल पेड़ था। उसकी दूर तक फैलने वाली शाखाएँ मानो उसके सिर पर चँदोवे का काम दे रही थीं। उसने अपनी बाँस की टोकरी से एक बड़े ज़हरीले बिच्छू को एक भद्दे लकड़ी के चिमटे से पकड़ कर निकाला।

वह कुत्सित प्राणी इधर-उधर भागने की चेष्टा करने लगा। झट फ़क़ीर ने उसके चारों ओर धूल में अपनी तर्जनी से एक रेखा खींची। बिच्छू उस चक्कर के भीतर ही दौड़ने लगा। जब जब वह रेखा के पास आता तो हिचकने लगता, मानो कोई गैबी रुकावट उसकी राह में डाल दी गई हो। चौंधियाने वाली धूप में मैं उस बिच्छू को अच्छी तरह देख सकता था।

इस विचित्र प्रदर्शन के दो-तीन मिनट बीतने पर अपना हाथ उठा कर मैंने फ़क़ीर को जता दिया कि मुझे प्रदर्शन पसंद आया है। फ़क़ीर ने बिच्छू को टोकरी में रख लिया और फिर लोहे की दो तेज़, पतली और नुकीली कीलें निकालीं।

अपनी भयानक लाल लाल आँखें उसने कुछ बंद कर लीं। प्रतीत हुआ कि दूसरी करामात दिखाने के ऐन मौके का वह इन्तज़ार कर रहा था। कुछ देर बाद उसने अपनी आँखें खोलीं, एक कील ली और उसको नोक की तरफ़ से सीधे अपने मुँह के भीतर रख लिया। फिर उसको ज़ोर के साथ अपने गाल में भीतर की ओर से ऐसे चुभा लिया कि कील का अधिक भाग बाहर निकल आया। इससे उसका जी नहीं भरा और दूसरी कील लेकर इसी प्रकार दूसरे गाल में घुसेड़ ली। मेरे बदन में सनसनी दौड़ गई। आश्चर्य और घृणा ने मिल कर मेरे दिल पर कब्ज़ा जमा लिया।

जब उसको जान पड़ा कि मैं काफ़ी देर तक देख चुका हूँ तो उसने दोनों कीलें निकाल लीं और सलाम किया। मैं बरामदे से नीचे उतर कर उसके पास गया और ग़ौर के साथ उसके चेहरे को परखा। एक-दो खून की बूँदों और चमड़े में दो छोटे छिद्रों को छोड़ कर घाव बिलकुल ही भर गये थे।

फ़क़ीर ने मुझको इशारे से बताया कि मैं फिर अपनी कुर्सी पर बैठ जाऊँ। मैंने वैसा ही किया। वह दो-तीन मिनट तक अपने को ज़रा सँभालता रहा और मालूम होने लगा कि वह कोई अनोखी बात दिखाने की तैयारी में है।

बड़ी शांति के साथ और इतनी उदासीनता के साथ मानो वह अपने

कुरते के बटन खोलने जा रहा हो, फ़क़ीर का दाहिना हाथ उसकी आँखों के पास गया। उसने अपनी दाहिनी आँख के डेले को पकड़ा और धीरे धीरे उसको उसके गड्ढे से बाहर की ओर खींचने लगा।

मैं एकदम चकित हो गया।

कुछ सेकण्ड के लिए वह रुका; फिर डेले को और भी बाहर की ओर खींचा, यहाँ तक कि वह उसके गाल पर ढीला हो कर मांसपेशियों और नसों के बल लटकने लगा।

इस खौफ़नाक घटना को देख कर मुझे मतली सी आने लगी। जब तक उसने अपने डेले को फिर से यथास्थान नहीं कर दिया मैं बड़ा ही बेचैन रहा।

मैं अब काफ़ी देख चुका था। उसे कुछ रुपये दे दिये। बिना आमद के मैंने नौकर के ज़रिये उससे पूछा कि इन भयानक बातों को वह क्योंकर करता है इसे समझायेगा या नहीं?

"नहीं साहब। बाप अपने बेटे को ही बताता है। कुटुम्ब के लोग ही इसे जान पाते हैं।"

उसकी अनिच्छा से मुझे कोई व्याकुलता नहीं हुई। यह बात तो सर्जनों और डाक्टरों की तहक़ीक़ात के क़ाबिल थी, मुझ भटकने वाले लेखक को इससे क्या काम।

फ़क़ीर ने सलाम करके विदा ली, अहाते के फाटक से गुज़रा और धूल भरी सड़क पर चलते चलते गायब हो गया।

× × ×

पुरी-जगन्नाथ में समुद्र की मृदुल हिलकोरियों का मधुर कलकल नाद मेरे कानों को बहुत ही प्यारा लगा। बंगाल की खाड़ी से बहने वाले मंद पवन के झोंकों की लोनी सुगंधि दिल को खूब ही भाई। एक दिन समुद्र तट पर यों ही घूमने गया। वहाँ लोगों की आमद-रफ़्त बहुत ही कम थी। आँखों के सामने सफेदी मिश्रित सुनहली बालू के विशाल पुलिन दूर के क्षितिज तक फैले

हुए थे। दूर पर जल मरिचिकाओं की चमकनेवाली लहरों में से क्षितिज दिखाई देता था। समुद्र मानो गला हुआ नीलम था।

मैंने जेब से घड़ी निकाली तो वह सूरज की चौंधियाने वाली धूप में जगमगा उठी। मैं कुछ देर तक घूम कर शहर की ओर चल पड़ा। वहाँ पर अनजाने ही एक ऐसी बात मुझे दिखाई दी जिसका कोई भी समाधान अभी तक मुझे मालूम नहीं हुआ है। वह मेरे जीवन में एक स्थाई समस्या के रूप में रह गई है।

वहाँ एक भीड़ के बीच में एक आदमी खूब ही भड़कीला भेष बनाये खड़ा हुआ था। उसके साफ़े और पायजामे से वह मुसलमान मालूम होता था। एक मुख्य हिन्दू नगर में, हिंदुओं के पवित्र नगर में, मुसलमान का इतना रौब! समय का फेर था। मैं इन्हीं विचारों में क्षण भर के लिए पड़ा रहा। इस आदमी को देखकर मेरे हौसले और मेरी उत्सुकता न जाने क्यों लहर मारने लगीं। उसका एक पालतू बन्दर था। वह भी अजीब ढंग से तरह-तरह के रंगदार कपड़े पहने हुए था। हर बार वह अपने मालिक की आज्ञाओं का बिना किसी प्रकार की भूल-चूक के पालन करता था। मानव की बुद्धि से उसकी बुद्धि किसी प्रकार कम नहीं मालूम होती थी।

मुझे देखते ही उस आदमी ने अपने बन्दर से कुछ कहा तो बंदर भीड़ में से उछलते-कूदते मेरे पास आया और एक गमगीन आवाज करके उसने मुझे सलाम किया। उसने अपनी टोपी निकाली और, इस ढंग से मानो मुझसे भीख माँगता हो, टोपी मेरी ओर बढ़ा दी। मैंने उसमें एक चवन्नी फेंक दी। बंदर ने अदब के साथ सर झुकाकर सलाम किया और अपने मालिक के पास लौट गया।

फिर उसने एक अजीब नाच दिखाया। आदमी एक ढंग का बाजा बजाने लगा। उसकी आवाज के अनुरूप वह बंदर कदम डालते नाचने लगा। ऊँचे प्राणियों में दिखाई देने वाली कलात्मक शोभा और ताल का ज्ञान उस बंदर में साफ़ ही दिखाई देता था।

जब प्रदर्शन समाप्त हुआ, उस आदमी ने अपने अनुचर मुसलमान भाई से उर्दू में कुछ कहा और मेरे निकट आकर उसने मुझसे प्रार्थना की कि मैं उसके साथ पीछे के तम्बू में दाखिल होऊँ क्योंकि उसका मालिक मुझे कुछ खास बातें दिखाना चाहता था।

युवक तम्बू के बाहर ही भीड़ को रोकने के लिए खड़ा हो गया और मैं उसके उस्ताद के साथ तम्बू में दाखिल हुआ। भीतर प्रवेश करते ही मैंने देखा कि तम्बू में कोई छत न थी। चारों ओर चार खम्भे गाड़ दिये थे और उनके चारों ओर एक मोटा परदा बाँध दिया गया था। उस घेरे के बीचोबीच एक सादी और हलकी मेज़ रक्खी हुई थी।

उस आदमी ने एक कपड़े की लपेट में से दो-दो अंगुल के कई खिलौने निकाले। उन खिलौनों के सिर रँगे मोम के बने थे और उनके पैर कुछ कड़े तिनकों के बने थे। पैरों के नीचे लोहे के चपटे टुकड़े ठोंक दिये गये थे। उसने सभी खिलौनों को मेज़ पर खड़ा किया।

खुद मेज़ से एक गज़ की दूरी पर खड़े होकर उर्दू में वह उनको हुक्म देने लगा। एक या दो मिनट में सबके सब खिलौने मेज़ पर उछलते-कूदते नाचने लगे।

उसके हाथ में एक छोटी छड़ी थी। वह अपनी छड़ी को इधर-उधर फेरने लगा जैसे कि पश्चिमी संगीत में ताल को बताने के लिए गायक लोग छड़ी फेरते रहते हैं। उस छड़ी की गति के बिलकुल अनुकूल वे रंगदार खिलौने नाच उठे।

वे मेज़ के चारों ओर उछलते-कूदते नाच रहे थे किन्तु भूलकर भी नीचे गिरते न थे। शाम को चार बजे की खुली रोशनी में मैं यह खेल देख रहा था। मुझे अनुमान हुआ कि हो न हो इसमें कोई चालाकी है। अतः मैं मेज़ के बिलकुल ही निकट गया और गौर के साथ उसको परखा। अपने हाथों से मेज़ के ऊपर और नीचे भी टटोल कर देखा कि कहीं पतले तागे तो नहीं बँधे हैं; किन्तु मुझे किसी तागे का पता नहीं चला। मुझे शक होने लगा कि यह आदमी केवल जादूगर है या सच्चा फ़क़ीर?

तब उस आदमी ने इशारों से मुझे बता दिया कि मैं मेज़ के किसी भाग को अपनी अँगुली से बता दूँ। मैंने ऐसा ही किया तो सभी खिलौने ठीक उधर ही आ जाते थे जिधर मेरी उँगली का इशारा था। जिधर मैं दिखाऊँ उधर ही वे आ कर नाचने लगें।

आखिर को उसने मुझे एक रुपया दिखाया और कुछ बोला तो मैंने समझ लिया कि वह एक रुपया जेब से निकालने का मुझे इशारा कर रहा है। मैंने एक रुपया निकाल कर मेज़ पर रख दिया। तुरन्त वह सिक्का नाचते हुए फ़क़ीर की ओर चलने लगा। जब वह मेज़ के छोर पर पहुँचा तो नीचे गिरा और ढुलकते हुए उसके पाँवों के पास जाकर रुक गया। आदमी ने उसे उठाकर जेब में रख लिया और अदब के साथ सलाम किया।

मैं किसी विचित्र इंद्रजाल का तमाशा देख रहा था या सच्चे योग की एक विभूति का प्रदर्शन, मैं ही नहीं कह सकता। शायद मेरी शंकाएँ मेरे मुखमंडल पर अंकित हो रही थीं। उस आदमी ने अपने साथी को बुला लिया। नौजवान ने मुझसे पूछा कि आप और भी देखना चाहते हैं? मैंने हामी भरी तो उसने बाजा फ़क़ीर के हाथ में दिया और मुझको बता दिया कि मैं अपनी अँगूठी मेज़ पर रख दूँ। मैंने उसकी बात मान ली। वह अँगूठी अडयार नदी के तट पर रहने वाले योगी ब्रह्म की दी हुई थी। मैं उस अँगूठी के सुनहले पंजे और हरी मणि की ओर ताक रहा था। फ़क़ीर कुछ पग पीछे हटा और उर्दू में बारम्बार हुक्म देने लगा। हर एक आज्ञा पर अँगूठी आसमान की ओर उछलती और फिर गिर जाती। आदमी अपने बाँये हाथ में बाजा रखकर दाहिने हाथ से, अपनी आज्ञाओं के साथ साथ कुछ अनुकूल इशारे करने लगा। वह फिर बाजा बजाने लगा तो मेरी चकित दृष्टि के सामने मेरी अँगूठी बाजे के ताल के अनुरूप ही नाचने लगी। आदमी न तो अँगूठी के पास गया था न उसने उसको छुआ ही था। इस अजीब तमाशे का क्या अर्थ है, मेरी समझ में नहीं आया। एक जड़-अचेतन वस्तु से क्योंकर शाब्दिक आज्ञाओं का पालन करवाया जा सकता है, मेरी समझ के

बाहर की बात थी। इतने विचित्र प्रकार से अचेतन वस्तु को बदल देना क्या संभव है ?

जब दूसरे आदमी ने मेरी अँगूठी मुझे लौटा दी मैंने उसकी ग़ौर से परीक्षा की किन्तु उस पर किसी भी प्रकार के चिन्ह नज़र नहीं आये।

फिर फ़क़ीर ने एक रुई की लपेट में से एक ज़ंग चढ़ा हुआ लौह-दंड निकाला। वह चपटा था, ढाई इंच लंबा और आधा अंगुल चौड़ा। वह उसको मेज़ पर रक्खा ही चाहता था कि मैंने नौजवान से प्रार्थना की कि एक बार मैं उसको देख तो लूँ। उसने किसी प्रकार की आपत्ति नहीं उठायी। मैंने उस लौह-दंड को ध्यानपूर्वक देखा। उस पर किसी प्रकार के तागे नहीं बँधे थे। मैंने उसको लौटा दिया और मेज़ की ओर ताका लेकिन उस पर भी कोई ऐसी वस्तु नहीं थी जिससे शक पैदा हो जाय।

लौह-दंड मेज़ पर पड़ा हुआ था। फ़क़ीर ज़ोर से अपने दोनों हाथ मलने लगा। फिर अपना बदन कुछ झुकाकर उसने लौह-दंड के कुछ अंगुल ऊपर ही अपने दोनों हाथ रक्खे। मैं ग़ौर से सारी बात देख रहा था। अपनी अंगुलियों को लौह-दंड की ओर करके फ़क़ीर ने धीरे से अपने हाथ पीछे खींच लिए। न मालूम कैसे वह लोहा ठीक हाथों की तरफ़ बढ़ने लगा। मैं एकदम हैरान हो गया था। ठीक फ़क़ीर के हाथों के नीचे ही नीचे उनके चलने के अनुसार मेज़ पर लौह-दंड फिरने लगा।

आदमी के हाथ और लौह-दंड दोनों के बीच में क़रीब पाँच अंगुल का अन्तर था। मैंने फिर उसे परखने की अनुमति माँगी और वह मिल गयी। मैंने तुरन्त उसको उठाकर देखा, पर कोई विशेष बात मेरे देखने में नहीं आयी। वह पुराने लोहे का एक टुकड़ा मात्र था।

इसी प्रकार से फ़क़ीर ने एक छुरी के साथ भी प्रयोग करके दिखा दिया।

इन विचित्र प्रदर्शनों के बदले मैंने उसे अच्छा पुरस्कार दिया और उससे इन बातों के रहस्य के बारे में प्रश्न करने लगा। उसने मुझे यक़ीन दिलाया

कि यह एक जरूरी बात है कि प्रयोग करने वाली हर चीज़ में लोहा किसी न किसी प्रकार मिला रहे। उसका कहना था कि लोहे में एक अनूठी चेतन शक्ति है। फ़क़ीर ने कहा कि वह इस काम में इतना निपुण बन चुका था कि ये ही करामातें सोने की चीज़ों से भी कर सकता है।

मन-ही-मन इस पहेली को सुलझाने की मैंने कोशिश की। अचानक ही मुझे सूझ पड़ा कि बाल का एक फंदा बनाकर लौह-दंड को उसमें बाँध सकते हैं और इस प्रकार से फंदा भी अदृश्य रहेगा। लेकिन मुझे शीघ्र ही याद आ गया कि मेरी अँगूठी को नचाते समय फ़क़ीर कई कदम पीछे हटकर खड़ा हुआ था और वह दोनों हाथों से बाजा बजाता था। उसके साथी को भी इस कूट उपाय का दोषी नहीं बना सकता था, क्योंकि वह खिलौनों के नाचते समय खीमे के बाहर ही खड़ा हुआ था। तो भी इस रहस्य की और भी तहकीकात करने की चाह रखकर मैंने उस फ़क़ीर से उसकी तारीफ़ करते हुए कहा—"आप तो बड़े ही होशियार जादूगर हैं।"

उसके ललाट पर स्याही छा गयी। बड़े आवेग में आकर उसने मेरे कथन का विरोध किया। मैंने उसको फँसाने के वास्ते पूछा—"तब आप कौन हैं?"

उसने अकड़ के साथ अपने साथी के ज़रिये मुझसे कहलाया—"मैं एक सच्चा फ़क़ीर हूँ।...कला का अभ्यास करने वाला हूँ।"

उसने उर्दू में किसी कला का नाम बताया पर मैं उसको ठीक ठीक नहीं सुन सका।

मैंने इन बातों में अपनी उत्कंठा प्रकट की। बड़ी उदासीनता के साथ फ़क़ीर ने कहा :

"जी हाँ, आपके भीड़ में आने से पहले ही मैं इस बात को जान गया था। तभी तो आप से तम्बू में पधारने की प्रार्थना की थी।"

"सचमुच!"

"जी हाँ, भूलकर भी यह न सोचियेगा कि मैं रुपये-पैसे के लालच से ये सारे तमाशे दिखा रहा हूँ। मुझे अपने उस्ताद के लिए रौज़ा बनवाने के वास्ते कुछ रकम की ज़रूरत है। मैं इस काम में दिल व जान से लग गया हूँ। जब तक रौज़ा पूरा बन नहीं जायगा तब तक मुझे आराम की नींद कहाँ ?"

मैंने उससे प्रार्थना की कि वह अपने जीवन का और कुछ खुलासा कह सुनावे। बड़ी अनिच्छा के साथ उसने मेरी बात मान ली। कहने लगा :

"जब मैं तेरह बरस का था अपने वालिद की भेड़-बकरी चराया करता था। एक रोज़ हमारे गाँव में एक दुबला पतला फ़क़ीर आ टपका। उसका बदन इतना पतला था कि देखकर डर लगता था। हड्डियाँ निकल आयी थीं। उसने एक रात के लिए आराम करने के लिए स्थान और खाना माँगा। मेरे वालिद ने मान लिया। वे हमेशा फ़क़ीरों का बड़ा अदब व इज्ज़त किया करते थे। लेकिन एक रात की जगह वह फ़क़ीर एक साल से कुछ अधिक ही हमारे यहाँ रहा। पर उससे हमारे घरवालों को ऐसी मुहब्बत पैदा हो गयी थी कि मेरे वालिद उसको अपने यहाँ रहने और मेहमानी स्वीकार करने के लिए बराबर मजबूर करते गये। वे बड़े विचित्र आदमी थे। चन्द रोज़ ही में हमें पता लग गया कि वे अजीब ताक़त रखते हैं। एक शाम की बात है। हम सब अपनी रूखी-सूखी खाने के लिए तैयार बैठे थे। फ़क़ीर ने मेरी ओर कई बार ग़ौर से ताका। मैं हैरान था कि इसका क्या मतलब है। दूसरे दिन सुबह मैं भेड़ें चरा रहा था कि वे मेरे नज़दीक आकर बैठ गये और कहा— "बेटा, तुम फ़क़ीर बनना चाहते हो ?"

"मुझे इस बात का तनिक भी अनुमान न था कि फ़क़ीर की जिन्दगी कैसी होती है। उस जिन्दगी के निरालेपन के विचार से मेरी उमंग लहर मारने लगी। मैंने अपनी पसंदगी की बात कह दी। उन्होंने मेरे माँ-बाप से बातें कीं और तीन साल बाद आकर मुझे साथ ले चलने की बात कह कर कहीं चल दिये। किस्मत की बात कि इसी बीच में मेरे माँ-बाप की मौत हो

गयी। इसलिए जब मेरे उस्ताद आ गये तब उनके साथ चलने को मैं बिलकुल ही आज़ाद था। हम दोनों ने साथ साथ मुल्क में फेरा लगाया। इस सिलसिले में हमने कई गाँव और कस्बे देखे। मैं उनका चेला बन गया और वे मेरे उस्ताद। जो करामातें मैंने आपको अभी अभी दिखायी हैं वे सब की सब हक़ीक़त में उनकी हैं। उन्होंने ही मुझे यह सारी बातें सिखायी थीं।"

"क्या सहज में ये बातें सीखी जा सकती हैं?"

फ़क़ीर हँस पड़ा।

"कई साल की कड़ी साधना से कोई भी इनपर क़ब्ज़ा पा सकता है।"

न जाने क्यों मुझे उसकी बातों में सच्चाई की गूँज सुनाई पड़ रही थी। वह ईमानदार मालूम होता था। स्वभाव से मैं बड़ा ही शक्की था, तब भी उसकी बाबत मैंने अपने शक्कीपन को ताक़ पर रख दिया।

मैं उस खीमे से कुछ अनिश्चित और भ्रान्त हो कर बाहर निकला। मैं एक अजीब चक्कर में फँस गया था। सोचता था कि क्या मैंने कोई स्वप्न तो नहीं देखा है। सुखद पवन की हिलकोरियाँ मुझे हरा-भरा करने लगीं। दूर के हाते पर अपनी शीतल छाया फैलाते हुए नारियल के पेड़ धीरे धीरे अपने पत्रमय मुकुट ठाठ के साथ हिलाने लगे। ज्यों ज्यों मैं पग आगे बढ़ाता जाता था त्यों त्यों वे करामातें मुझे अधिकाधिक अविश्वसनीय भासती जा रही थीं। इच्छा होती थी कि फ़क़ीर के मत्थे किसी जादू-टोना करने की बात मढ़ दूँ, लेकिन न जाने क्यों उसके ईमान में संदेह करना असंभव ही मालूम होता था। छुए बिना जो जड़ वस्तुओं को वह नचाने लगा था इसका मर्म क्योंकर समझाया जा सकता है? प्राकृतिक नियमों में कोई भी मनमाने परिवर्तन कैसे पैदा कर सकता है यह मेरी समझ के बाहर की बात मालूम होती थी। प्रकृति के नियमों के बारे में जितना हम समझे हुए हैं शायद उतना पर्याप्त नहीं है।

पुरी-जगन्नाथ भारतवर्ष के पवित्र नगरों में एक है। बहुत पुराने ज़माने से ही यह शहर अपने मठ और मंदिरों के लिए विख्यात रहा है। जब मेले

लगते हैं हजारों की तादाद में यात्री इस नगर में इकट्ठे हो जाते हैं और दो मील तक जगन्नाथ जी का महान रथ खींच कर अपने को कृतकृत्य मानते हैं। एक ऐसे मेले से मैंने काफ़ी लाभ उठाया और वहाँ पर आने वाले साधु-महात्माओं का गहरा अध्ययन करने का मौका हाथ से जाने नहीं दिया। इसका परिणाम यह हुआ कि पहले जो विरोधी और प्रतिकूल भाव मेरे मन पर अंकित हो गये थे उनमें काफ़ी परिवर्तन हो गया।

एक घुमक्कड़ साधु, जो टूटी-फूटी पर समझने लायक अंग्रेज़ी का जानकार था, मिला। निकट परिचय प्राप्त होने पर अन्त में वह बड़ा ही सज्जन निकला। वह चालीस से कुछ कम आयु का था। अपने गले में वह कंठी पहने था और एक माला भी दीख पड़ती थी। उसने मुझको बताया कि वह यात्रा करते, क्षेत्र से क्षेत्र को देखते, एक मठ से दूसरे मठ का दर्शन करते देश का भ्रमण कर रहा था। तन ढकने के लिए एक ही कुर्ता लिए और भोजन के लिए भीख माँगते पूरब और दक्षिण के सारे क्षेत्रों को देख लेने की उसकी बड़ी साध थी। मैंने भी उसको कुछ भिक्षा दी। खुश होकर उसने एक छोटी तामिल भाषा की किताब दिखाई। उसके पन्ने बहुत ही पुराने होने के कारण पीले पड़ गये थे। मालूम होता था कि वह एक सौ वर्ष की पुरानी होगी। उसमें विचित्र लकड़ी के ठप्पे भरे पड़े थे। धीरे धीरे सावधानी के साथ उसने दो तसवीरें निकाल कर मुझे दे दीं।

मैं उसको पंडित साधु कह कर पुकारूँगा। वह बहुत ही दिलचस्प आदमी था। एक दिन सुबह की बात है। मैं रेत पर बैठकर उमर खय्याम के ग्रंथ के सुन्दर पन्ने उलट रहा था। हमेशा ही उनकी रुबाइयाँ मेरे दिल को मोह लेती हैं। पर जिस दिन से एक नौजवान फारसी लेखक ने उनके गूढ़ार्थ से मुझे वाकिफ करा दिया था तभी से उस अमूल्य ग्रंथ की रुबाइयों की मादक मदिरा को ढालते ढालते मेरा जी अब तक नहीं अघाया है। इस मनोहारिणी रचना के नशे में जब मैं गोता लगाता हूँ तो मुझे दुनिया का फिर होश कहाँ! शायद यही वजह थी कि बालू पर चलकर मेरी ही ओर जो व्यक्ति आ रहा था उसका मुझको कुछ भी ख्याल नहीं रहा। जब मैंने उस किताब

की अमृतमय पंक्तियों से आँखें उठायीं तब कहीं मुझे पता चला कि एक आकस्मिक आगन्तुक मेरे निकट ही पलथी मारे बैठा है।

वह गेरुआ वस्त्र पहने हुए था। जमीन पर उसने अपना दंड रख दिया। उसके पास एक छोटा बंडल रक्खा था। उस बंडल में से कुछ किताबों के कोने झाँकते हुए मुझे दिखायी दिये।

बहुत अच्छी अँग्रेज़ी में अपना परिचय देते हुए आगन्तुक महाशय ने कहा—"क्षमा कीजियेगा। मैं भी आपके साहित्य का एक प्रेमी हूँ।" उन्होंने बंडल खोलते खोलते कहा—"बुरा न मानिये, आपसे बात-चीत किये बिना मुझसे रहा नहीं गया।"

मुस्कराते हुए मैं बोला—"बुरा मानूँगा? कभी नहीं।"

"आप एक यात्री हैं?"

"कोरा यात्री ही तो नहीं हूँ।"

हठपूर्वक उन्होंने कहा—"पर आप इस मुल्क में बहुत दिन नहीं रहे हैं।"

मैंने उनकी बात मान ली।

उन्होंने अपना बंडल खोल कर कपड़े की जिल्द वाली तीन किताबें दिखाईं। उनके कोने फटे थे, जिल्द धुँधली थी। बंडल में कुछ परचे भी लपेटे हुए रखे थे। कुछ सादा काग़ज़ भी साथ था।

उन्होंने कहा—"देखिये साहब, यह 'मेकाले के लेख' हैं। कैसी ऊँची श्रेणी की शैली है। बड़े ही बुद्धिशाली मालूम होते हैं; पर कैसे 'जड़वादी' हैं!"

मैंने सोचा कि अन्त में मैं एक नौसिखिया साहित्य समालोचक की सन्निधि में पहुँच गया।

"यह चार्ल्स डिकेन्स की 'दो शहरों की कहानी' है। कैसी उत्तम भावना है, आँखों में आँसू भर देने वाली कैसी करुणा है!"

इसके बाद उस आदमी ने जल्दी अपनी इस निधि की गठरी बाँध ली और फिर मुझसे कहने लगा :

"यदि गुस्ताखी माफ हो, मैं उस पुस्तक का नाम जान सकता हूँ जो आपके हाथ में है ?"

"यह तो खय्याम की एक किताब है।"

"मिस्टर खय्याम ? मैंने तो उनके बारे में नहीं सुना। क्या वे आप के यहाँ के उपन्यास-लेखकों में एक हैं ?"

उनका प्रश्न सुन कर मुझे हँसी आ गई।

"नहीं वे एक कवि हैं।"

फिर थोड़ी देर तक हम दोनों मौन रहे।

मैं बोल उठा—"आपकी उत्सुकता बहुत ही अधिक है। क्या आप कुछ भिक्षा चाहते हैं ?

उन्होंने धीरे धीरे जवाब दिया—"मैं पैसे का भूखा नहीं हूँ। मेरी वास्तविक उम्मीद, मेरी असली इच्छा है कि आप से मुझे एक किताब मिल जाय। देखते नहीं मेरे सिर पर पढ़ने की धुन सवार है।"

"अच्छा, आपको एक किताब ज़रूर मिल जायगी। जब मैं बँगले पर लौटूँगा आप मेरे साथ हो लेना और विक्टोरियन युग की कोई न कोई ऐसी किताब आपको मिल ही जायगी जिसको पढ़ कर आप की तबियत फड़क उठेगी।"

"आप का बड़ा ही एहसानमंद हूँ।"

"एक ज़रा और ठहरिए। किताब देने से पहले मैं भी आप से कुछ जानना चाहता हूँ। आपकी गठरी में वह तीसरी पुस्तक कौन सी है ?"

"वह कोई ऐसी चीज़ नहीं है जिसमें आपका दिल लगे।"

"हो सकता है, पर मैं उसका नाम जानना चाहता हूँ।"

"वह बतलाने के लायक नहीं है।"

"क्या आप अब भी मुझसे किताब पाने की आशा रखते हैं?"

आगन्तुक कुछ डर गये। बोले :

"आप मुझे मजबूर करते हैं इसलिये बतलाना पड़ता है। यह एक हिन्दू समालोचक की लिखी किताब है। नाम है 'धनलिप्सा और जड़ अनात्मवाद: पश्चिम की एक झाँकी'।"

मैं ऊपर से कुछ चकित हुआ सा दिखलायी पड़ा।

मैं बोला—"ओफ! आप ऐसे साहित्य के प्रेमी हैं?"

वे गिड़गिड़ाने लगे और दीन स्वर में बोले—"शहर के एक रईस ने यह किताब दी है।"

"जरा मैं भी तो देखूँ।"

इस पुरानी जिल्द के पन्ने मैंने उलटे और अध्यायों के नाम पढ़े। कहीं कहीं एक दो पन्ने भी पढ़ लिये। किसी बंगाली बाबू ने यह किताब एक निंदात्मक शैली में लिखी थी और कलकत्ते में शायद लेखक के ही पैसे से इसका प्रकाशन हुआ था। उनके नाम के पीछे कई हरफ़ वाली उपाधि थी। उसी के बूते पर, विषय का प्रत्यक्ष ज्ञान रखे बग़ैर ही इस लेखक ने यूरोप और अमेरिका के ऐसे ऐसे चित्र खींचे थे जिनको पढ़ कर भ्रम होता था कि ये देश एक नये प्रकार के नरक हैं, या वे यंत्रणा और अंधकार से भरे हुए हैं अथवा ये देश ऐसे लोगों से आबाद हैं जिनमें एक ओर तो पीड़ित और सताये हुए मज़दूर और दूसरी ओर बेहयाई के तुच्छ विलास—प्रमोद में डूबे हुए आरामतलब और धन-लोलुप हैं।

कुछ भी टीका-टिप्पणी के बिना मैंने पुस्तक लौटा दी। उन्होंने उसको जल्दी के साथ बंडल में रख लिया और अपने परचे मुझे दिखाने लगे।

उन्होंने ने मुझ से कहा—"यह एक भारतीय साधु की संक्षिप्त जीवनी है पर यह बँगला में छपी है।"

मैंने उनसे पूछा—"अच्छा बताइये तो सही इस 'धनलिप्सा' वाली किताब के विचारों से आप सहमत हैं ?"

"हाँ, एक हद तक। मेरी इच्छा है कि एक दिन मैं पश्चिम की यात्रा करूँ। तब सारी बातें अपनी आँखों से देख लूँगा।"

"आप वहाँ पर क्या करेंगे ?"

वहाँ की जनता के अज्ञान को दूर करने, उनके हृदयों को ज्ञान के आलोक से चमकाने के लिए मैं व्याख्यान दूँगा। महापुरुष स्वामी विवेकानन्द जी ने आपके शहरों में जादू फेरने वाले व्याख्यान सुनाये नहीं थे! मैं भी उन्हीं का अनुसरण करूँगा। बदकिस्मती है कि विवेकानन्द जी इतनी छोटी उम्र में स्वर्गवासी हो गये। उनके साथ ही कैसी प्रभावोत्पादक भाषा चली गयी! हाय!"

मैंने कहा—"वास्तव में आप एक विचित्र साधु हैं।"

उन्होंने अपनी तर्जनी नाक पर लगायी और ज्ञानी बनकर कहने लगे :

"वह विश्वात्मा नटवर रंग-स्थल सजाता है। आप के विश्व प्रसिद्ध शेक्सपियर की अमर रचनाओं में प्रवेश तथा प्रस्थान करने वाले नाटकीय पात्रों के सिवा हम हैं ही कौन!"

× × ×

मुझे निश्चय हो गया था कि भारतवर्ष के महात्माओं में अनेक प्रकार के अजीब लोग शामिल हैं। बहुतेरे तो प्रायः अच्छे और सीधे होते हैं, पर ज्ञान की दृष्टि से वे बहुत ही कोरे उतरते हैं। अन्य लोग या तो जीवन से तङ्ग आये हुए या आरामतलब आदमी निकलते हैं। इनमें से एक ने मेरे निकट पहुँच कर बख्शीश माँगी। उसके बालों की जटायें बन गयी थीं और वह बदन पर भस्म रमाए हुए था। उसके बदमाशों के से चेहरे को देख कर मुझे घृणा पैदा हुई। मैंने उसकी माँग इसी विचार से पूरी नहीं की कि देखूँ क्या नतीजा निकलता है। प्रतिरोध से उसकी ज़िद और भी बढ़ी।

अन्त को उसने एक तजवीज़ सोची। उसने मुझको अपनी तुलसी की माला बेचने की बात छेड़ दी। माला का उसने जो दाम बताया उससे मालूम होता था कि उसकी दृष्टि में वह रद्दी माला बहुत महत्त्व रखती थी। मैंने साफ़ इनकार किया और उससे हट जाने के लिए कहा।

इनसे कुछ कम वे लोग हैं जो खुले आम अपने बदन पर जुल्म करने की बेवकूफ़ी करते हैं। कोई तो तब तक अपना हाथ आसमान में उठाए रखते हैं जब तक कि उनके नख एक हाथ लम्बे न हो जाँय। दूसरे वे हैं जो बरसों तक एक ही पाँव पर खड़े रहते हैं। इन दोनों प्रकार के लोगों को इन जुगुप्सा-जनक प्रदर्शनों से क्या हासिल होता होगा कुछ समझ में नहीं आता। हाँ, उनके भिक्षापात्र में यदि कुछ पैसे इकट्ठे हो तो हों। इससे बढ़ कर उनको और क्या मिलता होगा यह कहना कठिन है।

बहुत ही कम तादाद में वे लोग होते हैं, जो खुले आम झाड़-फूँक करते हैं और मूठ चलाते हैं। ये लोग प्रायः गाँवों में रहा करते हैं। चन्द पैसों के लिए वे किसी के शत्रु को चोट पहुँचाते हैं, अनचाही बहू को इस दुनिया से ही अलग कर देते हैं, किसी के प्रतिद्वन्दी को अजीब बीमारी का शिकार बना कर उसके मार्ग को उसकी लालसाओं की पूर्ति के लिए एकदम सीधा बना देते हैं। इन कुत्सित ओझाओं के बारे में बहुत ही भयानक और आश्चर्यजनक कहानियाँ सुनने में आती हैं। ऐसे लोग भी अपने को योगी बताने में अपना बड़प्पन मानते हैं।

बाकी रही कुछ इने गिने सभ्य संस्कृत महात्माओं की बात। वे वर्षों तक अपनी इच्छा से चित्त को व्यग्र करने वाली एक कठिन जिज्ञासा के पीछे पड़ जाते हैं और संगठित मानव समाज से अपने को बाह्य समझने लगते हैं। इसी कारण से वे असीम कठिनाइयों का सहर्ष सामना करते हुए सत्य के अन्वेषक बनते हैं। उनमें उचित या अनुचित चाहे जो भी हो एक प्रेरणा, एक स्वाभाविक विश्वास है जो उनको दृढ़ता के साथ बता देता है कि सत्य की प्राप्ति होने पर वे अमर आनन्द के भागी बनेंगे। हिन्दुस्तानी जिस पुरानी

मृतप्राय लोक के अनुसार धार्मिक और संसार से मुँह मोड़ने वाली पद्धति से इस खोज में लग जाते हैं उसका चाहे हम विरोध भले ही करें पर जिस प्रेरणा के वश होकर वे वैसा करते हैं उसकी ओर हम अपनी उँगली शायद ही उठा सकेंगे।

पश्चिम का कोई भी साधारण व्यक्ति ऐसी खोज के लिए समय ही नहीं पाता। इन बातों के बारे में पाश्चात्य देशों में जो उदासीनता फैली हुई है उसकी छत्र-छाया को स्वीकार करने में वह बड़ी सुविधा से दलीलें पेश कर सकता है। वह खूब जानता है कि यदि वह भूल रहा है तो उस भूल में एक महान भूखंड के सारे निवासी उसी के साथ हैं। यह शक्की ज़माना ऐसी चीज़ों के पीछे बड़ी व्यग्रता के साथ अपनी सारी ताक़त को खर्च कर रहा है जो एक क्षण भर के उत्तम विचार के सामने बहुत ही नाचीज़ ठहरेंगे। फलतः सत्य की जिज्ञासा को वह किसी काम की नहीं समझता। न मालूम क्योंकर हमें भूल कर भी यह भान नहीं होता कि वे लोग जिन्होंने आज अपनी सारी जिन्दगी जीवन का सच्चा मर्म जानने के पीछे दिल व जान से बाज़ी लगायी है, शायद वे ही लोग, उन लोगों की अपेक्षा जिन्होंने कितनी ही संसारी चीज़ों के पीछे अपनी ताक़त लगाकर सत्य की खोज करने में शायद ही मन दिया हो इस विनश्वर संसार की समस्याओं के बारे में भी अधिक सच्चे विचार इख्तियार कर सकते हैं।

एक बार एक पश्चिम का निवासी मुझसे कुछ भिन्न ही प्रयोजन रखकर पंजाब आया था। पर वहाँ कुछ ऐसे योगियों से उसकी भेंट हुई थी कि जिसके कारण वह एक ऐसे मार्ग पर चलने लगा कि अन्त को उसे अपने निर्दिष्ट प्रयोजन को भुलाने की भी नौबत आ गयी। शाह सिकन्दर अपने राज्य की सीमा को बेहद बढ़ाने की और अनेक राज्यों को अपने अधिकार में कर लेने की लालसा रखते थे। वह एक सिपाही होकर आये थे पर प्रतीत होने लगा था कि वे शायद एक दार्शनिक होकर अपने जीवन को समाप्त करेंगे।

सिकन्दर शाह जब अपने रथ को हिमावृत पर्वत प्रदेशों और सूखे रेगि-

स्तानों से लेकर घर की ओर चलाने लगे तब उनके मन में कौन कौन से विचार दौड़े होंगे यह बात बार बार मेरे दिमाग़ में उठी है। यह सोचना कोई कठिन बात नहीं है कि जिन ऋषि-मुनियों का जादू उन पर फिर गया था, जिन योगिवरों से बहुत ही उत्सुकता के साथ दर्शन के गूढ़ रहस्यों के विषय में उन्होंने पूछ-ताछ की थी, उन ऋषि-मुनियों के प्रभाव ने मेसिडोनिया के उस बादशाह के मन पर ज़रूर असर डाला होगा, और यदि वे उन्हीं योगियों के बीच में वे और कुछ दिन रह पाते तो ज़रूर अपनी नई नीतियों से उन्होंने पश्चिम को चकित कर दिया होता।

हिन्दुस्तान में जो कुछ आदर्शवाद और आध्यात्मिकता बाकी रह गई है उसकी ज्योति को अपने में प्रज्वलित रखने वाले कुछ महात्मा अब भी देखे जा सकते हैं। हो सकता है कि नामधारी योगियों की तादाद कहीं अधिक हो। यदि ऐसा ही हो तो इसका कारण हमेशा अवनति की ओर ले चलने वाले समय के अवश्यम्भावी फेर की महिमा ही है। इसी से हमको कभी भी बहुत ही उज्ज्वल तारों के समान चमकने वाले सच्चे योगिवरों की उपस्थिति की बात नहीं भूलना चाहिए।

हमको कभी नहीं भूलना चाहिए कि इसी कारण और उज्ज्वल होकर चमकने वाले योगिवर हिन्दुस्तान में अब भी मौजूद हैं। योगियों में इतने भिन्न प्रकार के लोग हैं कि किसको भला कहें और किसको बुरा, यह बड़ी ही कठिन बात हो जाती है। ऐसी सूरत में चंद योगियों की बात से सारे योगियों को स्तुत्य या निंद्य समझ बैठना मूर्खता के सिवा और क्या होगा? मैं उन जोशीले नौजवानों की बातों को अच्छी तरह समझ सकता हूँ जो आवेश में आकर कह बैठते हैं कि इन दूसरों के खून को चूसने वाले योगियों का एक-दम अन्त कर देने से भारत का कल्याण ज़रूर होगा। साथ ही मैं उन साधु-सज्जनों की, जो उम्र में कुछ बढ़े हुए और अधिक प्रशांत शहरों में रहते हैं, बात भी खूब समझ सकता हूँ जिनका यह विचार है कि यदि हिंदू समाज में उसके साधु-संतों के लिए जगह न रही तो फिर उसके नेस्त-नाबूद होने में देर ही क्या लगेगी?

यह प्रश्न भारत के लिए और कई दृष्टियों से महत्त्वपूर्ण है। आर्थिक कठिनाइयों के कारण भारत में सभी चीज़ों का मूल्य बढ़ता जा रहा है। देश की आर्थिक स्थिति में महात्मा लोग किसी काम के नहीं दीखते हैं। अशिक्षित और अपढ़ व्यक्ति साधुओं का वेष पहने झुंड-के-झुंड गाँवों का भ्रमण करते और कहीं कहीं शहरों के धार्मिक मेलाओं में भी दर्शन देते रहते हैं। वे तो बच्चों के लिए हौआ बन जाते हैं। प्रायः ये सरकश और बदमाश होते हैं और लोगों को भीख के लिए तंग कर देते हैं।

वे समाज के लिए बोझ मात्र हैं क्योंकि उनका पोषण करने के बदले उनसे समाज को कुछ भी प्रतिफल नहीं मिलता। लेकिन ऐसे भी कुछ लोग अवश्य हैं जिन्होंने ईश्वर की और सत्य की खोज के पीछे अच्छे अच्छे ओहदों और जायदादों को भी लात मार दी हैं। ऐसे लोग कहीं भी जायें, उनकी संगति से लोग तर जाते हैं। उनकी हमेशा यह चेष्टा रहती है कि अपने पास आये हुए व्यक्तियों को पार लगा दें। यदि सच्चरित्रता का कोई मूल्य हो तो उनकी अपने और दूसरों के उद्धार करने की चेष्टा, समाज से जो रूखी-सूखी उनको मिल जाती है, उसके बराबर मूल्य अवश्य रखती है।

गरज़ यह है कि यदि किसी के चरित्र का सच्चा अंदाज़ा लगाना है तो चाहे वह धूर्त धर्मध्वजी हो या घूमने वाला महात्मा, उसके बाह्य रूप को एकदम ताक़ पर रख कर विचारना पड़ेगा।

× × ×

रात का काला पर्दा पृथ्वी की विशाल भुजाओं पर पड़ गया और मैं पुराने कलकत्ते की भीड़ से भरी तंग गलियों में अपनी राह खोज रहा था।

मेरे मन पर सबेरे की विषाद भरी घटना की छाया अब भी पड़ी हुई थी। हम जिस गाड़ी से हावड़ा स्टेशन पर पहुँचे थे उसका इंजन अपने साथ एक खौफनाक बोझ ले आया था। रेल को कई मील तक एक घने जंगल से होकर जाना पड़ता है। उस जंगल में चीते आदि मस्त घूमते रहते हैं। रात के अंधेरे में इंजन से एक बनैले जानवर ने टक्कर खाई थी। तुरन्त उसके

प्राण-पखेरू उड़ गये। इंजन उस जानवर की छिन्न-भिन्न लाश को स्टेशन पर ले आया था। उसका कटा हुआ मांस इंजन के लोहमय ढाँचे से मुश्किल से अलग होता था।

लेकिन कलकत्ता पहुँचाने वाली गाड़ी में अपनी खोज के लिए उपयोगी एक और सूत्र मुझे मिल गया। हिन्दुस्तान की कई खास लाइनों की गाड़ियों की भाँति वह भी खचाखच भरी हुई थी। जिस डिब्बे में मैंने खुशकिस्मती से एक सीट अपने लिये रिजर्व करा ली थी उसमें कई प्रकार के लोग थे। वे लोग अपने कारोबार की बाबत इतने खुले तौर पर बोल रहे थे कि जल्द ही मुझे मालूम हो गया कि वे कौन हैं। उनमें एक शरीफ मुसलमान था। वह एक लंबा और काला रेशम का कोट पहने हुए था जिसमें गले के पास एक बटन लगा था। उसके सिर पर एक बेल-बूटे वाली काली टोपी थी, सफेद ढीला पायजामा और पाँवों में लाल और हरा कामदार जूता उसकी पोशाक की शोभा बढ़ा रहे थे। पश्चिम भारत का एक मराठा और अपनी बिरादरी के समान ही लेन-देन का कारोबार करने वाला, सुनहली पगड़ी पहने हुए, एक मारवाड़ी महाजन, दक्षिण के एक मोटे तगड़े वकील साहब थे ही हमारे डिब्बे की शरण आये थे। वे सब-के-सब धनी थे क्योंकि उनके नौकर बार बार, जहाँ कहीं गाड़ी रुक जाती, थर्ड क्लास से झपट कर अपने मालिकों को आराम पहुँचाते थे।

मुसलमान ने एक बार मेरी ओर ताका, फिर आँखें बन्द करके निद्रा की शून्यता में लीन हो गया। मराठे ने मारवाड़ी के साथ बात करने में अपने को लगाया। वकील साहब ने सबसे अन्त में गाड़ी में प्रवेश किया था। उनको अभी आराम के साथ बैठना था।

मेरा दिल बात-चीत के लिए लालायित हो रहा था, लेकिन मुझे ऐसा कोई भी नहीं मिला जिससे मैं बात करता। पूरब और पश्चिम के बीच में जो एक अदृश्य यवनिका है शायद उसी के कारण मैं सबों से छँटा हुआ मालूम होता था। इसलिए जब उस ब्राह्मण वकील ने एक किताब निकाली जिसका नाम
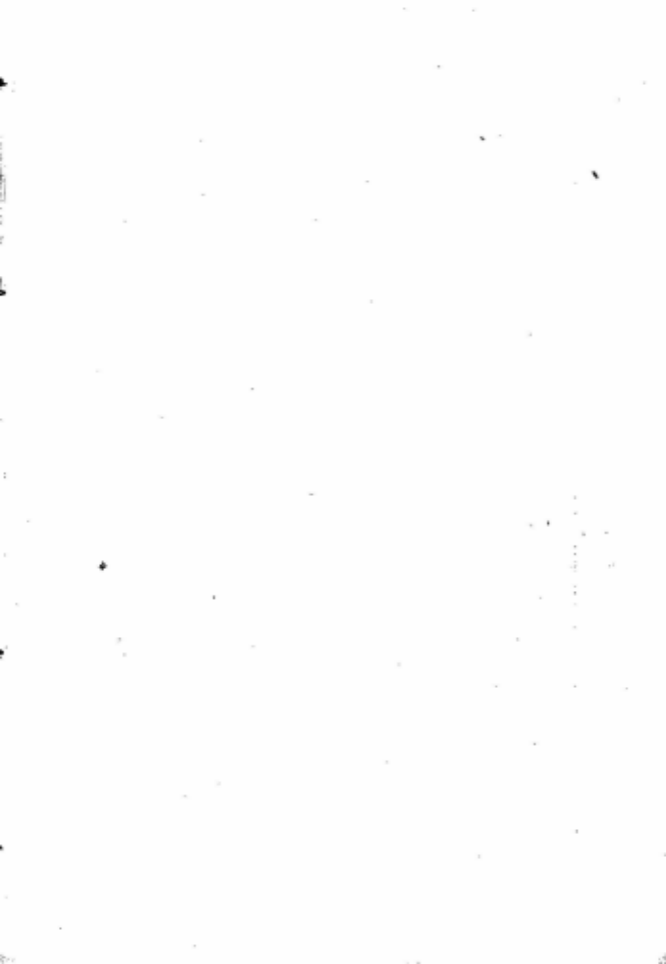
मास्टर महाशय

'रामकृष्ण की जीवनी' अँग्रेजी में इतने मोटे अक्षरों में छपा हुआ था कि आँख को दूर से भी दिखलाई पड़ा, तो मेरी खुशी का ठिकाना नहीं रहा। मैंने उनको बातों में लगा लिया। मुझे याद आई कि किसी ने मुझसे कहा था कि रामकृष्णदेव आध्यात्मिक गुरुओं में, ऋषियों में, आखिरी थे। इसी विषय पर मैं अपने साथी से बातें करने लगा और देखा कि वे भी कुछ बात-चीत के लिए उत्सुक थे। हम दार्शनिक वाद-विवाद की एकदम ऊँचाई तक पहुँचने पर फिर भारतीय जीवन के और निकटतर साधारण पहलुओं पर भी विचार करने लग गये।

जब कभी वे ऋषियों का नाम लेते थे, भक्ति और श्रद्धा के कारण उनका गला भर आता और उनकी आँखें चमक उठतीं। रामकृष्णदेव के प्रति उनकी सच्ची श्रद्धा और भक्ति में तनिक भी शंका नहीं हो सकती। दो ही घंटे में मुझे मालूम हो गया कि उनके गुरुदेव, रामकृष्णदेव के बचे हुए निकटतम तीन शिष्यों में एक हैं। उनकी उम्र करीब अस्सी वर्ष की होगी और वे अन्य साधुओं की भाँति किसी निर्जन स्थान में नहीं बल्कि कलकत्ते के हिंदुओं की बस्ती के बीच में ही रहते हैं।

मैंने उनका पता-ठिकाना पूछा तो सहज ही मिल गया।

वकील साहब ने कहा—"उनसे परिचय पाने की तुम्हारी पक्की चाह है तो यही काफ़ी है, और किसी प्रकार के परिचय-पत्र आदि की कोई जरूरत नहीं है।"

इस प्रकार मैं कलकत्ता पहुँच गया और रामकृष्णदेव के बूढ़े शिष्य मास्टर महाशय की खोज में चल पड़ा। सड़क से लगे हुए एक खुले आँगन में से होकर मैं एक ऊँची सोपान-पंक्ति पर पहुँचा। उसको तय कर एक विशाल पर अस्तव्यस्त पुराने मकान में प्रवेश किया। थोड़ी देर में मैंने अपने को एक छोटे कमरे में पाया। उसका एक दरवाजा खुली छत की ओर था। कमरे में दो दीवारों से लगे हुए कुछ सोफे रक्खे हुए थे।

लैम्प और पुस्तकों तथा काग़ज़ों को छोड़ उस कमरे में और कोई सामान

न था। किसी युवक ने मुझसे थोड़ी देर तक मास्टर महाशय के लिए इंतज़ार करने के लिए कहा क्योंकि उस समय वे नीचे की मंज़िल में थे।

दस मिनट बीते। मैंने किसी के ऊपर चलने की आहट पाई। तुरन्त मुझ में एक अजीब प्रकार की सनसनी फैली। अचानक मेरे मन में यह विचार दौड़ गया कि आने वाले व्यक्ति ने अपने सारे विचार मुझ पर लगा दिए हैं। आहट और भी समीप आती जाती थी। जब आखिर को—क्योंकि वे बहुत ही धीमी चाल से चलते थे—उन्होंने कमरे में प्रवेश किया तो उनको अपना परिचय देने की और कोई ज़रूरत नहीं हुई। मालूम होता था कि अंजील में वर्णित कोई पुराने पूज्य ऋषि फिर अतीत की गोद से उठ कर मुझे अनुगृहीत करने के लिए स्थूल शरीर धारण करके आ गये हैं। उनका सिर बालों से रहित, सफ़ेद, और नाभि तक लटकने वाली लम्बी दाढ़ी, सफेद मूँछें, गंभीर चितवन तथा विशाल और मननशील नेत्र थे। जिनका ऐसा प्रभावशाली दर्शन था, जिनकी भुजाएँ करीब अस्सी वर्ष के सांसारिक जीवन के भार से कुछ झुक चली थीं वे दिव्य पुरुष मास्टर महाशय के सिवा और कौन हो सकते थे।

उन्होंने चौकी पर अपना आसन ग्रहण किया और मेरी ओर ताकने लगे। उनकी उस गंभीर और संयमशील उपस्थिति में बारंबार मेरी आत्मा को आवृत करने वाली ओछी बातें करने की इच्छा की. कोई भी हँसी मज़ाक की, किसी कठोर शक्कीपन और निराशा की बातों की, छाया तक नहीं हो सकती थी। उनका चरित्र और ईश्वर पर पूर्ण श्रद्धा, आचरण और शील की उत्तमता, उनके चेहरे पर साफ़ अंकित थीं।

उन्होंने अच्छी अंग्रेजी में साफ़ उच्चारण के साथ मुझसे कहा—"आप का यहाँ स्वागत है।"

उन्होंने मुझे और भी निकट बुला लिया और अपनी ही चौकी पर बैठ जाने को कहा। फिर कुछ मिनट तक वे मेरे हाथ अपने हाथों में लिये रहे। मैंने अपना परिचय देकर अपनी इस यात्रा का उद्देश उन पर प्रकट करना

उचित समझा। जब मेरा कहना समाप्त हुआ उन्होंने दया दिखाते हुए मेरे हाथ कुछ दाख दिये और कहा :

"एक अप्राकृतिक शक्ति ने तुम्हें भारत में आने के लिए प्रोत्साहित किया है और वही तुम्हें हमारे देश के साधु-संतों से मिला रही है। भावी अवश्य प्रकट करेगी कि उसके इस प्रकार के व्यवहार का एक सचा, पर गूढ़ आशय है। शांति के साथ उसकी प्रतीक्षा में रहो।"

"अपने गुरु श्री रामकृष्ण के बारे में कुछ बतलाइयेगा ?"

"आपने ऐसी बात छेड़ दी है जो मुझे जान से भी प्यारी है। उनका निधन हुए अब कोई पचास वर्ष बीत गये, पर उनकी वह पवित्र स्मृति मुझसे कभी भी बिछुड़ नहीं सकती। हमेशा वह मेरे हृदय में हरी-भरी रहती है। अपनी आयु के सत्ताईसवें साल में मेरी उनसे भेंट हुई थी। उनके जीवन के अंतिम पाँच वर्ष मैं सदा उनके संग रहता था। इसके परिणामस्वरूप मेरा जीवन ही बदल गया। मैंने अब मानो एक दूसरा ही जन्म लिया था। जीवन सम्बन्धी मेरे जो विचार थे उन्होंने एकदम पलटा खाया। इन पुरुषोत्तम रामकृष्णदेव का कुछ ऐसा ही प्रभाव था। जो कोई उनको देखने आता था उस पर उनकी आध्यात्मिक जादू फिर ही जाती थी। वास्तव में यों कहिये कि वे उन पर अपनी मोहिनी फूँक देते थे। उनको देखते ही लोग मंत्रमुग्ध हो जाते थे। नास्तिक लोग जो उनकी हँसी उड़ाने आते थे वे भी उनके सामने गूँगे बन जाते थे।"

मुझे कुछ हैरान होना पड़ा। मैं बीच में ही बोल उठा—"ऐसे लोगों को आध्यात्मिकता के प्रति—जिसमें उनका रत्ती भर भी विश्वास न हो—श्रद्धा क्योंकर हो सकती है ?

एक मंद मुसकान उनके ओठों पर खिल गई। बोले—"दो आदमियों ने लाल मिर्चा खा लिया जिनमें से एक को तो उसका नाम ही मालूम न हो, शायद उसने ऐसी चीज़ ही देखी ही न हो, दूसरा और उस चीज़ को खूब ही जानता हो; क्या दोनों को एक ही प्रकार का स्वाद नहीं मिलेगा ? क्यों ?

दोनों की जीभ जल नहीं उठेगी ? उसी तरह रामकृष्णदेव की आध्यात्मिकता के तेजोमय प्रभाव के आस्वाद से नास्तिक लोग भी वंचित नहीं रहे।"

"तो वे वास्तव में एक आध्यात्मिक पुरुष, पुरुषोत्तम थे ?"

"जी हाँ मेरे विचार में वे इससे भी कुछ अधिक ही थे। रामकृष्णदेव एक सीधे-सादे व्यक्ति थे; वे निरे अपढ़ और अशिक्षित रहे। वे इतने अपढ़ थे कि अपना नाम भी लिख नहीं सकते थे, चिट्ठी-पत्री की फिर बात ही क्या ! देखने में उनका जीवन बड़ी सादगी का था और उनके रूप-रंग से नम्रता टपकी पड़ती थी। तिस पर भी उन्होंने अपने समकालीन बड़े-से-बड़े शिक्षित और बहुत ही सभ्य और संस्कृत व्यक्तियों पर अपना असर जमा दिया। उनकी आध्यात्मिकता इतनी प्रस्फुटित थी कि सभी को उसका प्रत्यक्ष अनुभव हो सकता था। उनके सामने सब किसी को, चाहे वे कैसे भी शिक्षित और पढ़े हुए हों, सिर झुकाना ही पड़ता था। उन्होंने हमें सिखाया है कि आध्यात्मिकता की तुलना में गर्व, कामिनी-कांचन, धन-दौलत आदि सब कुछ बहुत ही तुच्छ और विनश्वर हैं, वे सब धोखे में डालने वाले आभास मात्र हैं। वे कैसे अच्छे निराले दिन थे ! प्रायः वे ऐसी समाधियों में लीन हो जाया करते थे। जो साफ़ साफ़ इतनी दैवी मालूम होती थीं कि हमें बोध होने लगता था कि वे आदमी नहीं देवता थे। आश्चर्य की बात यह है कि रामकृष्णदेव अपने एक स्पर्श से उसी स्थिति को अपने शिष्यों में भी पैदा कर सकते थे। इस अजीब हालत में उनके शिष्य अपरोक्ष अनुभूति से ईश्वर के अतुल गंभीर रहस्यों का प्रत्यक्ष कर सकते थे। ख़ैर, मैं आपको बता तो दूँ कि उनका मुझ पर प्रभाव किस प्रकार से पड़ा।

"मुझे पश्चिमी ढंग की शिक्षा मिली है। मैं अपने बुद्धि-बल के घमंड में चूर था। समय समय पर मैं कलकत्ते के कालेजों में अँग्रेज़ी साहित्य, इतिहास, अर्थ शास्त्र आदि का प्रोफ़ेसर रह चुका था। रामकृष्णदेव कलकत्ते से कुछ दूर पर दक्षिणेश्वर में रहा करते थे। एक चिर-स्मरणीय वासंतिक प्रभात के समय मैंने उनसे भेंट की और उनके निजी अनुभव-जन्य आध्यात्मिक भावों

माता शारदा देवी

का सरल बयान सुन पाया। मैंने उनसे वाद-विवाद करने की भी कुछ चेष्टा की लेकिन उनकी उस दिव्य सन्निधि में, जिसका मैं शब्दों में बयान कर ही नहीं सकता, मेरा मुँह मानो बंद ही रह गया। बारंबार मैंने उनका दर्शन किया, क्योंकि उस गरीब, नम्र, पर दिव्य महानुभाव के दर्शन के लिए मैं न जाने क्यों विवश हो जाता था। आखिर को, एक दिन रामकृष्णदेव ने हँसी में कह दिया—'चार बजे के समय एक मोर को अफ़ीम की एक गोली खिलायी गयी। दूसरे दिन वह ऐन समय पर फिर आ पहुँचा क्योंकि वह अफ़ीम के प्रभाव में अपने को विवश पाकर और एक गोली के लिए लालायित होने लगा था।"

"उनका कहना बिलकुल ही ठीक था। उनकी सन्निधि में मुझे जो आनंद का स्वाद चखने को मिलता था वह कभी कहीं भी मुझे प्राप्त नहीं हुआ था। तब यदि मैं बारम्बार उनके दर्शनों को जाने लगा तो इसमें आश्चर्य ही क्या था? धीरे-धीरे मैं उनके अन्तरंग चेलों में एक हो गया। एक दिन गुरुदेव ने कहा :

'आँखों के इशारों, ललाट और चेहरे से तुम योगी मालूम होते हो, इसलिये तुम अपना सारा काम करते रहो किन्तु हमेशा मन ईश्वर पर लगाये रक्खो। पत्नी, बाल-बच्चे, माँ-बाप सबके साथ रहो और उन सबकी सेवा-शुश्रूषा करते रहो, मानो वे तुम्हारे अपने ही हैं। देखो, कछुवी क्या करती है। वह तालाब में हर कहीं तैरती रहती है पर उसका मन तो तीर पर के उसके अंडों पर लगा रहता है। यों ही तुम भी अपने सारे दुनियावी काम करते रहो किन्तु मन को ईश्वर पर लगाये रक्खो।"

"इसी कारण से जब हमारे गुरुदेव का निर्वाण हो गया और अन्यान्य चेलों ने स्वयं ही दुनिया से विरक्त होकर सन्यास की दीक्षा ले ली और भारत भर में रामकृष्ण के संदेश को सुनाने का भार अपने कंधों पर ले लिया, मैंने अपनी वृत्ति नहीं छोड़ी और अध्यापकी करते ही रहा। लेकिन इस दुनिया के दाँव-पेच में न आने का मेरा इतना ज़बर्दस्त आग्रह था कि कभी कभी आधी रात के समय अकेले घर से निकलकर-सेनेट हाउस के

सामने खुले बरामदे में शहर के दीन, गृह-विहीन मुहताजों और भिखमंगों में सो जाता था। इससे तत्काल के लिए ही सही, मुझे बोध होने लगता था कि इस दुनिया में कुछ भी धन-दौलत मेरी नहीं है ।

"रामकृष्णदेव तो चले गये, लेकिन भारत के अपने सफ़र के समय तुम ज़रूर देख लोगे कि उनके प्रथम शिष्यों की प्रेरणा से देश भर में सामाजिक, दान-धर्मादिक, वैद्यक और शिक्षा का कैसा कार्य चल रहा है। पर हाय! उन पुराने चेलों में अब कई तो स्वर्गवासी हो चुके हैं। सहज में तुम्हारे देखने में यह बात आही नहीं सकती कि इस अजीव व्यक्ति के कारण कितनों के जीवन में कायापलट हो गया, कितने गिरते से एकदम बच गये। उनका दिव्य संदेश एक व्यक्ति के ज़रिये दूसरे को, और उसके ज़रिये तीसरे को, इसी प्रकार जहाँ तक बन पड़ा फैला दिया गया है। मेरा अहोभाग्य था कि मुझे उनके वचनामृत को, बँगला में कही हुई उनकी बातों को लिपिबद्ध करने का सौभाग्य प्राप्त हुआ। उनकी छपी हुई पोथी बंगाल के घर घर में पहुँच गई है और उसके अनुवाद भारत की अन्य भाषाओं में भी हो गये हैं। अब तो तुम सहज ही में समझ सकते हो कि श्री रामकृष्णदेव का प्रभाव उनके निकटतम शिष्यों की परिधि को लाँघकर कितना व्यापक बन गया है।"

मास्टर महाशय ने अपना लम्बा कथन समाप्त करके मौन धारण किया। मैंने उनके चेहरे की ओर फिर देखा तो उनके चेहरे की आध्यात्मिक रूप-रेखा की ओर मेरा मन आकृष्ट हुआ। फिर भी मेरा मन एशिया माइनर के एक छोटे राज्य के ध्यान में लीन हुआ जहाँ इज़राइल की सन्तान अपने विपत्ति के मारे जीवन से क्षणिक आराम ले लेती थी। मेरी दृष्टि में मास्टर महाशय उन लोगों के बीच में एक धर्म-प्रवर्तक के रूप में दिखाई देने लगे। वे कितने उदात्त और गंभीर थे! उनकी अच्छाई, ईमानदारी, शील, श्रद्धा और भक्ति साफ़ ही उनके चेहरे से झलक रही थीं। उनमें वह आत्माभिमान स्पष्ट ही जागरूक था जो उन लोगों में ही पाया जाता है जिन्होंने अन्तःकरण की आज्ञाओं के एकदम अनुकूल ही अपना जीवन बिताया हो।

मैं गुनगुनाते हुए पूछ बैठा—"मुझे आश्चर्य होता है कि रामकृष्णदेव ने उन व्यक्तियों से क्या कहा होगा। जो श्रद्धा से ही जीवन नहीं बिता सके और अपनी बुद्धि और तर्क को सन्तुष्ट किये बिना नहीं माने।"

"वे उनसे प्रार्थना करने के लिये कहते थे। प्रार्थना में अपूर्व शक्ति है। रामकृष्ण ने स्वयं ही ईश्वर से प्रार्थना की थी कि उनके पास वे दार्शनिक रुख वाले व्यक्तियों को भेजें। इसके कुछ दिन बाद ही उनके पास वे वे लोग इकट्ठे होने लगे जो बाद में उनके शिष्य और भक्त हो गये।"

"यदि किसी ने एक बार भी प्रार्थना न की हो—तब?"

"प्रार्थना अन्तिम उपाय है। मानव के हाथ में इससे बढ़कर दूसरा उपाय नहीं है। जहाँ तर्क से काम नहीं चलता वहाँ प्रार्थना ही मानव का बेड़ा पार लगा सकती है।"

"लेकिन यदि कोई आपके पास आये और कहे कि प्रार्थना उसके दिल को नहीं भाती तो आप ऐसे व्यक्ति को कौन सा उपदेश देंगे?"

"ऐसे व्यक्ति को चाहिये कि वह अपना जीवन उन साधु-सन्तों की सेवा में, उनके संग में, बितावे जिन्होंने सच्ची आध्यात्मिक अनुभूति पा ली हो। बड़े लोगों, पहुँचे हुए साधुओं, के संग में हमारा मन फिर जाता है और दैवी विषयों की ओर प्रवृत्त होने लगता है। उनके संग में सबसे बढ़कर यह लाभ होता है कि हमारे भीतर आध्यात्मिक जीवन की एक प्रबल प्रेरणा पैदा हो जाती है। अतः ऐसे महात्माओं का साहचर्य पहले पहल अत्यंत उपयोगी है। रामकृष्णदेव कहा करते थे कि यही प्रायः आखिरी सीढ़ी भी है।"

हम इस ढंग से पवित्र और उदात्त विषयों पर विचार करते और यह सोचते हुए कि शाश्वत सत्ता में छोड़ और कहीं भी मानव को परा शांति प्राप्त नहीं हो सकती समय बिताने लगे। शाम को कई आगन्तुक मास्टर महाशय के दर्शनों के लिए पधारे; यहाँ तक कि वह छोटी कोठरी मास्टर महाशय के शिष्यों से एकदम भर गयी। उनके शिष्य हर रात को आते और बड़े ध्यान के साथ अपने गुरू के प्रत्येक शब्द को सुनते।

कुछ समय तक मैं भी इन बैठकों में शामिल रहा। हर रात को मैं भी मास्टर महाशय के यहाँ जाने लगा, उनके भक्तिपूर्ण उपदेशों को सुनने के लिए उतना नहीं जितना कि उनकी सन्निधि के आध्यात्मिक आलोक में अपने को तपाने के उद्देश से। उनके चारों ओर कोमलता, सुन्दरता प्रेममय प्रशांति छिटकती रहती थी। उन्होंने अवश्य ही कोई आंतरिक आनंद प्राप्त कर लिया था और उसका प्रसार साफ़ ही अनुभूत होता था। प्रायः मैं उनकी बातों को भूल जाता था किंतु उनका वह दिव्य अनुभव मुझे कभी भी नहीं भूलता है। जिस अज्ञात शक्ति से खिंच कर वे बार बार रामकृष्णदेव से दर्शनों को जाया करते थे उसी आकर्षण से मैं भी मास्टर महाशय की ओर खिंच कर जाने लगा। धीरे धीरे मुझ पर यह बात झलकने लगी कि जब शिष्य ही की मेरे ऊपर इतनी मोहिनी है तो उनके गुरू की कैसी प्रभावोत्पादक मोहिनी रही होगी।

मेरी अंतिम भेंट की वह शाम आ पहुँची। मुझे समय की गति का कुछ भी ख्याल नहीं रहा। आनन्द-विभोर होकर मैं मास्टर महाशय के साथ सोफ़े पर बैठा हुआ था। घंटे बीतते चले जा रहे थे। हमारी आपस की बात-चीत का रुख बदलने वाला सन्नाटा अभी उपस्थित नहीं हुआ था। पर अन्त में वह भी आ गया। मास्टर महाशय मेरा हाथ पकड़ कर मुझे खुली छत पर ले गये। चारों ओर चंद्रमा की धवल चाँदनी छिटकी हुई थी। गोलाकार में गमलों के लम्बे पौधे मुझे साफ़ ही दिखाई दे रहे थे। नीचे कलकत्ते के मकानों से अगणित दीपकों की चमक फूट कर बाहर निकल रही थी !

चन्द्रमा सोलहों कलाओं से परिपूर्ण था। मास्टर महाशय ने निशानाथ के मुख-बिंब की ओर इशारा किया और क्षण भर के लिए मूक प्रार्थना में विलीन रहे। उनके सजग होने तक मैं उन्हीं की बगल में प्रसन्नता से प्रतीक्षा करता रहा। मास्टर महाशय का ध्यान टूटा। घूम कर, मानो, मुझे आशीर्वाद दे रहे थे, हाथ उठा कर मेरे सिर पर फेरा।

इस महान पुरुष के सामने नास्तिक होते हुए भी मैंने माथा टेक दिया। कुछ मिनट तक अटूट प्रशान्ति विराजती रही। वे बड़ी नरमी के साथ बोले :

"मेरा काम पूरा हुआ ही चाहता है। भगवान ने मुझे जिस आदेश के पालन के लिए यह चोला दिया था उसकी पूर्ति हो गई। मेरी महायात्रा के पूर्व यह मेरा अशीर्वाद लो।"*

इसका मेरे ऊपर बड़ा ही अपूर्व प्रभाव पड़ा। नींद का विचार छोड़ कर मैं कलकत्ते की गलियों में घूमने लगा। आखिर एक बड़ी मसजिद से आधी रात की उस गम्भीर प्रशांति में से 'अल्लाहो अकबर' (ईश्वर बड़ा है) की टेर सुनाई पड़ी तो मैं सोचने लगा कि यदि कोई मुझे मेरे बौद्धिक शक्कीपन से विलग कर, सरल विश्वास के शांतिदायी अमृत-सेवन से मेरी आत्मा को भर सकते हैं तो वे निस्संदेह मास्टर महाशय ही हैं।

× × ×

"बहुत ही अच्छा मौका आपने खो दिया। शायद ऐसा ही आपके भाग्य में बदा था। कौन कह सकता है!"

कलकत्ते के एक अस्पताल में डाक्टर बन्दोपाध्याय जी हाउस सर्जन हैं। शहर के नामी सर्जनों में वे गिने जा चुके हैं। अब तक उनके हाथों से करीब छः हजार नश्तर लगाये जा चुके हैं। उनके नाम के पीछे उनकी उपाधियों का एक बड़ा लम्बा तांता लगा हुआ है। उनके साथ मिलकर अपनी सीखी हुई हठयोग की कुछ प्रक्रियाओं की बहुत ही सूक्ष्म परीक्षा करने का मुझे सौभाग्य मिला है। योग-शास्त्र को कार्य-कारण संबंध की भित्ति पर खड़ा कर देने में, उसको हेतुवाद और तर्क की कसौटी पर कस कर परखने में उनकी डाक्टरी की वैज्ञानिक शिक्षा और शरीर-रचना-शास्त्र की उनकी बहुत ही अच्छी जानकारी दोनों से अत्यधिक सहायता प्राप्त हुई। उन्होंने साफ़ शब्दों में मुझसे स्वीकार किया :

"मुझे योगशास्त्र का कुछ भी ज्ञान नहीं है। जो तुम कहते हो वह मेरे लिए एकदम नयी बात है। कुछ दिन पहले कलकत्ते में जो आये थे उन नरसिंह स्वामी को छोड़कर और किसी भी योगी से मेरी भेंट नहीं हुई है।"

---

* थोड़े दिनों बाद ही मुझे उनके स्वर्ग सिधारने की खबर मिली।

तब मैं नरसिंह स्वामी के पता-ठिकाने आदि के बारे में पूछने लगा तो उनसे केवल एक निराशाजनक उत्तर मिला। डाक्टर साहब बोले :

"नरसिंह स्वामी कलकत्ते में पुच्छलतारे के समान चमक उठे। लोगों में सनसनी फैल गई। फिर न जाने वे कहाँ चले गये। मैंने समझ लिया है कि वे अपने एकान्तवास को छोड़कर अचानक कलकत्ते आये थे। इसीलिये वे फिर अपने एकान्तवास में चले गये होंगे।"

"बात क्या हुई थी ? कुछ तो समझाइये।"

"कुछ दिन तक हर कहीं उन्हीं की बात होती रही। कलकत्ता विश्व-विद्यालय के प्रेसिडेंसी कालेज के रसायन शास्त्र विभाग के प्रोफ़ेसर नियोगी जी से उनकी बात लोग जान पाये थे। एक-दो महीने पहले की बात है। डाक्टर नियोगी जी मधुपुर गये थे। वहाँ पर उन्होंने नरसिंह स्वामी को एक भयानक ज़हरीला तेज़ाब चाटते और जलते हुए अंगारों को मुँह में रखते हुए देखा था। डाक्टर के हौसिले बढ़े। किसी प्रकार योगी को कलकत्ते आने पर उन्होंने राज़ी कर लिया। यूनिवर्सिटी ने ही प्रदर्शन का सारा भार ले लिया था। दर्शकों में केवल वैज्ञानिक और डाक्टर ही थे। मुझे भी न्योता दिया गया था। प्रेसिडेंसी कालेज की भौतिक प्रयोगशाला में प्रदर्शन का इन्तज़ाम किया गया था। हम लोगों का एक खासा समालोचकों का गुट था। तुम जानते ही हो धर्म, योग आदि की ओर मैंने बहुत कम ध्यान दिया है क्योंकि अपने पेशे की बातें सीखने में मैं मशगूल रहा हूँ। नरसिंह योगी जी शाला के बीच में खड़े हुए थे। कालेज की प्रयोगशाला से जो ज़हर लाये गये थे उनके हाथों में दिये गये। पहले गंधक के तेज़ाब की बोतल दी गई। उन्होंने कुछ बूँद अपनी हथेली पर डाल लिये और उसे अपनी जीभ से चाट डाला। फिर उनको तेज़ कारबोलिक तेज़ाब दिया गया। उसे भी उन्होंने चाट लिया। खतरनाक ज़हर पोटासियम साइनाइड भी दिया गया। चुपचाप उन्होंने उसे भी निगल लिया और उनका बाल भी बाँका नहीं हुआ। हम सब दंग रह गये, अपनी आँखों का हमें विश्वास नहीं रहा। तब भी हमें इस

बात को झख मारकर मानना ही पड़ा। किसी दूसरे को ज्यादा-से-ज्यादा तीन मिनट में जो मार सकता था उतनी ही मात्रा में पोटासियम साइनाइड निगल कर ये योगी हमारे बीच में मुस्कराते खड़े थे और उनको किसी प्रकार का नुकसान नहीं हुआ।

"उसके बाद एक मोटी काँच की बोतल फोड़ दी गयी और उसका महीन चूर्ण कर दिया गया। नरसिंह स्वामी ने वह चूर्ण भी निगल लिया। वह चूर्ण धीरे धीरे किसी आदमी को मार सकता था। इस अजीब प्रदर्शन के तीन घंटे बाद हमारे एक डाक्टर भाई ने 'यंत्र' के सहारे से उन योगी के पेट के अन्दर की चीजें बाहर निकालीं। सारे ज़हर उसमें ज्यों के त्यों पड़े थे। दूसरे दिन उनके दस्त में काँच का चूर्ण भी पाया गया।

"हमारी जाँच की कसौटी कोई मामूली बात न थी। उसमें किसी को नुक्ताचीनी करने की गुंजायश न थी। गंधक के तेजाब की शक्ति का प्रभाव एक ताँबे के सिक्के पर साफ़ साफ़ देखा गया था। प्रेक्षकों में सर सी० वी० रमन जैसे प्रमुख वैज्ञानिक भी मौजूद थे। रमन साहब ने बताया कि प्रदर्शन आधुनिक विज्ञान को चुनौती दे रहा है। नरसिंह स्वामी जी से जब हम लोगों ने प्रश्न किया कि वे किस शक्ति के बूते पर अपने शरीर के साथ ऐसे ज़ुल्म कर सकते हैं तो उन्होंने बता दिया कि घर लौटते ही वे योग समाधि में लीन हो जाते हैं और तीव्र ध्यान के द्वारा ज़हर के प्रभाव को मिट्टी में मिला देते हैं।" *

"अपने डाक्टरी के ज्ञान के आधार पर आप इन बातों को कुछ न कुछ समझा सकते हैं?"

---

* कुछ समय बाद नरसिंह स्वामी जी फिर एक बार कलकत्ता आये। वहाँ से रंगून और ब्रह्मदेश गये। वहाँ उन्होंने उपरोक्त प्रकार का एक प्रदर्शन दिखाया और कुछ आगन्तुकों के, जिनके आने की उन्हें कोई खबर नहीं थी, आगमन के कारण घर पर पहुँचते ही समाधि में लीन नहीं हो सके। इसका बुरा नतीजा यह निकला कि वे एकबारगी मृत्यु का कौर बन गये।

डाक्टर ने सिर हिला कर कहा—"नहीं, मैं कोई समाधान नहीं दे सकता। मैं खुद ही बहुत हैरान हूँ।"

घर आते ही मैंने संदूक की तलाशी ली और एक छोटी नोटबुक निकाली। इसी में मैंने अडयार नदी के तीर के योगी ब्रह्म के साथ जो मेरी बात-चीत हुई थी उसका ब्यौरा लिख रक्खा था। मैं जल्द पन्ने उलटते गया कि एक जगह नीचे की बातें लिखी हुई मिलीं।

"परम अभ्यास को जो प्राप्त कर चुका हो उस योगिराज का, चाहे कैसा भी भयानक जहर क्यों न हो, बाल भी बाँका नहीं कर सकता। इस अभ्यास के लिए एक खास प्रकार का आसन, एक प्रकार का प्राणायाम धारणा-शक्ति और ध्यान के अभ्यास आवश्यक हैं। गुरुजनों का कहना है कि इनसे अभ्यास-कुशल योगी को एक ऐसी शक्ति प्राप्त हो जाती है जिससे वह किसी तकलीफ़ के बिना कैसा भी विष हो हजम कर सकता है। यह बहुत ही कठिन अभ्यास है; और अभ्यास को निरंतर करते रहने से ही वह फल देता है। नहीं तो उसका प्रभाव जाता रहता है।

एक बहुत ही बुड्ढे आदमी ने मुझसे बनारस के एक योगी के बारे में कहा था कि वे किसी प्रकार की जोखिम के बिना अधिक मात्रा में जहर पी सकते हैं। योगी का नाम त्रैलिंग्य स्वामी था। उन दिनों सारे शहर में उनकी बड़ी ही धूम थी। उनको स्वर्ग सिधारे कई साल हो गये। त्रैलिंग्य जी हठयोग की सिद्धियों में बड़े ही कुशल थे। बर्षों वे नंगधड़ंग गंगाजी के किनारे बैठे रहे थे और उनकी मौन दीक्षा से कोई उनको विचलित न कर सका था।

जब पहली बार ब्रह्म ने इस बात की मुझे सूचना दी थी तब जहर के प्रभाव से एकदम उन्मुक्त रहने की इस बात को मैंने बिलकुल ही झूठ और अविश्वसनीय समझ रक्खा था। लेकिन अब तो बात दूसरी ही थी। इस सम्बन्ध में पहले के मेरे जो विचार थे वे अब जड़ से उखड़ने लगे। कभी कभी ये योगी लोग जो अविश्वसनीय और बिलकुल ही अज्ञेय और अविगत सिद्धियाँ कर दिखाते हैं उन्होंने मेरे दिल को चकित कर डाला है। पर कौन

जाने आज पश्चिम जिन बातों के मर्मों के ईजाद करने की लाखों प्रयोग-शालाओं में व्यर्थ चेष्टा कर रहा है उन्हीं बातों को उनसे कहीं पहले ही प्राच्य के वासी शायद जान नहीं गये थे !

११

बनारस का मायावी

बंगाल के भ्रमण तथा बुद्ध गया में तिब्बत के तीन लामाओं से अपनी भेंट आदि का मैं उल्लेख नहीं करूँगा क्योंकि मैं हिन्दुओं की परम पुनीत नगरी काशी की चर्चा करने के लिए बड़ा ही उतावला हो रहा हूँ।

शहर के समीप लोहे के विराट पुल के ऊपर से रेलगाड़ी गड़गड़ाती हुई चलने लगी। उसकी वह आवाज़ मानो एक प्राचीन गतिहीन समाज पर नई रोशनी के एक और धावे का प्रबल प्रमाण थी। जब कि म्लेच्छ विदेशियों ने गंगाजी के जल के ऊपर गरजने वाले अग्नि-रथों को चला ही दिया फिर गंगाजी की वह पवित्रता और कितने दिन तक बनी रहेगी!

यही तो बनारस है।

यात्री आपस में धक्कमधक्का करते हुए स्टेशन से बाहर चलने लगे। उनमें से होकर किसी प्रकार मैं बाहर पहुँचा और एक ताँगे पर, जो मेरी इन्तजारी में खड़ा था, बैठ गया।

तो यही भारतवर्ष की सब से पुनीत नगरी है! अरे यहाँ तो बड़ी ही विषैली बदबू फैली हुई है। अपनी प्राचीनता के लिए बनारस बहुत ही प्रसिद्ध है। उसकी इस प्रसिद्धि का यह बदबू प्रबल प्रमाण कही जा सकती है। दुर्गन्धि के कारण दम घुटने लगा। मेरी हिम्मत छूट गई। विचार हुआ कि ताँगेवाले से कह दूँ कि फिर मुझे स्टेशन वापिस ले चले। ऐसे महँगे सौदे पर भक्ति तथा श्रद्धा की उपासना करने की अपेक्षा परम नास्तिक ही रह कर स्वच्छ वायु का सेवन करना क्या उत्तम नहीं है? धीरे धीरे मुझे सूझने लगा

कि इस पुराने देश में जैसे अन्य अजनबी चीजों के अनुकूल मेरी प्रवृत्ति किसी न किसी तरह बन गई है उसी भाँति इस आब-हवा और भयानक दुर्गन्धि के भी अनुकूल वह क्यों न बनेगी ?

लेकिन बनारस, नाराज़ न होना-यदि मैं कहूँ कि चाहे तुम हिन्दू-संस्कृति का केंद्र भले ही बने रहो, परन्तु अनात्मवादी गोरों से कुछ तो कृपा करके सीख लो और स्वास्थ्य विज्ञान की आग में अपनी पवित्रता को थोड़ा सा तपा लो।

बाद में मालूम हुआ कि नगर की सड़कें गोबर और मिट्टी से लिपी हुई हैं और शहर के चारों ओर जो खाई है वह भी कई पीढ़ियों से कूड़ा-करकट फेंकने का बड़ा ही अनुकूल घूरा बन गई है। इसी से इस असहनीय गंदी बू ने सारे वायुमंडल को विषैला बना दिया है।

यदि हिन्दुओं के पुराणों आदि का विश्वास किया जाय तो बनारस ईसा से १२०० वर्ष पूर्व ही एक संपन्न नगर था। मध्ययुग में जैसे श्रद्धालु धार्मिक अंग्रेज पवित्र नगरी कैंटरबरी की यात्रा किया करते थे ठीक उसी प्रकार हिन्दुस्तानी भारतवर्ष के कोने कोने से आकर इस नगर के दर्शन से अपने को कृतकृत्य समझते हैं। चाहे राजा हो चाहे रंक, सभी विश्वनाथ पुरी में विश्वनाथ से वर-प्रसाद पाने की चाह रखते हैं। बीमार लोग यहीं अपने अन्तिम दिन बिताने आते हैं क्योंकि उनका यह विश्वास रहता है कि काशी में मरने से 'शिव सायुज्य' प्राप्त हो जाता है।

दूसरे दिन मैं काशी की पैदल ही सैर करने लगा और उसकी टेढ़ी-मेढ़ी तंग गलियों की खाक छानने में बिलकुल मग्न हो गया।

मेरे घूमने का कुछ प्रयोजन अवश्य था। मेरी जेब में एक करिश्मे दिखाने वाले योगी का पता-ठिकाना बताने वाला एक कागज पड़ा हुआ था। उनके एक शिष्य से बम्बई में मेरी मुलाकात हुई थी।

मैं उन तंग गलियों में, जिनमें कि कोई गाड़ी मुश्किल से ही गुजरने नहीं पाती, भटकने लगा। बाज़ारों में लोगों की भारी भीड़ थी। दर्जनों जातियों

के लोग वहाँ देखने में आते हैं। दुबले कुत्तों का भूँकना और मक्खियों की भिनभिनाहट के मारे वहाँ का शोर-गुल बहुत ही बड़ा रहता है। पके बालवाली बुढ़ियाँ, चिकण तथा मखण अंग वाली कोमल ललनाएँ, विभिन्न पहनावा वाले यात्री, भस्मधारी वलित शरीर वाले वृद्ध साधु, और भी कितने ही प्रकार के लोग वहाँ की गलियों में नजर आते हैं। शोर-गुल से भरी हुई तरह तरह की गलियों की भीड़ में अपनी राह खेते हुए अचानक मैं विश्वनाथ जी के स्वर्ण-मन्दिर पर पहुँच गया।

सारे भारत में इस मन्दिर की बड़ी धूम है। फाटक पर पश्चिमी आँखों को घृणित और जुगुप्साजनक लगने वाले भस्मधारी साधू दबक कर बैठे रहते हैं। लगातार यात्रियों का एक ताँता बँधा रहता है। कई लोग सुन्दर मालाएँ लेकर विश्वनाथ जी की पूजा के लिए आते हैं जिससे उस धूम्रमय वायुमंडल में एक प्रकार की चमक सी फैल जाती है। श्रद्धालु लोग घर लौटते समय मन्दिर के फाटक के पत्थरों पर माथा टेकते हैं और घूम कर मुझ अंग्रेज को देख क्षण भर के लिए विस्मय से चकित हो जाते हैं। इन यात्रियों और अपने बीच में मुझे भी एक अदृश्य अन्तर प्रकट होने लगा।

सूर्य की प्रखर धूप में सोने से मढ़े हुए दो कलश चमकते रहते हैं। उसके निकट के गुम्बद से चीखने वाले तोतों की फड़फड़ाहट सुनाई पड़ती है। यह स्वर्ण मंदिर महादेव जी का है। मुझे संशय होता है कि जिन महादेव की ये हिन्दू दुहाई देते हैं, जिनके सामने नाक रगड़ कर प्रार्थना करते हैं, जिनकी पत्थर की मूर्ति पर सुरभित सुमन और लाई की भेंट चढ़ाते हैं, वह ईश्वर आखिर हैं भी कहीं ?

वहाँ से चलकर मैंने गोपाल मन्दिर की राह ली। एक स्वर्ण मूर्ति के सामने कपूर की आरती उतारी जा रही थी। मन्दिर के घंटे भक्तों के ध्यान को आकर्षित करते हुए बारम्बार घहराते थे। शंख और घंटों की तुमुलध्वनि उनके बहरे कानों में न मालूम क्या मंत्र फूँक रही थी। एक सौम्य रूप वाले, दुबले और कट्टर पुजारी मंदिर से निकल कर मेरे पास आये और मेरी ओर घूरने लगे मानो मुझसे कोई प्रश्न करते हों। तब मैंने अपनी राह ली।

बनारस के मन्दिरों तथा मकानों में रहने वाली असंख्य मूर्तियों को कौन गिन सकता है? गंभीर प्रकृति वाले इन हिन्दुओं का व्यवहार भी कभी तो बच्चों जैसा होता है और कभी ये दर्शन के निगूढ़ रहस्यों में मग्न होते हैं। क्या कोई भी इस मर्म का ठीक ठीक समाधान कर सकेगा?

उन धुँधली गलियों में मैं अकेले ही पैदल चल कर अपने विचित्र मायावी योगी का मकान ढूँढ़ने लगा। अन्त को तंग पगडंडियों के जाल से निकल कर मैं पक्की सड़क पर आ गया। फटे पुराने कपड़े पहने हुए, छोटे बालकों की एक पंक्ति, जिसमें कुछ क्षीणकाय युवक और वृद्ध भी शामिल थे, एक कतार में मेरे पास से गुज़र चली। उनके अगुए के हाथ में एक साधारण सा झंडा था। उस पर कुछ लिखा हुआ था, लेकिन वह क्या था मुझे तो पता नहीं चला।

वे तेज़ आवाज़ से अजीब नारे लगाते जा रहे थे। बीच बीच में किसी गाने के कुछ चरण भी सुनने में आते थे। जब वे मेरे पास से गुज़रे तो मेरी ओर घोर घृणा के साथ घूरने लगे। इस विचित्र समावेश का राजनैतिक स्वरूप मैंने समझ लिया।

पिछली रात को एक जनाकीर्ण बाज़ार में, जहाँ किसी गोरे या पुलिस का पता भी न था, कोई मेरे पीछे गरज उठा—"तुम्हें गोली मारेंगे।" मैंने झट घूम कर देखा तो मुझे कुछ कोमल बालकों के चेहरे ही दिखाई पड़े क्योंकि जिसने मेरी जान लेने की धमकी दी थी वह पागल नवयुवक—हाँ आवाज़ से वह जवान ही मालूम होता था—किसी गली के मोड़ पर अँधेरे में गायब हो गया। इस छोटे बच्चों के जुलूस को दूर की सड़क पर चलते हुए देखकर मुझे बड़ा ही अफसोस हुआ। सभी को मुँह माँगी वस्तु देने की झूठी आशा दिखाने वाली मायाविनी राजनीति ने अपनी गोद में इतने छोटे छोटे बच्चों को भी उठा लिया है!

आखिर को मैं एक विशाल राजपथ पर आया। दोनों बगल कतार-के-कतार आलीशान मकान खड़े थे। विशाल साफ़-सुथरे अहाते मन को खुश
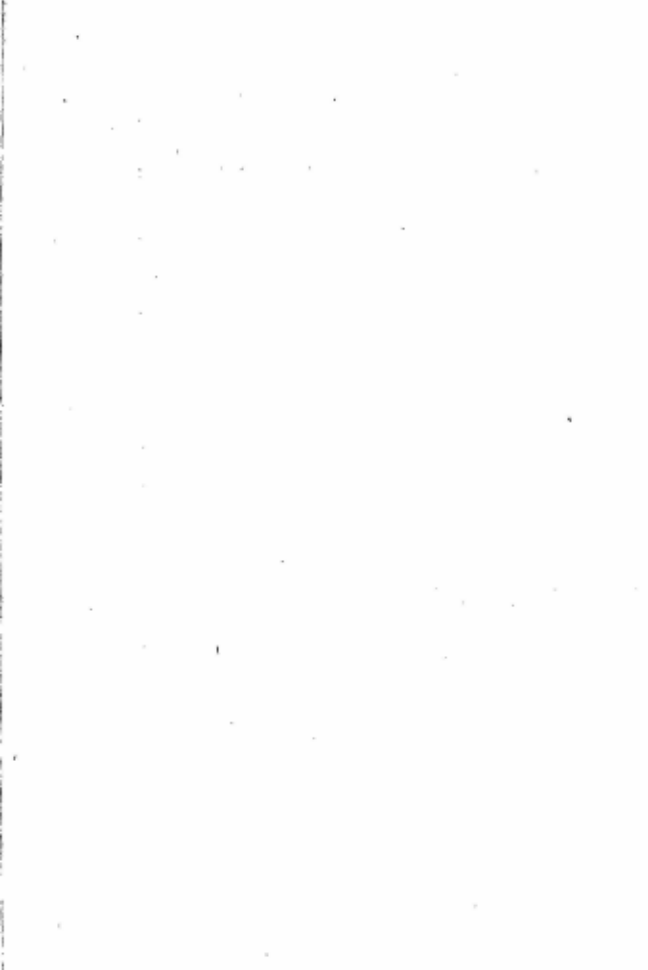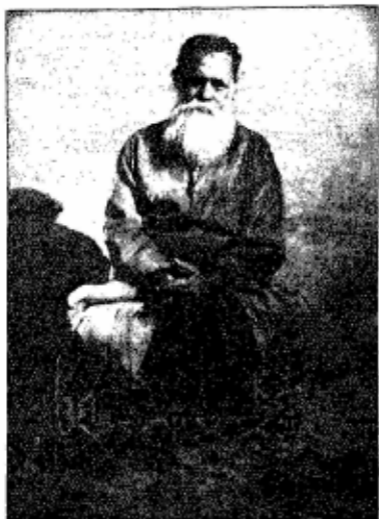
मायावी विशुद्धानन्द जी

कर रहे थे। मैं जल्दी चलने लगा और चलते चलते एक बड़े मकान के फाटक पर पहुँच गया। फाटक के एक स्तंभ में एक छोटे पत्थर पर 'विशुद्धानन्द' के नामाक्षर खुदे हुए थे। मैंने भीतर प्रवेश किया। इसी घर को इतनी देर से मैं खोज रहा था। बरामदे में कोई पड़े पड़े पिनक रहा था। चेहरे से वह बुद्धू मालूम होता था। मैंने उस नौजवान से पूछा—"गुरु जी भीतर हैं?" उसने सिर हिला दिया मानो यह कह रहा हो कि इस नाम का तो यहाँ कोई नहीं रहता। मैंने गुरू का नाम भी बता दिया पर कोई लाभ नहीं हुआ। मुझे बड़ी निराशा हुई। तब भी मैंने धीरज नहीं छोड़ा। दिल में कोई आवाज़ गूँज रही थी कि यह बुद्धू मेरे गोरे चमड़े को देख कर यह समझने लगा है कि यहाँ मेरा क्या काम होगा। इसीलिए उसने समझा कि मैं किसी दूसरे मकान की खोज में हूँ। मैंने और एक बार उस युवक की ओर ताका। मुझे पक्का निश्चय हो गया कि वह निरा बुद्धू है। अतः उसकी मनाही की परवाह किये बिना मैंने सीधे घर के भीतर प्रवेश किया। भीतर एक कोठरी में अच्छी पोशाक पहने हुए कुछ भारतीय व्यक्ति अर्धगोलाकार में नीचे फर्श पर बैठे हुए थे। कमरे में दूर पर एक सोफ़े पर एकभूरी दाढ़ी वाले एक वृद्ध बैठे थे। उनका आदर योग्य चेहरा और उच्च आसन, दोनों को देखते ही मैंने जान लिया कि जिनकी मैं खोज कर रहा था वे ये ही हैं। मैंने हाथ जोड़ कर प्रणाम किया और हिन्दुस्तानी रस्म के अनुसार बोला—"नमस्कार"।

मैंने उनको अपने पते आदि का परिचय दिया और बताया कि मैं एक लेखक हूँ और भारत का भ्रमण कर रहा हूँ तथा मुझे भारतीय दर्शन शास्त्र और योग मार्गों के अध्ययन करने की बड़ी लालसा है। मैंने उनको सूचित किया कि मेरी उनके एक शिष्य के साथ भेंट हुई थी और उस शिष्य ने मुझे सावधान किया था कि उनके गुरू सर्व साधारण में ही नहीं, एकान्त की छाया में भी, अजनबियों तक के सामने अपनी अनूठी विभूतियों का प्रदर्शन नहीं करते। मैंने उन महाशय से प्रार्थना की कि भारतीय प्राचीन विज्ञान के प्रति अभिरुचि होने के कारण वे मेरे बारे में कुछ रिआयत करने की कृपा करें।

उनके चेले अचम्मे में आकर अपने गुरुदेव की ओर निहारने लगे और प्रतीक्षा करने लगे कि उनके गुरुदेव पर मेरी प्रार्थना का कैसा प्रभाव पड़ेगा। विशुद्धानन्द जी ढलती उम्र के थे। नाक उनकी छोटी और दाढ़ी लम्बी थी। उनकी आँखें बड़ी विशाल पर धँसी हुई थीं। उनके कंधे पर जनेऊ सोह रहा था।

उस बुजुर्ग की तीखी नज़र मेरे ऊपर पड़ गई। वे मेरी ओर यों घूर कर देख रहे थे मानो मैं कोई सूक्ष्म वस्तु हूँ कि अनुवीक्षण यंत्र से देखा जाऊँ। मेरे दिल में कोई मोहिनी काम कर रही थी। सारे कमरे में एक अजीब प्रकार की शक्ति के प्रसार का बोध होने लगा। मुझे एक प्रकार की बेचैनी मालूम होने लगी।

कुछ देर के बाद उन्होंने अपने चेले से कुछ कहा। शायद वे बँगला भाषा बोल रहे थे। चेले ने मुझको बताया—"बग़ैर गवर्नमेंट कालेज के कविराज जी को लाये कुछ भी बात-चीत हो नहीं सकती।" कविराज जी अंग्रेज़ी के अच्छे ज्ञाता हैं, साथ ही वे विशुद्धानंद जी के पुराने चेले भी हैं; अतः दुभाषी बनने का उनका पहला हक था।

विशुद्धानंद जी बोले—"कल उनको साथ ले आइये। चार बजे मैं आप लोगों की राह देखूँगा।

मुझे अब लौटना ही पड़ा। सड़क पर आकर एक ताँगेवाले को बुलाया। फिर टेढ़ी-मेढ़ी सड़कों से होकर कालेज पहुँच गया। लेकिन वहाँ पर कविराज जी नहीं थे। किसी ने बताया कि वे शायद घर पर होंगे। अतः उनके घर का पता लगाने में एक-आध घंटा और लगा। आखिर को एक पुराने दुमंजिले मकान में वे मुझको मिल गये। मकान की रचना मध्यकालीन इटली के शिल्पों से कुछ कुछ मिलती थी।

पंडित जी दूसरी मंजिल पर एक कमरे में फर्श पर बैठे थे। चारों ओर ढेर-के-ढेर किताबें पड़ी हुई थीं। काग़ज़, स्याही आदि लेखन सामग्री पास ही रक्खी थी। उन ब्राह्मण देवता का उन्नत ललाट बड़ा ही विलक्षण था। नाक

उनकी पतली और सीधी थी और बदन का रंग कुछ हलका था। चेहरे से उनकी संस्कृति और सभ्यता टपकी पड़ती थी। मैंने अपने आगमन का उद्देश्य उन पर प्रगट कर दिया। पहले वे कुछ हिचकिचाने लगे लेकिन किसी प्रकार मेरे साथ चलने के लिए राज़ी हो गये। दूसरे दिन फिर मिलने की बात पक्की करके मैं उनसे विदा हुआ। ताँगेवाले को किराया देकर मैंने उसको विदा किया और स्वयं गंगाजी के दर्शन करने में मग्न हो गया। किनारे पर स्नानार्थियों का बड़ा जमघट था। उनकी सुविधा का ख्याल कर किसी ने बहुत सुन्दर सीढ़ियाँ बनवायी थीं। लाखों यात्रियों के पैरों के तले घिस कर वे कुछ खुरदुरी हो गयी थीं। यह पनघट एकदम गंदा और मैला था। कहीं पर मंदिर ढह कर पानी में गिर गये थे, कहीं आँखों को चकाचौंध करने वाले कलशों के अगल-बगल में; सजे-सजाये चपटे और चौरस, गगनचुंबी महलों की श्रेणी दिखाई देती थी। हर जगह मकान एक के ऊपर एक बनवाये गये से जान पड़ते थे और प्राचीनता और नवीनता का वहाँ बड़ा ही अनमिल मेल हो गया था।

जहाँ देखो वहीं पंडों और यात्रियों के झुंड नज़र आते थे। छोटे और खुले हुए कमरों में अध्यापक शास्त्र पढ़ा रहे थे। उन मकानों की दीवारों पर चूना पुता हुआ था। अध्यापक लोग छोटे छोटे आसनों पर बैठे हुए थे और चेले बड़ी श्रद्धा के साथ फर्श पर बैठे दत्तचित्त होकर गुरू के सिद्धान्तों की जटिल समस्याओं के समझने में तल्लीन थे।

मैं यों ही घूम रहा था कि मेरी नज़र एक अजीब साधु पर पड़ी। उसकी बड़ी लम्बी दाढ़ी थी। पूछने पर मालूम हुआ कि ज़मीन पर लोट लोट कर उसने ४०० मील का फासला तय किया है। काशीधाम की यात्रा करने का क्या ही विचित्र तरीका था! और कुछ आगे बढ़ा तो इससे भी अजीब बात देखने में आयी। वहाँ मेरे सामने एक आदमी था जिसने वर्षों से एक हाथ उठाये ही रक्खा है। उस अभागे हाथ की मांसपेशी और नाड़ी सूख चली थीं। केवल हाथ का ढाँचा भर रह था। भला इन व्यर्थ के घोर तपों का क्या कोई अर्थ हो सकता है? इस मुल्क की झुलसाने वाली सूर्य की धूप ने

इन बेचारों को सिड़ी तो नहीं बनाया है। अभागे हिन्दू पहले ही से अति धार्मिकता की बीमारी के कौर बने हैं, तिस पर सूर्य के उग्र ताप से इनके दिमाग़ और भी चकरा तो नहीं गये ?

× × ×

दूसरे दिन चार बजते बजते मैं कविराज जी को साथ लेकर विशुद्धानंद जी के यहाँ पहुँच गया। उस बड़े कमरे में पाँव रखते ही हमने आचार्य की अभ्यर्थना की। वहाँ पर उस समय और भी छः शिष्य मौजूद थे।

विशुद्धानंद जी ने मुझे अपने पास बुलाया तो मैं उनकी गद्दी के बहुत ही निकट बैठ गया।

उनका सब से पहला प्रश्न यह था :

"मेरी कोई करामात देखना चाहते हो ?"

"जी हाँ, आपका बड़ा एहसानमंद रहूँगा।"

पंडित कविराज ने कहा—"अपना रूमाल दो। रेशमी हो तो बेहतर है। जैसी खुशबू चाहते हो पा सकते हो। केवल एक आतशी शीशे भर की ज़रूरत है और सूर्य की रोशनी की।"

सौभाग्य से मेरी जेब में रेशमी रूमाल निकल आया। मैंने उसको जादूगर के हाथ में दे दिया। उन्होंने एक छोटा आतशी शीशा निकाला और कहा—"मैं इसमें सूर्य की किरणों को केंद्रीभूत करना चाहता हूँ पर सूर्य की इस समय की स्थिति और कमरे की छाया के कारण यह काम अच्छी तरह नहीं किया जा सकेगा। कोई आँगन में जाकर शीशे के ज़रिये सूर्य की किरणों को भीतर पहुँचा सके तो सारी कठिनाई दूर होगी। आप जो चाहें वह खुशबू हवा से ही पैदा की जा सकती है। कहिये कौन सी सुगंधि चाहिये।"

"क्या आप बेले की सुगंधि पैदा कर सकते हैं ?"

आचार्य ने अपने बाँये हाथ में रूमाल लिया और उसके ऊपर शीशा रक्खा। दो क्षण तक सूर्य की किरणें रेशम पर थिरक उठीं। उन्होंने काँच

नीचे रख दिया और मुझे रूमाल वापिस कर दिया। मैंने उसको नाक पर लगा कर देखा तो बेले की भीनी महक से तबियत फड़क उठी।

मैंने रूमाल को बड़े गौर से परखा। कहीं नमी का नाम तक न था। कोई इत्र छिड़का गया हो सो भी बात नहीं थी। मैं हैरान था और बूढ़े की ओर अधखुली दृष्टि से सन्देह के साथ ताकने लगा। वे फिर से यह करामात दिखाने को तय्यार थे।

अबकी बार मैंने गुलाब की खुशबू चाही। विशुद्धानंद जी प्रयोग करने लगे तो मैं उनकी ओर ग़ौर से ताकने लगा। उनके हाथों और पाँवों का हिलना डुलना, उनके चारों ओर जो कोई चीज़ धरी थी, एक भी बात मेरी नज़रों से नहीं बची। उनके बलिष्ठ बाहु और बेदाग़ पहरावे की बड़े गौर से मैंने परीक्षा की लेकिन शङ्का के लिए कहीं जगह नहीं थी। पहले के समान ही उन्होंने प्रयोग किया और गुलाब के मधुर सौरभ से रूमाल का दूसरा किनारा परिमलित हो उठा।

तीसरी बार मैंने बनफशे के फूल की सुगंधि चाही। अबकी बार भी वे अपने प्रयोग में सफल हुए।

विशुद्धानन्द जी अपनी सफलता पर फूल नहीं जाते। वे इन सारी विभूतियों को बिलकुल मामूली ही समझते हैं। उनका गंभीर मुखमण्डल भावनाओं के उतार-चढ़ाव से कुछ भी प्रभावित नहीं होता।

वे एक बारगी बोल उठे—"अब मैं एक नई सुगंधि पैदा करूँगा, एक नये फूल की खुशबू दिखा दूँगा। वह तिब्बत में ही मिलता है।"

उन्होंने रूमाल के आखिरी कोरे पर, जो अब तक छुआ नहीं गया था, सूर्य रश्मि को केन्द्रीभूत किया। एक अजीब परिमल आने लगा। वह मेरे लिए एकदम नया था।

कुछ चकित हो मैंने रूमाल जेब में रख लिया। यह सारी घटना मानो कोई करामात मालूम होने लगी। सारे फूलों के इत्र उन्होंने अपने लबादे में तो

छिपा नहीं रक्खे थे ! लेकिन प्रश्न यह था कि कितने प्रकार के इत्र वे छिपाये रख सकते हैं। मेरे पूछने तक वे क्या जानते थे कि मैं कौनसी सुगंधि पसन्द करूँगा। उनके उस सादे लबादे में कितने इत्र छिप सकते हैं ? इसके अतिरिक्त जादू दिखाते हुए उन्होंने एक बार भी अपने लबादे के अन्दर हाथ नहीं जाने दिया था।

मैंने उनके काँच की परीक्षा करने की अनुमति माँगी। वह एक मामूली काँच था। तार के ढाँचे में बँधा था और उसमें तार का एक दस्ता भी लगा था। उसमें संदेह का कोई स्थान नहीं था।

यह भी तो एक बात थी कि प्रेक्षकों में अकेला मैं ही तो था नहीं। छः सात लोग उनकी ओर टकटकी लगाये देख रहे थे। पंडित कविराज जी ने मुझको इस बात का विश्वास दिलाया कि प्रेक्षक सब सच्चे, ईमानदार और अपनी जिम्मेदारी जानने वाले उच्च विचार के व्यक्ति हैं।

शायद यह सब सम्मोहन विद्या का एक उदाहरण तो नहीं है ? यदि ऐसा हो तो इसकी बड़ी सुलभता से परिक्षा ली जा सकती है। जब घर लौटूँ, अपने साथियों को रूमाल दिखला दूँ।

विशुद्धानन्द जी ने और एक बात बता दी। वे मुझे अपनी एक अद्भुत विभूति दिखाना चाहते थे जो वे बहुत ही विरले किया करते थे। उन्होंने कहा कि इस प्रयोग के लिए कड़ी धूप की जरूरत होती है। उस समय सूर्य ढलना ही चाहता था। संध्या की लाली हर कहीं फैल रही थी। अतः मुझसे कहा गया कि फिर कभी दुपहर के वक्त आ जाऊँ। उस समय तत्काल के लिए मुरदों को फिर से जिलाने की अद्भुत बात दिखाने का वचन दिया गया।

मैंने घर पहुँच कर तीन सज्जनों को रूमाल दिखाया। हर एक को फूलों की खुशबू आती दिखायी दी। इसलिए इन सारी बातों को सम्मोहन विद्या कहकर एक चुटकी में उड़ा नहीं दे सकता था। न इसको छल-कपट ही कह कर मैं तुष्ट हो सकता था।

× × ×

दुबारा मैं जादूगर के घर पहुँच गया। उन्होंने मुझको शुरू में ही बता दिया कि वे छोटे जानवरों को ही जिला सकते हैं। प्रायः वे चिड़ियों के साथ प्रयोग किया करते थे।

एक छोटी गौरैया की गरदन मरोड़ डाली गयी। एक घंटे तक वह हमारी आँख के सामने रक्खी गई ताकि हमें विश्वास हो जाय कि वह सचमुच मरी ही है। उसकी आँखें अचल थीं; बदन न हिलता था न डुलता था। सारी देह तनकर हमको अपनी दारुण कहानी सुना रही थी। एक भी ऐसा चिह्न न था कि हमें उसके जीवित होने का भ्रम पैदा हो।

जादूगर ने काँच निकाला और सूर्य की किरणों को चिड़िया की आँखों पर केन्द्रस्थ कर दिया। कुछ मिनट तक कोई विशेषता देखने में नहीं आयी। बृद्ध जादूगर अपने विचित्र प्रयोग में लगे हुए थे। उनके विशाल नेत्र बिलकुल निश्चल थे। चेहरा उनका एकदम गंभीर था। उस पर किसी भावना का वेग नज़र नहीं आता था। उनके चेहरे से एक प्रकार का निर्लिप्त भाव झलक रहा था। अचानक ही उनके ओंठ खुले और वे किसी अजीब भाषा में एक मंत्र का पुरश्चरण करने लगे। थोड़ी देर बाद चिड़िया की लाश कुछ कुछ हिलने लगी। मैंने एक मरणासन्न कुत्ते को इस प्रकार झटके खाते देखा है। बाद में धीरे धीरे उसके पंख फड़फड़ाने लगे। चन्द मिनट बाद ही गौरैया अपने पाँवों पर खड़ी हो गई।

इस विचित्र पुनर्जीवन के बाद चिड़िया में काफी मज़बूती आ गई, यहाँ तक कि वह कमरे में चारों ओर उड़ कर अपने बैठने के लिए नये नये आलम्बन खोजने लगी। यह सारी घटना इतनी गज़ब की मालूम होने लगी कि मैं एकदम चकित होकर अपने दिमाग़ को ठिकाने पर लाने की चेष्टा में लग गया। मेरे चारों ओर जो व्यक्ति बैठे हुए थे वे सच्चे थे या कल्पित, इसी बात का निश्चय कर लेने की मुझे ज़रूरत हुई।

इसी प्रकार गम्भीरता से आध घंटा बीत गया। मैं उस पुनरुज्जीवित बेचारी चिड़िया के फड़फड़ाने की चेष्टा को देखते हुए अपने को भूला हुआ

था कि अन्त में एक आकस्मिक बात प्रगट हुई जिसने मेरे प्राणों को उछालकर ओठों तक पहुँचा दिया। वह बेचारी गौरैया अब फिर नहीं उड़ी। मर कर हमारे पैरों के सामने गिर पड़ी। वहीं वह पड़ी हुई थी, न हिलती थी न डुलती थी। मैंने उसको गौर से देखा। उसकी साँसें नहीं चलती थीं। वह सचमुच मर ही गई थी।

मैंने जादूगर से प्रश्न किया—"उसको और कुछ समय तक जीवित रख सकते हैं?"

उन्होंने कहा—"अभी तो इससे अधिक मैं नहीं दिखा सकता। कविराज जी ने मेरे कान में कहा कि विशुद्धानन्द जी अपने भावी प्रयोगों से और अधिक आशा रखते हैं। वे और भी कई विचित्र बातें करके दिखा सकते थे। लेकिन उनके अनुग्रह का अनुचित लाभ उठाकर उनको राह की गर्द फाँकने वाले किसी जादूगर की कोटि में रखना मुझे सोहता नहीं था। जो मैं देख चुका था उसी से मुझे संतुष्ट होना पड़ा। मुझे फिर से भासने लगा कि कमरे की आब-हवा में एक निराली जादू भरी हुई है। विशुद्धानन्द जी की अन्यान्य विभूतियों की कथायें मेरी इस धारणा को और भी बढ़ाने लगीं।

मुझे मालूम हुआ कि वे शून्य से ताज़े अंगूर पैदा कर सकते हैं, हवा में से मिठाइयाँ मँगा सकते हैं और वे यदि अपने हाथ में मुरझाया हुआ फूल ले लें तो वह फिर से हरा-भरा हो जायगा।

× × ×

आँखों देखी इन करामातों का क्या रहस्य है इसी बात को सोचते सोचते मुझे एक असाधारण बात का पता लगा। वह बात भी ऐसी है कि जिसके बयान से असली विषय का ज्ञान नहीं होता। अब भी बनारस के उस जादूगर के समतल ललाट के तले कोई वास्तविक रहस्य छिपा है और आज तक उनके सब से अंतरंग चेले भी उसको जान नहीं पाये हैं।

विशुद्धानंद जी ने मुझको बताया कि उनका जन्मस्थान बंगाल प्रान्त है। तेरह वर्ष की उम्र में किसी ज़हरीले जानवर ने उनको डस लिया और वे

एक खतरनाक बीमारी के पंजे में पड़ गये। उनके जीने की कोई आशा न देख उनकी माँ उनको गंगाजी के तीर पर ले गयीं क्योंकि गंगाजी के किनारे प्राण छोड़ने में बड़ा ही पुण्य माना जाता है। परिवार के सब लोग किनारे पर रोते हुए खड़े हुए थे और अन्त्येष्टि की सारी तय्यारियाँ एक ओर हो रही थीं। विशुद्धानंद जी को पानी में ले गये तो एक अद्‌भुत बात देखने में आयी। ज्यों ज्यों उनको और गहरे पानी में उतारते जाते थे त्यों त्यों उनके बदन के चारों ओर पानी घटता जाता था। ज्यों ज्यों बालक को ऊपर उठाते थे त्यों त्यों अपनी सहज स्थिति तक पानी ऊपर चढ़ आता था। बार बार उनको डुबाने की चेष्टा की गई और हर बार यही बात देखने में आयी। शायद इस मरणासन्न बाल अतिथि को गंगा माई स्वीकार करना नहीं चाहती थीं।

किनारे पर एक योगी बैठे हुए यह सारी घटना देख रहे थे। वे आसन से उठकर वहाँ पर गये और उन्होंने यह भविष्यवाणी की कि बालक दीर्घायु होगा और महापुरुष बनेगा; वह एक प्रसिद्ध योगी बनेगा और उसके भाग्य के तारे खूब ही चमकेंगे। बाद को योगी ने उस बालक के जहरीले घाव पर कुछ जड़ी-बूटियों के अर्क की मालिश की और चले गये। सातवें दिन वे फिर लौट आये और बालक के माँ-बाप से बता दिया कि लड़का चंगा हो गया। उनकी बात ठीक और सही थी। लेकिन इस बीच में बालक के जीवन में एक अजीब परिवर्तन देखने में आया। उसकी मनोवृत्तियाँ और सारा चरित्र ही एकदम पलटा खा गये। घर पर माता-पिता के संग आराम के साथ रहने के बजाय एक घुमक्कड़ योगी बन जाने की धुन उस पर सवार हो गई। वह तभी से अपनी माँ-बाप को बड़ा ही तंग करने लगा, यहाँ तक कि आखिर को कुछ वर्ष के बाद उसकी माता ने घर छोड़ने की अनुमति उसे दे दी और विशुद्धानंद जी योगियों की खोज में निकल पड़े।

हिमालय के उस ओर जो रहस्यमय भूमि तिब्बत है उसने उनके मन को खींच लिया। वहाँ के विभूति-संपन्न योगियों में अपने योग्य गुरुदेव की खोज में वे जी-जान से लग गये। भारतीयों की यह दृढ़ धारणा होती है कि

यदि सच्चे योगी बनने की इच्छा हो और योग मार्ग में सफलता पाना हो तो अवश्य ही जिज्ञासु को चाहिये कि वह किसी ऐसे योगिवर का, जो योग के सारे मर्मों से भली प्रकार परिचित हो, अंतरंग शिष्य बने। बालक विशुद्धानंद ने ऐसे योगिवर के लिए झोपड़ियों, गुफाओं आदि में ही नहीं बल्कि उन पहाड़ों में भी, जहाँ कि हड्डियों को भी सुन्न करने वाला तुषारमय पवन बहता है, तत्परता के साथ खोज की लेकिन वे निराश होकर घर लौटे।

कई वर्ष किसी महत्त्वपूर्ण घटना के बिना गुज़र गये। तो भी उनका हौसला कुछ भी नहीं घटा और दुबारा उन्होंने भारतवर्ष की सीमा को पार कर दक्षिण तिब्बत की हिमाकीर्ण बंजर भूमियों की खाक छानी। किस्मत की बात है कि पहाड़ों के बीचोबीच एक अति साधारण कुटिया में उन्हें एक ऐसे व्यक्ति मिले जो अन्त को उनके इतने दिनों के खोजे हुए गुरू निकले।

इस सम्बन्ध में विशुद्धानंद जी ने मुझे एक ऐसी अविश्वसनीय बात बतायी जिसको सुन कर मैंने किसी और अवसर पर हँसी-मज़ाक़ में उड़ाया होता पर अब उनकी बात ने मुझे चकित कर दिया। बहुत गम्भीरता के साथ मुझसे निश्चय ही बताया गया था कि उनके गुरू की उम्र १२०० वर्ष से किसी भाँति कम नहीं है। विशुद्धानंद जी ने यह बात इतनी शांतिपूर्वक बतायी कि जैसे कोई पश्चिमी मामूली तौर पर कह दे कि वह ४० वर्ष का है।

इस दीर्घ जीवन की आश्चर्यजनक कथा इसके पहले मैं दो बार सुन चुका था। अडयार नदी के किनारे पर रहने वाले योगी ब्रह्म ने मुझसे बताया था कि उनके गुरू ४०० वर्ष से कुछ ऊपर के होंगे और पश्चिम भारत के एक महात्मा से मैंने सुना था कि हिमालय पर किसी दुर्गम पहाड़ी खोह में १००० वर्ष की उम्र वाले योगी निवास कर रहे हैं। उन्होंने कहा था कि वे योगी इतने बूढ़े हैं कि उनकी पलकें एकदम झुक पड़ी हैं। मैंने इन दोनों बातों को निरी गप्प समझ कर उड़ा दिया था लेकिन अबकी बार उनको भी मुझे कुछ कुछ सच मानना पड़ा क्योंकि मेरे सामने विशुद्धानंद जी अमर जीवन के मार्ग पर आरूढ़ होने की मूक सूचना दे रहे थे।

तिब्बत के योगी ने बालक विशुद्धानंद को हठयोग की क्रियाओं और सिद्धान्तों में दीक्षित कर दिया। उनके कठिन शिक्षण में शिष्य ने अलौकिक शारीरिक और मानसिक विभूतियाँ प्राप्त कीं। वे सौर विद्या में भी शिक्षित किये गये। बारह वर्ष तक इस हिमाकीर्ण भूमिखंड में कई कठिनाइयाँ झेलते हुए भी उस तिब्बत के अमर जीवन के स्थूल कीर्तिस्तम्भ ऋषिवर के चरणों की बालक विशुद्धानंद सुश्रूषा करते रहे। जब शिक्षा पूरी हुई वे भारत में भेजे गये। वे पहाड़ी घाटियाँ पार कर देश में आ गये और समय पाकर स्वयं योग मार्ग के एक आचार्य बने। कुछ समय तक उन्होंने पुरी-जगन्नाथ धाम में एक अच्छा बँगला बनवा कर निवास किया। उनके चारों ओर उच्च कुल के हिंदू लोग बहुतायत से शिष्य और चेले बन कर इकट्ठे होते हैं। धनी व्यापारी, अमीर ज़मींदार, सरकारी अफ़सर और एक राजा भी उनके चेलों में हैं। शायद मुझसे भूल हो गई हो तो हो, पर यह बात मेरे दिमाग़ में बैठ गई है कि न तो साधारण जनता की वहाँ तक पहुँच है और न उसे योगी द्वारा कोई प्रोत्साहन ही मिलता है।

मैंने उनसे सीधे प्रश्न किया—"आपने ये सारी करामातें कैसे दिखाईं ?"

विशुद्धानंद जी ने अपने मोटे हाथों को समेट कर कहा—"जो कुछ आपने देखा वह योग का फल नहीं है; वह है सौर विद्या का फल। योग का सार यही है कि योगी अपनी चित्तवृत्तियों का निरोध कर ले और ध्यान, धारणा तथा समाधि को अभ्यास करते आगे बढ़े। लेकिन सौर विद्या में इन बातों के अभ्यास की कोई ज़रूरत नहीं है। सौर विज्ञान कुछ निगूढ़ रहस्यों का संग्रह है। उनसे काम लेने के लिए किसी विशेष शिक्षा की आवश्यकता नहीं है। जैसे किसी पश्चिमीय भौतिक विज्ञान का अध्ययन किया जाता है ठीक उसी प्रकार इस विद्या का भी अध्ययन किया जा सकता है।"

कविराज जी ने इसकी पुष्टि करते हुए कहा—"इस विचित्र सौर विज्ञान का सम्बन्ध अन्य विज्ञानों की अपेक्षा विद्युत् शक्ति और आकर्षण शक्ति से अधिक है।"

मैं पूर्ववत् नासमझ ही रहा। अतः विशुद्धानंद जी और भी बताने लगे :

"तिब्बत की यह सौर विद्या कोई नई बात नहीं है। अति प्राचीन समय के भारतीय योगियों को इसकी अच्छी जानकारी थी। लेकिन अब तो बहुत ही कम लोगों को छोड़ भारत में भी इस विद्या के जानने वाले नहीं हैं। भारत में भी एक ढंग से इस विद्या का लोप सा हो गया है। सूर्य रश्मि में कुछ मायाद शक्तियाँ मिली हुई हैं। यदि तुम जान लोगे कि इनको सूर्य रश्मि में रहनेवाली अन्य चीजों से अलग कर कैसे इकठ्ठा कर सकते हैं तो तुम भी अद्भुत करामातें दिखा सकोगे। सूर्य रश्मि में कुछ आकाश की शक्तियाँ मौजूद हैं। वे यदि तुम्हारे वश में हो जायें तो तुम में जादू सी ताकत आ जायगी।"

"क्या आप अपने चेलों को सौर विद्या के मर्म समझा रहे हैं?"

"अभी नहीं, किंतु सिखाने का प्रबंध किया जा रहा है। कुछ इने-गिने शिष्यों को ही ये रहस्य बताये जायँगे। अभी हम एक बड़ी प्रयोगशाला, जहाँ प्रत्यक्ष निदर्शनों के साथ पढ़ाई हो सके, बनवाने में लगे हैं।"

"तो आपके शिष्य इस समय क्या सीख रहे हैं?"

"उनको योग की दीक्षा दी जा रही है।"

पंडित कविराज जी प्रयोगशाला दिखाने मुझे ले चले। वह रूप-रंग में किसी यूरोपियन मकान से मिलती थी। उसकी कई मंजिलें थीं और वह नये ढंग से बनी थी। दीवारें पक्की लाल ईंटों की थीं जिनमें खिड़कियों के स्थान पर बड़े बड़े छिद्र दिखाई दे रहे थे। उनमें बड़े बड़े शीशों के तख्ते लगने को थे, पर वे अभी तैयार नहीं हुए थे। शीशों की ज़रूरत इसीलिये पड़ी कि गवेषणा करने में सूर्य रश्मि को लाल, नीले, हरे, पीले और स्फटिक काँचों में से प्रतिबिंबित करने की आवश्यकता थी।

पंडित जी ने मुझे बताया कि जिस ढंग के शीशों की उन विराट खिड़कियों के लिए ज़रूरत थी वैसे बड़े शीशे हिंदुस्तान भर में किसी कारखाने में तैयार नहीं हो पाये थे। अतएव काम अधूरा ही रह गया था। उन्होंने

मुझसे कहा कि तुम इंगलैंड में इस बारे में कुछ दर्याफ़ करो, पर यह ज़रूर ध्यान में रहे कि विशुद्धानंद जी चाहते हैं कि उनके आदेशों में और काम के ब्यौरे में रत्ती भर भी फ़र्क न आने पावे। वे आदेश इस किस्म के थे कि काँचों के निर्माताओं को विश्वास दिलाना पड़ेगा कि काँच हवा के बुलबुलों से एकदम खाली हैं, रँगा हुआ शीशा एकदम पारदर्शी है; और तख्ते १२ फ़ीट लंबे, ८ फ़ीट चौड़े और ½ अंगुल की मोटाई के हैं।* प्रयोगशाला को विशाल बाग-बगीचे घेरे हुए थे। पर वे ताड़ जाति के कुछ घनी शाखावाले पेड़ों की शृङ्खला की ओट में बाहर के प्रेक्षकों की निगाहों से प्रच्छन्न थे।

लौट कर मैं विशुद्धानंद जी के सामने आ बैठा। बहुत से चेले एक एक करके चले गये थे, सिर्फ़ दो-चार ही रह गये थे। कविराज जी मेरी बगल में बैठे हुए थे। अध्ययन की गहरी छाप वाले अपने मुख को गुरुदेव की ओर करके वे गहरी श्रद्धा के साथ उन्हें निहार रहे थे।

पल भर के लिए विशुद्धानंद जी ने मेरी ओर ताका और फिर फ़र्श की ओर गौर से देखने लगे। उनके व्यवहार में एक उदात्तता और एक प्रकार के संकोच का मिलाप था। उनके मुख पर एक अलौकिक गंभीरता झलक रही थी। वह गंभीरता उनके चेलों के चेहरों में भी प्रतिबिंबित हो रही थी।

विशुद्धानंद जी की इस गंभीरता के तले क्या छिपा है इस बात के

---

* मैंने इंग्लिस्तान के सबसे बड़े काँच के तख्ते बनाने वाले कारखाने को सारा ब्यौरा लिख भेजा पर वे इस काम में हाथ डालने को तैयार न हुए क्योंकि विशुद्धानंद जी ने शीशे की बनावट के बारे में जो शर्तें लगायी थीं उनको पूरा करना असंभव था। उन्होंने साफ़ ही प्रकट कर दिया कि यह किसी कारखाने के मालिक की समझ के परे की बात है कि कोई ऐसी राह निकले जिससे काँच एकदम हवा के बुलबुलों से खाली हो, पारदर्शिता में कुछ न्यूनता लाये बिना काँचों को रँग सके और सचमुच ½ अंगुल से अधिक मोटाई का शीशा ठीक ठीक तैयार हो। उन्होंने बताया कि इस मोटाई का शीशा बन जाय तो भी उन्हें आधे आधे करके भेजना होगा नहीं तो बनारस तक पहुँचते पहुँचते उनके टूट जाने की बड़ी ही संभावना थी।

जानने की कोशिश करके भी मैंने कुछ नहीं पाया। जैसे इस पवित्र नगरी के स्वर्ण मंदिर का गर्भगृह मुझ पश्चिमी के लिए दुर्गम है ठीक उसी भाँति इनका मन मेरे लिए दुरूह और दुर्बोध जँचने लगा। वे प्राच्य तिलिस्मों के अजीब विज्ञान में बड़े ही निष्णात हैं। मेरे मन में दृढ़ धारणा बैठ गई कि हालाँकि दुबारा मेरी प्रार्थना के पहले ही इन्होंने अपने करिश्मे दिखा दिये थे तो भी हमारे आपस में हमेशा ही एक दुर्गम मानसिक अवरोध खड़ा हुआ है। मुझे भासने लगा कि यहाँ पर तो मेरी ऊपरी आवभगत हुई थी। यहाँ पश्चिमी शिष्य और पश्चिम के गवेषकों की कोई आवश्यकता नहीं थी।

अचानक उन्होंने एक ऐसी बात कह डाली जिसकी मुझे तनिक भी आशा नहीं थी। उन्होंने कहा :

"जब तक मुझे अपने तिब्बत के गुरू से अनुमति प्राप्त न हो तब तक मैं यदि चाहूँ तो भी तुमको दीक्षा नहीं दे सकता। इसी शर्त पर मुझे काम करना पड़ता है।"

क्या वे मेरे मन की बातें ताड़ गये? मैंने उनकी ओर ताका। उनके उन्नत ललाट पर कुछ अस्पष्ट सिकुड़न पड़ गई। जो हो, मैंने उनका शिष्य होने की कोई लालसा प्रकट नहीं की थी। किसी का चेला बनने का मैं उतना उतावला नहीं था। पर एक बात का तो मुझको निश्चय हो ही गया था। यदि भूल से भी ऐसी कोई प्रार्थना करूँ तो 'नहीं' के निराशाजनक उत्तर के सिवा और कुछ भी हाथ नहीं लगेगा। मैंने पूछा :

"आप के गुरू यदि सुदूर तिब्बत में हैं तो आप उनसे अनुमति कैसे ले सकते हैं?"

उन्होंने जवाब दिया—"हम दोनों के बीच आत्मिक जगत में व्यवहार अच्छी तरह चलता है।"

मैं सुन तो रहा था पर कुछ भी समझ में नहीं आता था। तब भी उनकी उस आकस्मिक बात से मेरा मन थोड़ी देर तक भटक गया। मैं गहरे सोच में पड़ गया। बेसमझे बूझे मैं यह प्रश्न कर बैठा :

"महाशय, 'संबोध' किस तरह प्राप्त हो सकता है ?"

विशुद्धानंद जी ने उत्तर न देकर उलटे मुझसे ही एक प्रश्न किया—"जब तक योग का अभ्यास न करो संबोध प्राप्त कैसे होवे ?"

चन्द मिनट तक मैं इन बातों के अर्थ पर मनन करता रहा। और तब बोला—"लेकिन मुझे बताया गया है कि बिना गुरू के योग के सफल अभ्यास की बात तो दूर रही उसका श्रीगणेश भी किया नहीं जा सकता। सच्चे गुरुओं का होना दुर्घट है।"

उनके चेहरे का रंग नहीं बदला। वे उसी भाँति उदासीन और अविचल बने रहे। बोले :

"जिज्ञासु तैयार हो तो गुरु अपने आप मिल जावेंगे।"

मैंने अपनी शंकाओं की पोथी खोली तो वे अपने मज़बूत हाथ को सामने बढ़ाकर बोले :

"पहले मानव को चाहिए कि वह अपने आप को तय्यार कर ले, फिर चाहे वह कहीं भी रहे, गुरु प्राप्त हो ही जावेंगे। यदि हाड़-मांस में गुरु का प्रत्यक्ष न भी हो तो भी वे जिज्ञासु की अंतर्दृष्टि के रूप में प्रगट होवेंगे।"

"इस साधना का प्रारम्भ कैसे हो ?"

"प्रतिदिन एक निश्चित समय पर निश्चित अवधि तक यह सहज आसन मार कर बैठने का अभ्यास करो। यह तुम्हारी तैयारी में खूब मदद पहुँचावेगा। सावधानी के साथ क्रोध और काम को अपने वश में रखने की कोशिश करना।"

विशुद्धानन्द जी यह कह कर पद्मासन की पद्धति मुझे दिखाने लगे। मुझ को तो वह पहले ही से आता था। मेरी समझ में नहीं आया कि इस आसन को, जिसमें पैरों को टेढ़ा मेढ़ा करना पड़ता है, वे सहज आसन क्यों बताते हैं। मैं बोल उठा :

"कौन यूरोपियन युवा यह जटिल आसन जमा सकेगा ?"

"प्रारंभ में कुछ कठिनाई अवश्य होगी। हर दिन सुबह-शाम अभ्यास

करने से यह बहुत ही आसानी से सीखा जा सकेगा। सबसे मुख्य बात यही है कि योग के अभ्यास के लिए एक निश्चित समय ठीक कर लें और उससे किसी हालत में विचलित न होवे। शुरू शुरू में पाँच ही मिनट काफ़ी हैं। एक महीने के बाद इस समय को दस मिनट तक बढ़ा सकते हो, और तीन महीने बाद बीस मिनट तक। यों ही धीरे धीरे अभ्यास की अवधि को बढ़ाते जाना होगा। ध्यान रहे कि मेरुदंड को सीधा रक्खें। इससे साधु को एक शारीरिक समता और मानसिक शांति प्राप्त होती है।"

"तो आप हठयोग का उपदेश कर रहे हैं ?"

"हाँ, यह न समझना कि राजयोग हठयोग से किसी तरह बेहतर है। जैसे हर मनुष्य सोचता और विचारता है और साथ ही कार्य भी करता है उसी तरह हमें जीवन के दोनों पहलुओं को शोधित करना होगा। शरीर का मन पर और मन का शरीर पर असर होता रहता है। किसी क्रियात्मिका उन्नति में हम इन दोनों को एक दूसरे से कदापि अलग नहीं कर सकते।"

मुझे फिर से प्रतीत होने लगा कि ये महाशय मेरी इस तहकीकात को भीतर ही भीतर पसंद नहीं करते। वहाँ के वातावरण में ही एक प्रकार की निराशा और मानसिक जड़ता समा गई थी। मैंने निश्चय कर लिया कि शीघ्र ही उनसे रुखसत लूँ, लेकिन एक आखिरी प्रश्न पूछे बिना नहीं।

"क्या आपने जान लिया है कि जीवन का कोई ध्येय, कोई उद्देश्य सच-मुच ही है ?"

मेरे भोलेपन पर उनके चेलों की गंभीरता एक मुसकान में परिणत हो गई। ऐसा प्रश्न कोई नास्तिक ही, कोई अनजान पश्चिमी ही पूछ सकता है। वेद आदि सब हिंदू धर्म ग्रंथ क्या एक कंठ से नहीं बता रहे हैं कि ईश्वर ने अपने किसी उद्देश्य की पूर्ति के वास्ते यह सारा संसार सिरजा है और उसी वास्ते इसका पालन भी कर रहा है।

विशुद्धानन्द जी ने मेरे प्रश्न का कोई उत्तर नहीं दिया। पं० गोपीनाथ कविराज जी की ओर उन्होंने एक बार ताका तो वे जवाब देने लगे ;

"क्यों नहीं ! ईश्वर की इस सृष्टि का सचमुच ही एक उद्देश्य है। हम सबों को चाहिए कि हम आध्यात्मिक पूर्णता हासिल कर लें और ईश्वर से एक हो जावें।"

फिर एक घंटे तक कमरे में सन्नाटा था। विशुद्धानंद जी ने एक मोटी किताब उठा ली और उसके बड़े बड़े पन्ने उलटने लगे। उसकी जिल्द पर बँगला में कुछ छपा हुआ था। कोई कोई चेले ध्यान करने लगे, कोई सोने लगे और कोई शून्य दृष्टि से ताकने लगे। मुझ पर भी एक प्रकार की बेहोशी छाने लगी। मुझे प्रतीत होने लगा कि देर तक यहीं ठहरूँ तो या तो मैं सोने लगूँगा या किसी प्रकार की बेहोशी का शिकार बनूँगा। अतः मैंने अपनी सारी शक्तियों को समेट लिया और विशुद्धानंद जी को प्रणाम करके उनसे छुट्टी ली।

× × ×

हलके भोजन के बाद इस विचित्र शहर की, जो महात्माओं तथा बदमाशों दोनों को समान रूप से आश्रय देता प्रतीत हुआ, टेढ़ी-मेढ़ी गलियों में चल पड़ा। इस नगरी के जनाकीर्ण आवास देश भर के भक्तजनों को आकृष्ट करते हैं। साथ ही नोच-खसोट करने वाले पंडों के अतिरिक्त बदमाशों और गुंडों के लिए यह खास अड्डा ही बन गया है।

गंगा जी के किनारे पर मंदिरों की घंटियाँ तुमुल नाद करती हुई भक्तों को सांध्यकालीन प्रार्थना की बेला बता रही थीं। भूरे वर्ण के आकाश पर रात का अँधेरा झपटा ही चाहता था। साँझ के वक्त की और भी कई तरह की आवाज़ें उस समय नादमय वायुमंडल को गुँजा रही थीं। एक ओर मुअज़्ज़नों की अजान की पुकार अपने अनुयाइयों को नमाज़ के लिए बुला रही थी।

मैं अति प्राचीन और अत्यंत श्रद्धा से पूजित गंगाजी के तट पर बैठकर मंद पवन की हिलकोरियों से अलस भाव से झूमने वाले वृक्षों की मर्मर ध्वनि सुनने लगा।

इतने में भस्म रमाये कोई साधु मेरे निकट आये। वे थोड़ी देर वहीं रुके। मैं उनकी ओर ताकने लगा। वे कोई महात्मा अवश्य थे क्योंकि उनकी आँखों से कोई अलौकिक ज्योति चमक रही थी। मैं समझने लगा कि जितना मैंने चाहा उस कदर इस प्राचीन भारत को समझ लेने में मुझे सफलता हाथ नहीं लगी। अचरज में डूब कर यह सोचते सोचते कि प्राच्य से कोसों दूर रखने वाली प्राच्य सभ्यता की अगाध गहराई को हम कभी पार कर सकेंगे या नहीं, मैंने अपनी जेब में हाथ डाला और मेरी अंगुलियाँ कुटकर पैसों की खोज करने लगीं। उन महाशय ने प्रशांत उदात्तता के साथ भिक्षा ग्रहण की, अपने ललाट को हाथ से छू कर नमस्कार किया और चले गये।

आकाश की किसी शक्ति के सहारे करिश्मा कर दिखाने वाले, मरी हुई चिड़ियों में, कुछ मिनट के लिये ही सही, जान फूँक कर उनमें फड़फड़ाते हुये उड़ने की ताकत पैदा करने वाले, महान् जादूगर विशुद्धानंद जी की रहस्यपूर्ण जीवन पहेली के बारे में मैंने बहुत दिन ध्यान से मनन किया। हर प्रकार ठीक और सही जँचने वाले सौर विज्ञान के बारे में उनका संक्षिप्त बयान मुझे रुचा नहीं। कोई मूर्ख ही यह सोच सकता है कि आज-कल के नवीन विज्ञान ने सूर्य रश्मि में रहने वाली सारी शक्तियों का पूर्ण रूप से आविष्कार नहीं किया है। किन्तु इस मामले में कुछ ऐसी बातें ज़रूर थीं जिनके कारण मुझे कई प्रकार के समाधान ढूँढ़ने पड़े।

पश्चिम भारत में भी मुझे दो योगियों की खबर मिली थी जो विशुद्धानंद जी की करामातों से एक को, अर्थात् हवा से कई प्रकार के इत्र पैदा करना, दिखा सकते थे। मेरी बदकिस्मती थी कि पिछली सदी के अन्त में उनकी मृत्यु हो गयी। तिस पर भी जिस ज़रिये से मुझे उनकी खबर मिली थी वह ज़रूर विश्वसनीय था। दोनों के बारे में यह कहा गया था कि उनकी हथेली पर कोई सुवासित तैल जैसी वस्तु पैदा हो जाती थी मानो वह उनके ही बदन से चू गई हो। कभी कभी उसका परिमल इतना तेज़ रहता था कि सारा कमरा उस सुगंधि से खूब ही महक उठता।

यदि विशुद्धानंद जी भी इसी प्रकार की विभूति रखते हों तो सहज ही आवशी शीशे से कोई काम करते रहने का बहाना करके रूमाल पर अपने हाथ के तेल की खुशबू चढ़ा सकते हैं। गरज़ यह कि सूर्य की किरणों को काँच के द्वारा केंद्रीभूत करना आदि सभी बातें शायद हाथ के जादू के तेल को छिपा कर रूमाल पर चढ़ाने का बहाना भर तो नहीं था? मेरी इस शंका को यह बात भी पुष्ट कर रही थी कि अब तक एक भी शिष्य को उन्होंने यह मर्म नहीं सिखा पाया है। बहुत दिनों से बेशकीमती प्रयोग-शालाओं की रचना करवाते हुए उन बेचारे चेलों की आशाओं को प्रोत्साहित तो नहीं रक्खा है? उस प्रयोगशाला की रचना भी अब रुक गई है क्योंकि आवश्यक पैमाने के काँच के तख्ते हिंदुस्तान में प्राप्त नहीं हो सकते। अतः वे चेले आशा ही आशा में प्रतीक्षा करते हुए दिन गुज़ार रहे हैं।

यदि सूर्य की रश्मि को केंद्रस्थ करना आदि, आँखों में धूल झोंकने वाला ढकोसला भर था, तो विशुद्धानन्द जी ने वह इत्र क्यों कर पैदा किया था? शायद इस प्रकार की सुगंधि पैदा करना भी एक विभूति ही है और अभ्यास से यह ताक़त भी हाथ लग सकती है। यद्यपि मैं उस जादूगर की करामातों को किसी ठीक और सही सिद्धान्त का प्रतिपादन करके नहीं समझा सका हूँ तब भी उनके प्रतिपादित सौर-विद्या के सिद्धांत का विश्वास करने की कोई आवश्यकता नहीं मालूम होती। फिज़ूल की इस माथा-पच्ची से क्या लाभ था? मेरा तो काम लेखक का है। जो बातें मेरे देखने में आयीं उनका ब्यौरे-वार बयान करना ही मेरा कर्तव्य है, न कि असमाधेय बातों का समाधान ढूँढ़ते रहना। भारतीय जीवन का एक ऐसा पहलू है जो हमेशा के लिए पोशीदा ही रह जायगा क्योंकि यदि कभी इस मोटे, तगड़े नाटे जादूगर या उनके किसी चुने हुए चेले ने दुनिया के सामने अपनी अद्भुत विभूतियों का प्रदर्शन भी किया और चकित वैज्ञानिकों के ध्यान को खींच भी लिया तब भी शायद ही इस रहस्य का उद्घाटन किया जायेगा। मेरा विश्वास है कि कम-से-कम मैंने तो इसी प्रकार से उनके चरित्र को समझा है।

मेरे दिल में एक आवाज़ गूँज उठी: उन्होंने क्योंकर एक चिड़िया को,

जो कुछ त्राण के लिए ही, जिला दिया ? सिद्ध पुरुष का अपनी इच्छा के अनुसार ही अपने जीवन के दिनों को बढ़ा सकने की बात कहाँ तक ठीक है ? क्या सचमुच ही कुछ प्राच्य वासियों ने चिर-जीवन के मर्म का आविष्कार कर डाला है ?

इस आंतरिक प्रश्न से मुँह मोड़ कर मैं आसमान की ओर ताकने लगा। उस अनंत तारांकित आकाश की अचिंत्य महत्ता को देखकर मैं दंग रह गया। इस गरम देश के विनील आकाश के ताराओं की सी शुभ्र ज्योति मुझे और कहीं नहीं मिली। मैं निश्चल दृष्टि से उन टिमटिमाने वाले ज्योति बिंदुओं की ओर ताकता ही रहा। जब फिर जाग कर अपने समान प्राणियों तथा जड़ आवासों के अव्यवस्थित झुंड की ओर निगाह दौड़ाई तो इस दुनिया के गुप्त रहस्य का मुझ पर गहरा असर पड़ने लगा। स्थूल, प्रत्यक्ष और गोचर साधारण चीज़ें बहुत ही शीघ्र मिथ्यामय प्रतीत होने लगीं। नदी तल पर धीरे धीरे अठखेलियाँ करती हुई चलने वाली नौकाएँ तथा इधर-उधर चलने-फिरने वाली छायामय मूर्तियाँ और कहीं कहीं पर चमकने वाली उज्ज्वल दीप-मालाएँ सभी मिलकर उस रात के सारे वायुमंडल को किसी जादूभरे स्वप्न साम्राज्य में लिये जा रही थीं। भारत का वह प्राचीन दार्शनिक सिद्धांत की यह सारा विश्व जलमरीचिकावत् मिथ्याभासमय है मेरे मन में जो वस्तु-सत्ता के ज्ञान के लिए पागल हो रहा था, पैठ कर उसकी जोरों के साथ पुष्टि करने लगा। शून्य की अथाह गहराई में इतनी तेज़ घूमने वाली इस पार्थिव संसार की सबसे अनूठी अनुभूतियों के लिए मैं तैयार होने लगा।

लेकिन किसी मनुष्य ने किसी जी उबाने वाले भारतीय गाने की टेक को उच्च स्वर से अलाप कर मेरी इस स्वर्गीय स्वप्निक अनुभूति को बड़ी ही कर्कशता से ठेस पहुँचायी। मैं उस अनिश्चित सुखों और अचिंतित दुःख के मिश्रित जाल का, जिसको मनुष्य जीवन कहते हैं, फिर से प्रेक्षक बना।

१२

ज्योतिष के चमत्कार

चारों ओर उज्ज्वल धूप छाई हुई थी। मंदिरों के ऊँचे कलश विमल प्रकाश में कौंध रहे थे। गङ्गा जी में स्नान करने वालों का तुमुल नाद आसमान को गुँजा देता था। बनारस के घाटों की यह कल्लोल भरी प्राच्य शोभा मेरी अजनबी आँखों को बिलकुल नई प्रतीत हो रही थी।

एक भारी नाव में, जिसका अग्रभाग काले नाग का सा था, अलस भाव से मैं बहाव की ओर बढ़ता जाता था। मैं नाव की छोटी कोठरी की छत पर बैठा हुआ था और तीन मल्लाह नीचे बैठ कर डाँड़ चला रहे थे।

मेरे साथ बंबई का एक व्यापारी भी था; उसने मुझसे कहा—"मैं जब बंबई लौट जाऊँगा तो अपने कारबार से अलग हो जाऊँगा।" वह बड़ा ही धार्मिक पुरुष प्रतीत हो रहा था। स्वर्ग में भोग करने के लिए पुण्य की राशि इकठी करते हुए व्यवहार में दक्ष होने के कारण, बैंक में काफी पूँजी इकठा करके रखना वह नहीं भूला था। हम दोनों का एक सप्ताह का परिचय था। वह सुशील, दयावान और मिलनसार था।

अपनी बात को और भी समझाते हुए उसने कहा—"सुधी बाबू की भविष्यवाणी के अनुसार ही उन्हीं की बतायी हुई अवस्था में मैं व्यापार से निवृत हो रहा हूँ।"

इस विचित्र बात से मेरा दिल उछल कर ओठों तक आ गया। उत्सुकता के साथ मैंने पूछा—"सुधी बाबू? वे कौन हैं?"

"आप नहीं जानते। वे बनारस भर में बहुत ही चतुर और निपुण ज्योतिषी हैं।"

मैं कुछ तिरस्कार के साथ गुनगुनाया—"एक ज्योतिषी!"

मैंने इन्हीं ज्योतिषियों के झुंड को बम्बई के मैदान की धूल में बैठे देखा

था। कलकत्ते की ऊमस भरी दूकानों में भी इनके भाई-बन्दों को बैठे पाया था। जहाँ जहाँ यात्री गुज़रते हैं वहाँ, चाहे वह कैसा ही छोटा कसबा क्यों न हो, मैंने इनको इकट्ठे होते देखा है। उनमें बहुतेरे गंदे रहते हैं और अपने बालों की भद्दी जटाएँ बनाये रखते हैं। अन्धविश्वास और अज्ञान की अमिट मुद्रा उनके चेहरों पर अंकित रहती है। उनका पेशा तेल से चिकनी दो तीन पुरानी जिल्दें और कुछ विचित्र चिह्न वाली एक जंत्री से चल जाता है। वे खुद तो लक्ष्मी की कृपाकटाक्ष से वंचित रहते हैं और दूसरों के भाग्य परखने की इनकी उत्सुकता देख कर प्रायः मेरे मन में तिरस्कार के भाव उठे हैं।

मैं धीमी आवाज़ में, मानो सलाह दे रहा था, बोला—"तुम्हें देख कर मुझे आश्चर्य होता है। व्यापार-वाणिज्य करने वाले को सितारों के भरोसे बैठे रहना और और ज्योतिषियों की मीन-मेख का विश्वास करना क्या खतरनाक नहीं है ? तुम नहीं सोचते कि सांसारिक अनुभव ही इसकी अपेक्षा एक उत्तम मार्गदर्शक है ?"

सेठ जी ने मेरी ओर देख कर सहनशीलता के साथ मुस्कराते हुए कुछ सिर हिलाया।

"मेरे बारे में जो वह भविष्यवाणी की गयी है उसे आप कैसे समझ सकेंगे। आप को मालूम हो कि मैं चालीस से कुछ ऊपर का हूँ। किसने सोचा होगा कि मैं इतनी छोटी उम्र में कारोबार से हाथ खींच लूँगा।"

"शायद संयोग ही इसका कारण हो ?"

"खैर मैं आप को एक छोटा किस्सा सुना दूँ। कुछ साल हुए लाहौर में एक बड़े ज्योतिषी जी से मेरी भेंट हुई थी। उनकी सलाह पर बड़े पैमाने के एक कारोबार में मैंने हाथ लगाया। उस समय एक बड़े सौदागर का और मेरा एक साथ साझा था। मेरे साझेदार ने मुझे सचेत किया कि बात जोखिम की है। अतएव वह मुझसे सहमत नहीं हुआ। इसी बात पर हम दोनों का साझा टूट गया। मैंने अकेले ही कारोबार जारी रक्खा। उसमें मुझे आश्चर्य-जनक सफलता हाथ लगी और मेरे पास कुछ पूँजी भी इकट्ठी हो गई।

सोचिये तो सही कि यदि मुझे लाहौर के ज्योतिषी ने ज़ोर देकर बढ़ावा न दिया होता तो मैं भी इस काम में हाथ डालते डर गया होता।"

"तो क्या आप का यही विश्वास है कि..."

मेरे साथी ने मेरा वाक्य पूरा कर दिया—"हमारे जीवन को चलाने वाली एक नियति है और तारात्रों के स्थान आदि से उस नियति का पता भी लग सकता है।"

"जिनसे मेरी भेंट हुई है वे ज्योतिषी तो निठल्लू अनाड़ी और जाहिल दिखाई पड़े। उनको देखकर मुझे यह विश्वास नहीं होता कि किसी को भी वे उपयोगी सलाह कैसे दे सकते हैं।"

"देखिये तो, आप भ्रम में पड़ कर सुधी बाबू जैसे पंडित और विद्वान ज्योतिषी को भी उन मूर्खों की श्रेणी का कैसे मान लेंगे? वास्तव में वे मूर्ख हैं भी ऐसे ठग और छलिये। लेकिन सुधी बाबू की बात कुछ और है। वे बहुत बुद्धिमान ब्राह्मण हैं। उनका अपना एक बड़ा भारी मकान है। वर्षों उन्होंने इस विषय का गहरा अध्ययन किया है और उनके पास अनेक अपूर्व ग्रंथ भी हैं।

एकबारगी मुझे प्रतीत हुआ कि मेरा साथी मूर्ख नहीं है। वे उस ज़माने के उन नई रोशनी वाले हिंदुओं के समान हैं जो उत्साही और कार्यदक्ष हैं और जो पश्चिमी सभ्यता के उत्तम-से-उत्तम, नये-से-नये आविष्कारों से लाभ उठाने से हाथ नहीं खींचते। कुछ बातों में वे मुझ से भी कुछ कदम आगे बढ़ गये हैं। उनके पास नाव ही में एक चल-चित्र वाला केमरा था जब कि मेरे पास केवल एक साधारण जेबी केमरा ही था। उनके नौकर ने, जो सफ़र में काम देने वाली बरफ़ की बोतल जैसी बढ़िया चीज़ न रखने की मेरी शोचनीय लापरवाही पर मानो उलाहना दे रहा था, बोतल से एक प्याला शरबत ढाल दिया। उनकी बातों से मुझे मालूम हुआ कि बंबई में रहते वक्त टेलीफोन से वे इतना काम लिया करते हैं जितना कि मैंने यूरोप में कभी भी नहीं लिया है। तिस पर भी उनका ज्योतिषियों पर ऐसा विश्वास! उनके स्वभाव की इन बेतुकी बातों को देखकर मैं चकित हो गया।

"भाई, हम एक दूसरे को अच्छी तरह समझ लें। आप क्या इस सिद्धांत के कायल हैं कि वे तारे, जो भूमंडल से कहीं दूर पर हैं—इतनी दूरी पर जिसका कुछ ख्याल तक नहीं किया जा सकता—हर एक मानव के जीवन और हर एक सांसारिक घटना पर अपना प्रभाव डालते हैं और उनका नियमन करते हैं ?"

सेठ ने शांतभाव से उत्तर दिया—"जी हाँ।"

मुझे कुछ भी नहीं सूझता था कि मैं क्या कहूँ। मैं एकदम हैरत में आ गया था। सेठजी कुछ नरमी से बोलने लगे :

"महाशय, आप ही जाकर क्यों नहीं परख लेते। जाकर देखिये की सुधी बाबू आपके बारे में क्या क्या बता सकते हैं। मुझे भी उन झूठे छलियों से कोई प्रेम नहीं है। किन्तु सुधी बाबू की सचाई पर मेरी श्रद्धा और विश्वास है।"

"पेशगोई को एक पेशा बना लेने वालों पर मेरा घोर अविश्वास है। तो भी आपकी बात का मैं विश्वास करता हूँ। आप इस ज्योतिषी से मेरा परिचय करा देंगे ?"

"बेशक। कल सुबह मेरे यहाँ नाश्ता कीजिये। फिर दोनों एक साथ उनसे मिलने जावेंगे।"

हमारी नाव अथाह जल पर तैरती जा रही थी। आँखों के सामने आलीशान मकानों, महलों, पुराने मन्दिरों तथा फूल चढ़ाये हुए छोटे छोटे पूजा-गृहों आदि का एक निराला दृश्य छाया हुआ था। स्नानार्थियों से खचाखच भरी हुई विशाल घाटों की पथरीली सीढ़ियाँ सामने दिखाई देती थीं। बड़ी उदासीनता के साथ अलस भाव से हमारी नाव अठखेलियाँ करती आगे बढ़ रही थी। मेरा मन इस विचार में डूब गया था कि यद्यपि विज्ञान अंधविश्वास की बढ़ती को रोकने का उचित ही दम भरता है, तथापि मुझे अभी सीखना है कि वैज्ञानिक के रुख का भी कहीं न कहीं अंत हो जाता है। भारत के सभी लोग नियतिवाद के कायल हैं और उनके समान विश्वास रखने वाले मेरे साथी यदि इस नियति के अस्तित्व के प्रमाण में अचूक और अभ्रान्त

घटनायें पेश कर सकते हैं, तो मुझे ज़रूर चाहिए की मैं उनकी खुले दिल से समीक्षा करूँ !

× × ×

दूसरे दिन मेरे सुशील साथी मुझे एक पुरानी तंग गली में ले गये। गली के दोनों ओर चपटी छतवाले मकान झुंड-के-झुंड खड़े थे। हम एक पुराने पथरीले घर पर रुक गये। वे मुझे एक तंग, नीची छतवाली राह से ले गये। फिर हम कई पत्थर की सीढ़ियों पर, जो आदमी के बदन की जितनी चौड़ी थीं, चढ़ कर जाने लगे। तब एक तंग कमरा आया। सामने एक बरामदा था। बरामदे के उस ओर एक विशाल आँगन था। उसी आँगन के चारों ओर घर बना हुआ था।

वहाँ एक जंजीर से एक कुत्ता बँधा हुआ था। हमें देखकर वह ज़ोर से भूँकने लगा। बरामदे में एक कतार में बड़े बड़े गमले रक्खे हुए थे। हर एक में एक न एक प्रकार का क्रोटन पौधा लगा हुआ था। अपने साथी के पीछे पीछे एक अँधेरे कमरे में मैंने प्रवेश किया और साथ ही कुछ छोटे छोटे पत्थरों के टुकड़ों से मेरा पाँव अटक गया। मैं गिरते गिरते बच गया। नीचे देखा तो मालूम हुआ कि बरामदे के फर्श पर जैसी मिट्टी पड़ी हुई थी वैसी ही मिट्टी यहाँ भी थी। मुझे अचरज हुआ कि क्या तारामंडल की खोज से थक कर ये ज्योतिषी कभी कभी पौधे लगाकर अपना दिल बहलाते हैं।

मेरे साथी ज्योतिषी जी को पुकारने लगे। उन पुरानी दीवारों से उस नाम की प्रतिध्वनि गूँज उठी। हम दो तीन मिनट और ठहरे।

मैं सोचने लगा कि शायद हमारा आना व्यर्थ हुआ कि इतने में ऊपर की छत से किसी के चलने की आहट मिली। शीघ्र ही किसी की पदध्वनि हमारी ओर आती सुनाई दी।

दरवाज़े पर हमें ज्योतिषी जी की पतली मूर्ति एक हाथ में एक लैम्प लिये और दूसरे में चाबियों के गुच्छे को झनझनाते हुए दिखाई दी। उस कमरे की धुँधली रोशनी में कुछ मिनट तक बात-चीत हुई और फिर ज्योतिषी

जी ने और एक दरवाज़ा खोल दिया। उन्होंने दो भारी परदे हटाकर छज्जे की लम्बी खिड़कियों के किवाड़ खोल दिये।

एकबारगी खुली खिड़कियों से रोशनी भीतर घुस पड़ी। उस रोशनी से ज्योतिषी जी का मुख और भी साफ़ नज़र आने लगा। उनकी मूर्ति प्रेतलोक की सी प्रतीत हुई। वे हाड़-मांस वाले आदमी मालूम नहीं होते थे। इसके पूर्व मैंने किसी को विचार और विमर्श करते करते इतना फीका और इतना मरीज़ सा बनते नहीं देखा है। उनकी मृत्यु की सी चितवन, बहुत ही दुबला पतला शरीर, संसार भर से निराली धीमी चाल, सभी ने मिलकर एक जादू फेर दी। इस विचार को उनकी आँखों की सफ़ेदी और भी अधिक पुष्ट कर रही थी क्योंकि उनकी सफ़ेदी उनकी पुतलियों की कजली से एकदम निराली दिखाई पड़ती थी। वे एक बड़ी मेज़ के सामने बैठ गये। मेज़ पर कई प्रकार के काग़ज़ अंधाधुंध पड़े हुए थे। मुझे मालूम हुआ कि वे अच्छी तरह अंग्रेज़ी बोल सकते हैं, लेकिन बहुत कहने सुनने पर ही दुभाषिए की मदद के बिना मुझसे सीधे, बात-चीत करने को वे राज़ी हुए।

मैंने कहा—"आप यह स्पष्ट रूप से समझ जाइये कि मैं जिज्ञासु हो कर आया हूँ, विश्वासी हो कर नहीं।"

उन्होंने अपना दुबला सिर हिला दिया। कहा—"हाँ, मैं तुम्हारी जन्मपत्र बना दूँगा। तब कहना कि तुम खुश हो या नहीं।"

"आपका मेहनताना क्या है?"

"कुछ भी निश्चित नहीं है। आदमी अच्छी औकात के हों तो ६० रु० तक देते हैं और कोई २० रु० ही। तुम्हारी खुशी, जो चाहो सो दो।"

मैंने पहले भविष्य की अपेक्षा भूत को जानने की उनकी ताकत परख लेने की अपनी चाह प्रकट की। यह उनको स्वीकार था।

थोड़ी देर तक वे मेरी जन्म तिथि के बारे में कुछ हिसाब लगाने में लगे रहे। लगभग दस मिनट बीते कि उन्होंने फर्श की ओर झुक कर एक अस्तव्यस्त पड़े हुए पुराने काग़ज़ों और पांडुलिपि वाले पन्नों के ढेर को छान

डाला। अन्त को उनमें से कुछ पुराने काग़ज़ों का एक छोटा बंडल निकाला। एक काग़ज़ के तख्ते पर एक अजीब चित्र खींच कर उन्होंने कहा :

"जब तुम जन्मे थे उस समय की राशियों की यह स्थिति थी। ये संस्कृत श्लोक चित्र की हर एक बात पर रोशनी डालते हैं। अब मैं बता दूँ कि सितारे तुम्हारे बारे में क्या किस्सा सुना रहे हैं।"

बड़े ग़ौर के साथ उन्होंने चित्र को परखा और अपने स्वभाव के ठीक अनुकूल, भावशून्य धीमी आवाज़ में बोले—"तुम पश्चिम के एक लेखक हो! क्या यह ठीक है?"

मैंने स्वीकार किया।

उसके बाद वे मेरी किशोरावस्था और जवानी की कथा सिलसिलेवार सुनाने लगे। मेरे बचपन की कुछ खास घटनाओं का उन्होंने ज़िक्र किया। मेरे भूत जीवन के बारे में उन्होंने कुल सात बातें बतायीं। उनमें पाँच प्रायः सही निकलीं। बाकी दो एकदम गलत थीं। अतः मैं उनकी अच्छी क़द्रदानी कर सका। कहाँ तक उनकी बातें ठीक निकलेंगी, मुझे एक ढंग से मालूम हो गया। उनकी ईमानदारी में कोई शक न था। मुझे विश्वास हो गया कि वे भूल कर भी धोखा नहीं दे सकते। सर्वप्रथम परीक्षा में बारह आने की सफलता ही इस बात की काफ़ी गवाह है कि हिंदू ज्योतिष शास्त्र में कोई गपोड़-बाज़ी नहीं है, उसकी अच्छी गवेषणा और खोज होनी चाहिये। उनकी उस आंशिक सफलता ने यह भी प्रकट कर दिया कि ज्योतिष शास्त्र एकदम ठीक और अभ्रान्त शास्त्र नहीं है।

एक बार फिर सुधी बाबू अपने बिखरे काग़ज़ों में तल्लीन हो गये और मेरे चरित्र का काफ़ी सफलता के साथ बयान करने लगे। बाद को मेरी उन मानसिक शक्तियों का उन्होंने जिक्र किया जिनके कारण मुझे एक बड़ा ही अनुकूल पेशा हाथ लगा। जभी वे अपना सिर उठा कर मुझसे पूछते—'क्यों ठीक है न?' मैं उनके विरुद्ध मुँह खोल नहीं सका।

उन्होंने अपने काग़ज़ों को उलट पलट दिया। मूक होकर पञ्चांग को और से देखा और भविष्य की कथा बखानने लगे :

"तुम्हारे लिए संसार ही घर होगा। तुम बड़े लम्बे सफ़र करोगे। तो भी अपनी लेखनी नहीं छोड़ोगे।"

इसी सिलसिले में वे पेशगोई करते गये। मैं किसी भाँति उनकी पेशगोइयों को परख नहीं सकता था, अतः मैंने उनके सच होने या न होने की चिंता छोड़ दी। *

अपनी बात समाप्त करते हुए उन्होंने मुझसे पूछा कि मुझे संतोष मिला या नहीं। इस विचित्र विज्ञान के द्वारा मेरी चालीस बरस की ज़िंदगी का उन्होंने काफ़ी सफलता के साथ हाल बताया और मेरे मानसिक जगत की मेरे लिए तसवीर खींचने की कोशिश में करीब करीब उन्हें पूरी कामयाबी हाथ लगी। अतः टीका-टिप्पणी करने का जो मेरा हौसला था वह एकदम जाता रहा।

मेरी इच्छा हुई कि अपने ही दिल से पूछ लूँ कि 'क्या यह आदमी यों ही केवल अन्दाज़ तो नहीं लगा रहा है ? होशियारी के साथ केवल अटकलपच्चू बातें तो नहीं कर रहा है ?' किन्तु मुझे दिल से स्वीकार करना ही पड़ता है उनकी पेशगोइयों का मेरे ऊपर काफ़ी असर पड़ा। तो भी उन बातों का सच्चा मूल्य क्या है इसे काल चक्र ही साबित कर सकता है।

कर्मवाद के गूढ़ प्रश्न की ओर हम पश्चिमियों का जो रुख है उसको किसी घरौंदे के समान ही एकदम ढहा देना होगा ? मैं खिड़की के पास गया और जेब के रुपयों को झनझनाते हुए मैंने सामने वाले मकान पर निगाह दौड़ायी। अन्त को अपनी जगह पर लौट कर मैंने ज्योतिषी जी से अपना संशय प्रकट किया। उन्होंने बड़ी नरमी से जवाब दिया—"आप इस बात को

* उनकी पेशगोई की मैंने अपने शक्कीपन के कारण अनहोनी ठहरा कर खूब ही दिल्लगी उड़ायी, लेकिन वह एकदम ठीक निकली। एक घटना तो बतायी हुई तारीख पर घटी। अन्य बातों की सत्यता का निरूपण काल ही करेगा।

एकदम असंभव क्यों मानने लगते हैं कि दूर के तारे आदमियों के जीवन पर असर डालें। लहरों के ज्वार-भाटे पर दूर के चन्द्र का क्या प्रभाव नहीं पड़ता? स्त्रियों के शरीर में हर महीने एक परिवर्तन नहीं हो रहा है? सूर्य के उदय न होने से मानवों में मायूसी और उदासी अधिक नहीं छा जाती?"

"जी हाँ, लेकिन ये बातें ज्योतिष के दावे को कैसे साबित करेंगी? बृहस्पति या मंगल को इस बात की तनिक भी चिन्ता क्यों रहे कि किसी मनुष्य की नाव डूबेगी या नहीं?"

उन्होंने अपनी प्रशांत दृष्टि मेरी ओर फेरी और बोले :

"यही बेहतर है कि आप इन ग्रहों को आसमान में रहने वाले चिह्न मात्र मान लें; वास्तव में हमारे ऊपर जो प्रभाव पड़ता है वह उन ताराओं का नहीं है, वह तो हमारे अपने कर्मों का है। ज्योतिष शास्त्र तर्क की कसौटी पर खरा निकलेगा। पर यह बात तब तक आप पर प्रकट नहीं हो सकती जब तक कि आप आवागमन और जन्म के पीछे लगे रहने वाले कर्म नियम को मान न लें। अपने कुकर्मों का फल पाने से कोई एक जिन्दगी में बच भले ही जाय, पर फिर भी उसे उनके दंड को दूसरे जन्म में जरूर ही भुगतना पड़ेगा। हो सकता है एक जन्म में अपने सुकृत का फल न भी मिल जाय पर दूसरे जन्म में वह उसका भागी अवश्य बनेगा। जब तक जीव सिद्धा-वस्था को न पहुँच जाय तब तक उसका इस प्रकार की जन्म-मृत्यु परंपरा से किसी भी प्रकार से निस्तार नहीं हो सकता। इस सिद्धान्त को यदि स्वीकार न करें तो हमें भिन्न भिन्न लोगों के भोग-भाग्य के अनियत हेर-फेर को केवल अंध-भाग्य और आकस्मिक संयोग का फल मात्र बताना पड़ेगा।

क्या न्यायप्रिय ईश्वर कभी ऐसा अंधेर देख सकता है? कभी नहीं। हमारा विश्वास है कि मरने पर आदमी का चरित्र, उसकी कामनायें, विचार आदि नष्ट नहीं होते। दूसरा कलेवर जब तक न मिल जाय वे रहेंगे ही। और अपनी अनुकूल योनि पाने पर वे नवजात शिशु के रूप में दुनिया में प्रवेश करेंगे। पूर्व जन्म में किये सुकृत या दुष्कृत का उचित

पुरस्कार या दंड इस जन्म में नहीं तो आगामी जन्मों में अवश्य मिलेगा। हम नियति की सार्वभौमिकता को इसी प्रकार समझाते हैं। जब मैंने यह कहा कि तुम्हारा जहाज़ टूट जायगा और अपने जीवन में जलमय समाधि प्राप्त होने की भयानक संभावना का तुम्हें सामना करना पड़ेगा तो जानो कि भगवान ने अपने गुप्त न्याय के अनुसार तुम्हारे जीवन में यही निर्धारित किया है, और यह भी पूर्व जन्म में किये हुए किसी कर्म के फल स्वरूप। ग्रहों के प्रभाव से तुम्हारा जहाज़ नहीं टूटेगा वरन् अपने दुर्निवार कर्म संचय के अवश्यम्भावी परिणाम के कारण। ग्रह और उनकी स्थिति से तुम्हारी नियति का केवल पता लगता है; ऐसा क्यों होता है मैं कह नहीं सकता। किसी एक आदमी के दिमाग में ज्योतिष शास्त्र का ईजाद करने की ताकत कभी नहीं रही होगी। किसी ने इस शास्त्र की सृष्टि नहीं की होगी। पुराने ज़माने से वह चला आ रहा है; लोक संग्रह के लिए महर्षियों ने इस शास्त्र का, पुराने ज़माने में, उन्मीलन किया होगा।''

उनकी बातें सच्ची भास रही थीं। क्या कहूँ सो मुझको नहीं समझ पड़ा। वे आदमी की आत्मा को, आदमी के सर्वस्व को जड़ नियति के सिपुर्द कर रहे थे। लेकिन पश्चिम का कोई भी व्यक्ति 'संकल्प की स्वतंत्रता' के सिद्धान्त जैसे अमूल्य रत्न से वंचित रहना कब पसन्द करेगा? गति प्रधान, क्रियाशक्ति से पूर्ण पश्चिम का कौन निवासी इस विश्वास को सुनकर फूले अंग न समायेगा कि उसकी हर बात का निर्णय उसका 'स्वाधीन संकल्प' नहीं कर रहा है वरन् केवल एक जड़ नियति। स्वाप्निक जगत में रहने वाले, ज्योतिर्मंडल के दूरवर्ती चिह्नों की खाक छानने वाले इस दुबले व्यक्ति के ज़र्द चेहरे की ओर अचरज में डूबे हुए मैंने एक बार ताका और कहा :

''आप जानते हैं कि दक्षिण के कुछ प्रान्तों में पुरोहितों के बाद ज्योतिषी का भाग्य खूब चमकता है? उनसे पूछे बग़ैर कोई भी बड़ा काम नहीं किया जाता। हम विलायतियों के लिए यह हँसी की बात मालूम होगी क्योंकि भविष्यवाणियों से हमें कोई प्रेम नहीं होता। हम अपने को स्वतंत्र समझना पसन्द करते हैं न कि दुर्निवार नियति के हाथों की बेबस कठपुतली।''

कंधे झाड़कर ज्योतिषी ने कहा :

"हमारे यहाँ 'हितोपदेश' में कहा गया है कि भाग्य में जो लिखा है उसे कोई नहीं बदल सकता।"

ज्योतिषी जी कुछ देर तक अपने शब्दों का असर देखने के लिए रुके, फिर बोले :

"तुम कर क्या सकते हो ? अपने कर्म फल भोगना ही पड़ेगा।"

लेकिन इसी बात में मेरा संदेह था। अतः मैंने उनके सामने अपना विचार रक्खा।

कर्म-फल-भोग-सिद्धान्त के ये प्रवक्ता कुर्सी से उठकर खड़े हो गये। मैंने इस संकेत का अर्थ समझ लिया और विदा लेने को तैय्यार हुआ। वे फिर गुनगुनाने लगे :

"सब कुछ ईश्वर के हाथ में है। वे ही सर्वशक्तिमान हैं। उनसे कुछ भी, कोई भी छिप नहीं सकता। हममें कौन ऐसा है जो सचमुच ही आज़ाद हो ? कौन ऐसी जगह है जहाँ भगवान् न हो !"

दरवाज़े पर रुक कर कुछ सकुचाते हुए उन्होंने कहा :

"यदि आप फिर आना चाहें तो आ सकते हैं। हम इन बातों पर और भी विचार करेंगे।"

मैंने धन्यवाद दिया और उनका न्योता स्वीकार किया।

"खैर, कल आपकी राह देखता रहूँगा; सूर्य ढलने पर, छः बजे के करीब।"

× × ×

दूसरे दिन गोधूलि के समय मैं ज्योतिषी के घर पर गया। उनकी हाँ-में-हाँ मिलाने का मेरा तनिक भी विचार नहीं था। साथ ही उनकी बातों को अस्वीकार करने का भी मैंने कोई बीड़ा नहीं उठाया था। मैं उनकी बातें

सुनने के लिए, शायद कुछ सीखने के लिए भी, तैय्यार होकर आया था। पर सीखना और न सीखना, सब कुछ इसी बात पर निर्भर था कि उनकी बातें कहाँ तक प्रयोग से परखी जा सकती हैं। इस समय मैं कुछ प्रयोग करने के लिए तैयार था, लेकिन उसी हालत में जब कि उनकी पुष्टि में ध्रुव प्रमाण पेश किये जाँय। तब भी सुधी बाबू ने मेरी जन्मपत्री के बारे में जो कुछ बताया था उसने मेरे दिल में यह धारणा पैदा कर दी थी कि हिंदू ज्योतिष शास्त्र अंधविश्वास का एक असभ्य पोथा नहीं है, वरन् वह एक ऐसा शास्त्र है जो गहरी खोज के योग्य है। उस समय के मेरे विचार इसी निश्चय पर पहुँचे थे।

हम दोनों एक दूसरे के सामने होकर बैठ गये। वे अपनी लम्बी मेज़ के सामने आसीन थे। एक छोटा सा दिया अपनी धुँधली रोशनी चारों ओर बिखेर रहा था। मैंने सोचा इसी तरह के दिये आज भारत के लाखों घरों में जलाये जाते होंगे।

ज्योतिषी जी ने मुझको बताया :

"मेरे मकान में चौदह कमरे हैं। सब के सब प्रायः संस्कृत की पुरानी पांडुलिपियों से भरे पड़े हैं। मैं अकेला तो हूँ, तब भी इन्हीं के वास्ते मुझे इतने विशाल भवन की जरूरत हुई है। आइये, मेरे ग्रंथागार को देख लीजिये।"

लालटेन हाथ में लेकर वे मुझे राह दिखाने लगे। हम एक दूसरे कमरे में आ गये। दीवारों से सटी हुई कई खुली पेटियाँ थीं। उनमें से एक में मैंने झाँककर देखा तो वह किताबों और काग़ज़ों से एकदम भरी हुई थी। कमरे का फर्श भी पोथियों, काग़ज़ों और ताड़पत्रों पर लिखी पांडुलिपियों तथा काल के विकट प्रभाव से जर्जर पोथियों आदि के तले छिप सा गया था। मैंने एक छोटी पोथी उठायी। उसके पन्नों के अक्षर धुँधले पड़ गये थे। उसकी भाषा भी मेरे लिए एकदम नयी थी। हम एक कमरे से दूसरे में होते हुए सभी कमरों में गये। हर जगह यही बात देखने में आयी। ज्योतिषी जी

का सरस्वती भवन घोर अव्यवस्था में था, तो भी उन्होंने मुझे विश्वास दिलाया कि वे अच्छी तरह जानते हैं कि कौन सी पोथी कहाँ पर है और कौन सा काग़ज़ कहाँ पड़ा है। मुझे प्रतीत होने लगा कि सारे भारत का विज्ञान एक जगह बटोरा गया है। सचमुच ही इन संस्कृत पुस्तकों में, इन प्राचीन पांडुलिपियों के अज्ञेय अर्थवाले पत्रों में, हिंदुस्तान का अनूठा ज्ञान बहुत अधिक मात्रा में संग्रहीत हुआ हो तो क्या आश्चर्य है !

हम अपनी कुर्सियों के पास लौटे और ज्योतिषी जी ने मुझसे कहा :

"पुस्तकों और पांडुलिपियों को खरीदते खरीदते मेरा सारा धन लुट गया है। इनमें कई किताबें अपूर्व और बेशक़ीमती हैं। परिणाम यह है कि आज मैं एकदम गरीब बन गया हूँ।"

"ये किस विषय की किताबें हैं ?"

"कुछ मनुष्य जीवन और दैवी रहस्यों के बारे में हैं। बहुतेरी ज्योतिष की हैं।"

"तो आप दार्शनिक भी हैं !"

उनके पतले ओठों पर एक मंद मुस्कान खिल उठी :

"जो अच्छा दार्शनिक न हो वह अच्छा ज्योतिषी नहीं बन सकता।"

"बेअदबी माफ़ हो, आप इन किताबों के कीड़े तो नहीं बने ? आप से जब मेरी पहली भेंट हुई तो आपके ज़र्द चेहरे को देख मैं चकित हो गया था।"

"इसमें कोई आश्चर्य नहीं है। यहाँ तो छः रोज़ का फ़ाक़ा है।"

मैंने अपनी व्यग्रता दिखाई तो उन्होंने कहा :

"पैसे की कोई कमी नहीं है। महराजिन छः दिन से नहीं आयी। वह बहुत ही बीमार हो गई है।"

"तो आप किसी दूसरे को क्यों नहीं बुला लेते ?"

उन्होंने दृढ़ता पूर्वक सिर हिलाया और गंभीर स्वर से कहा :

"नहीं, मैं कम जातिवाली के हाथ का बनाया भोजन नहीं कर सकता। भले ही एक महीने तक उपवास करना पड़े : मुझसे यह काम नहीं हो सकता। मैं तब तक नौकरानी की प्रतीक्षा करूँगा जब तक कि वह चंगी न हो जाय। मेरी उम्मीद है कि एक-दो दिन में वह लौट आवेगी।"

उनकी ओर ताका। उनके गले में ठुड्डी के नीचे त्रिसूत्र वाला यज्ञोपवीत नज़र आया। वे ब्राह्मण थे। मैंने ज़ोर देकर कहा :

"झूठमूठ के अंधविश्वास से भरे इन परहेज़ों को आप क्यों मानते हैं? उससे तो आपका स्वास्थ्य कहीं अधिक प्रधान है।"

"यह अंधविश्वास नहीं है। हर एक प्राणी से एक वैद्युतिक प्रभाव प्रसारित होता रहता है। तुम्हारे पश्चिमी वैज्ञानिक यंत्रों को उसका अब तक पता नहीं है। रसोई बनाने वाली महराजिन, अज्ञात रूप से, रसोई पर अपना असर डालती है। यदि रसोई बनाने वाला नीची जाति का हो तो वह रसोई को अपने हीन प्रभाव से रंजित कर देगा और वह रसोई के साथ खानेवाले के बदन में समा जायेगा।"

"यह ग़ज़ब का सिद्धांत है!"

"लेकिन है तो यथार्थ।"

मैंने विषय बदल दिया।

"कब से आप यह पेशा कर रहे हैं?"

"उन्नीस वर्ष से मैं यही पेशा करता आया हूँ। विवाह के बाद मैंने इस पेशे में हाथ डाला।"

"मैं समझा।"

"नहीं, मैं विधुर नहीं हूँ। जब मैं १२ बरस का था प्रायः भगवान से प्रार्थना किया करता था कि मुझको ज्ञान दो। इसी खोज के पीछे मेरी कई प्रकार के लोगों से भेंट हुई। उन लोगों से मुझे कई उपदेश मिले। अनेक

अपूर्व ग्रंथराजों का पता चला। मुझे तभी से पढ़ने का ऐसा चस्का लग गया कि पढ़ते पढ़ते कभी कभी रतजगा भी किया करता था। मेरे माता-पिता ने ब्याह का इन्तजाम कर दिया। मेरे विवाह के कुछ ही दिन बाद मेरी स्त्री मुझसे बिगड़ उठी और बोली—'मेरी शादी किसी मर्द से नहीं हुई, वरन् पुरुष के आकार वाले किताबों के एक ढेर से'। आठवें दिन उसे हमारा कोचवान उड़ा ले गया।"

सुधी बाबू कुछ रुके। मैं उनकी पत्नी के उस कठोर वाक्य को सुनकर अपनी हँसी नहीं रोक सका। उसके विवाह के बाद इतनी जल्द किसी के साथ यों चम्पत हो जाने से उस समय दकियानूस भारत में एक खलबली मची होगी। लेकिन औरतों का कुछ ऐसा स्वभाव ही है जो बहुत पेचीदा होता है और किसी की समझ में नहीं आता।

सुधी बाबू कहने लगे :

"कुछ दिन बीतने पर इस आघात से मैं चंगा हो गया और वह सारी घटना मुझे एकदम भूल गई। मेरी सारी भावनाओं पर पानी फिर गया था और दिल एकदम रूखा बन गया। अब मैं पोथी-पत्रों, ज्योतिष और दैवी रहस्यों के अनंत समुद्र में पहले की अपेक्षा अधिक डूब गया। तभी मैंने अपने सब से बढ़िया अध्ययन का प्रारम्भ किया।"

"शायद आप मुझे उस ग्रंथ के विषय में कुछ ज़रूर बताएँगे।"

"इस पुस्तक का नाम है 'ब्रह्मचिंता'। उसका अर्थ है ब्रह्म के बारे में मनन करना, या ब्रह्म जिज्ञासा भी उसका अर्थ हो सकता है। उसका अर्थ 'ईश्वर ज्ञान' भी हो सकता है। ग्रन्थ के हज़ारों पन्ने हैं। जिसका मैं अध्ययन कर रहा हूँ वह उसका केवल एक भाग है। इसका संग्रह करने में मुझे बीस वर्ष लगे हैं क्योंकि इसके छोटे-मोटे भाग कई जगह बिखर गये थे। भारत के अनेक प्रान्तों में अपने आदमी भेज कर मैंने धीरे धीरे इसका संग्रह कराया है। इसका विषय बारह मुख्य विभागों और अनेक उपविभागों में बँटा हुआ

है। दर्शन, ज्योतिष, योग, मरने के बाद का जीवन आदि गहरे विषय इस ग्रन्थ में बताये गये हैं।"

"क्या इसका अंग्रेज़ी अनुवाद हो चुका है?"

"नहीं, मेरे सुनने में नहीं आया। इस किताब का अस्तित्व ही कितनों को मालूम है! अब तक इस किताब का अस्तित्व गुप्त रक्खा गया है। पहले पहल यह ग्रंथ तिब्बत में मिला। वहाँ पर यह बड़ा पवित्र समझा जाता है। तिब्बत में कुछ इने-गिने लोग ही इसका अध्ययन करते हैं।"

"इसकी रचना कब हुई?"

भृगु महाराज ने हज़ारों वर्ष पूर्व इस ग्रंथराज की रचना की थी। वह ठीक कब हुई मैं बता नहीं सकता। आजकल भारत में जो योग मार्ग मौजूद है उन सब से विलक्षण एक नवीन प्रकार के योग का यह प्रतिपादन करता है। तुम्हें योग से प्रेम है न? क्यों?"

"आप कैसे जानते हैं?"

उत्तर में सुधी बाबू ने चुपचाप मेरी कुंडली दिखाई और अपनी पेंसिल राशिग्रहों पर फेरने लगे। बोले:

"तुम्हारी जन्मपत्री देख कर मुझे आश्चर्य होता है। यह किसी साधारण यूरोपियन की तो मालूम नहीं होती। किसी हिन्दू की भी विरले ही ऐसी जन्म-पत्री होती है। इससे पता चलता है कि तुम्हारा योग के प्रति बड़ा भारी झुकाव है। तुम पर योगियों तथा ऋषियों की कृपा बनी रहेगी। उन महात्माओं की मदद पाकर तुम योग के रहस्यों में खूब ही गहरे तक पहुँच जाओगे। तिस पर भी अकेले योग मार्ग से तुम्हें तृप्ति नहीं होगी। अन्यान्य रहस्यपूर्ण दर्शनों की भी तह तक पहुँच जाओगे।"

वे रुक कर मेरी आँखों की ओर सीधी निगाह दौड़ाने लगे। मुझे सूक्ष्म रूप से भास गया कि वे कुछ ऐसी बातें बताने जा रहे हैं जो उनके अंतरतम जीवन के रहस्यों से किसी प्रकार कम नहीं हैं। उन्होंने कहा—"दो प्रकार के

ऋषि होते हैं। एक वे जो स्वार्थी होकर अपने लिए ही ज्ञान का भंडार कमा लेते हैं, दूसरे वे महात्मा हैं जो प्राप्त विज्ञान धन को जिज्ञासुओं के साथ बाँट लेते हैं। तुम्हारी कुंडली बताती है कि तुम्हें अब ज्ञान-ज्योति प्राप्त होने ही वाली है। तुम उस आलोक के एकदम निकट पहुँच गये हो। अतः मेरी बातें व्यर्थ नहीं होंगी। मैं अपना ज्ञान तुम्हें बताने के लिए तैय्यार हूँ।"

सारी बातों के इस नये रंग को देख कर मैं दंग रह गया। पहले मैं भारतीय ज्योतिष के दावे की सचाई परखने के लिए सुधी बाबू के यहाँ गया था। बाद में उनके ज्योतिष सिद्धांत की सचाई की पुष्टि में जो समाधान हैं उनको सुनने गया। अब अचानक ही वे योग विद्या में मेरे आचार्य बनने पर तुले हुए थे। कैसे आश्चर्य की बात है!

सुधी बाबू कहते गये :

"यदि तुम ब्रह्मचिंता में बताये हुए मार्ग पर आरूढ़ हो जाओगे तो तुम्हें और किसी गुरू की ज़रूरत नहीं पड़ेगी। तुम्हारी आत्मा ही तुम्हारा पथ-प्रदर्शन करेगी।"

मैं अपनी भूल पर पछताने लगा। मैं चकित था कि हो न हो वे मेरे मन के भावों को स्पष्ट ही जान लेते हैं।

मैंने सिर्फ़ यही कहा—"आप मुझे चकित कर रहे हैं।"

"मैंने इस ज्ञान का कुछ लोगों को उपदेश दिया है लेकिन कभी भी मैं अपने आपको उनका दीक्षा-गुरु नहीं मानता—मैं अपने को उनका सहचर, उनका मित्र मानता हूँ। इस कारण से संसार की दृष्टि में मैं तुम्हारा गुरू नहीं बनूँगा। भृगु की आत्मा मेरे शरीर और मन के ज़रिये तुम्हें अपने उपदेश सुनायेगी।"

"मेरी समझ में नहीं आता कि आप योग के उपदेशक होने के साथ ही साथ ज्योतिषी की वृत्ति भी कैसे कर रहे हैं!"

अपने पतले हाथों को मेज़ पर टेक कर सुधी बाबू बोले—"इसका उत्तर

यही है, कि मैं दुनिया में रहता हूँ और अपने काम-काज से उसकी सेवा करता हूँ। मेरी इस सेवा का रूप ज्योतिषी वृत्ति है। और एक बात है। कोई मुझे योग का उपदेशक कह कर पुकारे भी तो मैं उसको स्वीकार नहीं कर सकता, क्योंकि हमारी ब्रह्मचिंता में ईश्वर को छोड़ और कोई गुरु नहीं है। उनको ही हम अपना आचार्य मानते हैं। वह विश्वात्मा बनकर हमारे भीतर हैं और हमें उपदेश देते हैं। यदि स्वीकार हो तो मुझे अपना एक भाई समझ लीजिये। भूल कर भी मुझे आध्यात्मिक गुरु न मानिये। जिनके कोई आचार्य रहते हैं वे लोग प्रायः अपनी आत्मा पर निर्भर रहने के बदले उन्हीं पर निर्भर रहते हैं।"

मैं बोल उठा—"तिस पर भी अपनी आत्मा पर निर्भर हुए बिना सच्चा मार्ग जानने के लिए ज्योतिष का आश्रय क्यों लेना है?"

"तुम गलती कर रहे हो। मैं कभी अपनी जन्मकुंडली की ओर ताकता तक नहीं हूँ। विश्वास मानो कई साल हुए, मैंने उसे फाड़ डाला है।

इस बात पर मैंने अपना आश्चर्य प्रकट किया। उन्होंने जवाब दिया:

"मुझे ज्ञान का आलोक मिल गया है। राह जानने के लिए मुझे ज्योतिष की कोई आवश्यकता नहीं है। ज्योतिष उन लोगों के लिए है जो अंधेरे में टटोलते जा रहे हैं। मेरा जीवन ही भगवदर्पण किया गया है। मैं भावी और भूत का कोई विचार अपने पास नहीं फटकने देता और इस ढंग से अपने स्वात्मार्पण को ठीक गन्तव्य स्थान पर पहुँचा रहा हूँ। जो कुछ ईश्वर की कृपा से मिल जाय उसी को उसका अनुग्रह समझ कर स्वीकार करता हूँ। काया, मनसा, वाचा अपना सब कुछ परमपिता के सर्वशक्तिमान के चरणों में मैंने निछावर कर दिया है।"

"यदि कोई दुष्ट आपकी जान लेने लगे उसे भी भगवान की इच्छा समझ कर चुप रहेंगे?"

"आफ़त के सामने भगवान से प्रार्थना करने ही की देरी है और मुझे मालूम है कि तुरन्त उनकी शरण मिल जायगी। जो आवश्यक है वह प्रार्थना

है, न कि भय। प्रायः मैं प्रार्थना करता हूँ कि भगवान ने इस तुच्छ की कैसी रक्षा की है। तो भी मेरे जीवन में मुझे अनेक विपत्तियाँ झेलनी पड़ीं। उन सब में ईश्वर की सहायता कदम कदम पर मुझे दिखाई दे रही थी। किसी भी हालत में ईश्वर पर अपना सारा भार डाल कर, अभय होकर विश्वास करना मैं सीख गया हूँ। एक दिन आवेगा जब तुम भी इसी प्रकार भावी की सारी चिन्ताओं को तिलांजलि देकर तटस्थवत् रहने लगोगे।"

मैंने रुखाई से कहा—"उसके पहले मेरा कायापलट ही हो जायगा।"

"जरूर तुम्हारा कायापलट हो जायगा।"

"सच ही?"

"हाँ, तुम अपनी नियति से छुटकारा नहीं पा सकते। वह जो कह रहा हूँ, आध्यात्मिक आलोक में दूसरा जन्म लेना अपने आप ईश्वर के प्रणिधान से, तुम्हारी इच्छा और अनिच्छा की कुछ भी अपेक्षा रक्खे बिना, आ जायगा।

"सुधी बाबू आप अनूठी बातें करते हैं।"

भारत में कहीं भी जाऊँ, किसी से बात-चीत करूँ तो एक अज्ञात ईश्वर की बात आये बिना नहीं रहती। खासकर हिंदुओं की जाति धर्म-प्राण है। यों ही वे भगवान का जिक्र करने लगते हैं जिससे मेरा भी दिल कई बार ललचा गया था। जिसने जटिल तर्क की वेदी पर अपने साधारण विश्वास और श्रद्धा की बलि चढ़ायी है उस मेरे जैसे शक्की पश्चिम निवासी का दृष्टिकोण कभी इनकी समझ में आ सकता है! मुझे भासने लगा कि ज्योतिषी के साथ ईश्वर के अस्तित्व के बारे में तर्क-वितर्क कर बैठने से न तो मेरा काम सिद्ध होगा और न किसी और प्रकार का लाभ ही होगा। वे संभवतः मुझे धार्मिक खुराक खिलाने लग जायें इस डर से मैं बात बदल कर कम विवादग्रस्त बातों में फिर से लग गया। बोला—"ईश्वर से मेरी भेंट कभी नहीं हुई है। अतः अन्य किसी विषय की चर्चा हो तो अच्छा हो।"

उन्होंने स्थिरता से मेरी ओर देखा। उनकी निराली काली और सफ़ेदी लिये हुई आँखें मानो मेरे अंतरंग की तलाशी ले रही थीं। ज्योतिषी बोले :

"तुम्हारी जन्मकुंडली तय्यार करने में भूल होना असम्भव है, वरना मैं अपने ज्ञान को कच्चा समझ कर सुरक्षित रखता। लेकिन ताराओं की भूल-चूक होना एकदम असम्भव है। आज जिसे तुम नहीं समझ सकते हो वह तुम्हारे दिमाग में कुछ दिन तक प्रसुप्त होकर अवश्य रहेगा और फिर समय पा कर दुगने वेग के साथ धावा करेगा। मैं और एक बार तुम्हें बताये देता हूँ। तुम्हें ब्रह्मचिन्ता का मर्म बताने के लिए मैं प्रस्तुत हूँ।"

"और मैं भी उसे सीखने को।"

× × ×

हर शाम को मैं उनके उस पुराने मकान पर जाता था और ब्रह्मचिन्ता की शिक्षा पाता था। उनके पतले मुख पर दीपक की धुँधली रोशनी अपनी टिमटिमाने वाली छाया डालती रहती है और वे मुझे तिब्बत के प्राचीन योग के निगूढ़ रहस्यों की दीक्षा देते हैं।* भूलकर भी वे अपने व्यवहार में आध्यात्मिक बड़प्पन अथवा गर्व को प्रदर्शित करने की चेष्टा नहीं करते। वे

---

* इस योग मार्ग के रहस्यों को लिपिबद्ध करने की मेरी हिम्मत नहीं। लिख भी दें तो इससे मेरे समान लाभ शायद ही किसी को नसीब हो। उसका सारांश यही है कि उस मार्ग में कई किस्म के ध्यान की पद्धतियाँ हैं। उनका उद्देश्य 'आत्म-भाव' की दशा पैदा करना है। इस योग में छः प्रकार के मार्गों का अध्ययन करना पड़ता है। इसमें से सबसे मुख्य मार्ग पर आरूढ़ होने पर १० मुख्य सीढ़ियों को पार करना होगा। यूरोप के साधारण निवासी को, जंगलों में या पहाड़ी गुफाओं में रहने वाले योगियों को सोहनेवाली, इन पद्धतियों का न तो उपयोग ही है, न अनुकूलता ही। उलटे कभी कभी ये खतरनाक भी सिद्ध हो सकती हैं। ऐसी क्रियाओं में असावधानी से हस्तक्षेप करने वाले पश्चिमियों को सम्भवतः पागलपन का शिकार बनना पड़े तो आश्चर्य ही क्या होगा।

विनय की मूर्ति थे। अपने प्रत्येक उपदेश को 'ब्रह्मचिन्ता में कहा गया है' इसी वाक्य से शुरू करते थे।

एक दिन शाम को मैंने उनसे पूछा—"इस ब्रह्मचिंता के योग मार्ग का परम ध्येय—परम पुरुषार्थ—क्या है ?

"हम पुनीत समाधि की तलाश में हैं, क्योंकि उस दशा में आदमी पर यह ध्रुव सत्य दृढ़ता के साथ प्रकट हो जाता है कि वह 'जीवात्मा' है। तभी वह बाह्य और आंतरंगिक परिस्थिति से अपने मन को मुक्त कर लेता है, बाह्य जगत का मानो लोप सा हो जाता है। वह अपने ही भीतर रहने वाली एकमात्र जीती जागती सच्ची सद् आत्मा को पहचान जाता है। उस समय के परम आनंद, पराशांति, अनुपमेय सर्वशक्तिमत्ता की उद्वेग-शून्य बाढ़ से वह प्लावित हो उठता है। अपने अन्दर के दिव्य और अमर जीवन के सबूत में ऐसी एक अनुभूति ही पर्य्याप्त होगी। फिर कभी भी वह इस अनुभूति को भूल नहीं सकता।"

एक सन्देह की छाया ने मेरे मन को घेर लिया तो मैंने प्रश्न किया—"आपको निश्चय है कि यह सब आत्मप्रेरणा का प्रभाव नहीं है ?"

एक विकट हँसी उनके ओठों के कोनों पर लहराने लगी। बोले—"प्रसव के समय, एक मिनट के लिए ही सही, किसी माता को प्रसव की घटना की वास्तविकता में कभी सन्देह हो सकता है ? जब वह बाद में प्रसव की इस अनुभूति का स्मरण करेगी तो क्या वह कभी अपने मन में यह विचार ला सकती है कि प्रसव की घटना सिर्फ आत्म-प्रेरणा का फल थी ? और जब उसके सामने उसका बालक गिरते-पड़ते, तनिक तनिक पाँव बढ़ाते चलने लगता है, जब वह दिन दिन बढ़ने लगता है तो क्या यह कभी सम्भव है कि माता को अपने बच्चे के अस्तित्व में ही सन्देह हो जाय ? इसी प्रकार आध्यात्मिक पुनर्जन्म की प्रसव वेदना ही ऐसी महत्त्वपूर्ण घटना है कि वह भुलाये नहीं भूलती। जब साधक एक बार पुनीत समाधि में लीन हो जाता है मन के अन्दर एक प्रकार की शून्यता जगह कर लेती है। उस शून्य में देखकर दिखाई

पड़ता है। तुम्हें यदि ईश्वर शब्द न रुचे तो मैं यह कहूँगा कि मन के अन्दर आत्मा, पुरुषोत्तम, सर्व शक्तिमय विराजने लग जाता है। यदि एक बार यह अवस्था हो जाय तो फिर असम्भव है कि साधक पूर्ण आनन्द से विभोर न हो उठे। उस समय विश्व-प्रेम दिल में लहर मारने लगता है। प्रेक्षक को मालूम होता है कि शरीर केवल समाधिस्थ ही नहीं है बल्कि एक प्रकार से मृतक भी बन गया है; जब पराकाष्ठा प्राप्त होती है तो साँस भी रुक जाती है।"

"क्या यह बड़ा खतरनाक नहीं है?"

"नहीं। समाधि केवल पूर्ण विरक्ति में प्राप्त होती है। यदि कोई मित्र साधक की खबर लेने के लिए उपस्थित रहे तो कोई हर्ज नहीं है। प्रायः मैं इस समाधि में डूब चलता हूँ और जब चाहूँ तब फिर होश में आ भी सकता हूँ। साधारणतः मैं इस अवस्था में दो-तीन घंटे तक रह सकता हूँ। समाधि कितनी देर तक रहे यह बात पहले ही निश्चित हो जाती है। तुम जो बाह्य विश्व का प्रत्यक्ष कर रहे हो उसे मैं अपने ही अंदर देखने लगता हूँ। यह अनुभूति कैसी निराली है! इसीलिए बारम्बार मैं तुमसे यही कहते आया हूँ कि जो कुछ तुम्हें सीखना है, अपनी आत्मा से ही सीखा जा सकता है। एक बार मैं ब्रह्मचिंता के योग शास्त्र को पूरा पूरा बता दूँ फिर तुम्हें किसी गुरु की आवश्यकता प्रतीत न होगी। किसी बाह्य मार्ग दर्शक की उस समय आवश्यकता नहीं जँचेगी।"

"क्या आपके कोई गुरु न थे?"

"नहीं। जब से ब्रह्मचिंता देखने को मिली मुझे किसी गुरु की आवश्यकता नहीं रही। तिस पर भी समय समय पर बड़े बड़े गुरुजन मेरे यहाँ पधारे हैं। यह शुभ घड़ी उसी समय आयी थी जब मैं समाधि में लीन होकर अपने अंतर्जगत की चेतना में जगा हुआ था। ये महान् गुरुजन अपने सूक्ष्म शरीर के रूप में मुझे दिखाई दिये और मेरे सिर पर अपना हाथ धर कर उन्होंने मुझे आशीर्वाद दिया है। अतः मेरा फिर से यही कहना है कि अपनी आत्मा का

ही विश्वास करो। आचार्य, गुरुदेव अपने आप तुम्हारे पास तुम्हारे अंतर्जगत में दर्शन देंगे और तुम्हें कृतकृत्य बनावेंगे।"

इसके बाद दो मिनट तक सोच भरी शांति विराजती रही। सुधी बाबू मानो विचार मेघों में घिरे हुए थे। तब बड़ी शांति और विनय से इस अपूर्व आचार्य ने कहा :

"एक समय समाधि में मुझे ईसामसीह का दर्शन हुआ था।"

मैं बोल उठा—"आप मुझे चकित कर रहे हैं।"

वे अपनी बातें समझाने के लिये उतावले न थे। इसके बदले अचानक उन्होंने भयानक रूप से अपनी आँखों के डेले ऊपर की ओर घुमा दिये। फिर एक मिनट बिलकुल खामोशी रही। जब उन्होंने अपनी आँखें पूर्ववत् कर लीं तब मेरा धीरज बँधा।

फिर मुझ से जब वे बोलने लगे उनके ओठों पर पहेली भरी मुसकान थिरकने लगी :

"इस पुनीत समाधि का इतना बड़प्पन है कि मृत्यु भी समाधि में रहने-वाले व्यक्ति के पास आ नहीं सकती। हिमालय के उस ओर तिब्बत में कुछ ऐसे योगी हैं जो ब्रह्मचिंता में सिद्धहस्त हैं। चूँकि यही उनको पसंद था, उन्होंने पहाड़ी गुफाओं की शरण ली और विजन एकान्त में इसी पुनीत समाधि की पराकाष्ठा को पहुँच गये। उस हालत में नाड़ी का स्पंदन रुक जाता है, हृदय का धड़कना बन्द हो जाता है और स्थिर अचल शरीर की नसों में लहू भी नहीं बहता। जो कोई उनको उस हालत में देखेगा उन्हें एकदम मृतक समझेगा। कभी न सोचना कि वे एक प्रकार की निद्रावस्था में रहते हैं क्योंकि वे तुम्हारे और मेरे समान ही पूरी चेतना अथवा होश रखते हैं। वे अपने अंत-रंग में लीन होते हैं और उनका उत्तम जीवन प्रकट होता है। शरीर के बंधनों और सीमाओं से उनका मन मुक्त रहता है और वे अपनी ही आत्मा में सर्व-भूतों को, सारे विश्व को अवस्थित देखते हैं। एक दिन आयेगा जब उनकी वह समाधि टूटेगी, लेकिन तब तक वह सैकड़ों वर्ष के बूढ़े होंगे।"

मैं फिर एक बार अमर मानव जीवन की अविश्वसनीय कथा सुनने लगा। स्पष्ट है कि पूरबी संसार में कहीं भी जाऊँ इस कहानी से मेरा पिंड न छूटेगा। किंतु क्या कभी इन कल्पनामय पुरुषों से मेरी भेंट होगी? क्या पता कि तिब्बत की शीतल आब-हवा में पले हुए इस प्राचीन सिद्धान्त को विज्ञान और मानसिक शास्त्र के लिये महत्त्वपूर्ण मान कर पश्चिम कभी स्वीकार करेगा या नहीं?

× × ×

ब्रह्मचिंता के इन विचित्र सिद्धान्तों की मेरी प्रारंभिक शिक्षा का आखिरी सबक खतम हुआ।

मैंने किसी तरह उस कभी बाहर न निकलने वाले ज्योतिषी को कुछ सैर-सपाटे के लिये चलकर सुस्त अवयवों को कुछ काम देने के लिए राजी किया। गंगाजी की ओर जाने का हमारा विचार हुआ। रास्ते की भीड़-भाड़ से बचने के लिए आम सड़क छोड़ कर तंग गलियों में से होकर हम चलने लगे। यद्यपि बनारस की गन्दगी और अस्वास्थ्यकर आबादी की संकीर्णता जमाने से चली आ रही है तो भी उसकी गलियों में पैदल घूमने वाले के चित्त को खींचने वाले भाँति भाँति के अनेक दृश्य नजर आते हैं।

शाम का समय था। सूर्य की किरणों से बचने के लिए मेरे साथी ने एक खुली चपटी छतरी ले ली। उनकी दुबली देह तथा धीमी धीमी चाल के कारण हम जल्दी नहीं चल सके। जल्द ही नदी के तीर पर पहुँच जाने की इच्छा से मैंने एक समीपतर मार्ग का आश्रय लिया।

हम ठठेरी बाजार में चल रहे थे। दाढ़ीवाले दस्तकारों के हथौड़ों की आवाजों से आकाश गुंजायमान था। उनका तैयार किया हुआ पीतल का माल सूर्य की धूप में जगमगा रहा था। यहाँ भी अनगिन्ती पीतल की छोटी छोटी प्रतिमायें—हिन्दुओं के देवताओं के सकार प्रतिनिधि—दिखाई पड़ रही थीं।

एक बूढ़ा बगल की गली में सड़क के किनारे छाया में हाथ जोड़े बैठा था। उसने मेरी ओर सतृष्ण करुणा भरी आँखों से ताक कर, निडर हो, भीख माँगी।

हम विश्वेश्वरगंज में से होकर चलने लगे। छोटे छोटे तख्तों पर नाज के सुनहले ढेर लगे हुए थे। दूकानदार या तो पलथी मारे या पुट्ठों के बल एड़ी ज़मीन पर टेके बैठे थे। वे राह पर चलने वाली हमारी अजीब जोड़ी पर एक क्षण भर दृष्टि डालते और फिर बड़ी शांति से ग्राहकों की बाट जोहते।

गलियों से कई प्रकार की बू निकलती थी। जैसे जैसे हम नदी के पास पहुँचने लगे भिखमंगों की भीड़ बहुत अधिक होने लगी। मालूम होने लगा कि वह मानो इन ग़रीबों का अड्डा ही था। धूल भरी सड़कों पर अपने को घसीटते, दुबले पतले भिखमंगे दिखाई दिये। उनमें से एक ने मेरे निकट आकर मेरी ओर कुछ मतलबी दृष्टि दौड़ाई। उसके चेहरे से अकथनीय शोक टपका पड़ता था। उसको देख कर मेरा मन बड़ा बेचैन हो गया।

और थोड़ी दूर आगे चलने पर एक क्षीणकाय बूढ़ा स्त्री पर गिरते गिरते मैं बच गया। उसके शरीर में पंजर के सिवा और क्या बाकी रह गया था। उसका चमड़ा हड्डियों से लग कर चिपक सा गया था और शिथिलता के कारण लटक रहा था। उसकी पसलियाँ निकल आयी थीं। उसने भी आँख भर मेरी आँखों की ओर देखा। उन आँखों में किसी प्रकार की निंदनीय छाया नहीं थी। अपनी बदनसीबी को मूक बेबसी के साथ स्वीकार करने का निर्बल शून्य भाव उन आँखों से झलक रहा था। मैंने जेब से थैली निकाली। उस बूढ़ी के बदन में बिजली दौड़ी। उसे मानो फिर से होश हो चला। उसने अपना निर्बल हाथ आगे बढ़ाया और मेरे पैसे ले लिये। मैंने अपनी खुशनसीबी को बधाई दी जिसने मुझे खाने-पीने, पहनने-ओढ़ने की काफ़ी सामग्री दी और विपत्ति के दिनों में अपने शरीर की रक्षा के लिए अच्छा आवास और अन्यान्य वांछनीय चीज़ें दे दीं। उन ग़रीब अभागों की आँखें मुझे मेरा जुर्म साफ़ ही दिखा रही थीं। जब कि इन ग़रीबों को खाने-पीने भर को भी मुअस्सर नहीं, जब कि इन बेचारों को तन ढाँकने के लिए गुदड़ियों के सिवा कुछ भी नहीं रहता, मानवता के किस हक से मैं इतने धन का मज़ा लूट रहा हूँ। यदि नियति के किसी विपरिवर्तन के कारण मैं ही उनमें से एक

हो गया, तब ! ओफ़ ! क्या होगा ! इस भयानक विचार ने कुछ देर तक मुझे मायूस बना दिया लेकिन थोड़ी देर में उस हालत की वीभत्सता ने ही उस विचार को अव्यक्त शून्य में धर दबाया।

इस भाग्य के फेर का क्या अर्थ है जो जन्म से ही किसी को मुँहताज बनाकर छोड़ता है और किसी को नदी तीर के विलास कक्षों में सुख की गोद में पलने का शुभ अवकाश प्रदान करता है। जीवन एक अँधेरी पहेली है जिसका सुलझाना मेरी शक्ति के परे की बात है।

गंगा जी के तीर पहुँचते ही ज्योतिषी ने कहा—"यहीं बैठ जावें।"

हम छाँह में बैठ गये। नीचे बहने वाली मरकत-सलिला भागीरथी, उससे लग कर सोहने वाली विशाल सोपान-पंक्ति, आसमान को चूमने वाली आलीशान मकानों की छतें उभड़ने वाले चौतरे और छज्जे हमारी आँखों के सामने क्या ही सुंदर लगते थे। आने-जाने वाले यात्रियों के छोटे छोटे झुंड यत्र-तत्र दिखाई देते थे।

स्वच्छ आकाश में करीब तीन सौ फुट तक अपना उन्नत मस्तक ठाट के साथ ऊँचा किये दो लम्बी मीनारें हमारी आँखों को अपनी ओर खींच लेती थीं। हिन्दुओं के अत्यंत पवित्र नगर वाराणसी में काल के चक्कर के साथ मुसलमानों का जो पदार्पण हुआ उसकी ये मीनारें कठोर गवाही देती हैं। ये मीनारें औरंगज़ेब की मसजिद की हैं।

लेकिन ज्योतिषी ने भिखमंगों की दीनता पर मुझे मायूस होते देख कर अपना पीला चेहरा मेरी ओर फेरकर कहा—"हिंदुस्तान बहुत ही गरीब देश है। उसके निवासी एकदम अकर्मण्यता के पंक में फँस गये हैं। अंग्रेज़ी जाति में कुछ खास विशेषतायें हैं। मेरा विश्वास है कि हमारी भलाई के लिए ही भगवान ने उन्हें भेजने की कृपा की है। उनके आगमन के पहले जीवन बड़ा ही कठिन था। छोटी सी बात में भी न्याय और कानून प्रायः ताक पर रक्खे जाते थे। मेरी कामना यह है कि अंग्रेज़ भारत न छोड़ें। हमें उनकी मदद की बड़ी आवश्यकता है। पर एक बात है। वह मदद मित्रता के नाते मिले,

तलवार के बल के नाते नहीं। जो हो, दोनों देशों के भाग्य देवता अपने को चरितार्थ किये बिना नहीं मानेंगे।"

"आपका कर्मवाद फिर अपना सिर उठा रहा है!"

उन्होंने मेरे कथन की ओर कुछ भी ध्यान नहीं दिया। कुछ देर बाद पूछा :

"ईश्वर के संकल्प से ये दोनों देश कैसे बच सकते हैं? रात के पीछे दिन, और दिन के पीछे रात, यह चक्कर कभी न रुकने वाला है। यही बात राष्ट्रों के इतिहास पर एकदम लागू होती है। संसार भर में बड़े हेरफेरों की छाया फैली है। हिंदुस्तान अलसभाव और अकर्मण्यता का शिकार बन गया है; लेकिन उसमें एक क्रान्ति होने वाली है। वह इतना बदल जायगा कि उसके दिल में कर्मण्यता के प्रभात की सूचना देने वाली आशा और महत्त्वाकांक्षा की ऊषा देवी ललित भाव से नाच उठेंगी। योरप प्रत्यक्ष काम-काज के झमेलों से धधका जा रहा है। पर उसके जड़वाद, अनात्मवाद का नामो-निशान ही मिट जायगा। वह एक बार उन्नत आदर्शों की ओर अपनी दृष्टि फेरेगा। वह आंतरिक तत्त्वों की, निगूढ़ आत्मा के रहस्यों की खोज करने लगेगा। अमेरिका की भी यही हालत होगी।"

चुपचाप सुन रहा था और वे उसी बहाव में बोलते गये :

"हमारे देश की दार्शनिक तथा आध्यात्मिक विचार-धाराएँ समुद्र की लहरें बन कर पश्चिम को प्लावित कर बैठेंगी। अनेक विद्वानों ने भारत की प्राचीन हस्तलिखित पोथियों तथा धर्मग्रंथों का पश्चिमी भाषाओं में अनुवाद किया है। लेकिन अब भी देशों की विजन प्रान्तों में और नेपाल, तिब्बत आदि सुदूर प्रान्तों के गुफाओं के ग्रंथ-भांडारों में कितने ही अमूल्य ग्रंथराज छिपे पड़े हैं। काल चक्र के फेर के साथ ये भी दुनिया की रोशनी देख ही लेंगे। वह शुभ घड़ी अब निकट ही है जब कि भारत के प्राचीन दर्शन तथा आंतरिक ज्ञान, पश्चिम के लौकिक विज्ञान के साथ समझौता कर लेंगे और उनसे मिल जायेंगे। इस सदी की आवश्यकताओं को देखकर प्राचीन काल

के रहस्यवादियों को चाहिये कि वे अपना जौहर प्रकट रूप से खिला दें। मुझे इस बात की खुशी है कि ऐसा होने की शुभ सूचनायें अभी से दिखाई दे रही हैं।"

मैं गंगा जी के हरित सलिल की ओर हेरने लगा। नदी का बहाव इतना प्रशांत था मानो वह बहती ही न थी। सूर्य के उज्ज्वल प्रकाश में उस नदी की सतह जगमगा रही थी।

सुधी बाबू मुझसे फिर बोले :

"हर एक जाति की नियति भी मानव की नियति के समान ही जरूर अपने को चरितार्थ कर लेगी। ईश्वर सर्वशक्तिमान है। मानव और राष्ट्र अपने सुकृत और दुष्कृत के सु और कु परिणामों से कभी नहीं बच सकते। किंतु उन सारी विपत्तियों से उनकी रक्षा की जा सकती है और हो सकता है किसी न किसी मात्रा में बड़ी भारी मुसीबतें टल भी जाँय।"

"यह रक्षा क्योंकर हो सकती है?"

"प्रार्थना से, ईश्वर के सन्मुख बालक सा हृदय लेकर जाने से, मुँह में ही राम को न रखकर, हृदय से राम को सुमिरने से, खासकर हर एक काम के प्रारंभ में ईश्वर की दिल से प्रार्थना करने से। सुख के दिनों में उन सुखों को ईश्वर प्रदत्त जानकर भोगो और दुख में उन विपत्तियों को अपनी आंतरिक बीमारी को दूर करने के लिए, अपनी आत्मा को चंगा करने के लिए ईश्वर की दी हुई औषधि समझ लो। ईश्वर से भयभीत न होना चाहिए क्योंकि वे मूर्तिधारी कृपा हैं, परम कृपा का स्वरूप हैं।"

"आप ईश्वर को संसार से दूर नहीं समझते?"

"कभी नहीं! ईश्वर सर्वांतर्यामी शक्तिस्वरूप हैं। वे ही विश्वात्मा भी हैं। यदि तुम किसी प्राकृतिक छवि को, किसी सुन्दर दृश्य को देखो, तो उसी की उपासना करो, पर इस भाव से कि वह अपनी सुन्दरता के लिए उपास्य नहीं है बरन् उस सुन्दरता का भी मूल कारण ईश्वर के कारण।

वह इसलिए सुन्दर है कि उसमें वही सत्य-शिव-सुन्दर मूर्ति छिपी रहती है। सचराचर संसार में उसी दिव्य मूर्ति की आभा देखने लगो। बाह्य रूप-रंग से कभी इतने मोहित न हो जाना जिससे कि भीतरी आत्मा को ही, जिसके कारण बाह्य आडंबर भी टिके हुए हैं, भूल जावें।"

"सुधी बाबू, आप कर्म सिद्धांत, धर्म और ज्योतिष सभी को विचित्र प्रकार से मिला रहे हैं?"

उन्होंने बड़ी गंभीरता से मुझे निहारा और बोल उठे :

"क्योंकर? ये सिद्धांत मेरे अपने नहीं हैं। ये अति प्राचीन काल से, गुरु-शिष्य परंपरा से आज तक चले आये हैं। नियति की दुर्निवार शक्ति सिरजन-हार की उपासना, ग्रहों की स्थितियों का प्रभाव, ये सारी बातें उन अति प्राचीन काल के आर्यों से छिपी नहीं थीं। जैसा तुम पश्चिमी मानते हो वे वैसे जंगली लोग नहीं थे। मैंने भविष्यवाणी कर ही दी है। इस सदी के पूरे होने के पहले ही पश्चिम के मनपट पर यह सत्य सिद्धांत अंकित हो ही जायगा और वह भी इस विस्मृत तत्व को और एक बार पहचान लेगा कि मानव के जीवन पर असर डालने वाली ये शक्तियाँ कितनी सच्ची और कितनी प्रबल हैं।"

"लेकिन पश्चिम की जो यह सहज धारणा है कि मानव का मन और संकल्प एकदम स्वतंत्र हैं, कि मानव अपने आपको बना और बिगाड़ भी सकता है, उसे छोड़ना बड़ा ही दुष्कर होगा।"

"जो कुछ 'होता' है सब उन्हीं की इच्छा से। जो बुद्धि, जो संकल्प तुम्हें स्वतंत्र और स्वाधीन प्रतीत होता है वह भी वास्तव में ईश्वर के संकल्प से ही काम करता है। पुराने सुकृत और दुष्कृतियों का सु वा कु फल लेकर ईश्वर मानव के पास आता है। उनके संकल्प के सामने सर झुकाने में श्रेय ही श्रेय है। यदि कोई ईश्वर से प्रार्थना करे और ईश्वर के ऊपर अपना सब कुछ भार डाल दे तो फिर कैसी भी मुसीबत क्यों न आवे वह साधक को नहीं विचला सकती। भय के सामने वह कदापि नहीं काँपेगा।

"कम-से-कम अब तक जिन मुँहताजों से हमारी भेंट हुई है उनके लिए हम यह आशा रक्खें कि आप की बातें सही निकलेंगी ?"

तुरन्त उन्होंने जवाब दिया :

"इसके सिवा और मैं कौन जवाब दूँ। तुम यदि प्रत्यग्दृष्टि का अभ्यास करके अपने ही अंतर्वीक्षण में लीन हो जाओगे, आत्मा की अंतरतम तह तक पहुँचने की चेष्टा करोगे, मेरे बताये हुये 'ब्रह्मचिंता' के मार्ग का अनुसरण करोगे तो ये समस्यायें अपने आप ही सुलझ जायँगी।"

मुझे विदित हो गया कि वे अब अपनी तर्क शक्ति की हद तक पहुँच गये हैं और मुझे अब अपनी राह आप ही खोजनी होगी।

मेरे कोट की एक जेब में एक तार था जो कि मुझे शीघ्र ही बनारस छोड़ने की ताकीद सी कर रहा था। दूसरे जेब में एक जेबी केमरा था। मैंने सुधी बाबू से उनकी फोटो उतारने की अनुमति की प्रार्थना की। विनय के साथ उन्होंने इनकार किया।

मैंने फिर ज़ोर लगाया।

उन्होंने दृढ़ता से कहा—"इसकी कौन सी ज़रूरत है। मेरे मैले कुचैले कपड़े और बदसूरत चेहरा।"

"कृपा करके मेरी बात रखिये। दूर देश में जब मैं रहूँगा तब आपकी फोटो देखकर आपका स्मरण जाग उठेगा।"

नम्रता की मूर्ति बनकर उन्होंने बताया—"सबसे उत्तम स्मृति चिह्न पवित्र विचार और स्वार्थ रहित कार्य हैं।"

उनके उज्र की मैंने खातिर की और केमरा जेब में रख लिया।

अन्त को जब लौटने के लिए उठे मैं उनके पीछे हो लिया। पास ही एक व्यक्ति सूर्य के तीक्ष्ण ताप से बचकर बाँस के एक बड़े गोल छाते के नीचे बैठा दिखाई दिया। उसके चेहरे से उसके अविचल ध्यान का पता

चलता था। उसके वस्त्रों के गेरुएपन से उसके आश्रम का पता सहज ही लग जाता था।

और कुछ दूर चलने पर रास्ता रोके एक साँड़ लेटा था। वह शायद उनमें से एक था जो बहुत ही पवित्र समझे जाते हैं।

कुछ दूर चलने पर मैंने एक गाड़ी बुलाई और सुधी बाबू से विदा ले ली।

× × ×

बाद को कुछ दिन तक मैं सफ़र ही करता रहा। दौरे पर जाने वाले अफसरों तथा अन्य बटोहियों के वास्ते जो सरकारी डाक-बंगले हैं उनमें मैंने कई रातें काटीं।

उनमें एक ऐसा डाक-बंगला मिला जिसमें सामान्य आराम की भी सामग्री न थी। बहुत अधिक चींटों ने अपना अड्डा जमा लिया था। दो घंटे तक उनसे युद्ध छेड़कर हार गया और निश्चय किया कि बिस्तर छोड़कर सारी रात यों ही कुर्सी पर बैठे बैठे काटूँगा।

समय बड़ी कठिनाई से धीरे धीरे बीतता जाता था। मेरा मन इधर उधर की बातों को छोड़कर बनारस के उस ज्योतिषी के कर्म सिद्धान्त—नियतिवाद आदि का मनन करने लगा। साथ ही सड़कों पर अपने भूखे क्षीणकायों को घसीटते हुए जाने वाले दीन दुःखी भिखमंगों की भी मुझे याद आयी। जीवन के हाथों वे लोग एकदम तंग आ गये थे। न तो वे जीने ही पाते थे न मरने ही। जैसे कि उन्हें अपनी गरीबी स्वीकार है उसी प्रकार उन्हीं की बगल में से धनी मारवाड़ी अपने ऐश-आराम के सुन्दर वाहनों पर सवार होकर जावें तो भी उन्हें किसी प्रकार से अखरता नहीं है। ईश्वर की इच्छा के सामने वे चूँ तक नहीं करते। सब कुछ ईश्वर का दिया मानकर वे तृप्त हो जाते हैं। कितने ही हिन्दुस्तानी लोगों में कुछ ऐसी एक नशीली नियतिवाद की बात समा गई है कि इस देश में, जहाँ सूर्य बहुत ही प्रचंडता के साथ चमक उठता है, कोढ़ी भी अपने भाग्य से तृप्त ही मालूम पड़ते हैं।

'स्वतंत्र संकल्प', 'स्वाधीन मन' आदि के होने में विश्वास रखने वाले पश्चिमी का, इस सर्वशक्तिमय नियतिवाद के कायल प्राच्य वासियों से दलीलें करना और युक्ति भिड़ाना कितना फ़जूल होगा अब मुझ पर प्रकट होने लगा था। पूरबी जनता के लिए इस पहेली का एक यह भी पक्ष है कि उन्हें इस विषय में कोई समस्या ही नज़र नहीं आती। उनके दिलों पर नियति की सार्वभौम सत्ता है।

आत्म-विश्वास पर निर्भर रहने वाला कौन पश्चिम का निवासी इस विचित्र सिद्धान्त का कायल हो सकता है कि हम बेचारे नियति के खेदे हुए टट्टू हैं, हम नियति के हाथ के कठपुतले हैं अथवा किसी अव्यक्त शक्ति की मूक आज्ञा के चलाये हुए हम इधर से उधर नाचते रहते हैं? चकित जगत के सामने बड़ी दिलेरी के साथ आल्प्स पर्वत पंक्ति को अपनी सेना के साथ लाँघ जाने में नेपोलियन ने जो बहुत ही महत्त्वपूर्ण बात कही थी वही आज मुझे याद आयी—'असंभव? मेरे कोश में ऐसा कोई शब्द नहीं है। लेकिन मैंने उनके सारे जीवन की सारी बातों का बार बार अध्ययन किया है। हेलीना के टापू पर अपने पूर्व कार्यों की समीक्षा करते हुए उस महान बुद्धिशाली ने जिन चन्द बातों को लिखा था सो मेरे स्मृति-पट पर चमक आती हैं:

'मैं हमेशा नियतिवाद का कायल था। विधि का बदा, एकदम बदा ही......मेरे सितारे मंद पड़ गये, मेरे हाथों से बागडोर फिसलते दिखाई दी, तब भी मेरा कोई वश नहीं था।"

इस प्रकार परस्पर व्याघाती आश्चर्यजनक वचन कहने से कभी यह समस्या हल हो सकती है? मुझे विश्वास ही नहीं होता है कि किसी ने भी इसे अब तक सुलझाया हो। हो सकता है कि जब से मानव के मस्तिष्क ने काम करना शुरू किया तभी से उत्तर ध्रुव से लेकर दक्षिण ध्रुव तक के लोगों ने इस प्राचीन पहेली के बुझाने की कोशिश की हो। तनिक सी बात पर पक्का विश्वास बना लेने वालों ने इस समस्या को अपने ही अनुसार हल किया है। दार्शनिक इस प्रश्न के पक्ष और विपक्ष के मीन-मेख गिनते रहते

हैं पर अभी अपनी समीक्षाओं का नतीजा निस्संकोच प्रकट करने में हिच-किचाते हैं।

ज्योतिषी ने मेरी जन्मपत्री का सारा हाल ठीक ठीक बता कर मेरे मन में बड़ा आश्चर्य पैदा किया था। यह मुझे अच्छी तरह याद है। कभी कभी एकान्त घड़ियों में मैंने उस भविष्यवाणी के बारे में सोचा है, यहाँ तक कि मुझे ही शंका होने लगी कि क्या प्राच्यों की नियतिवाद की कुछ सनक मुझ पर भी तो सवार नहीं हो गयी। जब मुझे याद आता है कि इस साधारण निराडंबर ज्योतिषी ने किस प्रकार मेरे भूत जीवन का पूरा ब्यौरा ही बताया, किस प्रकार वे धुँधली पड़ने वाली भूत जीवन की घटनाओं को फिर से जाग्रत करके वर्तमान में ले आये, तो मेरा दिल लालायित हो उठता है कि मैं स्वतंत्र बुद्धि और नियतिवाद की प्राचीन समस्या पर खासा पोथा रचने की सामग्री इकट्ठा क्यों न करूँ। किन्तु मुझे अच्छी तरह मालूम था कि नियतिवाद को लेकर एक ग्रन्थ रचना कोरी कलम घिसने के अतिरिक्त और कुछ नहीं है क्योंकि शायद जिस अंधकूप से इस समस्या को सुलझाने के लिए मैं निकलूँ, हो सकता है कि खोज-खाज करके फिर से उसी में आ कर फँस जाऊँ। क्योंकि ऐसे किसी विषय में ज्योतिष के प्रश्न उठाने होंगे और सारा काम मेरी शक्ति के बाहर होगा। लेकिन आजकल के यंत्रयुग की कुछ ऐसी बढ़ी-चढ़ी महिमा दीखती है कि वह दिन अब दूर नहीं है जब आदमी दूरवर्ती ग्रहों आदि का सफर करे। तब इस बात का पता चलाना सहज होगा कि उन ज्योतिर्मय ग्रहों का वास्तव में हमारे जीवन पर कहाँ तक असर पड़ता है। इस बीच में सुधी बाबू की चेतावनी को कि अभी जो ज्योतिष मानव समाज में अवतरित हुआ है वह अधूरा है तथा यह शास्त्र भी भ्रम-प्रमाद के परे नहीं है, याद रख कर कोई भी दो-चार ज्योतिषियों की शक्ति परखना चाहे तो परख सकता है।

तब भी यह सोचने की बात है कि यदि हम मान भी लें कि किसी अनूठे ढंग से, आयनस्टीन के चौथे डाइमेंशन वाले सिद्धान्त से ही सही,

अब भी भविष्य मौजूद है, तो हमारी आँखों की ओट में जो भावी घटनायें हैं उनके रहस्यों का उन्मीलन करना कहाँ तक उचित होगा ?

इस प्रश्न के उठते ही मेरा मनन एकदम रुक जाता है और निद्रा मुझे अपनी गोद में उठा लेती है।

कुछ दिन बाद जब मैं बनारस से कई सौ मील की दूरी पर था, मुझे इस भयानक घटना की खबर मिली कि बनारस में ज़ोरों के साथ दंगे का दौरदौरा है यह हिन्दू-मुसलमानों के झगड़े की दुःखद कहानी है जो प्रायः किसी तुच्छ बात से शुरू हो जाती है और खूँख्वार गुंडे और बदमाश इससे नाजायज़ फ़ायदा उठा कर झूठी धार्मिकता का दम भरते हुए लूट-मार और नोच-खसोट का बाज़ार गरम रखते हैं।

कई दिन तक शहर में आतंक और उपद्रव का तांडव होता रहा। दिन प्रतिदिन सिर फुटौवल, दारुण हिंसा और विवेकशून्य हत्याओं की शोक भरी कहानी कानों में पड़ती रही। सुधी बाबू के कुशल समाचार की मुझको रट सी लग गई, पर करता क्या ? उनकी खबर का किसी प्रकार मिलना असंभव ही था। गलियों में निकलते डाकियों की हिम्मत हार जाती थी और फलतः कोई भी खानगी तार या पत्र किसी को पहुँचने की कोई सूरत नहीं दीखती थी।

लाचार होकर मुझे बनारस की गुंडेशाही की मिट्टी पलीद होने तक इंतज़ार करना पड़ा। तब कहीं, सब से पहले तारों में जो उस बेचारे शहर में भेजे जा सके, मेरा भी एक था। लौटती डाक से ज्योतिषी जी का एक पत्र आया जिसमें धन्यवाद के अतिरिक्त उन्होंने अपनी इस कुशल को सर्वशक्तिमान् की कृपा बताया। चिट्ठी की पीठ पर ब्रह्मचिंता के योग की साधना के लिए दस नये नियम लिखे हुए थे।

—

१३

दयाल बाग

उत्तर भारत में चारों ओर उतावले होकर फिरते हुए मैंने दो मार्गों का आश्रय लिया। दोनों ने मुझे एक छोटी परन्तु निराली बस्ती पर पहुँचा दिया। लोग उसे बहुत कम जानते हैं। वह एक काव्यमय नाम 'दयाल बाग' कह कर पुकारी जाती है।

पहले मार्ग का प्रारम्भ लखनऊ में हुआ। वहाँ रहते समय मेरे अहोभाग्य से एक अच्छे रहनुमा, वेदांती, एक खास दोस्त के रूप में प्राप्त हुए। सुन्दर लाल निगम और मैं, दोनों शहर में चक्कर काटते और घूमते-टहलते तथा दार्शनिक विषयों पर बहस करते थे। उनकी उम्र २०-२१ से अधिक न होगी किंतु अपने अन्य भारतीय बन्धुओं के समान वह जवानी के परदे में एक अनुभवी, सधे हुए वृद्ध मस्तिष्क वाले हैं।

हम दोनों पुराने नवाबों के महलों को देखते फिरते थे और उन कब्रों की स्तब्ध शांति में लेटे हुए बादशाहों की अमिट भाग्य-रेखा का अनुमान करके ध्यान में मशगूल रहते। नये सिरे से मुझे उस उज्ज्वल हिंदू-ईरानी शिल्प-कला से मुहब्बत सी पैदा हो जाती जो अपनी टेढ़ी-मेढ़ी शोभामय रेखाओं और कोमल तथा सुन्दर चित्रों से अपने विधाताओं की परिमार्जित कलाभिरुचि को मूक आवाज़ से गा रही थी। लखनऊ की शोभा को बढ़ाने वाले इन राजसी ठाट वाले प्रमोद काननों के तरुओं की शीतल छाया में मेरे जो प्रमोदमय उज्ज्वल दिन बीते, क्या वे कभी मेरे स्मृति-पट से दूर हो सकते हैं?

जहाँ एक समय अवध के पुराने नवाबों की दिलफ़रेब प्रेयसियाँ अपने गोरे बदन की नज़ाकत और खूबसूरती की भड़क संगमरमर के हम्मामों और सुनहले गुसलखानों में फैलाती हुई अकड़ कर चलती थीं, उन रंग-बिरंगे भव्य भवनों के हर कोने का हम दर्शन करते। अब ये महल उस नवाबी अदा, उन शोख बुतों से एकदम खाली हैं और उन पुराने विलासों के ये केवल कीर्तिस्तम्भ रह गये हैं।

कई बार अनजाने मैंने अपने को एक सुन्दर मस्जिद में पाया जो कि अजीब नाम वाले 'मंकी ब्रिज' (बंदर का पुल) के पास खड़ी है। उस मस्जिद का बाहरी भाग एकदम सफ़ेद है और धूप में परियों के महल सी चमकती है। उसकी सुन्दर मीनारें उज्ज्वल आकाश की ओर अनवरत प्रार्थना में उठी सी प्रतीत होती हैं। झाँक कर देखा तो भीतर एक झुंड सिजदा करके नमाज पढ़ रहा था। उस दृश्य की शोभा उन रंगदार जानमाज़ों की भड़कीली चमक से और भी निखर उठती थी। पैग़म्बर साहब के इन पैरोकारों के ईमान पर कोई उंगली भी नहीं उठा सकता क्योंकि उनका मज़हब उनके लिए एक जीती-जागती शक्ति मालूम होती है। इन सारे पर्यटनों में मेरे साथी के कुछ गुणों का कुछ असर मेरे ऊपर भी पड़ गया। उनकी निपुण बातें, उनकी असाधारण बुद्धि-कुशलता, सांसारिक विषयों के बारे में उनका उदासीन व्यवहार, सभी योग के अभ्यासी की मार्मिकता और गंभीरता के साथ सुन्दर रूप से मिले-जुले थे। मेरे निजी विश्वासों तथा भावों को टटोल कर जान लेने की कोशिश में—जिसका कि मुझे अच्छी तरह पता चला—कई बार मुझसे तर्कोंतर्क और संभाषण करने के बाद उन्होंने अपने को राधास्वामी संप्रदाय का बता दिया।

× × ×

मुझे दयाल बाग ले चलने वाली प्रेरणा उसी संप्रदाय के एक और अनुयायी, मल्लिक, से प्राप्त हुई थी। एक दूसरे ही समय, कुछ दूसरी ही परि-स्थिति में उनका मेरा परिचय हुआ। जहाँ तक भारतीयों को लें, वे सुन्दर और सुगठित बलिष्ठ शरीर वाले हैं। सदियों तक उनके पूर्वपुरुष जंगली सीमा प्रान्तों के लोगों के पड़ोसी थे, जो हमेशा ही अपने पड़ोसियों की जायदादों पर दाँत लगाये रहते हैं। पर चतुर ब्रिटिश सरकार ने उन लोगों को नौकरी आदि देकर शांत बनाया है।

इन खौफ़नाक कबीलों में कुछ तो शांतिदायी और उपयोगी काम-काज में, जैसे सड़कें बनाना, पुल बाँधना, किले, बारकों आदि की रचना, आदि

में लग गये हैं। ऐसी ही एक टुकड़ी का मल्लिक मुआइना कर रहे थे। ये सरहदी लोग अपने साथ बंदूक रखते हैं, आवश्यकता से प्रेरित हो कर उतना नहीं जितना कि पुरानी आदत के अनुसार। वे इस उत्तर-पश्चिम भारत की सीमा पर बराबर नई सड़कें बनाने या सिपाहियों की रक्षा के वास्ते किले, कोट आदि खड़े करने में लगे थे।

मल्लिक बड़े मेहनती और अपने काम में खूब सिद्धहस्त थे। वे डेरा इस्माइल खाँ में तैनात थे। उनके चरित्र में पक्की आत्मनिर्भरता और गंभीर विचारों का सुंदर मेल हो गया था। उनके सभी गुणों की सुंदर समता से मेरा मन रीझ उठा था।

जैसे योगाभ्यासियों का आचार है, मल्लिक ने भी अपने को शुरू शुरू में मुझ से बहुत ही खिंचा हुआ रक्खा। लेकिन अंत में मेरे प्रश्नों तथा पूछ-ताछ के सामने वे सुलभ हो गये और यह बात उन्होंने मान ली कि उनके एक गुरु थे जिनको कभी कभी फुरसत मिलने पर देखने के लिए वे जाया करते थे। उनके गुरु राधास्वामी संप्रदाय के आचार्य श्री साहब जी महाराज थे। उनसे मैंने दुबारा सुना कि उनके मालिक ने योग मार्ग को पाश्चात्य मार्गों तथा भावों के अनुसार निर्मित दैनिक जीवन के साथ मिला देने की अद्भुत कल्पना का आविष्कार किया है।

× × ×

अन्त को इन दोनों मित्रों, निगम और मल्लिक, के प्रयत्न सफल हुए। राधास्वामी संप्रदाय का प्रधान राज पाट दयाल बाग के अनभिषिक्त सार्वभौम श्री साहब जी महाराज का मैं मेहमान होने वाला था।

आगरे से दयाल बाग ले जाने वाली सड़क मैंने मोटर पर पार की।

दयाल बाग—दयालु परम पिता का बाग! अपनी सर्व-प्रथम धारणा के आधार पर मैं कह सकता हूँ कि इस छोटे उपनिवेश की नींव डालने वाले साहब जी महाराज इसके सुंदर नाम को सार्थक करने की प्राणपण से चेष्टा कर रहे हैं।

मुझे एक पक्का मकान दिखाया गया जो महाराज की खानगी बैठक थी। उसके पास जो आराम घर था वह यूरोपियनों की रुचि के अनुसार सजाया गया था। सुखद आरामकुर्सी से लेकर सुन्दर रंग से रंगी हुई दीवारों और सामग्री के प्रबंध की रुचिपूर्ण कलात्मिकता तथा सादगी से मैं निहाल हुआ।

यहाँ तो पश्चिमी सभ्यता का दौरदौरा था! मैंने योगियों को, सादे साधारण बंगलों, पहाड़ी गुफाओं तथा नदी तीर पर धुँधली कुटियों में देखा था। पर कहीं भी और कभी किसी योगी को नई रोशनी से घिरा हुआ देखने की मुझे तनिक भी उम्मीद नहीं थी। इस अपूर्व बिरादरी के वे अगुआ कैसे होंगे, यह सोचते हुए मुझे चकित होना पड़ा।

बहुत देर तक मेरी यह शंका नहीं रही क्योंकि धीरे धीरे दरवाजा खुला और साहब जी महाराज भीतर पधारे। वे मँझोले कद के थे और उनके सिर पर एक बेदाग सफ़ेद साफ़ा था। उनका रूप-रंग परिमार्जित था और यदि उनके बदन का रंग कुछ और साफ़ होता तो उनके अमरीकन होने का भ्रम पैदा हो सकता था। उनकी आँखों पर बड़ी ऐनक लगी हुई थी। उनके ओठों पर मूँछें सोह रही थीं। वे चुस्त कपड़े पहने थे और उनके कोट पर कई बटन लगे हुए थे। उनकी आकृति सादी और विनयपूर्ण दिखाई दी। उन्होंने राज-पुरुष की सी गंभीरता से मेरी आवभगत की।

जब हम दोनों का प्रथम परिचय समाप्त हुआ और वे अपनी कुर्सी पर बैठ गये तो मैंने उनकी कलापूर्ण रुचि की तारीफ़ करने का साहस किया।

उत्तर में वे बोलने लगे तो शुभ्र कांति वाली दंत-पंक्ति चमक उठी। बोले :

"ईश्वर केवल प्रेममय ही नहीं है, वह रूपवान भी है। जैसे जैसे मानव अपनी आत्मा को उन्मीलित करने लगेगा वैसे वैसे उसको सुंदरता की अधिकाधिक अभिव्यक्ति करनी होगी। केवल अपनी आत्मा में ही नहीं, अपने पास-पड़ोस और चारों ओर के वायुमंडल में उसे अपनी सुंदरता का परिचय देना होगा।"

श्री साहब जी महाराज
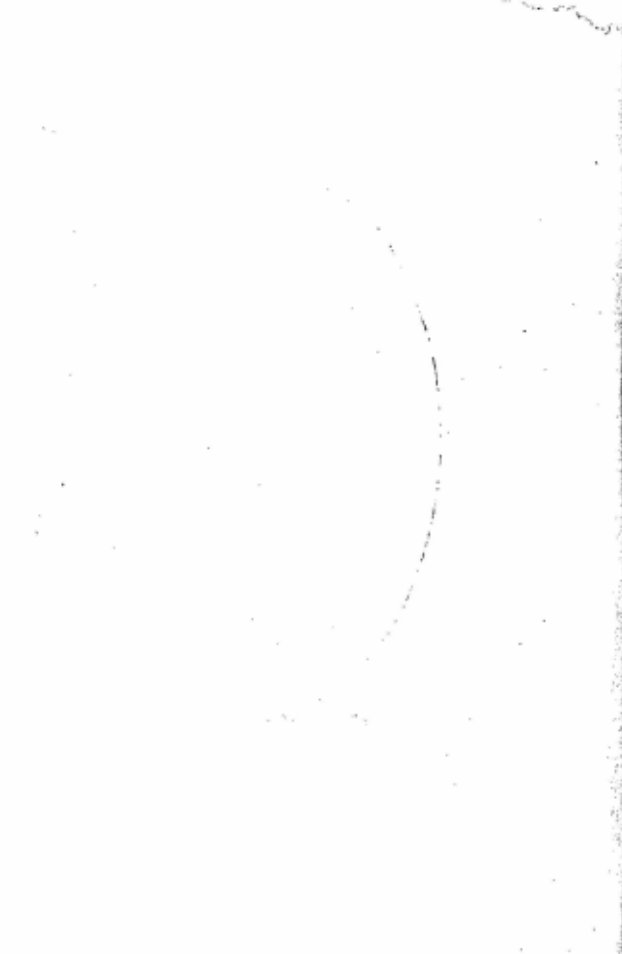
उनकी अंग्रेजी परिमार्जित और सुसंस्कृत थी। उनके स्वर में एक प्रकार के आत्म-विश्वास की गूँज सुनाई पड़ रही थी।

थोड़ी देर तक मौन रह कर वे फिर बोले :

"लेकिन एक और सुंदरता, एक और सजावट है जो कमरे की दीवारों तथा चारों ओर की सामग्री में समायी है। वह अदृश्य है। तब भी वह बहुत ही महत्त्वपूर्ण है। क्या आप जानते हैं कि इन सभी सामग्रियों से मानवों के विचारों तथा भावनाओं का प्रभाव झलकता रहता है ? हर एक कमरा, हर कुर्सी भी उस आदमी के अदृश्य प्रभाव की कथा, जिसने उनका हमेशा से उपयोग किया है, बता देती हैं। हो सकता है कि आपको यह मालूम न हो, तो भी यह अव्यक्त प्रभाव एक ध्रुव सत्य है और जो कोई उसके घेरे में आ जाते हैं वे भिन्न भिन्न मात्राओं में उससे अनजान ही प्रभावित हुए बिना नहीं रहते।"

"क्या आपका विचार है कि इन जड़ वस्तुओं को घेरे हुए, मानव चरित्रों को झलकाने वाली वैद्युतिक या आकर्षण शक्ति की लहरियाँ मौजूद हैं।"

"बेशक, इस जगत में विचारों की सच्ची सत्ता अवश्य है और जिन चीजों को हम सदा काम में लाया करते हैं उनमें वे विचार, कोई तो थोड़े और कोई दीर्घकाल तक समा जाते हैं।"

"यह बड़ा ही दिलचस्प सिद्धांत है।"

"यह केवल सिद्धांत मात्र नहीं है, यह एक ध्रुव तथ्य है। मानव की इस भौतिक स्थूल शरीर के अलावा एक और भी सूक्ष्म देह है। उस सूक्ष्म शरीर में इन सारी ज्ञान और कर्म इंद्रियों के सूक्ष्म मूलभूत केंद्र मौजूद हैं। इन केंद्रों को उद्बुद्ध करने पर मानव उन वस्तुओं का भी, जो साधारण चर्मचक्षु के लिए अगोचर हैं, साक्षात्कार कर सकता है, क्योंकि उनके उद्बुद्ध हो जाने पर एक आध्यात्मिक और मानसिक दिव्य दृष्टि प्राप्त हो जाती है।"

कुछ देर बात-चीत का तार टूटा। फिर उन्होंने पूछा कि भारत के बारे

में मेरी क्या राय थी ! नवीन सभ्यता से लाभ उठा कर अपने जीवन बिताने के रंग-ढंग में उचित परिवर्तन की ओर भारत की घोर लापरवाही, मानव की इस चन्द रोज़ की दुनियावी यात्रा को सुधार कर अधिक आनंद देने वाले नये ज़माने के ईजादों और ऐश-आराम की सामग्रियों को अपनाने में भारत की ढिलाई, स्वास्थ्य रक्षा विज्ञान के मोटे सूत्रों को भी न अपनाने की उनकी हठी प्रवृत्ति, अर्थ रहित और कल्पित अंध-विश्वासों तथा क्रूर आचारों को बनाये रखने की उनकी मूढ़ता आदि की खुले दिल से मैंने टिप्पणी की। मैंने उन पर साफ़ साफ़ प्रकट किया कि शायद अति धार्मिकता ने भारत की सभी शक्तियों को पाताल में डुबा दिया है और उसके विषैले फल भारत अब भी चख रहा है। मैंने कुछ विवेक शून्य बातों की मिसाल दी जो धर्म के नाम से बरती जा रही हैं। इनसे यही सिद्ध होता है कि ईश्वर के दिये हुए बुद्धि रूपी अमूल्य रत्न का ये लोग कैसी लापरवाही के साथ दुरुपयोग कर रहे हैं। मेरे स्पष्ट वक्तव्य को साहब जी महाराज ने पूरी तौर से स्वीकार किया।

कुछ सोचते हुए से मेरी ओर ताक कर महाराज बोले :

"मेरे सुधार के कार्यक्रम में जिन बातों का समावेश है, आपने ठीक उन्हीं का ज़िक्र किया है।"

"जो स्वयं अपने कर्तव्य से संभव हो सके उसको चरितार्थ करने के लिए खुद कुछ न करके भारतीय लोग ईश्वर के ऊपर क्यों निर्भर रहते हैं यह बात मेरी समझ में नहीं आती।"

"बिलकुल ही ठीक है। हम हिन्दू ऐसी कई बातों में भी जिनकी सचमुच धर्म से कोई निस्बत नहीं है धर्म शब्द का बड़ी उदारता के साथ प्रयोग कर देते हैं। दिक़्क़त यह है कि हर एक धर्म पहले ५०-६० वर्ष तक निर्मल और जीती जागती शक्ति धारण किये रहता है। इसके बाद वह केवल एक दर्शन का रूप धारण कर लेता है। उसके अनुयायी केवल गपोड़बाज़ बन जाते हैं; वे अपने धर्म के सिद्धान्तों को अपने जीवन में चरितार्थ नहीं करते। अन्त में

उस धर्म की ऐसी गति हो जाती है कि वह धर्मध्वजी पुरोहितों और धर्माचार्यों के हाथ की चीज बन जाता है। यह दुःस्थिति बहुत ही अधिक काल तक बनी रहती है। सबसे अन्तिम दशा तब आती है जब धर्मध्वजिता ही धर्म का नाम धारण करके दबदबा उगाहने लगती है।"

साहब जी महाराज के इस स्पष्ट भाषण को देखकर मैं दंग रह गया।

वे कहते गये—"ईश्वर, स्वर्ग, नरक आदि के बारे में व्यर्थ के झगड़े और वादविवाद करते रहने से क्या फायदा है? मानव जाति इस पृथ्वी पर रहती है, अतः उसको कभी भी यह उचित नहीं है कि वह भौतिक जगत की परवाह न करे। हमें चाहिये कि हम भौतिक जीवन को और भी सुखद और सुन्दर बना दें।"

"इसीलिये तो मैं आपको खोजते हुए यहाँ तक आया हूँ। आपके चेले बड़े ही सभ्य और सज्जन हैं। वे किसी यूरोपियन के समान ही प्रत्यक्ष वस्तु-सत्ता का ख्याल रखते हैं, वे धर्म का कोई स्वाँग नहीं रचते, खुद अपने सिद्धान्तों के जीते जागते उदाहरण बनने की जी तोड़ कोशिश करते हैं। तब भी ये अपने योग के अभ्यास का बड़ी श्रद्धा और नियम के साथ पालन कर रहे हैं।"

साहब जी ने मुस्कराते हुए मेरी बातें मान लीं।

जल्द उन्होंने उत्तर दिया—"मुझे इसी बात की बड़ी खुशी है कि आपने यह बात पहचान ली। दयाल बाग में मैं इसी बात को चरितार्थ कर दिखाने की चेष्टा कर रहा हूँ कि किसी जंगल या पहाड़ी गुफाओं की शरण में गये बिना ही मानव अच्छी तरह आध्यात्मिक सिद्धि अवश्य पा सकता है और सांसारिक काम-काज को छोड़े बिना ही वह योग के अभ्यास में चरम उन्नति को प्राप्त हो सकता है।"

"यदि आप ऐसा करने में कामयाब होवें तो दुनिया भारतीय ज्ञान के बारे में अब से अधिक श्रद्धा और दिलचस्पी दिखायेगी।"

दृढ़ विश्वास के साथ महाराज का उत्तर मिला :

"अवश्य ही हमें सफलता हाथ लगेगी। मैं आपको एक कहानी सुनाऊँ। जब मैं पहले पहल यहाँ आया और इस उपनिवेश की नींव डालने लगा तब मेरी यही इच्छा थी कि चारों ओर वृक्षों के झुरमुटों की घनी छाया फैल जावे। यहाँ के लोगों ने मुझे बताया कि ज़मीन अनुपजाऊ है, क्योंकि वह रेतीली है। जमुना*जी निकट ही थीं। एक समय नदी की धारा यहीं बहती थी। हम लोगों में इन बातों की सचाई परखने वाला कोई निपुण व्यक्ति नहीं था। अतः बराबर हमें प्रयोग तथा असफलताओं से अनुभव के ज़रिये जानना पड़ा कि इस अनुपजाऊ भूमि में क्या फूल फल सकता है। पहले वर्ष जितने वृक्ष बोये और रोपे गये—वे एक हज़ार के करीब थे। सभी सूख गये। जैसे तैसे एक वृक्ष पनपने लगा। हमने उसको ध्यान से देखा और अपने प्रयत्नों को जारी रक्खा। अब कुल नौ हज़ार वृक्ष सुखपूर्वक अपनी शीतल छाया इस उपनिवेश पर बिखेर रहे हैं। मैं यह सब इसीलिये कहता हूँ कि यह हमारी प्रवृत्ति का रुख बतलाने वाली एक मिसाल है। इसी से आप जान सकते हैं कि हम समस्याओं का किस दृष्टि से सामना कर रहे हैं। हमें यहाँ अनुर्वर भूमि मिली। वह इतनी खराब थी कि कोई खरीदने वाला नहीं मिलता था। देखिये वह आज कैसी हरी-भरी हो खिलखिला रही है!"

"तो आपका विचार है कि आगरे के निकट एक आदर्श गाँव रचें।"

वे हँस पड़े।

मैंने गाँव देखने की चाह प्रकट की।

"बेशक, इसका प्रबन्ध तुरन्त ही करूँगा। पहले दयाल बाग देख लेना, फिर उसके क्यों और कैसे के बारे में हम बातें करेंगे। आप एक बार इस उपनिवेश को अपने काम में लगा देख लें तो मेरे भावों को अच्छी तरह समझ सकेंगे।"

उन्होंने एक घंटी बजायी। उसके कुछ मिनट बाद मैंने अपने को अच्छे कारखानों के बीच में, पक्की परन्तु अधूरी सड़कों पर चलते इस उपनिवेश का निरीक्षण करते हुए पाया। मुझे कैप्टन शर्मा, जो पहले इंडियन आर्मी मेडि-

कल सर्विस के मेम्बर थे और अब जो अपनी सारी शक्तियाँ अपने गुरू के यत्नों को सफल बनाने में लगा रहे थे, रास्ता दिखाने लगे। सरसरी निगाह से देखने पर भी शर्मा जी के चरित्र में मुझे एक ऐसे सज्जन का दर्शन हुआ जिनमें सची आध्यात्मिक लगन के साथ साथ पश्चिमी सभ्यता का सुन्दर मेल हो रहा था।

दयाल बाग के सिंहद्वार पर ले जाने वाली सड़क की बहुत ही निराली शोभा है। सड़कों के दोनों बाजू पेड़ अपनी घनी छाया फैला रहे थे। बीच में एक फुलवाड़ी थी। मुझसे कहा गया कि ये पुष्प वाटिकायें रेगिस्तान पर उनकी विजय के निदर्शन हैं।

साहब जी महाराज ने सन् १९१५ में इस उपनिवेश की नींव डालते समय जिस शहतूत के वृक्ष को रोपा था वह अब भी वहाँ खड़े होकर उनकी कलात्मिकता का खूब ही परिचय दे रहा है।

इस उपनिवेश के औद्योगिक विभाग की मुख्य विशेषता कारखानों का वह समूह है जिसका नाम 'माडल इंडस्ट्रीज़' (आदर्श उद्योग शाला) रक्खा गया है। उसके आयोजन में काफ़ी बुद्धिकुशलता का परिचय मिलता है। ये कारखाने सब के सब साफ़ सुथरे और विशाल हैं।

सब से पहले मैंने जूते के कारखाने में प्रवेश किया। कल पुर्जे खूब ही चल रहे थे। धूम धूसरित कारीगर उस तुमुल नाद के बीच में बड़ी सफ़ाई के साथ काम कर रहे थे। कारखाने के मैनेजर ने मुझको बताया कि योरप में उसने यह कला सीखी थी जहाँ पर चमड़े का माल बनाने के वैज्ञानिक तरीकों को सीखने के लिए वह गया हुआ था।

जूते, थैलियाँ, बेल्ट आदि सभी किस्म का माल इन यंत्रों से दनादन तैयार हो रहा था। यंत्रों को चलाने वाले पहले नौसिखिये थे, पर मैनेजर ने उनको अच्छी शिक्षा दे कर सिद्धहस्त बना दिया था।

यहाँ पर तैयार होने वाले माल में कुछ तो दयाल बाग और आगरे में खपता है, बाकी अन्यान्य नगरों में भेज दिया जाता है। भारत के कई शहरों,

में दयाल बाग की चीज़े बेचने के लिए दूकानें खोली जा रही है और यहाँ का विक्रय विभाग वैज्ञानिक तरीकों पर चलाया जा रहा है ।

मैं एक दूसरे मकान में गया । वह कपड़े बुनने का कारखाना था । उसमें रेशम के और रेशमी वस्त्रों की भाँति चमकने वाले कुछ खास प्रकार के कपड़े बुन कर तैयार किये जाते हैं ।

और एक मकान में बहुत ही नवीन प्रकार की एक इंजीनियरिंग यंत्रशाला है । उसी से संबद्ध एक लुहारखाना आदि हैं । इस शाला में कई वैज्ञानिक औज़ार, प्रयोगशालाओं के लिए उपयोगी साधन, महीन चीज़ों को तौलने के सूक्ष्म तराज़ू आदि तैयार किये जाते हैं और वे इतने नाज़ुक बनाये जाते हैं कि युक्त प्रांतीय सरकार ने उनकी बड़ी भारी प्रशंसा की है ।

और भी अनेक विभाग दयाल बाग में हैं जहाँ बिजली के पंखे, ग्रामोफ़ोन, छुरियाँ, चाकू आदि चीजें बनती हैं । वहाँ के एक कारीगर ने ग्रामोफ़ोन का एक खास प्रकार का ध्वनि-यंत्र ईजाद किया है । भविष्य में उसी प्रकार के यंत्र तैयार किये जाने वाले हैं ।

मुझे यह देख कर बड़ा आश्चर्य हुआ यहाँ फाऊन्टेन पेन बनाने का एक कारखाना है जो अपने ढंग का भारत में सर्वप्रथम है । लगातार कई वर्षों के प्रयोग और खोज के बाद बिकने लायक पहली कलम तैय्यार हो पाई है । एक कठिनाई जिसे उन प्रारम्भिक खोज करने वाले वैज्ञानिक भाइयों ने महसूस की थी वह यह थी कि सोने की निब की नोक पर 'इरिडियम' बिंदु कैसे रख दिया जाय । उनको उम्मीद है कि निकट भविष्य में इसका भी मर्म मालूम हो जायगा । किन्तु अभी कलमों की नोकें इस काम के लिए एक योरोपियन कारखाने में भेज दी जाती हैं ।

दयाल बाग में एक अच्छा छापाखाना है । उसी से उपनिवेश की छपाई का सारा काम लिया जाता है । उपनिवेश के खानगी कारोबार की छपाई का काम तथा दयाल बाग की साहित्यिक आवश्यकतायें भी इस छापेखाने से पूरी की जाती हैं । उसकी हिंदी, उर्दू तथा अंग्रेज़ी छपाई के कुछ नमूने मैंने

देखे। यहाँ 'प्रेम-प्रचारक' नाम का एक साप्ताहिक पत्र भी छप कर प्रकाशित किया जाता है और देश के कोने कोने में रहने वाले राधास्वामियों को भेजा जाता है।

हर एक भवन में कारीगर न केवल अपने भाग्य से खुश ही थे वरन् अपने काम में काफ़ी दिलचस्पी लेते थे। इस जगह पर ट्रेड यूनियन का रहना केवल एक अनमिल बात होती। हर कोई अपना काम, वह छोटा हो या बड़ा, इतने आनन्द से कर रहा था मानो वह उसकी निजी बात हो।

सारे उपनिवेश को बिजली पहुँचाने वाली एक अलग यंत्रशाला है। उसी से सारे कारखानों को बिजली मिलती है। बड़े मकानों में पंखे भी उसी से चलाये जाते हैं। इसके अलावा सभी मकानों को उपनिवेश के सामूहिक खर्च से रोशनी के लिये बिजली दी जाती है।

खेती-बारी आदि का काम देखने के लिए एक अलग विभाग है। उपनिवेश की ओर से नये वैज्ञानिक रीतियों से एक फ़ार्म चलाया जा रहा है। अभी वह अपनी शैशव दशा में है। यहाँ वैज्ञानिक खेती होती है। खेतों को यंत्रों की सहायता से जोतते हैं। इनमें खास तरकारियाँ और चौपायों के लिए घास फूस की उपज होती है।

सबसे अच्छे तौर से संगठित विभाग दुग्धशाला विभाग है। सारे हिंदुस्तान में मुझे इसके समान और कोई दुग्धशाला दिखलाई नहीं दी। आज-कल के सभी वैज्ञानिक उपायों का यहाँ उपयोग किया जाता है। हर एक चौपाया छँटी हुई नस्ल का है। गोशाला में सफ़ाई की ओर सबसे अधिक ध्यान दिया जाता है। मुझको बताया गया कि वैज्ञानिक तरीकों को अख़्तियार करने से दूध की उत्पत्ति में काफ़ी तरक्क़ी हुई है। और उत्पत्ति की मात्रा अन्य किसी दुग्धशाला की अपेक्षा कहीं अधिक है। दूध को गंदगी से साफ़ रखने के लिए एक रेफ्रिजिरेटर यंत्र से काम लिया जा रहा है जिससे दयाल बाग और आगरे के रहने वालों को सबसे पहली बार ताज़ा और स्वच्छ दूध मिलने लगा है। मक्खन बिलोने के लिए भी विलायत से एक बिजली से चलाये जाने वाला

यंत्र मँगा लिया गया है। इस विभाग को इतने सुन्दर और सुचारु रूप से चलाने का सारा श्रेय साहब जी महाराज के एक पुत्र को है। इस जोशीले और मेहनती नौजवान ने मुझसे कहा कि उसने इंग्लैंड, हालैंड, डेन्मार्क और अमरीका की खास दुग्धशालाओं का दर्शन करके इस जमाने के दुग्ध-विज्ञान के उत्तमोत्तम प्रयोग और यंत्र आदि की पूरी जानकारी हासिल कर ली है।

शुरू शुरू में उपनिवेश के खेतों तथा लोगों के लिए पानी का इन्तज़ाम करना बड़ा ही टेढ़ा काम सिद्ध हुआ। खेती के लिए एक नाला खोदा गया और 'वाटर वर्क्स' भी कायम किया गया है। लेकिन धीरे धीरे पानी की माँग अधिक होती गयी और साहब जी महाराज ने सरकारी इंजीनियरों से सहायता ली और एक बोरिंग कुआँ अच्छी तरह से खोदा गया है।

उपनिवेश का अपना एक अलग बैंक है। बैंक भवन बड़ा मज़बूत है। उसमें लोहे के सींखचे लगी खिड़कियाँ हैं। उन पर 'राधा स्वामी जेनरल एण्ड इंश्योरेंस बैंक लिमिटेड्' लिखा हुआ है। बैंक की अधिकारित पूँजी बीस लाख रुपये की है। यह बैंक खानगी लेन-देन ही नहीं किया करता बल्कि शहर के लेन-देन में भी काफ़ी भाग लेता है।

दयाल बाग के बीच में राधास्वामी विद्यालय भवन है। उसका वहाँ बनाया जाना बहुत ही सोहता है, क्योंकि वही उपनिवेश के सारे मकानों से उत्तम है। उसके सामने पुष्पवाटिकायें बहुत ही सुन्दर लगती हैं।

इस हाई स्कूल में कई सौ विद्यार्थी अध्ययन करते हैं। अध्यापन कार्य एक प्रिंसिपल, ३२ योग्य अध्यापकों की सहायता से चला रहे हैं। सभी अध्यापक आदर्शवादी, जवान, उत्साही और साहब जी महाराज तथा अपने शिष्यों, दोनों की सेवा करने की तत्परता से भरे हुए हैं। यहाँ उत्तम श्रेणी की विद्या पढ़ायी जाती है। कोई अलग धार्मिक शिक्षा नहीं दी जाती बल्कि विद्यार्थियों की नैतिक प्रवृत्तियों को जगा कर उनके चरित्र को उज्ज्वल बनाने की कोशिश की जा रही है। इसके अतिरिक्त बीच बीच में साहब जी महाराज विद्यार्थियों से मिलते रहते हैं और हर रविवार को सभी विद्यार्थियों को धार्मिक

प्रवचन देते हैं। लड़के खेल-कूद में, हाकी, फुटबाल, टेनिस, क्रिकेट आदि में काफ़ी दिलचस्पी लेते हैं। सात हज़ार पुस्तकों का एक पुस्तकालय है और विद्या की पूर्णता के लिए एक छोटा अजायब घर भी स्थापित है।

दूसरा एक भव्य भवन महिला विद्यालय है। इसका प्रबन्ध भी उपरोक्त रीति से ही होता है। साहब जी महाराज का अपने क्षेत्र में नारियों को अशिक्षित रखने के क्रूर आचार को तोड़ देने में कितना दृढ़ संकल्प है इसी एक विद्यालय से मालूम होगा।

कुछ ही वर्ष पहले एक पारिश्रमिक विद्यालय—उद्योग मंदिर—भी खोला गया है। उसमें मेकेनिकल, एलेक्ट्रिकल और आटोमोबिल इंजीनियरिंग की शिक्षा दी जाती है और उद्योग धन्धों में भाग लेने के लिए यंत्र विद्या जानने वाले युवक तैयार होते हैं। 'माडेल इंडस्ट्रीज़' नामक दयाल बाग के औद्योगिक विभाग में इन विद्यार्थियों को प्रयोग के लिए स्थान दिया जाता है। इस प्रकार उनको क्लास की पढ़ाई के साथ साथ कारखानों की सारी बातों का प्रत्यक्ष अनुभवजन्य ज्ञान भी प्राप्त हो जाता है।

तीनों विद्यालयों के सैकड़ों छात्रों के लिए कई सुन्दर छात्रालय हैं। हर एक छात्रालय साफ़ सुथरा, हवादार और सुसज्जित है।

दयाल बाग के निवास करने योग्य सभी स्थान, दयाल बाग बिल्डिंग विभाग की निगरानी में हैं। यही विभाग घर के नक्शे खींचता है और मकान बनवाता है। हर एक गली के मकानों के शिल्प में एक सुन्दर समता दिखायी देती है और उन मकानों की श्रेणियों को देखने पर यही प्रतीत होता कि इस शिल्प विभाग की सुन्दरता तथा शिल्प समता की ओर बड़ा ध्यान रक्खा जाता है। वहाँ भद्दे मकानों के बनने की गुंजाइश ही नहीं है, क्योंकि बिल्डिंग विभाग के नक्शों में से ही चुन कर मकान बनवाना पड़ता है। चार ढंग के मकानों के नक्शे तैयार मिलते हैं। उनके बनने की लागत आदि सब का पूरा पूरा ब्यौरा मिलता है। मकान बनाने वालों को असली लागत के अलावा

थोड़ा अधिक देना पड़ता है। कीमत में किसी भी हालत में कमी बेशी नहीं होती।

उपनिवेश की ओर से एक सुन्दर अस्पताल और एक प्रसूति भवन चलाये जाते हैं। दयाल बाग की प्रधान विशेषता वहाँ की आदर्श स्वयंपोषकता और स्वयं परिपूर्णता है। अतः जब मैंने जाना कि हाथ उठा कर सलाम करने वाला पुलिसमैन भी राधास्वामी संप्रदाय का सदस्य है तो मेरे आश्चर्य का कोई ठिकाना न रहा। तो भी उसकी उपस्थिति ने मेरे मन में एक बेसुरी तान छेड़ दी, क्योंकि मुझे जान पड़ा कि दयाल बाग नीति और धर्म का ऐसा स्थान होना चाहिये जहाँ जुल्म का एकदम अभाव ही हो। मुझे पीछे मालूम हुआ कि वे बाहर से आने वाले बदमाशों से दयाल बाग की रक्षा करने के लिए हैं।

× × ×

जब साहब जी महाराज ने मुझसे भेंट करने का समय दिया मैंने उनकी स्तुत्य सफलता की खुले दिल से तारीफ़ की और कहा कि पतनोन्मुख भारत के इस कोने में इस प्रगतिशील सभ्य उपनिवेश को देख कर मैं चकित हो गया। मैंने उनसे प्रश्न किया—"लेकिन इस सब काम-काज के लिए पैसे कहाँ से आते हैं? इस सब कार्यक्रम को जारी रखने के लिए आपको बड़ी भारी पूँजी की आवश्यकता पड़ी होगी।"

"शायद आपको वह मौका भी देखने को मिलेगा जिससे आपको स्पष्ट हो जायगा कि धन कहाँ से आता है। राधास्वामी संप्रदाय के लोग ही इस उपनिवेश के लिए आवश्यक पूँजी दे देते हैं। ऐसा करने के लिए कोई मजबूर नहीं किया जाता और न उनसे चन्दा ही माँगा जाता है। वे लोग इसे अपना एक फ़र्ज समझते हैं कि दयाल बाग की उन्नति में हाथ बँटावें। पर यद्यपि हमें शुरू में इन चन्दों पर निर्भर रहना पड़ा तो भी हमारी उत्कट इच्छा है कि हम तब तक दम न लें जब तक कि दयाल बाग अपने ही पाँवों पर खड़ा न हो जाय।"

"तो आप के अनुयायी बड़े धनी होंगे ?"

"जी नहीं, धनी राधास्वामी लोग तो उँगलियों पर गिने जा सकते हैं। प्रायः इस बिरादरी के लोग मध्यम श्रेणी के हैं। उपनिवेश की उन्नति को देख कर कइयों ने इसके वास्ते काफ़ी त्याग किया है। परमपिता की कृपा है कि हम लोग अब तक कई लाख रुपये वसूल और खर्च कर सके हैं। उपनिवेश का निश्चय ही बड़ा उज्ज्वल भविष्य रहेगा, क्योंकि बिरादरी के बढ़ते बढ़ते उपनिवेश की आमदनी में भी बरकत होगी। इस कारण भी हमें रुपयों की कमी नहीं अखरेगी।"

"आप के संप्रदाय के कुल कितने सदस्य हैं ?"

"करीब ११०००० के कुछ ऊपर ही होंगे, लेकिन उनमें से कुछ हज़ार ही यहाँ बस गये हैं। इस संप्रदाय को शुरू हुए सत्तर वर्ष हो गये, पर सब से अधिक उन्नति पिछले बीस वर्षों में की गई है। आप को स्मरण रखना चाहिये कि यह उन्नति भी किसी आम प्रचार के बिना ही हुई है, क्योंकि हमारा समाज एक प्रकार से अर्ध-गुप्त संस्था है। यदि प्रचार को हम महत्त्व देकर जनता के सामने अपने सिद्धांतों के साथ आ जाते तो हमारे अनुयायियों की तादाद अब की अपेक्षा दसगुनी अधिक होती। अब तक सारे भारत में हमारे संप्रदाय के लोग फैल गये हैं, परन्तु वे सभी दयाल बाग को अपना सदर मुकाम मानते हैं और जब फ़ुरसत मिलती है यहाँ पर आ जाते हैं। वे छोटी छोटी मंडलियों में अपने को संगठित कर लेते हैं। वे हर रविवार को ठीक उसी समय मिलते हैं जब हम यहाँ खास बैठक रचते हैं।"

साहब जी महाराज अपना चश्मा साफ़ करने के लिए कुछ रुक कर फिर बोले :

"ज़रा सोचिये तो सही। जब हम लोग इस उपनिवेश की नींव डालने लगे तो हमारे पास इस काम के लिए भेंट किये हुए पाँच हज़ार रुपये थे। हमने जो पहली ज़मीन खरीदी वह केवल ४ एकड़ थी। अब दयाल बाग की

हजारों एकड़ की ज़मीन है। क्या इससे स्पष्ट नहीं है कि हमारी सचमुच ही उन्नति हो रही है!"

"आप इसको कितना बड़ा बनाना चाहते हैं!"

"मेरी इच्छा है कि दस-बारह हज़ार लोगों को यहाँ बसाऊँ और उसके बाद रुक जाऊँ। बारह हज़ार की ठीक ठीक बसाई बस्ती काफ़ी बड़ी होगी; मैं यूरोप के बड़े शहरों का अनुकरण नहीं करना चाहता। उनमें भीड़ बेहद अधिक होती है और उसके कारण कई दुर्गुण फैलने लगते हैं। मैं लोगों को खुली जगह और खुली हवा में रहने और काम करने के लिए एक उपवन का सा नगर बसाना चाहता हूँ। दयाल बाग को परिपूर्ण करने में अभी कुछ वर्षों की देरी है। तब वह एक आदर्श समाज बन जायगा। यों ही जब मैंने एक बार 'अफलातून की राज्यव्यवस्था' नाम की किताब पढ़ी, अपने ही कई भावों को उसमें पाकर मुझे अत्यन्त हर्ष हुआ। जब दयाल बाग का संगठन पूर्णता को पहुँचेगा, मेरी चाह है कि उसी प्रकार की संस्थाओं को भारतवर्ष भर में स्थापित करने के लिए या कम से कम हर प्रान्त में एक ऐसी संस्था कायम करने के लिए दयाल बाग एक आदर्श बने। सभी समस्याओं को मेरी राय में यह हल कर देगा"

"आप चाहते हैं कि भारत अपनी सारी शक्तियों को औद्योगिक उन्नति में लगा दे!"

"निस्संदेह, इसकी भारत को बड़ी ही आवश्यकता है। लेकिन मेरी यह इच्छा कदापि नहीं है कि वह उसी में अपनी आत्मा को यूरोप के समान भुला दे। अपनी गरीबी को, जिसके तले उसके असंख्य किसान पिसे जा रहे हैं, दूर करने के लिए भारतवर्ष को औद्योगिक सभ्यता अवश्य ही स्वीकार करनी होगी, पर उस सभ्यता को भी उसे एक ऐसी नींव पर खड़ा कर देना पड़ेगा जिसमें और और मार्गों से अवश्यमेव होने वाले पूँजी और श्रम के संघर्ष न रहें!"

"इसके लिए आपकी कौन सी तजवीजें हैं!"

"सभी के हित में अपना हित समझने की चेष्टा करने से, सार्वजनिक हितों को अपने निजी हित की अपेक्षा बड़ा समझने से। हम लोग सहयोग और सामुहिक समुत्थान के सिद्धान्त पर काम करते हैं और हर एक कार्यकर्ता दयाल बाग की सफलता को अपनी निजी सफलता की अपेक्षा अधिक महत्त्वपूर्ण समझता है। ऐसे भी निःस्वार्थ सज्जन हैं जो बहुत कम तनख्वाहों पर काम कर रहे हैं जब कि उन्हें और स्थानों में इससे निश्चय ही अधिक वेतन मिलेगा। मेरा तात्पर्य उन सज्जनों से है जो शिक्षित और पढ़े हुए हैं, न कि उन अशिक्षित श्रमिकों से जो निस्संदेह बड़ी खुशी के साथ अपनी ही इच्छा से ऐसा कर रहे हैं। यह सूत्र यहाँ पर बड़ी सफलता के साथ इसीलिए चल रहा है कि हम सभी का एक आध्यात्मिक ध्येय है। वही हमारी अन्य सभी चेष्टाओं को प्रेरित करता रहता है। कुछ लोग, जो काफ़ी धनी हैं मुफ़ ही दयाल बाग में काम कर रहे हैं। इससे आप को पता चलेगा कि यहाँ के लोग कैसे उत्तम आदर्श से प्रेरित होकर काम कर रहे हैं। लेकिन मेरा विश्वास है कि जब दयाल बाग की उन्नति पूर्ण होगी इस प्रकार के अवैतनिक काम लेने की ज़रूरत नहीं पड़ेगी। जो हो, शीघ्रातिशीघ्र आध्यात्मिक उन्नति प्राप्त करने की इच्छा से ही ये सभी लोग यहाँ पर इकट्ठे हुए हैं, क्योंकि वही हमारे समाज का प्रधान ध्येय है। यदि आप ही यहाँ आ कर इस समाज में शामिल हो जायँ तब, यद्यपि आप हजार रुपये माहवार पाने की योग्यता रखते हों आप को उसका तीसरा अंश ही दिया जायेगा क्योंकि उतना अधिक वेतन देने के लिए यहाँ पर्याप्त धन नहीं है। तब फिर आप एक मकान बनवा सकते हैं, शादी करके बच्चे पैदा कर सकते हैं। लेकिन इस बीच में यदि आपका रुख केवल भौतिक विषय-वासनाओं की ओर ही रहा और आध्यात्मिक आदर्श को, जिसकी प्राप्ति के लिए ही आप पहले हम लोगों में शामिल हुए हैं, आप ने छोड़ दिया तो आप उस हद तक असफलता पावेंगे। जितने भौतिक, दुनियावी काम-काजों को आप देख रहे हैं उन सब के होते हुए भी हमारा वह प्रधान उद्देश्य, जिसकी प्राप्ति के लिए इस उपनिवेश की स्थापना हुई है, किसी भी हालत में लुप्त नहीं होने पाता।"

"हाँ समझा।"

"अब विचारिये कि पश्चिम के लोग जिस अर्थ में 'समाजवादी' शब्द का प्रयोग करते हैं उस अर्थ में हम समाजवादी नहीं हैं। परन्तु यह सच्ची बात है कि यहाँ के सभी खेत, विद्यालय, उद्योग-धन्धे आदि हमारे समाज के हैं। यही नहीं, यह समान-स्वामिता मकान तथा अन्य जायदादों के बारे में भी लागू है। आप यहाँ एक मकान बनवा सकते हैं, पर वह जब तक आप उसमें रहेंगे तब तक ही आप का रहेगा। इस छोटे नियम के पाबन्द होकर सभी को स्वतंत्रता है कि वे खानगी तौर पर रुपये पैसे, माल व मता सभी कमा सकते हैं। इसका यह सुपरिणाम हुआ है कि समाजवाद की सारी बुराइयों को दूर करके उसके अच्छेपन को ही हम स्वीकार कर सके हैं। उपनिवेश की सभी जायदाद को, उसको प्राप्त सभी उपहारों को हम धार्मिक धरोहर समझते हैं। सब कुछ आध्यात्मिक आदर्श के सामने गौण समझा जाता है। इस संस्था के सभी कार्यों के निरीक्षण के लिए ४५ मेम्बरों की एक सभा है जिसमें हर प्रान्त का प्रतिनिधि अवश्य रहता है। वह वर्ष में दो बार बैठती है और हिसाब तथा आय-व्यय के लेखे आदि की देख-रेख करती है। रोज़मर्रा काम तो ग्यारह सदस्यों की एक कार्यकारिणी के ज़रिये चलाया जाता है।"

"आपने पहले कहा था कि दुनिया की कई विषम समस्याओं के सुलझाने की दयाल बाग राह दिखाता है। मुझे सूझ नहीं रहा है कि आज कल की सब से महत्त्वपूर्ण आर्थिक समस्या को हल करने में दयाल बाग कैसे हाथ बटा सकता है?"

बड़े इतमीनान के साथ साहब जी महाराज मुस्कराने लगे। बोले :

"इस सम्बन्ध में भारतवर्ष भी कुछ उपयोगी मदद पहुँचा सकता है। अभी कुछ दिन हुए हमने एक तजवीज़ सोची और उसे यहाँ पर काम में ला रहे हैं। उससे हमारा यही तात्पर्य है कि बहुत जल्द हम इस उपनिवेश की वृद्धि कर लें। इस मंसूबे में मेरे बताये हुए कई महत्त्वपूर्ण आर्थिक और सामाजिक सिद्धान्तों का समावेश है। हमारे यहाँ एक पैतृक-सम्पत्ति निधि

कायम की गई है। जो एक हजार से कुछ ऊपर दे सकते थे उनसे प्रार्थना की गई कि वे इस निधि में धन जमा करें। हमारी प्रबंधक समिति की ओर से उन लोगों को हर साल पाँच प्रति सैकड़ा से जो कम न हो ऐसी एक रकम दी जाती है। हिस्सेदार की मौत के बाद यह सालाना हिस्सा उसके बताये हुए वारिस को दिया जाता है। इस दूसरे आदमी को भी अपने वारिस को नामजद करने का हक है। पर तीसरी पीढ़ी के वारिस की मौत के बाद कुछ भी रकम नहीं दी जायेगी। यदि पहले हिस्सेदार को अपने जीवन काल में किसी कठिन समस्या का सामना करना पड़े या किसी मुसीबत का कौर बनना पड़े तो उसकी जमा की हुई सारी की सारी पूँजी या उसका एक अंश उसको दिया जा सकता है। यों धीरे धीरे हमारे कोशगृह में लाखों रुपये वसूल होने की संभावना है और तब भी हमारे सदस्यों को किसी प्रकार की विशेष तंगी महसूस नहीं करनी पड़ती। जो कुछ पूँजी वे लगावें उस पर एक नियत वार्षिक रकम उनको अवश्य ही मिल जाती है।"*

"क्या मैं मान लूँ कि आप पूँजीवाद के दोषों और साम्यवाद की कल्पित हवाई उड़ान के बीच एक मध्यम मार्ग ईजाद करने की चेष्टा कर रहे हैं। जो हो, मुझे उम्मीद है कि आप की मनचाही बात शीघ्र ही पूरी होगी क्योंकि आप सफलता पाने के एकदम योग्य हैं।"

मुझे स्पष्ट रीति से मालूम हो गया कि दयाल बाग का, उसकी पैतृक-सम्पत्ति-निधि की हर दिन बढ़ने वाली पूँजी के कारण, अवश्य ही उज्ज्वल भविष्य होगा।

राधास्वामियों के उस परम गुरू ने बताया—"हिन्दुस्तान के अनेक नेता लोग हमारे प्रयोग को बड़ी उत्सुकता के साथ परख रहे हैं; कुछ ने तो हमारे इस उपनिवेश को देखा भी है। हमारे मार्गों की टिप्पणी करने वाले, हमारी तजवीज़ों से सहमत न रहने वाले भी यहाँ पधारे हैं। आप समझ लें कि भारत

---

* यूरोप के अर्थशास्त्री भी कुछ इसी तरह के, इटली के प्रोफेसर रिजनानो के प्रतिपादित, एक सिद्धान्त से एक ज़माने से परिचित हैं।

की जनता सारी दुनिया में अत्यन्त ग़रीब और बलहीन है और उसके अगुआ लोग परस्पर विरोधी इलाज बताया करते हैं। एक बार गांधी जी भी यहाँ पधारे थे और बड़ी देर तक मुझसे बातें करते रहे। उन्होंने चाहा कि मैं भी राजनैतिक आन्दोलन में भाग लूँ किन्तु मैंने स्वीकार नहीं किया। हमारा राजनीति से कोई काम नहीं है। सुधार और पुनरुद्धरण के प्रत्यक्ष तरीकों पर हमारा अटल विश्वास है। उसी पर हम अपना सारा ध्यान लगा देते हैं। गांधी जी के राजनैतिक विचारों से मेरा कोई सम्बन्ध नहीं है पर उनके आर्थिक सिद्धान्तों को मैं भ्रमपूर्ण और क्रियान्वित करने के लिए अनुपयोगी समझता हूँ।"

"वे सभी कल-कारखानों को समुद्र में फेंकना चाहते हैं।"

साहब जी ने सिर हिलाया। बोले—"हिन्दुस्तान फिर अपनी पुरानी दशा की ओर नहीं जा सकता। वे पुराने दिन अब फिर न बहुरेंगे; न ऐसा होने से कोई लाभ ही है। उसको चाहिये कि वह हमेशा आगे कदम बढ़ाता रहे। आधुनिक सभ्यता की सारी खासियत को अख्तियार कर ले। तभी भविष्य में कुछ आशा रक्खी जा सकती है। मेरे देश-भाइयों को अमेरिका और जापान से सबक सीखना चाहिये। आधुनिक सभ्यता के कल-कारखानों के मुकाबिले में हाथ की कताई और बुनाई कभी नहीं टिक सकतीं।"

साहब जी महाराज के शब्दों में एक भूरे हिन्दू के तन में होशियार अमेरिकन के दिमाग को मैंने काम करते पाया। उनका दिमाग, उनकी बुद्धि की तीक्ष्णता और सूक्ष्मता, उनके कारोबार के लिये उपयोगी चालाक बुद्धि तीव्र और आश्चर्यजनक थी। उनके लोक ज्ञान, समता और कारणों को सोचने की स्थिरता, जो इस देश में विरले ही पायी जाती हैं, सभी ने मेरी तार्किक बुद्धि को हर लिया। उनके चरित्र का यह अविश्वसनीय सा जँचने वाला अनेकपन मुझे विस्मित करने लगा। एक रहस्यपूर्ण योग मार्ग के अवलंबन करने वाले, एक लाख से कुछ अधिक ही लोगों के दिल के सार्वभौम, दयाल बाग में सर्वत्र मेरी दृष्टि को हर लेने वाले, अनेक प्रकार के भौतिक कारोबार

के विधाता और निर्माता, साहब जी महाराज मेरी दृष्टि में एक अद्वितीय पुरुष हैं, उनको देख कर मैं दंग रह जाता हूँ। सारे भारत में, सारे संसार भर में उनका सानी मिलने का मुझे विश्वास नहीं होता।

फिर से उनका कंठस्वर मेरे कानों में गूँजने लगा :

"आपने दयाल बाग में हमारे जीवन के केवल दो ही पहलू देखे हैं। आपको और एक पहलू देखना है। मानव की प्रकृति तीन प्रकार की होती है—आध्यात्मिक, आधिभौतिक और आधिदैविक। इस कारण हमने भी आधिभौतिक क्षेत्र में कल-कारखानों, खेती-बारी आदि को कायम किया है, मानसिक उन्नति के लिए हमने विद्यालय आदि खोले, और आध्यात्मिक क्षेत्र में हमारी सामुहिक प्रार्थनायें होती हैं। इस प्रकार हम हर किसी की तीनों क्षेत्रों में पूर्णता चाहते हैं। हम आध्यात्मिक पहलू पर अधिकाधिक जोर देते हैं। हमारे समाज का प्रत्येक व्यक्ति अपने निजी योग अभ्यासों का, चाहे वह कहीं भी रहे, नियम पूर्वक पालन करता रहता है।"

"क्या मैं भी इन सामुहिक प्रार्थनाओं में भाग ले सकता हूँ?"

"बड़ी खुशी के साथ। हम आपको न्योता देते हैं कि आप हर रोज़ ज़रूर पधारें।"

× × ×

दयाल बाग का दिन का काम-काज सुबह छः बजे की सामुहिक प्रार्थना से शुरू हो जाता है। पौफट शीघ्र ही रात की कालिमा को घेर लेती है; कौओं की मायूस आवाज़ में चिड़ियों का मधुर चहचहाना मिला सा रहता है और सारी प्रकृति लोक बांधव सूर्य भगवान की बड़े अनुराग के साथ आरती उतारती है। मैं अपने पथ प्रदर्शक के पीछे चल कर एक बड़े शामियाने पर पहुँचा।

द्वार पर बड़ी भीड़ थी। सभी लोग जूते उतार कर नौकरों के हाथ में दे रहे थे। मैंने आचार का अनुकरण किया और शामियाने में प्रवेश किया।

उसके बीच में कुछ ऊँचा चबूतरा खड़ा कर दिया गया था। उस पर एक कुर्सी पर श्री साहब जी महाराज आसीन थे। उनके सैकड़ों चेले चारों ओर उनको घेरे बैठे थे। कहीं अंगुल भर ज़मीन भी खाली न थी। सभी की दृष्टि साहब जी महाराज पर लगी थी। आदर के कारण सभी चुप्पी साधे हुए थे।

मैं चबूतरे के पास गया और वहाँ एक तंग जगह में किसी तरह अपना आसन जमा लिया। शीघ्र ही दालान के पिछले भाग में दो सज्जन उठ खड़े हुए और धीरे धीरे गंभीर आवाज़ में वे कुछ मंत्र गाने लगे। गीतों की भाषा हिंदी थी और वे कानों को बहुत ही प्यारे मालूम हो रहे थे। यों कोई पन्द्रह मिनट बीते। उन निराले पावन शब्दों ने धीरे धीरे थमते थमते सब की मनोवृत्तियों को प्रशांत बना दिया। फिर वे न मालूम कब हवा की हिलकोरियों में लहरते लहरते विलीन हो गये।

मैंने चारों ओर निगाह दौड़ाई। उस विशाल शामियाने में सब कोई शांत, अविचल और ध्यान में डूबे बैठे हुए थे। वेदी पर सोहने वाली उस साधारण वेषधारी, नम्रता की मूक मूर्ति की ओर मैं ताकने लगा। उनका मुख सदा की अपेक्षा अधिक गंभीर हो गया था, उनका वह फुर्तीलापन मानो गायब सा था। प्रतीत होता था कि उनका मन किसी गहरे ध्यान में मग्न सा हो गया है। मुझे आश्चर्य होने लगा कि उस सफ़ेद साफ़े के तले क्या विचार लहर मारते होंगे? उनके कंधों पर कितनी भारी ज़िम्मेदारी थी, क्योंकि ये सारे लोग उनको अपना बेड़ा पार लगाने वाला खेवनहार समझे हुए थे।

यह अद्भुत सन्नाटा और आध घन्टे तक छाया रहा। कोई हिलता डुलता न था। क्या इन सभी मननशील पूर्व के निवासियों ने मुझ शकी पश्चिमी की आँखों की ओट किसी अपूर्व जगत में अपनी अंतर्मुख दृष्टियों को लीन कर दिया है? कौन कह सकता है कि बात क्या थी? लेकिन यह सब सारे दयाल बाग़ को मुखरित करने वाले दैनिक कार्य का अपूर्व महिमामय पूर्वरङ्ग था।

हम लोगों ने जूते पहन लिए और चुपचाप घर की ओर चले।

सवेरे कई राधास्वामियों से मेरी बात-चीत हुई। उनमें कई तो दयाल बाग के निवासी थे। अधिकांश उनमें अच्छी तरह अंग्रेज़ी बोल सकते थे। कुछ साफ़े वाले पंजाबी थे, कुछ शिखाधारी तामिल, और कुछ भावुक बंगाली। सभी प्रकार के लोग उनमें शामिल थे। उन सबों के मुखों से स्वाभिमान झलक रहा था। उनकी आध्यात्मिक उत्कंठा के साथ साथ दुनियावी शान में भी वे काफ़ी सिद्धहस्त थे। एक ओर उनके दिमाग़ आसमान में विहार कर रहे थे तो उनके पैर मज़बूती के साथ स्थिर पृथ्वी पर टिके हुए थे। यहाँ ऐसे उत्तम नागरिक मेरे देखने में आये जिनका कोई भी नगर गर्व कर सकता है। उनको देख कर मेरे दिल में प्रेम अपने आप उमड़ उठा। उनकी मैं सच्ची तारीफ़ करता हूँ क्योंकि वे एक उज्ज्वल दुर्लभ रत्न-चरित्र के स्वामी थे।

शाम को एक छोटी बैठक हुई। वह आगन्तुक सदस्यों से संबन्ध रखती थी। उनकी भलाई के लिए ही वह उद्दिष्ट थी। हर एक अपनी कठिनाइयाँ पेश करता है, उनके हल करने का तरीक़ा बताया जाता है, प्रश्न पूछे जाते हैं और उत्तर दिये जाते हैं। सभी से संबन्ध रखने वाली सामान्य बातों पर बहस होती है। जो बातें पेश होती हैं उनको सुलझाने में साहब जी महाराज अजब चातुर्य दिखाते हैं। वे हँसी हँसी में बड़े चुटीले ढंग से काम लेते हैं और प्रश्न कितना भी जटिल क्यों न हो वे हाज़िर जवाब हैं। वे अपनी राय को, चाहे वे आध्यात्मिक विषयों के बारे में हों या सांसारिक विषयों पर, दृढ़ता और विश्वास के साथ बहुत ही शीघ्र बता देते हैं। उनके सारे स्वभाव में एक असाधारण रूप से बड़ी सफलता के साथ अटल-आत्म-विश्वास और अत्यंत नम्रता का सुन्दर समावेश हो गया है। बात-चीत में वे बड़े ही निपुण दीखते हैं और वे इतने सरस और तत्पर हैं कि उनकी बातों में उनके वे गुण फूट फूट कर प्रकट होते हैं।

शाम को फिर एक सामुदिक बैठक हुई। दयाल बाग के हर विभाग का काम अब खतम हुआ था और विशाल शामियाने में फिर एक बड़ा जमघट लगा। साहब जी महाराज फिर अपनी कुर्सी पर आसीन हुए। मैंने देखा कि उनके अनुयायियों का एक ताँता उनके निकट बड़े आदर के साथ पहुँचकर

दयाल बाग की प्रबंध समिति की निधि की रक्षा तथा वृद्धि के लिए भेंट चढ़ाने लगा। कमेटी के दो सदस्य इन सारी नज़रों को इकट्ठा करते तथा बही में चढ़ाते जाते थे।

बाद को जो खास बात हुई वह गुरु महाराज का व्याख्यान था। उनकी सुघड़ हिन्दी को बड़े चाव और लगन के साथ हज़ारों चेले मगन होकर सुनने लगे थे। महाराज अच्छे वक्ता हैं। वे जो कुछ बोलते थे वह दिल से बोलते थे और वह भी सारगर्भित वचनों में और बड़े ही सुन्दर रूप से। वे बोलते समय इतने आवेग और आवेश से भरकर व्याख्यान देते थे कि सुनने वालों के दिल पर प्रकट ही जादू फिर जाती थी।

× × ×

हर दिन यही कार्यक्रम जारी रहता था। शाम की बैठक करीब दो घंटे तक होती। साहब जी महाराज की मानसिक शक्ति इसी से प्रकट हो जायगी कि वे अपने स्वाभाविक उत्साह के साथ, बिना किसी प्रकार की तकलीफ़ के ही सारा कार्यक्रम चलाते थे। कोई पहले नहीं जानता है कि शाम की बैठक में वे किस मज़मून पर बोलेंगे। इस बारे में मैंने उनसे प्रश्न किया तो उनका उत्तर यही था:

"जब मैं कुर्सी पर बैठता हूँ तब मुझे ही यह बात मालूम नहीं होती। शुरू करने के बाद भी मुझे इस बात का ज्ञान नहीं रहता है कि दूसरा वाक्य क्या होगा या पहला वाक्य किस तरह समाप्त होगा। मैं परमपिता पर अटल और अखंड विश्वास रखता हूँ। जो कुछ मुझे जानना हो, वे ही मुझे बता देते हैं। दिल ही दिल में मुझे उनकी आज्ञायें सुनाई पड़ती हैं। मैं पूर्णतया उन्हीं के हाथों में हूँ।"

उनके पहले व्याख्यान के शब्द कुछ दिन तक मेरे मन-मंदिर में विहार करते रहे। उसका मज़मून था, गुरु के चरणों में स्वात्मार्पण। जब तक मैंने इस बारे में प्रश्न नहीं किया, वे शब्द मेरे दिल में अखरते रहे। एक दिन हम दोनों दयाल बाग के बीच में एक सुन्दर कालीन पर बैठे हुए थे। चारों

और दूब का हरा मखमल बिछा हुआ था। हम दोनों बड़े प्रेम के साथ बातों में मगन हो रहे थे।

उन्होंने अपनी बात फिर से दुहराई और साथ ही यह भी कहा :

"गुरू की बड़ी भारी ज़रूरत होती है। आध्यात्मिक विषयों में आत्म-निर्भरता का कोई अर्थ ही नहीं है।"

मैंने बड़ी हिम्मत के साथ प्रश्न किया :

"आपको भी गुरू की आवश्यकता महसूस हुई थी क्या ?"

"निस्संदेह, सच्चे सद्‌गुरु के वास्ते मैंने चौदह वर्ष तक खोज की थी।"

"चौदह साल तक ! जीवन काल का एक मुख्य भाग ! क्या यह उचित और सार्थक हुआ ?"

बिजली के समान बहुत ही शीघ्र साहब जी महाराज बोल उठे—"सद्‌गुरु की खोज में जो भी समय लगाया जाय वह व्यर्थ कभी नहीं होगा। विश्वासी होने से पहले मैं भी आप सरीखा अविश्वासी और शक्की था। उस समय मेरे आध्यात्मिक मार्ग को रोशन करने वाले सद्‌गुरु को खोजने की इच्छा मेरे दिल में बलवती हो उठी। मैं भरी जवानी में था और निरुद्देश्य ही सत्य को ढूँढ़ निकालने की धुन मेरे सिर पर सवार थी। मैं पेड़ों से, आसमान से, यहाँ तक कि घास-फूस से भी पूछा करता था कि सचमुच सत्य की सत्ता है कि नहीं ? ज्ञान ज्योति के लिए तरसते हुए सिर झुका कर बच्चे के समान मैं कितने बार रो पड़ा था। मेरा दिल धीरे धीरे गल कर आँसुओं के रूप में निकला करता था। अन्त में मुझसे सहा न गया। मैंने एक दिन ठान लिया कि जब तक दैवी शक्ति मुझको योग्य समझ कर मेरे दिल को ज़रा सा रोशन न करे तब तक, चाहे मर भी जाऊँ, न खाऊँगा न पीऊँगा। मैं कोई काम भी नहीं कर सकता था। दूसरे दिन रात को मैंने एक स्वप्न देखा। मैंने देखा कि एक महात्मा मेरे यहाँ पधारे हैं। उन्होंने बताया 'मैं ही तेरा गुरुदेव हूँ।' मैंने उनका पता पूछा तो उन्होंने कहा 'इलाहाबाद। मेरा पूरा पता तुमको फिर मालूम हो जायगा।' दूसरे दिन मैंने अपने एक

इलाहाबाद के मित्र से सपने की सारी बात कह दी। वे फिर कुछ फोटो लेकर मेरे पास आये। बोले 'इनमें तुम्हारे सपने के गुरू कौन हैं ? कुछ पहचान सकते हो ?' मैंने झट पहचान लिया। मेरे मित्र ने कहा कि उस फोटो के महाशय एक रहस्य संप्रदाय के गुरू हैं। मैंने शीघ्र ही उनका परिचय प्राप्त कर लिया और कुछ ही दिनों में उनका चेला बन गया।"

"बहुत ही रोचक है !"

"आप अपने तईं योग का अभ्यास शुरू कर भी दें तब भी अपनी सच्ची प्रार्थना को तभी सफल समझिये जब आपको सद्गुरू नसीब हों। इस चक्र से कोई भी नहीं बच सकता। आपको जरूर ही किसी गुरू का हाथ पकड़ना पड़ेगा। सच्चे दृढ़ जिज्ञासु को किसी तरह सद्गुरु प्राप्त हो ही जायेगा।"

मैं एक प्रश्न गुनगुनाने लगा—"उनका पता चले कैसे ?"

साहब जी के मुख की गंभीरता कुछ छूटी, उनकी आँखों में एक विनोद-पूर्ण उल्लास एक क्षण तक थिरक उठा। बोले—"सद्गुरु पहले से ही जानते हैं कि उनके पास कौन आवेगा। उनको वे बरबस अपनी ओर खींच लेते हैं। उनकी शक्ति और जिज्ञासु की भाग्य रेखा, दोनों का मेल हो जायगा और उसका परिणाम अवश्यम्भावी होता है।"

धीरे धीरे हमारे चारों ओर एक छोटा झुंड इकट्ठा हो गया और वह क्रमशः बढ़ता जाता था। कुछ देर बाद गुरू जी की बातें सुनने के लिए बीसों आदमी इकट्ठे होने वाले थे।

"आपके राधास्वामी सिद्धान्तों का एक स्पष्ट चित्र बना लेना चाहता हूँ, पर वे बड़े कठिन जँचते हैं। आपके एक चेले ने मेरे हाथों में इसी संप्रदाय के एक भूतपूर्व आचार्य श्री ब्रह्मशंकर मिश्र जी की रची हुई कुछ किताबें दी हैं। उनके पढ़ने से मेरे दिमाग में भारी उथल पुथल हो गयी है और सोचते सोचते मुझको आराम ही नहीं मिल रहा है।"

साहब जी हँस पड़े। बोले :

"यदि आप इस संप्रदाय के सिद्धांतों की सचाई परखना और समझना चाहते हैं तो आपको योगाभ्यास करना पड़ेगा। हमारे सिद्धांतों को बुद्धि बल के द्वारा समझ लेने की अपेक्षा नियमपूर्वक प्रतिदिन इन अभ्यासों का पालन करना कहीं मुख्य है। खेद है कि मैं ध्यान के उन प्रकारों का ब्यौरा आपको नहीं बता सकता क्योंकि वे उन्हीं को बताये जाते हैं जो उनको पोशीदा रख कर स्वीकार करने की कसम खा लें और साथ ही वे इस संप्रदाय में शामिल होने के इच्छुक हों। लेकिन मैं एक बात आपको बता सकता हूँ। उन सारे अभ्यासों का मूल ध्वनि या नाद योग, यानी भीतरी शब्द, अनहद नाद, को सुनने का अभ्यास है।"

"मैं जो किताबें पढ़ रहा हूँ उनमें लिखा हुआ है कि सृष्टि ही शब्द शक्ति से हुई है।"

"भौतिक दृष्टि से आपने ठीक ही समझ लिया है। लेकिन ऐसा कहना बेहतर है कि सृष्टि करते हुए परमात्मा की सबसे पहली क्रिया ही शब्द या नाद है। विश्व कुछ अंधे नियमों का परिणाम नहीं है। हमारे संप्रदाय के लोग इस दिव्य नाद को जानते हैं और वे उसकी अक्षर रूप में प्रतिलिपि ले सकते हैं। हमारा विश्वास है कि ध्वनियों पर उनके उत्पत्ति स्थान का और उत्पन्न करने वाली शक्ति का प्रभाव अंकित रहता है। अतः जब हमारा कोई सदस्य इस दिव्य नाद को भीतर ही भीतर बड़े ध्यान से, मन, काया और संकल्प का संयम करके, सुनने लगता है तब उस दिव्य नाद के गूँजते गूँजते वह इस भौतिक जगत के परे, परा सत्ता के परमानंद और परम ज्ञान के आलोक से मंडित हो जाता है।"

"क्या ऐसा भ्रम पैदा होना संभव नहीं है कि अपनी धमनियों में बहने वाली लहू की धारा के प्रसरण की ध्वनि को ही साधक दिव्य नाद समझ बैठे? और कौन सी ध्वनियाँ भीतर सुनायी पड़ेंगी?"

"हमारा तात्पर्य किसी भौतिक शब्द से नहीं है। हम जो कहते हैं वह एक आध्यात्मिक नाद है। भौतिक जगत में जो शब्द ध्वनि रूप में देखा

जाता है वह इसी सूक्ष्म आभ्यंतर नाद का प्रतिरूप तथा प्रतिबिम्ब है जिसके क्रिया कलापों से विश्व की सृष्टि हुई है। जैसे आप के वैज्ञानिकों ने जड़ पदार्थ का मूल वैद्युतिक शक्ति बताया है ठीक उसी प्रकार हम भी स्थूल श्रवणेंद्रिय से सुनी जाने वाली ध्वनि का मूल एक अतीत स्पंद को बताते हैं, जो अपने आध्यात्मिक स्वभाव के कारण हमारे इन कानों को सुनाई नहीं पड़ेगी। जब एक ध्वनि निकलती है, वह अपने साथ उत्पत्ति स्थान से संबंध रखने वाली बातों का प्रभाव भी ले आती है। इसलिए यदि आप अपनी दृष्टि को भीतर की ओर कर लें, आप अंतर्मुख बन जावें और वह भी एक खास ढंग पर, तो एक दिन ऐसा आ सकता है जब आप भी उस सर्व प्रथम स्फोट शब्द को, जो परमात्मा का असली नाम है, जो प्रथम प्रलय कल्लोल के उद्रेक से फूट निकला था, सुन सकें। उस स्फोट शब्द का निनाद मानव की आध्यात्मिक प्रवृत्ति में गूँज उठता है। इस निनाद को हमारे रहस्यमय योगाभ्यास के ज़रिये ग्रहण करना और उसके मूल का पूरा पूरा पता चलाना, सच ही स्वर्ग का भोगी बनना है। जो हमारे राधास्वामी संप्रदाय के बताए हुए अभ्यासों का श्रद्धा के साथ पालन करेगा वह उस परम रहस्य को, उस नाद को सुन लेगा; और जब वह उसके कर्ण कुहर में गूँजने लगेगा तब निर्वृत्ति को, परानंद को पा कर उसी में लीन हो जायगा।"

"आप बड़े विचित्र सिद्धांतों का प्रतिपादन कर रहे हैं। उपन्यास के से आपके उपदेश मुझे चकित कर रहे हैं।"

"पश्चिमियों को ऐसा ही दिखलायी पड़ेगा, पर हिन्दुस्तानियों को नहीं। पंद्रहवीं सदी में ही कबीर ने बनारस में नाद योग की महिमा गाई थी।"

"मुझे कुछ भी नहीं सूझता कि इसके बारे में मैं क्या कहूँ।"

"क्यों दिक्कत किस बात की है? आप अवश्य ही स्वीकार करेंगे कि नाद का एक रूप—संगीत, आदमी को आनंद विभोर बना सकता है। तब सोच कर देखिये कि दैवी आभ्यन्तरिक संगीत से कितना अधिक आनंद हो सकता है?"

"मान लिया; पर इस आभ्यन्तर संगीत के अस्तित्व में कोई प्रमाण पेश करें तब न।"

"आपको इस बात की सचाई मैं कितनी ही दलीलों से समझा सकता हूँ पर मुझे तो यह प्रतीत हो रहा है कि आप इससे कुछ और अधिक की ताक लगाये हुए हैं। प्राकृतिक और भौतिक जगत से परे जो बातें हैं उनको केवल सूखे तर्क से मैं कैसे प्रमाणित कर सकता हूँ। बिलकुल स्वाभाविक ही है कि साधारण मानव अतीत की किसी सत्ता का ज्ञान न रक्खे। यदि आप इन बातों का प्रत्यक्ष प्रमाण चाहते हैं तो आपको यही उत्तम होगा कि कुछ योग अभ्यासों का अवलंबन करें। मैं आपको यकीन दिला सकता हूँ कि मानव शरीर हम जैसा मान बैठे हैं उसकी अपेक्षा कहीं उत्तम बातें कर दिखाने की ताकत रखता है। हमारे मस्तिष्क के केन्द्रों के अंतरतम भाग और सूक्ष्म लोकों की सत्ता में संबंध है। नियत शिक्षण से इन केन्द्रों की शक्ति उद्‌बुद्ध की जा सकती है। यहाँ तक कि एक दिन हमें सूक्ष्म लोकों का पता लग जायेगा। इन सब केन्द्रों में जो सब से अधिक प्रधान है उसके उद्‌बुद्ध हो जाने पर अनुत्तम दिव्य चैतन्य की अनुभूति होने लगेगी।"

"क्या आपका मतलब शरीर रचना शास्त्रियों के बताये हुए मस्तिष्क के केन्द्रों से है?"

"एक हद तक। उन स्थूल भौतिक केन्द्रों के जरिये सूक्ष्म केंद्र काम करते हैं उन्हीं में असली परिवर्तन नज़र आने लगेगा। इन सबमें प्रधानतम केंद्र त्रिकुटी है। आप जानते हैं कि यह चक्र भ्रूमध्य में है। इसी में मानव की आध्यात्मिक शक्ति छिपी पड़ी है। वहाँ पर आदमी को घाव लगे तो वह तुरन्त वहीं का वहीं ढेर हो जायगा। श्रावण, चाक्षुष तथा घ्राणेन्द्रिय संबंधी नाड़ियाँ इसी चक्र में अवस्थित होती हैं।"

"हमारे डाक्टरी विज्ञान वेत्ता लोग अभी इस चक्र के उपयोग के बारे में कुछ निश्चय नहीं कर सके हैं। वे इसके बारे में बड़े ही चकित हैं।"

"क्यों न हों। यही ऐसा प्रधान केंद्र है जो पुंजीकृत मानव शक्ति है,

जो मानव के शरीर तथा मस्तिष्क को आयु और प्राण देने वाला चक्र है।
जब आत्मा इस नाड़ी चक्र से अपने को खींचने लगती है तभी स्वप्न, सुषुप्ति,
गहरी सुषुप्ति, आदि की दशायें होने लगती हैं। जब वह पूरे तौर से उस चक्र
से मुँह मोड़ लेगी तो फिर मानव का शरीर जीर्ण पत्र के समान गिर जायेगा।
मानव शरीर स्वयं ही विश्व की एक छोटी प्रतिकृति है। उसमें सृष्टि के कारण
भूत, महाभूत, आदि सूक्ष्म और छोटे पैमाने पर देखे जाते हैं। उसी में सूक्ष्म
और स्थूल जगत को मिलाने वाले सूत्रों का पता चलता है। इसलिए यह
निस्संदेह संभव है कि हमारे शरीर में रहने वाली शक्ति अनुत्तम आध्यात्मिक
अनुभूति को प्राप्त हो जाय। जब वह शक्ति उस चक्र से छूट कर उर्द्ध्वगामिनी
बनेगी, मस्तिष्क के धूसर पदार्थों में से उसके गुज़रने का नतीजा यह होगा
कि साधक को विश्वमन का बोध होगा। उस शक्ति के मस्तिष्क के श्वेत
द्रव्य से गुज़रने से आध्यात्मिक संबोध होगा। लेकिन इस अनुभूति की
प्राप्ति के पहले सारी शारीरिक वेदनाओं को शांत कर लेना होगा। नहीं तो
बाह्य जगत की वेदनाओं से हम अपने को नहीं बचा सकेंगे। अतः हमारे योग
का सार यही है कि साधक पूरा पूरा ध्यान साध ले ताकि ध्यान की धारा
अंतर्मुख बन जावे और बाह्य वातावरण का तब तक ख्याल ही न रहे जब
तक कि एक गहरी धारणा की दशा प्राप्त न हो जाय।"

मैं इन विचित्र, सूक्ष्म और गंभीर बातों को समझने की चेष्टा करते हुए
चारों ओर ताकने लगा। तब तक हमारे पास एक खासी भीड़ इकट्ठी हो गई
थी और लगन से हमारी बातें सुन रही थी। उनके गुरु महाराज की बातों के
तले उनका जो प्रशांत आत्मविश्वास मुझे झलकता दिखाई देता था वह मानो
मेरे मन को खींचने लगा, पर......।

"तो आप का कहना यही है कि इन बातों की सचाई को परखने का
एकमात्र साधन नाद योग का अभ्यास करना है। पर आप उसे प्रकट नहीं
करते, उसे पोशीदा रखते हैं।"

"जो कोई हमारे संप्रदाय में शामिल होने की चाह प्रकट करे, यदि वह

स्वीकार किया गया, तो उसे हमारे योग अभ्यासों का तरीका मौखिक रूप से बता दिया जायेगा।"

"पहले से आप मुझे उस योग का कुछ स्थूल अनुभव नहीं करा सकते जिससे आपकी बातें प्रमाणित हो जाँय ? आप जो कहते हैं यदि बिल्कुल ही ठीक हो तो निस्संदेह मेरा दिल उसका विश्वास करना चाहता है।"

"नहीं। आप को पहले हममें शामिल होना पड़ेगा।"

"अफ़सोस है। मेरा मन कुछ इस प्रकार से गढ़ा हुआ है कि प्रमाणित होने से पहले ही किसी भी बात का विश्वास न करे।"

साहब जी महाराज अपनी लाचारी प्रकट करने लगे। बोले :

"मैं क्या करूँ, मैं परमपिता के हाथों में हूँ।"

× × ×

हर रोज़ राधास्वामी संप्रदाय के अन्य सदस्यों की भाँति मैं भी नियमपूर्वक सभी सामूहिक बैठकों में भाग लेता था; उन लोगों के बीच में बैठ कर मैं चुपचाप ध्यान करने लगता और उनके आचार्य के व्याख्यान सुना करता। खुले दिल से मैं उनसे प्रश्न पूछा करता, और जहाँ तक मुझे प्राप्त हो सकता था विश्व और मानव के बारे में राधास्वामियों के उपदेशों का अध्ययन किया करता।

एक दिन बड़ी देर तक शाम को एक राधास्वामी अनुयायी को साथ लेकर दयाल बाग से एक मील के लगभग घूमते-घामते जंगल तक चला गया। फिर हम लोग जमुना की ओर चले और अन्त को उस चौड़ी नदी के तीर पर बैठ गये। उस बलुवे रेतीले तीर पर बैठे हमने देखा कि नदी की स्वच्छ धारा धीरे धीरे आगरे की ओर मैदान में से बह रही है। कभी कभी हमारे सिर पर फड़फड़ाती हुई कोई चील अपने घोंसले की ओर उड़ जाती थी।

जमुना! कहीं इसके सुन्दर तटों पर कृष्णचन्द्र बड़े उल्लास के साथ भोली गोप युवतियों को अपनी मोहनी मुरली से लुभाते, उनको अपना प्रेम जताते

विहार किया करते थे। आज हिंदुओं की देव मंडली में कृष्णचन्द्र का सा कोई सर्वप्रिय देवता शायद नहीं है।

मेरे साथी ने धीरे से कहा—"कुछ वर्ष पहले तक यहाँ जंगली जानवर घूमा करते थे। कभी घूमते-घामते बनैले जानवर दयाल बाग तक चले आते थे। लेकिन उनका आना अब कम हो गया है।"

दो मिनट तक हम दोनों चुप थे। फिर वे बोले :

"हमारी सामुहिक बैठकों में बैठने वाले आप ही सब से पहले गोरे व्यक्ति हैं। हाँ अब और भी अवश्य आवेंगे। आपने जो हमारे आदर्शों को सहानुभूति के साथ समझने की चेष्टा की इसके लिए हम आप के बड़े एहसानमन्द हैं। आप हमारे संप्रदाय में शामिल क्यों नहीं होते?"

"क्योंकि मुझे अपने ऊपर विश्वास नहीं है। मैं खूब जानता हूँ कि जिसका तुम विश्वास करना चाहते हो उसको शीघ्र ही और सहज ही विश्वास करने की खतरनाक संभावना है।"

वह घुटने जोड़ कर उन पर ठुड्डी टेक कर बैठ गया।

"जो हो, हमारे गुरुदेव के साथ आपका जो यह साहचर्य और संगति हुई वह आप को अवश्य ही भारी लाभ पहुँचावेगी। मैं इस पर जोर नहीं देता कि आप हमारे संप्रदाय में अवश्य ही मिल जावें। हम लोग अपने झुंड को बढ़ाने की चेष्टा नहीं करते। हमारे सदस्यों को संप्रदाय के सिद्धांतों के प्रचार करने का कोई अधिकार नहीं दिया जाता।"

"तुम्हें इस संप्रदाय का पता कैसे चला?"

"बहुत ही सहज रीति से। मेरे पिता जी वर्षों से इसके सदस्य रहे हैं। वे दयाल बाग में नहीं रहते। बीच बीच में यहाँ आकर दर्शन कर लेते हैं। वे मुझे कई बार यहाँ साथ लाये लेकिन कभी भी उन्होंने मुझे इसमें शामिल होने के लिए नहीं उकसाया था। दो वर्ष पूर्व मेरे मन में संसार के बारे में कई विचार पैदा हुए। मैंने कई मित्रों से उन प्रश्नों के बारे में पूछा कि उनके क्या

विचार थे। मैंने अपने पिता जी से भी प्रश्न किया। उनका उत्तर सुन कर मैं राधास्वामी संप्रदाय की ओर आकृष्ट हो गया। मुझे सदस्य होने की स्वीकृति मिली और क्रमशः समय ने ही मेरे विश्वास को और भी दृढ़ बना दिया। मेरा यह बड़ा भारी भाग्य था क्योंकि अन्य कितने ही लोग जीवन भर समस्याओं के झोंके खा कर पधारे थे।"

मैंने बड़ी लापरवाही के साथ कहा—"तुम्हारे समान मैं भी आसानी से अपनी शंकाओं को तय कर पाता......"

फिर हम दोनों ने मौन धारण कर लिया। जमुना का गंभीर श्याम वर्ण मेरी दृष्टि को खींचने लगा और मैं अनजाने ही एक गंभीर ध्यान में डूब गया।

इन सारे भारतीयों की व्यक्त और अव्यक्त भावनायें तथा विचार सभी विश्वास से रंजित हैं। ये सब के सब महसूस करते हैं कि किसी बात को, चाहे वह धर्म हो या संप्रदाय, अथवा कोई पवित्र ग्रंथ हो, प्रामाणिक मानना आवश्यक है। पतित से पतित, घृणित से घृणित अंधविश्वास से लेकर उत्तम से उत्तम श्रद्धा और विश्वास तक के उदाहरण भारत में देखने को मिलेंगे।

एक बार गंगा जी के तीर पर मैंने किसी मंदिर को अचानक देखा। वहाँ पर मैंने क्या देखा, मंदिर के खंभों पर प्रणयालिङ्गन में लीन नर नारियों के चित्र खुदे हुए हैं; उसकी भीतों पर सब से जघन्य चौरासी आसनों की नग्न तसवीरें आदि खिंची हुई थीं। उनको देख कर कोई भी पश्चिमी पादरी दंग रह जाता। ऐसी बातों के लिए भी हिंदू धर्म में स्थान है। शायद यह बेहतर ही है कि मैथुन प्रवृत्ति को नीच समझ कर पाताल में दबा देने की व्यर्थ चेष्टा की जगह उस को एक धार्मिक रंग दे दिया जाय, पर तब तो—जहाँ तक संभव है मनुष्य को उत्तम से उत्तम, पवित्र से पवित्र, निर्मल से निर्मल भावनायें भी हिंदू धर्म में मिल जाती हैं। भारत की कुछ ऐसी ही निराली बात है।

लेकिन भारतवर्ष भर में राधास्वामियों का सा निराला तथा चकित करनेवाला संप्रदाय नहीं देखा है। वह अपने ढंग का अकेला है। इस मिथ्या सा भासने वाला, संसार भर में अत्यंत प्राचीन योग शास्त्र का, बीसवीं सदी

जाति प्रधान यंत्रमय कल्लोलपूर्ण सभ्यता के साथ मेल कर डालने की प्रतिज्ञा साहब जी महाराज के सिवा और किस के लिये संभव थी ?

क्या मुमकिन है कि दयाल बाग आज जितनी उपेक्षित दशा में है, एक दिन भारत के इतिहास में उतना ही या उससे कहीं अधिक महत्त्व धारण कर ले ? यदि आज भारत एक ऐसी पहेली बन गया है जो किसी के बुझाने से नहीं बूझती, तो इसका क्या प्रमाण है कि भविष्य भी इसका उत्तर नहीं ही दे सकेगा।

साहब जी महाराज ने गाँधी जी के पुरानेपन की बातों की हँसी उड़ायी थी और उसी की गूँज अब भी गाँधी जी के सदर मुकाम, अहमदाबाद में सुनी जा सकती है। वहाँ घरेलू धन्धों के वैभव गीत गाने वाले साबरमती के उस छोटे आश्रम की सफ़ेद कुटियाओं को तिरस्कार और घृणा की दृष्टि से देखने वाले ५०-६० कारखानों को कोई भी आसानी से गिन सकता है।

पश्चिमी सभ्यता की तेज़ धारा के बहाव में देश की जीवन यात्रा की पुरानी परिपाटियाँ बह गई हैं। सब से पहले भारतवर्ष में पग धरने वाले गोरे यूरोपियन न केवल माल की गाँठों को ही साथ लाये बल्कि पश्चिमी विचारों को भी। वास्कोडेगामा ने अपने सहयात्रियों के साथ जिस दिन कालीकट में पैर रक्खा उसी दिन से पाश्चात्य सभ्यता का यहाँ पर फैलना शुरू हो गया था। भारतवर्ष की औद्योगिक क्रांति एक संकोच के साथ, एक ढिलाई के साथ शुरू हो गई, पर अन्त में किसी भाँति ही चल तो पड़ी। यूरोप में बौद्धिक जीवन का पुनर्जन्म हुआ और धार्मिक सुधार फैल चला। फिर औद्योगिक क्रांति का दौर-दौरा हुआ था। यूरोप इन सबों को पार करके आज एक नई रोशनी में सना जा रहा है। भारतवर्ष के मार्ग में अब ये सभी समस्यायें खड़ी हो गई हैं। क्या वह अंधविश्वास के साथ आँख मूँद कर योरोप का अनुकरण करेगा या अपना मार्ग आप ही ढूँढ लेगा ? यह बेशक भारत के लिए अधिक हितकर होगा। क्या साहब जी महाराज के दिमाग़ की उपज, दयाल बाग, इस बारे में भारतवर्ष की दृष्टि को खींच न लेगा ?

यदि मेरे मन में कोई निश्चय था तो यह कि भविष्य में भारतवर्ष अनसुनी और अनसोची घटनाओं तथा आंदोलनों में फँस जायगा। हजारों वर्ष की पुरानी सभ्यता, पुराने कठोर धार्मिक नियमों में फँसे हुए संप्रदाय तथा परिपाटियाँ दो-तीन ही पीढ़ियों में गुम हो जायेंगी। यह सब एक करामात से कम न होगा, पर इसके होने में रत्ती भर भी शंका नहीं है।

साहब जी महाराज ने स्पष्ट ही सारी परिस्थिति को अवगत कर लिया है। वे खूब समझते हैं कि हम एक नये जमाने में रहने लगे हैं, हर जगह दकियानूसी विचार मिट्टी में मिले जा रहे हैं। क्या एशियाई जीवन की शिथिलता और पश्चिमी गति प्रधान दुनिया दोनों अनमिल और विरुद्ध बातें हैं? और यदि भूत काल में रही भी हों तो क्या सदा के लिए ऐसी ही रहेंगी? साहब जी महाराज का उत्तर है 'नहीं'। योगी दुनियावी भेष धारण क्यों न करे? इसी कारण साहब जी महाराज कहते हैं कि योगी को अवश्य ही अपनी विरक्ति को छोड़ कर आम जनता में, जहाँ कल-पुर्जों की धूम है, मिलना जुलना पड़ेगा। उनकी राय में ऐसा समय आ पहुँचा है जब योगियों को कारखानों, विद्यालयों आदि में भाग लेकर उनमें आध्यात्मिकता का विमल स्रोत, प्रचार और उपदेश से नहीं बरन् अपने आध्यात्मिक प्रेरणा से युक्त कार्य कलापों से, ज्ञान से पूर्ण कर्म योग से, बहा देना चाहिए। दैनिक जीवन को स्वर्ग की सीढ़ी बनाना पड़ेगा। दुनिया से एकदम दूर विरक्ति में बिताये जाने वाला योग, जीवन की दुनिया दूसरी ही मान बैठना, धोखे की टट्टी और मिथ्या गर्व से भरी हुई बात है।

यदि योग इने-गिने व्यक्तियों की ही संपत्ति रहे तो इस जमाने के लोगों को उसकी कुछ भी उपयोगिता नहीं रहेगी और फलतः शीघ्र ही म्रियमाण योग विज्ञान बिलकुल ही लुप्त हो जावेगा। यदि वह कुछ क्षीणकाय तपस्वियों के ही विनोद की सामग्री रहे तो हम कलम घिसने वाले, हल जोतने वाले, कारखानों के धुएँ और आग में कोयला बनने वाले, स्टाक बाजार के तुमुल कोलाहल में भाग लेने वाले, हम साधारण लोगों को उससे कोई निस्बत नहीं है। हम अपनी दृष्टि उससे फेर ही लेंगे। और नतीजा इसका यह होगा कि

भारतवर्ष भी इस ज़माने के पश्चिम के जीवन, सभ्यता तथा संस्कृति का केवल एक निर्जीव, उपजीवी, मानस पुत्र ही बन जायेगा।

साहब जी महाराज ने इस दुर्निवार घटना चक्र की गति पहचान ली है और बड़ी दिलेरी के साथ प्राचीन योग के अनमोल रत्न को इस तत्त्वशून्य खोखली सभ्यता के उपयोग के लिए सुरक्षित करने की अद्भुत चेष्टा की है। इस महान आत्मा का, उनके महिमामय दिव्य प्रयत्न का प्रभाव भारतवर्ष पर अवश्य ही पड़ेगा। उन्होंने जान लिया है कि उनकी प्रिय मातृभूमि आलस्य का बड़े लम्बे ज़माने तक शिकार रह चुकी है। उन्होंने खूब ही पहचाना है कि व्यापार, कला कौशल तथा वैज्ञानिक खेती के कारण नवीन जीवन और नव उत्साह से स्पंदमान पश्चिम क्यों आमोद प्रमोद में भूल रहा है। उन्होंने यह भी देखा है कि प्राचीन ऋषि-मुनियों से हमें जो कुछ प्राप्त हुआ है उसमें योग-विज्ञान सा दूसरा रत्न नहीं है। जो इने-गिने योगी उस विज्ञान में पारदर्शी हैं और कहीं एकान्त स्थानों में उसे उज्जीवित रखते हैं, वे भी शीघ्र ही क्षीण हो रहे हैं और उनके मरने पर उनके साथ योग विज्ञान के परम रहस्य भी सदा के लिए नष्ट हो जायेंगे। इसलिए उन्होंने शीतल समाधि की आनंदानुभूति की ऊँचाई से हम मर्त्यों के बीच में, गति प्रधान बीसवीं सदी के कल्लोलमय अन्दोलनों के क्षेत्र में उतर आने की कृपा की है और वे इन दोनों परस्पर विरुद्ध खींचने वाले क्षेत्रों का सुन्दर समावेश करने की अथक चेष्टा कर रहे हैं।

क्या उनकी यह चेष्टा अत्यंत काल्पनिक नहीं है? क्या उसका कोई सु-परिणाम होने की संभावना है? क्यों नहीं, उनका यह प्रयत्न वास्तव में बहुत ही स्तुत्य है। हमें याद रखना चाहिये कि हम एक ऐसे ज़माने में रहते हैं जब रसूल के कब्र पर बिजली का चिराग़ चमक रहा है, जब रेगिस्तान के जहाज़ ऊँट के स्थान को ऐशो-आराम से युक्त मोटरें सुदूर मोरोक्को में छीन रही हैं। ऐसी दशा में हिंदुस्तान की क्या स्थिति होगी? एकदम विपरीत संस्कृति तथा सभ्यता की टक्कर खाकर भारत अपनी सदियों की घोर निद्रा से चौंक पड़ा है। झख मार कर इस विशाल देश को अपनी भारी पलकों को खोले ही रहना पड़ेगा। अंग्रेज़ों ने केवल रेगिस्तानों को उर्वर ही नहीं बनाया,

सिर्फ नाले खोद और पुल बाँध कर बड़ी बड़ी नदियों की बाढ़ ही नहीं रोकी, खेती की मदद ही नहीं की, उत्तर-पश्चिमी सीमा प्रान्त में दुर्भेद्य किलाओं की श्रेणियाँ बाँध कर देश की शान्ति की रक्षा ही नहीं की, केवल एक बौद्धिक विद्रोह ही पैदा नहीं किया; उन्होंने इनसे कहीं अधिक उपकार किये हैं।

धूम्र धूसर उत्तर और सुदूर पश्चिम से गोरे यहाँ आये। किस्मत उन पर मुस्कराने लगी। नाम मात्र के प्रयत्नों से यह भारी देश उनके अधीन हो गया। क्यों? शायद दुनिया प्राच्य प्रज्ञान और पश्चिमी विज्ञान को मिला कर एक ऐसी नई सभ्यता को जन्म देगी जो प्राचीनता को लज्जित करे, नवीनता को धृष्टित ठहरावे और भविष्य को चकित कर दे।

मेरे ध्यान की धारा समाप्त हो गई। मैंने अपना सिर उठाया और अपने साथी से एक प्रश्न पूछा। मैं समझ गया, वह मेरी बात नहीं सुनता था। नदी तल के ऊपर जो संध्या की आखिरी लाली की झलक दीखती थी उसे वह ताकता रहा। गोधूलि की वेला थी। सूर्य मंडल का महान चक्र आसमान से बहुत ही शीघ्र गायब हो रहा था। उस समय का सन्नाटा, उसका मैं क्या कह कर वर्णन करूँ। उसकी बड़ी अनोखी आभा थी। सारी प्रकृति उस मनोहर दृश्य की मधुरिमा में तल्लीन थी। कुछ काल तक सभी स्थावर जंगम अपने आपको मानो खो बैठे थे। मेरे हृदय का प्याला अकथनीय शांति से लबालब भरा हुआ था। और एक बार मैंने अपने साथी की ओर नशीली दृष्टि डाली। उसकी मूर्ति कुहरे के लबादे में शीघ्र ही ढँकती जा रही थी।

उस निश्चल शांति में और थोड़ी देर तक हम बैठे रहे। अचानक एक आग का गोला अंधकार के अतल तल में गिर पड़ा। रात की श्यामल यवनिका खिंच गयी। आँखों के सामने शून्य शांति ही शांति थी।

मेरा साथी उठा और चुपचाप वृक्षों की छाया में से मुझे साथ लेकर दयाल बाग की ओर चला। हजारों ज्योति बिंदु चँदोवे में जगमगा रहे थे और हमारी सैर समाप्त हो गई।

× × ×

साहब जी महाराज ने निश्चय किया कि कुछ दिन तक दयाल बाग छोड़ कर आराम करने के लिए मध्य प्रान्त के किसी स्थान पर चले जाँय। मैंने समझ लिया कि यह घटना हमारी विदाई की सूचक है। मैंने भी सफर का कार्यक्रम निश्चित कर लिया और सोचा कि उसी ओर मैं भी पयान करूँ। तिमरनी तक तो हमारा साथ रहेगा। वहाँ साहब जी से विदा लूँगा।

आधी रात बीतने पर हम सब आगरा स्टेशन पर पहुँच गये। कोई २० चेले अपने गुरू के साथ चले थे; अतः हमारा झुंड लोगों की दृष्टि से नहीं बच सका। किसी ने एक कुर्सी का प्रबन्ध कर दिया और साहब जी महाराज अपने प्रिय शिष्यों के बीच में प्लेटफार्म पर आसीन हो गये। मैं प्लेटफार्म पर मंद आलोक में टहलने लगा।

दिन को मैंने अपने दयाल बाग के अनुभवों पर मनन किया था। यह याद आते ही मुझे बड़ा खेद पहुँचा कि कोई उल्लेख योग्य आंतरिक अनुभूति मुझे प्राप्त नहीं हुई। आत्मा को उन्नत बनाने वाला कोई जीवन रहस्य मुझ पर प्रकट नहीं हुआ। मुझे उम्मीद थी कि दिल के अँधेरे को दूर करने वाली योगानुभूति की झलक कौंध उठेगी, चेतना की ज्योति का विस्फुरण होगा ताकि मैं उसी राह का अनुकरण कर, योग मार्ग पर ज्ञान के कारण, न कि विश्वास के कारण, आरूढ़ हो सकूँ। पर हाय, उस दैवी कृपा के योग्य शायद मैं न था। कौन कह सकता है कि मेरी आशा दुराशा थी?

बीच बीच में मैं उस आसीन मूर्ति की ओर ताकता रहा। उनके अनुभाव में कोई अजीब आकर्षण शक्ति है। वे मेरे दिल को बरबस खींच रहे थे। उनमें अमेरिकनों की फुर्ती और वास्तविकता, अंग्रेजों की आचरण की सूक्ष्मता और हिंदुस्तानियों की श्रद्धा तथा मननशीलता, इन सभी का अद्भुत संयोग हो गया था। आजकल की दुनिया में उनके समान किसी दूसरे को पाना दुर्लभ है। एक लाख नर-नारियों ने अपनी अंतरात्माओं की उनके चरणों पर भेंट चढ़ायी है; तो भी राधास्वामियों के यह सम्राट नम्रता और विनय की मूर्ति बने सामने विराजते थे।

आखिरकार गाड़ी प्लैटफार्म पर आ रुकी। साहब जी महाराज अपने खास रिजर्व डिब्बे में सवार हो गये। बाकी हम सबों ने दूसरे डिब्बों में जगह कर ली। मैं कुछ घंटों तक तान कर सो गया और फिर सबेरे जागने तक और किसी बात का मुझे होश न था। मेरा गला सूख गया था।

जहाँ जहाँ गाड़ी रुकती थी वहाँ स्थानीय या आस-पास के साहब जी महाराज के चेले स्टेशन पर आकर उनके डिब्बे के पास खड़े होते और अपने सद्गुरु महाराज का दर्शन लेते। पहले ही उन लोगों को साहब जी महाराज के सफर की सूचना दी गयी थी। भारतीयों का विश्वास है कि सद्गुरु की संगति, कितनी भी क्षणिक क्यों न हो, बहुत महत्त्व रखती है और उससे आध्यात्मिक तथा दुनियावी दोनों बातों में काफी लाभ पहुँचता है।

मैंने साहब जी महाराज से अनुमति माँगी कि वे अपने डिब्बे में मेरी इस अपूर्व यात्रा के आखिरी तीन घंटे बिताने दें। अनुमति माँगते ही मिल गयी। हम दोनों के बीच में संसार के सम्बन्ध की कई बातें होने लगीं। पश्चिम के राष्ट्रों के बारे में, हिंदुस्तान के भविष्य के विषय में, उन्हीं के संप्रदाय के भविष्य के बारे में बात-चीत हुई। अन्त को उन्होंने मुझसे अपने मीठे शब्दों में साफ़ साफ़ कह दिया :

"आप विश्वास मानें, मैं भारत को अपनी मातृभूमि नहीं मानता। हम तो संसार के हैं। मैं सभी को अपना भाई समझता हूँ।"

उनकी उस चकित करने वाली साफ़गोई पर मुझे बड़ी प्रसन्नता हुई। जब कभी वे बातें करते हैं इसी रीति से बोला करते हैं। वे असली बात पर शीघ्र आ जाते हैं। उनके हर एक वाक्य का एक खास उद्देश रहता है। उनको अपनी राय पर पूरा और अटल विश्वास है।

उनसे बात करने में, उनके मन के विचारों पर मनन करने में बहुत ही आनन्द मालूम होता है। सदा ही वे किसी नई बात को कह डालते हैं, किसी नवीन दृष्टिकोण से बात करने लगते हैं।

गाड़ी का रुख अब ऐसा था कि खिड़की में से तेज़ धूप सीधे मेरी आँखों

पर पड़ने लगी। इस गरमी में किसी का भी मांस भुन सकता था। निठुर सूर्य की किरणें मन को थकित कर देती थीं। मैंने खिड़की का परदा खींच दिया और बिजली का पंखा चला दिया। उससे मेरी तबियत कुछ स्वस्थ हुई। साहब जी महाराज ने मेरी दिक्कत देख ली और अपनी थैली से नारंगियाँ निकाली।

उन्होंने नारंगियों को मेज़ पर रक्खा और बोले :

"कुछ तो लीजिये। यह आपके गले को ठंडक पहुँचायेंगी।"

चाकू से धीरे धीरे छिलका निकालते हुए, मनन करने के ढंग से वे बोले :

"किसी को गुरु चुनने में आप जो इतने सावधान हैं सो बिलकुल ठीक है। गुरु को निश्चित कर लेने के पूर्व शकीपन बड़ा ही उपकारी होता है। पर एक बार निश्चय कर लें फिर उन पर संपूर्ण विश्वास रखना होगा। सद्गुरु को पाने तक आप चैन न लीजिये। गुरु की बड़ी भारी आवश्यकता होती है।"

कुछ देर बाद किसी के पुकारने की आवाज़ कानों में पड़ी—'लिमरनो'!

साहब जी महाराज चलने के लिए खड़े हुए। उनके चेलों के आने से पहले मुझ में कोई शक्ति जाग पड़ी : उसने मेरे संकोची स्वभाव को, मेरे पश्चिमी घमंड को दूर कर दिया, मेरी अधार्मिक प्रवृत्ति को कुचलते हुए वह मेरे होंठों से फूट पड़ी :

"महात्मा, मुझे आशीर्वाद दीजिये।"

साहब जी महाराज मुस्कराते हुए मेरी ओर घूमे, अपनी ऐनक में से एक कृपा भरी चितवन मेरे ऊपर दौड़ायी, और मेरी पीठ पर हाथ फेरते हुए प्रेम से बोले :

"मेरा आशीर्वाद! वह तो पहले से ही है।"

मैं अपने डिब्बे में आकर बैठ गया। गाड़ी छूटी और बड़ी तेज़ी के साथ

दौड़ने लगी। दोनों ओर भूरे खेत झलकते और जल्दी गायब होते जाते थे। चौपायों के झुंड अलस भाव विरल झाड़ियों में घास-फूस चर रहे थे। किन्तु इन सारे दृश्यों का ठीक ठीक चित्र मेरी आँखों पर नहीं पड़ता था। मेरा मन कहीं और था। उसपर पूरे तौर पर एक महात्मा का चित्र, जिनके प्रति मेरा बड़ा भारी आदर और प्रेम है, अंकित था। वे महात्मा एक साथ दैवी प्रेरणा से प्रेरित दिव्य स्वप्न देखने वाले हैं, प्रशांत मन वाले योगिवर हैं, दुनियावी काम-काज में सिद्धहस्त हैं, सभ्य हैं, भद्र पुरुष हैं!

१४

मेहरबाबा का आश्रम

यद्यपि आगरे से नासिक तक का बड़ा ही लम्बा सफर है, मैं उसका संक्षेप में बयान करूँगा ताकि निश्चित स्थान पर मेरे भ्रमण के वृत्तान्त की इतिश्री हो जाय।

कालचक्र के दुर्निवार चक्कर के साथ मैंने सारे भारत का भ्रमण किया। पारसियों के महात्मा, मेहरबाबा का, जो कि अपने को इस ज़माने का धर्म प्रवर्तक बताते हैं, मुझे और एक बार दर्शन करना था।

तो भी मुझे इसमें कोई विशेष दिलचस्पी मालूम नहीं होती थी। मेरे मन में शंका और संदेह ने मज़बूती से अड्डा जमा लिया था। भीतर ही भीतर एक दृढ़ धारणा समा गई थी कि उनके साथ मैं जो समय बिताऊँगा वह व्यर्थ ही होगा। मेहरबाबा आदमी तो अच्छे हैं और ऋषियों का सा जीवन बिताते थे, तो भी अपने बड़प्पन का मिथ्याभिमान उनके अंदर घोर रूप से समा गया है। यों ही उनकी करामातों की जाँच करने का मैंने कष्ट उठाया था। एक करामात 'एपेंडिसाइटिस' के एक रोगी को अच्छा करने की थी। पीछे जाकर मुझे मालूम हुआ कि मेहरबाबा के प्रति उस रोगी की अपार श्रद्धा और विश्वास था और इसी विश्वास ने उसे एकदम चंगा बना दिया था। और भी

तहकीक़ात करने पर रोगी की देखभाल करने वाले डाक्टर से मालूम हुआ कि वास्तव में उसे वह बीमारी नहीं वरन् सख्त बदहज़मी थी और एक भक्त की बात है। रोगी बूढ़ा था। उसके सम्बन्ध में कहा गया था कि एक ही रात में मेहरबाबा की कृपा से उसकी अनेक व्याधियाँ दूर हो गईं। पूछ-ताँछ से मालूम हुआ कि उसकी कलाई सूज गई थी। इसके अतिरिक्त उसे कोई दूसरी शिकायत ही न थी। थोड़े में यों कहिये कि मेहरबाबा के शिष्यों ने अपने गुरू की करामातों का बहुत ही बढ़ा चढ़ा कर बयान किया था, और इस मुल्क में जहाँ कि सच्ची घटनाओं की अपेक्षा गप्प ही अधिक प्रचलित हो जाती है उनका ऐसा करना कोई आश्चर्य की बात नहीं है।

इस पारसी धर्म प्रवर्तक ने मेरे सामने एक बार कुछ अनूठी अनुभूतियों के विषय में असाधारण प्रतिज्ञायें की थीं। मुझे तो इस बात का तिल भर भी विश्वास नहीं था कि वे अपनी बातें पूरी कर सकते हैं। तो भी उनके पास एक महीना बिताने का मैंने वादा किया था और उसका पालन करना मेरा कर्तव्य था। अतः अपनी इच्छा और विवेक के एकदम विरुद्ध होते हुए भी मैंने नासिक की गाड़ी पकड़ी, ताकि मेहरबाबा को कभी भी यह कहने का मौका न मिले कि मैंने उन्हें उनकी विभूतियों को सिद्ध कर दिखाने का मौक़ा ही नहीं दिया।

× × ×

मेहर का सदर मुकाम शहर से दूर, एकदम एक किनारे पर नये ढंग पर बनवाया गया है। वहाँ पर कोई ४० या ५० शिष्य निरुद्देश ही भटका करते हैं।

मिलते ही मेहर ने मुझसे प्रश्न किया—"आप सोच क्या रहे हैं?"

मैं सफ़र से थक गया था। मेरी फीकी और दुबली रूप-रेखा देख कर, गहरी समाधि से होने वाली विवर्णता का, उन्हें शायद भ्रम हो गया। जो हो, मैंने तुरन्त जवाब दे दिया :

"मैंने हिन्दुस्तान में १०-११ धर्म प्रवर्तकों का दर्शन किया है, उन्हीं के बारे में सोच रहा हूँ।"

मुझे जान पड़ा कि मेहरबाबा को इस कथन पर कोई आश्चर्य नहीं हुआ। लिखने वाले तख्ते पर अपनी उँगलियाँ धीरे से फेरते हुए उन्होंने मुझे बताया :

"हाँ, उनमें से किसी किसी के बारे में मैंने भी सुना है।"

मैंने उनसे सरलता के साथ प्रश्न किया :

"इस बात को आप कैसे समझा सकते हैं?"

यद्यपि उनके ललाट पर सिकुड़न पड़ गई थी पर उनके चेहरे पर मंद मुसकान खिल उठी, मानो वे अपने बड़प्पन को प्रकट कर रहे हों। उन्होंने कहा :

"यदि वे सब ईमानदार हों तो मेरा कहना यही है कि वे भ्रान्त होंगे। यदि वे बेईमान हों तो दूसरों को ठग रहे हैं। कुछ ऐसे भी महात्मा हैं जो योग मार्ग में अच्छी उन्नति कर लेते हैं और बाद को अपने आध्यात्मिक बड़प्पन के घमंड में चूर हो जाते हैं। ऐसी बुरी हालत, खास कर उन लोगों के जीवन में पाई जाती है जिसका कोई सच्चा और योग्य गुरू न हो। आध्यात्मिक साधना के रहस्य मार्ग में एक ऐसी विषम भूमि का सामना करना पड़ता है जिसका तय करना बड़ा ही दुस्तर है। अपनी साधना की तत्परता के कारण यदि इस भूमि पर पहुँच भी जाय तब भी साधक को प्रायः यह भ्रम हो जाता है कि वह अपने गन्तव्य स्थान पर पहुँच गया है। फिर थोड़े ही समय बाद वह अपने आप को पैग़म्बर मानने लगता है।"

"आप की बात बिलकुल ठीक और सही है, किन्तु दिक्कत तो यह है कि जो जो अपने को प्रवक्ता मानते हैं वे सभी यही बात कहते हैं। हर एक अपने ही को पूर्ण और पहुँचा हुआ समझता है। हर एक अपने प्रतिद्वंदी को कुछ न्यून दर्जे का मानता है।"

"इसकी कोई चिन्ता नहीं है। नहीं जानते हुए भी ये सब मेरे ही काम में हाथ बँटा रहे हैं। मैं जानता हूँ कि मैं कौन हूँ। जब ऐन मौका आ जायगा, जब अपना संदेश सुनाने का समय आ पहुँचेगा, दुनिया जानेगी कि मैं कौन हूँ।"

ऐसी सूरत में तर्क करना व्यर्थ था। अतः मैंने चुप्पी साध ली। मेहरबाबा ने शेखचिल्लियों की सी बातें कीं और मुझे जाने की इजाज़त दे दी। सदर मुकाम से कोई दो फर्लांग की दूरी पर मैं एक बँगले में रहने लगा। मैंने निश्चय कर लिया कि कठोरता के साथ अपने भावों को ताक पर रख कर होने वाली घटनाओं की निष्पक्ष समीक्षा और विचार करूँगा, मेहर के प्रति अपने मन में किसी पूर्वनिर्धारित भावना को जगह नहीं दूँगा, उनसे कुछ जान लेने की आशा से प्रतीक्षा भी करूँगा, और अपने अंतरंग को जर्जर करने वाले संशयों को काबू में लाकर अपने मन को उथल-पुथल नहीं होने दूँगा।

दिन प्रतिदिन मैं उनके चेलों से अधिक मिल-जुल कर रहने लगा और उनकी रहन-सहन, उनके मानसिक दृष्टिकोण आदि का पता लगाने लगा। मेहर से उनका जो आध्यात्मिक संबंध था उसका भी इतिहास कुछ कुछ जान लेने की मैंने कोशिश की। प्रति दिन मेहरबाबा मेरे लिए अपना कुछ समय देते थे। हम कई विषयों की चर्चा करते थे। वे मेरे कई प्रश्नों के उत्तर देते थे। किन्तु भूल कर भी अहमदनगर में जो अनूठी प्रतिज्ञायें उन्होंने मेरे सामने की थीं उनकी चर्चा तक नहीं उठाते थे। मैं भी इस बात की उन्हें याद नहीं दिलाना चाहता था। अतः वह मामला स्थगित ही रह गया। अखबारनवीस होने के कारण मुझमें उत्सुकता को तृप्त करने की जो सहज प्रवृत्ति और सच्ची तथा सही बातों की जानकारी प्राप्त करने का अदम्य उत्साह था उसके कारण मेरे मन में जो यह बात समा गयी थी कि मेरी यह यात्रा व्यर्थ होगी, उसको या तो दृढ़ कर लेने या एकदम दूर भगाने के वास्ते मैं मेहरबाबा और उनके शिष्यों पर हमेशा ही प्रश्नों की झड़ी सी लगा देता था। इस सब का यही नतीजा निकला कि उनके गुप्त रोज़नामचे देखने का सौभाग्य मिला। कई वर्षों के ये रोज़नामचे उनकी आज्ञा से तय्यार किये गये हैं। इनमें प्रवक्ता

और उनके शिष्यों के जीवन की मुख्य मुख्य घटनाओं का, उनके हर एक महत्त्वपूर्ण उपदेश, संदेश या ज़बानी भविष्यवाणी आदि का ब्यौरेवार बयान था। इसकी हस्त लिखित प्रति करीब दो हज़ार पन्ने की थी और वह भी बहुत छोटे हरफ़ों में सटा कर लिखी गयी थी। रोज़नामचों की रचना प्रायः अंग्रेज़ी में हुई थी।

यह बात साफ़ थी कि रोज़नामचे अंधविश्वास के साथ लिखे गये थे, किन्तु उनसे मेहर का चरित्र और उनकी विभूति आदि का ठीक ठीक पता चलाने में मुझे बड़ी मदद मिली। ये इतनी श्रद्धा और ईमानदारी के साथ लिखे गये थे कि जो बातें दूसरों को तुच्छ और नाचीज़ जँचें वे भी दर्ज की गयी थीं। इनसे मेरा काम खूब चला। मेहर का मानसिक चित्र खींचने में ये बातें बड़ी मददगार सिद्ध हुईं। ये उनकी मानसिक दशांतरों की परिचायक थीं और मेहर का मन किस ओर झुक रहा था साफ़ बता देती थीं। रोज़नामचे ऐसे दो नौजवानों के जिम्मे थे जो अपने संकुचित दायरे के बाहर के जीवन का नाममात्र अनुभव रखते थे। लेकिन अपने गुरू पर उनका इतना पूर्ण और सरल विश्वास था कि उन्होंने उन बातों को भी उसमें स्थान दिया है जो वास्तव में गुरू महाशय के लिए किसी प्रकार प्रशंसनीय नहीं कही जा सकती थीं। क्योंकर उन्होंने यह बात लिख रक्खी है कि मेहर ने मथुरा के सफ़र के समय रेलगाड़ी में अपने एक बड़े आंतरिक चेले को इतने ज़ोर से तमाचा लगा दिया कि उस बेचारे को डाक्टर की शरण लेनी पड़ी? दिव्य प्रेम का संदेश पहुँचाने का दावा करने वाले अपने गुरू के इस झूठे बहाने को क्योंकर उन्होंने लिपिबद्ध कर रक्खा कि जब कभी नबी अपने भक्तों के प्रति बनावटी क्रोध करते हैं तो उसका यही तात्पर्य समझना होगा कि भक्त के विपाक दशा को पहुँचे हुए पाप कर्म शीघ्र ही विनष्ट होने वाले हैं? उन्होंने इस परिहासनीय घटना का उल्लेख क्यों किया कि एक बार उनके किसी शिष्य के आरंगाँव के पास 'गुम' हो जाने पर मेहर ने उनका पता लगाने के लिए कुछ लोगों को भेजा और वे अन्वेषक कई घंटे बीतने पर उस शिष्य का पता लगाये बिना ही लौट आये जिसकी खोज में वे निकल पड़े थे? अन्त को वह शिष्य स्वयं ही मेहर के

यहाँ हाजिर हुआ और पूछने पर मालूम हुआ कि 'इनसोमनिया' रोग के कारण कई रात उसे नींद नहीं आई थी। एक दिन मेहर के आवास के निकट के एक उजड़े मकान में अचानक उसे गहरी नींद लग गई। जो अपने को देवतुल्य बताते हैं और सारी मानव जाति के भविष्य का ज्ञान रखने का दम भरते हैं वे ही पैगम्बर इस बात को नहीं जान सके कि उनका शिष्य बगल ही के खेत में था।

पहले जो शंकायें मेरे मन में दबी पड़ी थीं उन्हें इन घटनाओं से काफ़ी खुराक मिल गई। मुझे अच्छी तरह ज्ञात हो गया कि मेहर भी भ्रम, प्रमाद और आलस्य के आधीन हैं और उनकी भावनायें क्षण प्रति क्षण बदलती रहती हैं। वे इतने घमंडी हैं कि अपने मूर्ख शिष्यों से पूरी गुलामी उगाहते हैं। उन रोजनामचों के पन्ने उलटने से मुझ पर यह बात साफ़ ही प्रगट हो गयी कि इस प्रवक्ता की पेशगोई की सचाई की दुनिया ने बहुत कम समीक्षा की है। पहले पहल जब हम अहमदनगर में मिले उन्होंने यह भविष्यवाणी की थी कि एक भीषण महायुद्ध होने वाला है। उन्होंने बड़ी सावधानी से मुझ पर यह प्रकट करने की भरसक कोशिश की थी कि वे ठीक ठीक यह भी कह सकते थे कि यह समर कब होगा। तो भी लाख प्रयत्न करने पर भी उन्होंने वह तारीख छिपा रक्खी। अब मुझे इन रोजनामचों से मालूम हुआ कि मेहर ने अपने आंतरिक चेलों के सामने भी यह भविष्यवाणी एक बार नहीं, कई बार की थी। हर एक बार उन्हें इस खतरनाक घटना की तारीख बदलनी पड़ती थी क्योंकि हर एक तारीख के निकट आने पर भी युद्ध की कोई सूचना तक नज़र नहीं आती थी। एक बार जब पूर्व में परिस्थिति बहुत नाजुक होती होती दिखाई दी उन्होंने बताया कि युद्ध पूर्व में होगा। दूसरी बार यूरोप की परिस्थिति कुछ नाजुक हो चली तो उनकी भविष्यवाणी ने पश्चिम को होने वाले युद्ध का क्षेत्र बताया। इस प्रकार कई बार इस खतरनाक घटना के घटने की तारीख और जगह के विषय में भी इनकी भविष्यवाणी खूब ही बदलती रही।

इन बातों का पता चलने पर मुझे साफ़ ही भास गया कि क्यों मेहर ने

अहमदनगर में मुझसे कोई निश्चित तारीख बताने में हीला हवाला किया था। मैंने उनके बुद्धिमान चेलों से कभी न फलने वाली इन भविष्यवाणियों के बारे में प्रश्न किया तो उन्होंने स्पष्ट ही मान लिया कि उनके गुरू की बहुसंख्यक भविष्यवाणियाँ पूरी नहीं होती हैं। अन्त को सरल स्वभाव से मेहर बोल उठे—"मुझे इसी के बारे में संदेह है कि यह युद्ध कभी साधारण युद्ध के रूप में होगा या नहीं। मेरा अनुमान है कि यह एक आर्थिक संग्राम होगा।"

यद्यपि मैंने इन आश्चर्यजनक रोज़नामचों के आखरी पन्ने को मुस्कराते हुए उलट दिया तो भी मेरी दृढ़ धारणा है कि इनमें मुझे कई उदात्त, मर्म-स्पर्शी, भव्य विचार दिखाई पड़े। मुझे इस बात का विश्वास भी हो गया कि मेहरबाबा में सचमुच कोई धार्मिक तत्परता और आध्यात्मिक प्रतिभा काम कर रही है। उन्हें जो कुछ कामयाबी हासिल होगी वह इसी की वजह से होगी। किन्तु इन रोज़नामचों में कहीं पर लिपिबद्ध उन्हीं की कही हुई यह बात मुझे कभी नहीं भूलती है कि 'आध्यात्मिकता, शील आदि के उपदेश देने की सामर्थ्य से किसी की महानुभावता, साधुता या विवेक साबित नहीं होता।'

× × ×

मैंने वहाँ जो कुछ समय बिताया उसके बारे में विवेक के साथ चुप्पी साध लेना ही बेहतर है। यदि सचमुच ही मैं एक मानव जाति को उबारने वाले, पाप विमोचक धर्म प्रवर्तक के साथ रहा भी, मुझे इनके महान् भाग्य की परिचायक कोई बात दिखाई नहीं दी। इसकी वजह शायद यही हो सकती है कि पौराणिक गप्पों की अपेक्षा, स्थूल और प्रत्यक्ष घटनाओं में मेरी अधिक अभिरुचि है। मैं उस नबी की बाल्य चेष्टाओं की कहानी, उनकी असफल भविष्यवाणियों की खबर, उनके शिष्यों के अपने गुरू की अनुचित आज्ञाओं के अंधविश्वास के साथ पालन करने की बात, उन शिष्यों की कठिनाइयों को और भी जटिल बनाने वाली मेहर की सलाहों के ब्यौरे आदि का बयान करके आपको नहीं उबाऊँगा।

संभव है यह मेरी ही कल्पना हो, किन्तु जैसे जैसे वहाँ का मेरा जीवन

समाप्त होता जाता था मुझे साफ़ भासने लगा था कि मेहरबाबा मुझसे बच कर रहना पसन्द करते हैं। यदि कभी मैंने उन्हें देख भी पाया, वे बहुत ही व्यग्र दिखाई पड़ते और चन्द मिनट के अन्दर वहाँ से चले जाते। प्रति दिन मेरी दशा बहुत ही असंतोषजनक दिखाई देने लगी और सम्भव है कि मेहर भी मेरी असुविधाजनक परिस्थिति से भली भाँति परिचित हों।

उन्होंने मेरे सामने अनेक आश्चर्यजनक अनुभूतियों की बात कही थी। यद्यपि उनके सफल होने में मुझे बड़ा भारी संदेह था तो भी मैं उनकी प्रतीक्षा करने लगा। मेरी आशंकायें आखिरकार पूरी हुईं। किसी के जीवन में कोई असाधारण बात होती दिखाई नहीं दी। मैंने मेहर से इस बाबत में बेदर्दी से सवाल करना नहीं चाहा क्योंकि मुझे अच्छी तरह मालूम हो गया था कि मेरा वह प्रयत्न एकदम व्यर्थ होगा।

लेकिन महीना बीतते ही मैंने अपने सफ़र की बात छेड़ी और मेहर बाबा से शिकायत की कि उनकी बातें क्यों नहीं पूरी होतीं। उन्होंने वही जवाब दिया कि ये आश्चर्यजनक घटनायें दो महीने बाद होने वाली हैं और आगे जाकर उन्होंने इस बात का जिक्र करना भी छोड़ दिया। मुझे भान होने लगा कि वे अंदर ही अंदर अपनी कमज़ोरी महसूस कर रहे हैं और मेरे सामने वे बेचैन भी हो जाते हैं। शायद यह सब मेरा भ्रम ही था। जो हो, मेरी आँखों को यद्यपि ये बातें दिखाई नहीं दीं, मुझे इन बातों का किसी प्रकार से अनुभव सा होने लगा। तब भी मैंने उनसे दलील करने की कोशिश नहीं की क्योंकि किसी तरह बच कर चलने वाले इस प्राच्य धर्म प्रवर्तक के साथ अपनी बुद्धि भिड़ा देना मुझे एक असम और व्यर्थ युद्ध छेड़ देना ही प्रतीत हुआ।

विदा होने के समय भी, जब कि मैंने मेहर बाबा से हमेशा के लिए नम्रता पूर्वक अपने दिल से रुखसत लेनी चाही, उन्होंने अपने झूठे बड़प्पन की बात करना छोड़ नहीं दिया वरन् कहने लगे—"मैं निस्संदेह जगद्गुरु हूँ। मुझसे सच्ची राह जान लेने के लिए लाखों आदमी तड़प रहे हैं।" और

देकर उन्होंने यह भी कहा—"जब हम एक दिन पश्चिम में जाकर अपना संदेश वहाँ पहुँचाने लगेंगे तब तुम्हें हम बुलवा लेंगे और तुमको हमारे साथ सफर करना होगा।"*

मैंने इस आदमी को बातों का धनी समझने की कोशिश की और मेरी इस मूर्खता का यही नतीजा निकला! जो आध्यात्मिक आनन्द की झूठी आशा दिखा कर, उसके बदले दूसरों के चित्त को उचा कर व्याकुलता का अड्डा बना देते हैं बलिहारी है ऐसे छद्मवेषी दैवी गुरुओं की!

× × ×

क्या मेहरबाबा के इस अनोखे और विचित्र बर्ताव का कोई विश्वसनीय समाधान प्राप्त हो सकता है? ऊपरी बातों से ही यदि उनका मूल्य आँका जाय तो वे सहज ही पाजी और छलिया साबित होंगे। कुछ लोगों ने भी इस प्रकार की राय प्रकट की है किन्तु उनमें कोई भी मेहर के जीवन की कई घटनाओं को ठीक ठीक समझने की चेष्टा नहीं करते। अतः उनकी राय केवल अन्यायपूर्ण है। मुझे तो बम्बई के बूढ़े जज खंदलावाले की राय अधिक मान्य प्रतीत हुई। वे मेहरबाबा को उनके लड़कपन से जानते थे। उन्होंने कहा है कि यह पारसी प्रवर्तक भ्रान्त होने पर भी वास्तव में ईमानदार हैं। यह समाधान अपने ढंग से तो संतोषजनक है पर इससे मुझे पूरी तृप्ति नहीं मिली। मेहरबाबा के जीवन की विवेचना करने से मेरे मन की बात प्रकट हो जायगी। मैंने पहले ही कह दिया है कि पहले पहल जब उनसे अहमदनगर में मेरी भेंट हुई थी उसी समय मैं उनकी सौम्यता और प्रशांत स्वभाव से प्रभावित हुआ था। लेकिन नासिक के मेरे अनुभवों ने मुझ पर यह बात प्रकट कर दी कि उनकी उस शांत प्रकृति का कारण उनके चरित्र की कमज़ोरी है और उनकी सौम्यता उनकी शारीरिक दुर्बलता का फल मात्र है।

---

* मेहरबाबा पश्चिम अवश्य गये किन्तु मेरे बारे में उन्होंने जो भविष्यवाणी की वह एकदम गलत निकली।

मुझे पता चला कि मेहर सचमुच हर बात में डाँवाँडोल रहते हैं और अन्य लोग तथा घटनाएँ उन पर बहुत ही जल्दी असर डालती हैं। उनकी नोकदार छोटी ठुड्डी ही इस बात का प्रबल प्रमाण है। इसके अलावा यह प्रायः देखा जाता है कि जिनका कोई ठीक समाधान बताया नहीं जा सकता ऐसे आकस्मिक भावावेगों के वे शिकार रहते हैं। स्पष्ट ही वे बड़े भावुक व्यक्ति हैं। वे दिखलावे और नुमायशी बातों में बालकों जैसी दिलचस्पी रखते हैं। उन्हें देखने पर यह प्रतीत होगा कि उनकी ज़िन्दगी उनके लिए नहीं है वरन् दूसरे लोगों की वाहवाही के लिए है। यद्यपि उनका यह दावा है कि संसार के रंगमंच पर जीवन नाटक के गंभीर पात्र बनने के लिए ही उनका जन्म हुआ है, उनके अभिनय में यदि किसी को हास्य रस का स्वाद मिले तो इसके लिए वे ही एकमात्र दोषी नहीं ठहराये जा सकते। मेरा विश्वास है कि मेहरबाबा के चरित्र में वह बूढ़ी मुसलमान फकीरिन, हज़रत बाबा जान, ने सच ही एक तूफ़ान सा मचा दिया जिसके कारण मेहरबाबा अपनी मानसिक समता इस हद तक खो बैठे कि उनकी अजीब हालत को न तो वे स्वयं समझ सकते हैं, न उनके अनुयायी ही। योगिन से जहाँ तक मेरा परिचय है उससे मैं दृढ़ता पूर्वक कह सकता हूँ कि उनमें वह अनूठी ताकत है जो कट्टर से कट्टर हेतुवादी के छक्के छुड़ा सकती है। मेरी समझ में यह बात आती ही नहीं है कि हज़रत बाबा जान ने मेहरबाबा के जीवन में क्योंकर एकदम दखल दिया और उनको पदच्युत करके ऐसे मार्ग पर आरूढ़ करा दिया जिसका नतीजा क्या होगा—केवल परिहास ही या सचमुच ही महत्त्वपूर्ण—यह अभी देखने की बात है। किंतु मुझे विश्वास ही नहीं होता कि वह उनके जीवन पर इतना असर डाल सकती थीं कि उनके पैरों के तले की मिट्टी को ही खिसका दें। उस योगिन ने जो उनका बोसा लिया था उसका अपने तईं कोई खास महत्त्व नहीं है, किन्तु एक दूसरे ही ढंग से वह अवश्य महत्त्व रखता है। उस योगिन के आध्यात्मिक प्रणिधान का वह एक प्रतीक मात्र है। उस चुम्बन के कारण मेहरबाबा के दिमाग़ की हालत ही विचित्र प्रकार से बदल गयी। उनके जीवन पर उसका बड़ा ही

असर पड़ा। उन्होंने मुझसे एक बार इस घटना के बारे में कहा था कि 'मेरे मन को बड़ा भारी धक्का लगा और कुछ देर तक उसमें बड़े जोरों के साथ स्पंद होते रहे।' यह साफ़ है कि इस अनुभूति के लिए वह बिलकुल ही तय्यार नहीं थे। जिसको हम योग दीक्षा कहते हैं उसको प्राप्त करने के लिए एक प्रकार की योग्यता की आवश्यकता है जिसको पाने की आवश्यक शिक्षा और विनय से मेहरबाबा एकदम वंचित थे। उनके एक शिष्य अब्दुल्ला ने कहा—"मैं बाबा के लड़कपन में उनका मित्र रहा। उन दिनों धर्म या दर्शन के प्रति मेहर की कोई दिलचस्पी ही नहीं थी। उन्हें खेल-कूद और मज़ाक-मसखरी में अधिक मजा मिलता था। मदरसे में वाद-विवाद आदि में वे चाव से भाग लेते थे। एकबारगी उनके जीवन में एक परिवर्तन हुआ। उनका रुख आध्यात्मिक विषयों की ओर फिरा। तब हमारे तअज्जुब की कोई सीमा नहीं रही।"

मेरा यकीन है कि इस आकस्मिक अनुभूति के कारण नौजवान मेहर अपनी मानसिक शांति खो बैठे। उनके पैर ज़मीन पर टिकते न थे। इसी से प्रकट होता है कि वे मूर्खवत् व्यवहार करने लगे। उनके सब व्यवहार एक जड़ यंत्रवत् होने लगे। किन्तु अब भी साफ़ साफ़ समझ में नहीं आता कि उनका मन अब तक दुरुस्त हुआ है कि नहीं। मुझे विश्वास नहीं होता कि उनका स्वभाव साधारण मानवों का है। किसी किसी को किसी बूटी का अधिक मात्रा में सेवन करने पर रही सही मानसिक स्थिरता भी भूल जाती है। उसी भाँति धर्म के आवेग की अधिक मात्रा से भी, यौगिक समाधि या आध्यात्मिक आनन्द की बहुलता से भी कोई कोई अपनी मानसिक स्थिरता खो बैठते हैं। गरज़ यह है कि मेहरबाबा उस उदात्त अनुभूति के नशे से अभी पूरी तौर से छूटे नहीं हैं और अब भी उस बाल्य काल के दिनों में उनके मानसिक जीवन को जो आघात पहुँचा था उसके फलों से मुक्त नहीं हो पाये हैं। अब भी उस मानसिक विषमता का लोप नहीं हुआ है। कभी कभी मेहरबाबा के बर्ताव में जो असाधारणता दिखाई पड़ती है उसका कोई दूसरा समाधान दिया नहीं जा सकता।

एक ओर उनमें आध्यात्मिक विभूति से भूषित महात्माओं के सारे गुण दीखते हैं, उनमें योगी का प्रेम, सौम्यता, धार्मिक अभिनिवेश और प्रेरणा आदि मौजूद हैं। दूसरी ओर उनमें मानसिक बीमारी के कुछ चिह्न दिखाई देते हैं। अपने बारे में हर बात को वे बढ़ा-चढ़ा कर बताते हैं। जिन्हें अचानक क्षणिक आनंदानुभूति भी प्राप्त हुई हो उन धर्म प्राण लोगों में भी यही बात पायी जाती है। उनके दिल में जब यह विश्वास बैठ जाता है कि उनके जीवन में कोई एक महत्त्वपूर्ण बात घटी है तो आध्यात्मिक महत्ता के अनुचित दावे करने में फिर देरी ही क्या लगती है। ऐसे व्यक्ति नये संप्रदाय और विचित्र सभा-समाजों के जन्मदाता बन जाते हैं और अपने को उनके अगुआ मान बैठते हैं। ऐसों में कभी कभी कोई कोई साहसी आखिर को अपने ही को भगवान का अवतार मानने लगता है और बताने लगता है कि मैं ही सारी मानव जाति का कल्याण साधने वाला हूँ।

मैंने हिन्दुस्तान में ऐसे कई व्यक्तियों को देखा है जो योग समाधि से प्राप्त होने वाली अखंड अनुत्तम अनुभूति के भागी बनना चाहते हैं किन्तु उस अनुभूति को कराने वाली योग साधना और विनय आदि के पचड़े में पड़ना नहीं चाहते। अतः वे अफीम, भाँग आदि का अभ्यास करने लगते हैं और तुरीय दशा की अनुभूति सी एक विचित्र दशा का अनुभव कर लेते हैं। मैंने इन अफ़ीमखोरों के बर्ताव को ग़ौर से देखा है और उन सबों में मुझे एक समानता दिखाई दी। वे सब के सब, अपने जीवन की कैसी भी छोटी बात क्यों न हो, उसे बहुत ही बढ़ा-चढ़ा कर कहते हैं, सत्य कहने का दृढ़ विश्वास रखते हुए सुफ़ेद झूठ बताने से भी बाज़ नहीं आते। अतएव उनको पेरोनिया की बीमारी हो जाती है जिसके आवेश में व्यक्ति अपने ही को बड़प्पन की इतनी लम्बी चौड़ी हाँकने लगता है कि आखिर को अपने ही बारे में अपने आपको भारी भ्रम में डाल देता है। ऐसा अफ़ीमखोर यदि किसी औरत को लापरवाही से अपनी ओर ताकता पावे तुरन्त उस औरत के विषय में अपने मन में एक कल्पित प्रेम गाथा ही रच डालता है। अपने ही बड़प्पन का वह हवाई महल खड़ा कर देता है और एकदम एक नई कल्पित दुनिया में रहने

लगता है। यह अपनी अजीब विभूतियों के बारे में इतने उन्मत्त प्रलाप करने लगता है कि देखने वालों को शक होने लगता है कि हो न हो यह पागल तो नहीं हुआ है। यह जो कुछ करता है सोच विचार कर नहीं करता, किन्तु अकथनीय आकस्मिक प्रेरणाओं के आवेश में आकर।

इस प्रकार के बेचारे अफ़ीमखोरों के जीवन में जो मानसिक अस्थिरता आदि पाई जाती है वे मेहरबाबा के जीवन में भी दिखाई देती है। तिस पर भी मेहरबाबा में एक विशेषता यह है कि वे उन शराबखोरों की सी नीचता के गहरे खड्डे में गिर नहीं सकते क्योंकि उनकी असाधारण प्रकृति का कारण जड़ी बूटियाँ नहीं हैं किन्तु एक गरिमामय, प्रसादमय आध्यात्मिक अनुभूति है। प्रसिद्ध दार्शनिक नित्शे के शब्दों में 'वे मानवीय हैं, हर बात में एकदम मानवीय हैं।'

वे अपना मौन व्रत कब छोड़ने वाले हैं इस बारे में बात का बतंगड़ ही मच गया है। मुझे तो इसी में संदेह है कि वे कभी मौन छोड़ने की हिम्मत भी कर सकते हैं कि नहीं। पर यह बताने में विशेष विवेक की कोई अवश्यकता नहीं जँचती कि यदि कभी मुँह खोल कर वे संसार को अपना संदेश सुना भी दें तो उनका वह संदेश व्यर्थ जायगा और सुन कर भी कोई उसे अमल में लाने का कष्ट भी नहीं उठावेगा। बातों से कहीं करामातें हुआ करती हैं? उनकी धृष्ट भविष्यवाणियाँ शायद ही कभी पूरी होंगी। जो असली बात है वह यही है कि इस पैग़म्बर का चरित्र बड़ा ही अप्रामाणिक निकला। वे बात के धनी नहीं हैं, उनकी पेशगोइयाँ सफल नहीं होतीं, उनकी बड़ी ही अभिमानी और चंचल प्रकृति है। दूसरों को उत्तम संदेश सुनाने का वे जो दम भरते हैं उसका लवलेश भी उनके जीवन में क्रियान्वित नहीं हुआ। ऐसों के संदेश को विरला ही कोई कान देकर सुने तो सुने।

तब उनके श्रद्धालु भक्त जनों की क्या बात है? क्या काल ही धीरे धीरे उन्हें अपने शिकंजे में खींच कर उनकी आँखों की पट्टी खोल देगा? ऐसा होना तो असंभव जान पड़ता है। मेहरबाबा की कहानी भारतीय अंधविश्वास

का एक ज्वलन्त उदाहरण है। भारतीय चरित्र की इस भारी कमी की प्रबलता उनके चरित्र से जानी जा सकती है। अशिक्षित और अतिधार्मिक जनता का रहना, भारत की अवनति का एक मुख्य कारण है। भारतवासी भावावेग और तर्कबुद्धि, ज्ञान और इच्छा, इतिहास और पुराण, घटना और कल्पना के भेद के ज्ञान पर निर्भर रहने वाले वैज्ञानिक विचार से एकदम वंचित हैं। भारत में उत्साही अनुयायियों के दल, चाहे वे सच्चे जिज्ञासुओं के हों या मूर्ख अनुभव रहित व्यक्तियों के, इकट्ठा करना बहुत ही सरल है। ऐसे भी बहुतेरे देखने में आते हैं जो पहुँचे हुए महात्माओं की संगति में रह कर अपने भाग्य का निपटारा कर लेना चाहते हैं।

मेहरबाबा के जीवन में कदम कदम पर बड़ी भारी भूलें हुई हैं लेकिन उनका ब्यौरा बताने का न तो मुझे अवकाश ही है न इच्छा ही। उनकी सी भूलें मैंने भी की हैं। किन्तु हम दोनों में अन्तर यही है कि जब कि वे ईश्वर प्रेरित धर्म प्रवर्तक होने का दावा करते हैं मुझे अच्छी तरह मालूम है कि मैं एक साधारण मनुष्य मात्र हूँ और भ्रम और प्रमाद का वशवर्ती हूँ। मुझे इस बात से अचरज होता है कि उनके शिष्य यह स्वीकार कभी नहीं करते कि उनके गुरुदेव से भी भूलें हो सकती हैं। सरल स्वभाव से उनके अनुयायी मान लेते हैं कि उनके हर वचन और हर कार्य में कोई न कोई अनूठा रहस्यमय गूढ़ार्थ तथा दैवी ध्येय छिपा रहता है। वे उनकी बातों का अन्ध अनुकरण करके ही तुष्ट हो जाते हैं। उनको ऐसा करना भी पड़ता है क्योंकि उन्हें ऐसी बातों का विश्वास करना पड़ता है जिन्हें मानव की तर्क बुद्धि कदापि स्वीकार नहीं कर सकती। उनके साथ के मेरे परिचय ने मेरे अन्दर के उस रूखेपन को, जिसकी मैंने अपने जीवन के अधिक भाग में उपासना की है, और मेरे दिल में निरूढ़ पूरे शक्कीपन को, जिसके व्यापक प्रभाव में भारत के भ्रमण की प्रेरणा करने वाली भावना छिप गयी थी, और भी गहरा और मज़बूत बना दिया। पूर्व भर में एक महान् घटना के घटित होने की सूचनायें बारंबार दिखाई दे रही हैं जिनकी बराबरी सैकड़ों बरस की तवारीख में भी नहीं मिलती। हिन्दुस्तानियों

के भूरे बदनों पर, तिब्बत के हृष्ट पुष्ट निवासियों में, बादाम सी आँख वाले चीनियों में और लम्बी भूरी दाढ़ी वाले अफ्रीका निवासियों में एक उज्ज्वल भविष्य की आशा और दृढ़ विश्वास अपने गर्वीले माथे को ऊँचा कर रहे हैं। निर्मल बुद्धि वाले श्रद्धालु प्राच्यों की कल्पना में ऐन मौका आ पहुँचा है और आजकल का अशांतिमय ज़माना ही उसके निकट भविष्य में पूरा होने की स्थूल और प्रत्यक्ष सूचना है।

ऐसी सूरत में मेहरबाबा ने अपने आकस्मिक मानसिक परिवर्तन को देख कर अपने को नियति का भेजा हुआ पैगम्बर मान भी लिया तो इससे बढ़ कर स्वाभाविक और क्या हो सकता है ? इससे अधिक स्वाभाविक और क्या हो सकता है कि मेहरबाबा यह ख्याली पुलाव उड़ावें कि एक दिन चकित जगत के सामने अपने दृढ़ विश्वास का, अपनी मानी हुई दिली बात का एलान कर दें। उनके चेलों के अपने नबी के अवतार होने की बात को फैलाने की चेष्टा करने से बढ़ कर और कौन सी बात सहज होगी। तब भी लाचार होकर हमें उनके नाटकीय आचरणों और नुमाइशी प्रवृत्तियों के विरुद्ध आवाज़ उठानी पड़ती है। किसी नामी धर्म गुरु ने इनके समान रुख को कभी नहीं अपनाया है ! यह असंभव है कि कोई प्रसिद्ध धर्माचार्य सदियों की आध्यात्मिक आचार और विनय की लीक को लाँघ जावे। मेरे मन में इस संदेह ने जड़ पकड़ ली है कि इस नुमाइश पसंद महात्मा के जीवन में आगे जाकर न जानें कौन कौन से गुल खिलेंगे। पर दुनिया के विनोदार्थ, समय बली ही इस लेखक की अपेक्षा अधिक सफलता के साथ उनके वहमों की तसवीर खींच देगा।

इस दीर्घ सोच विचार के समाप्त होते-होते मुझ पर यह बात प्रकट हो गयी कि निस्संदेह मेहरबाबा की कोमल उँगलियों से अनेक उदात्त और गंभीर विचार निकले हैं। लेकिन जब वे धार्मिक प्रेरणाओं के कांतिमय जगत से विवश होकर अवश्य ही च्युत होंगे और इतने नीचे उतरेंगे कि अपने निजी बड़प्पन और भोग भाग्य की बात छोड़ें, फिर उनसे किसी प्रकार की आशा रखना व्यर्थ होगा क्योंकि ऐसी सूरत में यह भी संभव होगा कि मानव जाति

के भावी* भाग्य विधाता होने का दम भरने वाला दावा ही उनको पदच्युत करने वाला साबित हो जाय।

१५

एक विचित्र समागम

भारत का आराम के साथ, अनिश्चित भाव से मैंने दुबारा भ्रमण किया। धूल भरी रेलगाड़ियों, उचित आसन आदि से शून्य छकड़ों पर सफ़र करते करते मैं तंग आ गया था। अन्त में मैंने एक हिन्दू के साथ तय करके एक मजबूत मोटर किराये पर ले ली। मेरा हिन्दू साथी ही मेरा नौकर था और मोटर चलाने का काम भी वही करता था।

मोटर पर सैकड़ों मील का फ़ासला हमने तय किया और अनेक भाँति के

---

* मेहरबाबा ने अभी हाल में यूरोप की यात्रा की है और वहाँ उनके अनुयायियों का एक पश्चिमी संप्रदाय ही खड़ा हो गया है। वे अब भी अनूठी बातों की पेशगोई करते हैं और बताते हैं कि उनकी मौन दीक्षा के समाप्त होते होते वे घटित होंगी। उन्होंने कई बार इंगलैंड का सफ़र किया है। स्पेन, फ़्रांस और टर्की में उनके कुछ शिष्य हैं। उन्होंने दो बार पश्चिम की यात्रा की है। कुछ शिष्य शिष्याओं के साथ, बड़े ठाट से उन्होंने समूचे अमेरिका का भ्रमण किया है। हालीवुड में उनकी बड़े धूम-धड़ाके की अगवानी हुई थी। मेरी पिकफ़र्ड ने उनके आदरार्थ एक अच्छी दावत की आयोजना की थी। तल्लुता बैंकहेड ने उनकी बातों में बड़ी दिलचस्पी दिखाई और हालीवुड के सब से बड़े होटल में हजारों प्रमुख व्यक्ति उनके दरबार में पधारे थे। पश्चिम में उनका सदर मुकाम कायम करने के लिए काफ़ी ज़मीन खरीद ली गई है। मेहरबाबा तो बड़े ही जोश में देश विदेश में भ्रमण कर रहे हैं किन्तु कहीं भी उनकी वह मौन दीक्षा अभी नहीं टूटी है। अन्त को कुछ ही दिन हुए उनके बारे में एक अपवाद भी फैल गया है।

दृश्य परिवर्तनों का हमने मज़ा लूटा। जब किसी जंगल में से होकर गुजरना पड़ता और समय पर कोई गाँव देखने में नहीं आता तो जंगल में ही हम ठहर जाते। सारी रात मेरा वह साथी एक बड़ी आग सुलगा देता, पेड़ों की टहनियों आदि से ज्वाला को खूब ही धधका देता। वह मुझे विश्वास दिलाता कि इस प्रज्वलित अग्नि से डर कर बनैले जानवर पास भी नहीं फटकते। चीते जंगल में कसरत से भ्रमण करते रहते हैं किन्तु छोटी अग्निशिखा भी उनके छक्के छुड़ा देती है और वे पास आने का नाम तक नहीं लेते। सियारों की बात ही और है। पहाड़ों के निकट हमारे बहुत ही समीप उनकी 'हुँआ हुँआ' की आवाज़ प्रायः सुनाई पड़ती। दिन को कभी कभी अपने पहाड़ी घोंसलों से नील गगन की ओर उड़ती हुई बड़ी बड़ी चीलें हमें दिखाई देतीं।

एक दिन शाम को धूल से भरी एक देहाती सड़क पर अपनी मोटर को हम मुश्किल से चला रहे थे कि हमें सड़क के किनारे दो अजीब व्यक्ति बैठे नज़र आये। उनमें एक अधेड़ उम्र के साधू थे। वह ज़मीन पर अपने पुट्ठों के बल चलते थे और झाड़ियों के पत्तों की विरल छाया में बैठे अपनी नाक की ओर ध्यान पूर्वक देख रहे थे। दूसरा नौजवान था। शायद वह उस साधू का चेला ही था। उनकी बगल में हमारी मोटर जाने लगी तो साधू अधखुली दृष्टि से, हाथ जोड़े ध्यान में लीन थे। हमारे गुजरते समय वह कुछ भी नहीं विचले और घास पर ज्यों के त्यों उचित भाव से बैठे रहे। उन्होंने हमारी ओर ताका तक नहीं था। किंतु उनका जवान चेला हमारी मोटर की ओर स्थिर दृष्टि से भर आँख ताकने लगा। उस साधू के चेहरे पर कुछ विशेषता नज़र आयी तो उससे आकृष्ट होकर मैंने थोड़ी ही दूर पर अपनी मोटर रोक दी। उनके बारे में कुछ पूछताँछ करने के लिए मेरा हिन्दू साथी पीछे लौटा। वह कुछ हिचकते हुए साधू के निकट गया। किसी प्रकार चेले के साथ उसकी बड़ी लम्बी बात-चीत होने लगी।

लौट कर मेरे साथी ने बताया कि वे दोनों गुरु-शिष्य हैं, साधू का नाम चंडीदास है। चेले के कहने के अनुसार वे अद्भुत विभूतियों की खान हैं। गुरु-शिष्य दोनों पैदल ही गाँवों में भ्रमण करते हैं। करीब दो वर्ष पूर्व अपना

जन्म स्थान बंगाल छोड़ने के बाद वे कभी पैदल और कभी रेलगाड़ी से बहुत दूर तक घूम चुके हैं।

मैंने उनसे प्रार्थना की कि वे मेरी मोटर पर सवार हो जावें। बूढ़े साधू ने दिव्य कृपा के साथ और युवक ने प्रकट कृतज्ञता के साथ मेरी प्रार्थना स्वीकार कर ली। इस ढंग से कोई आध घंटे बाद मोटर से हम लोग पड़ोस के एक गाँव पर पहुँच गये और वहीं रात बिताने का हमने इरादा किया। गाँव के निकट पहुँचते समय दुबली गायों को चराने वाले एक बालक को छोड़ और कोई भी हमें दिखाई नहीं पड़ा। सूर्य ढलने ही वाला था कि हम देहात के कुँए पर पहुँच गये और उसके शंकास्पद रंगदार पानी से प्यास बुझा कर हरे भरे हो गये। उस गाँव में एक ही गली थी। उसके दोनों ओर अपने पुआल के भद्दे छप्पर और छोटी मटमैली दीवारें लिये कोई ४०-५० झोपड़ियाँ खड़ी थीं। मकानों का मटमैला रंग-ढंग देख कर मैं कुछ निरुत्साह सा हो गया। कुछ देहाती अपनी मढ़ियों के सामने छाँह में बैठे थे। एक भूरे रंग वाली गरीब औरत कुँए के पास आयी, हमारी ओर घूम कर देखा और अपनी पीतल की गगरी जल से भर कर उसने घर की राह ली।

मेरे हिंदू साथी ने चाय के सारे सामान जुटा दिये और गाँव के मुखिया के घर की खोज में चल पड़ा। योगी और उनका चेला वहीं राह की धूल में बैठ गये। योगी अंग्रेज़ी जानते न थे किंतु मुझे मोटर पर ही मालूम हो गया था कि उनका चेला थोड़ी सी अंग्रेज़ी समझ सकता था। लेकिन उसकी जानकारी इतनी कम थी कि दूसरों के साथ वह कठिनता से अंग्रेज़ी में बातें कर सकता था। बात-चीत करने की कुछ कोशिश करने पर मुझे यही उचित जान पड़ा कि जब तक मेरा हिंदू दुभाषी न आवे तब तक चुप रहूँ। तब शाम को सब के आ जाने पर मैंने उस योगी से कुछ बातें कर लेने का इरादा किया।

इसी बीच में हमारे चारों ओर मर्द, औरतों और बच्चों का एक छोटा झुंड इकट्ठा हो गया। रेल पथ से दूर इन प्रान्तों में बिरले ही किसी गोरे को

लोग देख पाते हैं। कई बार बड़ी दिलचस्पी के साथ मैंने ऐसे लोगों से बातें की हैं। उन बातों में और कुछ नहीं तो कम से कम जीवन के बारे में उन निरीह भोलेभाले देहातियों के दृष्टिकोण का पता लग जाता है। बच्चे शुरू शुरू में मुझ से शरमाते थे किन्तु कुछ पैसे उनमें मैंने बाँट दिये तो सारी झिझक छोड़कर वे मेरे साथ हिलने मिलने लगते थे। मेरी अलार्म घड़ी देख वे निष्कपट आश्चर्य में डूब जाते और घंटी को बजते सुन वे इतने आश्चर्य में आ जाते कि किसी को विश्वास ही नहीं होगा।

कोई स्त्री योगी के निकट पहुँची और खुली गली में उनके सामने साष्टांग दंडवत् की और उनके चरणों की धूल सिर आँखों पर धारण कर ली। मेरा हिंदू नौकर गाँव के मुखिया के साथ लौट आया और खबर दी कि चाय तय्यार हो गयी है। वह कालेज का ग्रेजुएट था लेकिन दुभाषी, खानसामा और ड्राइवर के काम से वह खुश था। मुझे मालूम हुआ कि मेरी पश्चिमी अनुभूति की वह तह लेना चाहता था और हमेशा वह इसी आशा में दिन बिताता था कि एक न एक दिन मैं उसको यूरोप की सैर कराऊँगा। मैंने उसको अपना साथी मान लिया और तेज़ बुद्धि तथा सचरित्र रखने वालों की जैसी कद्र करनी चाहिये उससे वैसा ही सलूक करता था।

इसी बीच में योगी तथा उनके चेले से प्रार्थना करके कोई उन दोनों को अपनी झोंपड़ी पर भिक्षा ग्रहण करने के लिए ले चला। सचमुच अपने शहरी भाइयों की अपेक्षा देहाती अधिक दया भाव रखते हैं।

हम गाँव के मुखिया के घर की ओर चले तो दूरवर्ती पहाड़ी चोटियों के पीछे पश्चिम दिशा में लाली छा गयी और नारंगी रंग के सूर्य ने अपने धुँधले जीवन का अंत सा कर लिया। हम एक बढ़िया कुटी पर पहुँचे और भीतर प्रवेश करते ही मैंने मुखिया को धन्यवाद दिया। वे सिर्फ यही कह कर चुप हो गये कि हम लोगों का यहाँ पहुँचना उनके लिए सौभाग्य की बात थी।

चाय के बाद थोड़ी देर तक हमने आराम किया। बाहर खेतों पर प्रदोष

की शीघ्र ही गायब होने वाली छाया फैलने लगी। चौपाये खेतों को छोड़ घर की राह लेने लगे। उनको चलाने वाले ग्वालों की आवाज़ें अधिक निकट आती जाती थीं। मेरा नौकर योगी के दर्शन करने के लिए गया और मेरी मुलाकात का रास्ता तैयार कर दिया। वह मुझे एक साधारण कुटी के दरवाज़े पर ले गया।

प्रवेश करते ही मैंने एक नीचे छप्पर वाले चौरस कमरे के मिट्टी के फर्श पर पैर रखा। वहाँ का सामान नहीं के बराबर था। उस कमरे में एक ओर एक ऊजड़ चूल्हा था जिसके चारों ओर मिट्टी के भाँड़े रक्खे हुए थे। कपड़े-लत्ते लटकाने के लिए बाँस का एक टुकड़ा दीवार में ठोंक दिया गया था। एक कोने में पीतल का एक जल-कलश सोह रहा था। वहाँ के असभ्य दीपक की धीमी रोशनी में सारी जगह सूनी सी दीख पड़ती थी। बेचारे इन गरीब किसानों के उपभोग के लिए ये ही सामग्री थी जिसमें आनंद पैदा करने की झलक भी दीख नहीं पड़ती थी।

योगी के चेले ने अपनी टूटी-फूटी अंग्रेज़ी में मेरी अभ्यर्थना की। उनके गुरुदेव दिखाई नहीं पड़े। वे इस समय किसी बीमार स्त्री को अपना आशीर्वाद देने गये थे। मैं वहीं बैठ कर उनकी इन्तज़ारी करने लगा।

अन्त में बाहर की गली में किसी के आने की आहट मिली और एक लम्बी मूर्ति कुटिया के आँगन में दिखाई दी। थोड़ी देर में बड़ी गंभीरता के साथ वह मूर्ति भीतर पधारी। मुझे देख कर उन्होंने कुछ सिर हिलाया और अस्पष्ट ही कुछ शब्द बोले। मेरे साथी ने मेरे कानों में उसका अनुवाद कह सुनाया—"नमस्कार साहब, भगवान आपकी रक्षा करें।"

मैंने उनके बैठने के लिए अपनी रुई की रजाई बिछा दी लेकिन उन्होंने उसे स्वीकार नहीं किया और जमीन पर ही पालथी मार कर बैठ गये। हम एक दूसरे के मुखातिब थे। अतः अच्छी तरह उनको देख लेने का मुझे सौभाग्य मिला। उनकी भद्दी दाढ़ी देख कर अनुमान होता था कि वे ५० से अधिक उम्र के होंगे, तो भी उनकी उम्र उतनी अधिक नहीं थी। शायद वह

५० के करीब थी। उनके उलझे बालों की लटें उनकी गरदन पर बिखरी पड़ी थीं, उनका मुँह गंभीरता की मुद्रा बना हुआ था और भूल कर भी उस पर हँसी की रेखा दीख नहीं पड़ी। किन्तु प्रथम दर्शन के समय जिस बात का मुझ पर सब से अधिक असर पड़ा वही उनकी कजल सी काली आँखों की अनूठी चमक, उनकी दिव्य ज्योति मेरे मन पर नये रूप से असर डालने लगी। मुझे मालूम था कि वैसे दिव्य नेत्रों की आभा कितने ही दिनों तक मेरे मन मंदिर को अंकित करती रहेगी।

उन्होंने धीरे से प्रश्न किया—"आपने बड़ा लम्बा सफ़र किया है!"

मैंने हामी भर ली।

वे अचानक प्रश्न कर बैठे—"मास्टर महाशय के बारे में आपकी क्या राय है!"

मैं चकित हो उठा। उन्हें यह बात क्योंकर मालूम हो गयी कि मैंने उनकी जन्मभूमि बंगाल की यात्रा की और कलकत्ते में मास्टर महाशय का दर्शन किया है? अचरज में डूब कर उनकी ओर थोड़ी देर तक मैं ताकता ही रहा। तब उनके प्रश्न का स्मरण करके उत्तर में कह दिया—"उन्होंने मेरे हृदय को हर लिया; लेकिन आप क्यों कर ये बातें पूछ रहे हैं!"

उन्होंने मेरे प्रश्न को टाल दिया। थोड़ी देर तक खामोशी छायी रही जिससे मैं बड़ा ही व्याकुल हो गया। इस आशय से कि कहीं बात-चीत का तार न टूटे मैंने कहा—"मेरी हार्दिक इच्छा है कि अबकी बार जब मैं कलकत्ता जाऊँ, उनके फिर से दर्शन कर लूँ। क्या वे आप को जानते हैं? उनसे मैं आपका नमस्कार कह दूँ!"

योगी ने अपना सिर दृढ़ता पूर्वक हिला दिया और कहा:

"नहीं, तुम फिर कभी उनका दर्शन नहीं कर पाओगे। अभी अभी यम-देव उनके प्राणों का हरण किया चाहते हैं।"

फिर कुछ देर तक खामोशी छाई रही। मैंने बताया:

"योगियों के जीवन तथा विचारों को जान लेने की मेरी बड़ी उत्कंठा है। आप कृपया मुझे बता दीजिये कि आप योगी कैसे बने और आप को कौन सा ज्ञान प्राप्त हुआ ?"

मालूम पड़ा कि चंडीदास बात-चीत का ताँता तोड़ना चाहते थे। उन्होंने कहा—"भूत केवल भस्म की एक ढेरी है। मुझसे आप कदापि यह आशा न रक्खें कि मैं उस भस्म की ढेरी छान कर भूत अनुभूतियों का बयान कर दूँ। मैं न तो भूत में रहता हूँ न भावी में ही। मानव अंतरतम आत्मा की गंभीरता में वे अनुभूतियाँ कुछ भी मूल्य नहीं रखतीं, ये छाया मात्र हैं। मैंने यही ज्ञान प्राप्त किया है।"

उनकी बातें मुझे व्याकुल करती थीं। उनका रूखा धर्माचार्यों का सा रुख मेरे धीरज को छुड़ाये देता था।

मैं बोल उठा—"किन्तु हम तो समय के पेंच में फँसे हुए हैं। अतः हमें चाहिये कि उन अनुभूतियों की कुछ तो खबर जान लें।"

उन्होंने प्रश्न किया—"काल, क्या ऐसी कोई चीज सचमुच ही रहती है ?"

मुझे शंका होने लगी कि हमारी बात-चीत अधिक काल्पनिक होती जा रही है। इनके चेले, इनकी जिन विभूतियों का ज़िक्र करते हैं क्या वास्तव में यह योगी उन विभूतियों से भूषित हैं !

मैं बोला—"यदि काल नाम से कोई चीज़ ही नहीं है तो हमें भूत और भावी दोनों का एक ही समय ज्ञान होना चाहिये। लेकिन अनुभव में कोई ऐसी बात तो होती नहीं दिखाई देती; वरन् ठीक इसके विपरीत ही घटित होते नज़र आता है।"

"हाँ, आप का कहना है कि आप के अनुभवों की, दुनिया के अनुभव की, वही गवाही है।"

"सचमुच आपकी यह तो मंशा नहीं है कि आप का इस बात का अनुभव एकदम न्यारा ही है ?"

"तुम्हारे कहने में बहुत कुछ सत्य है।"

"मैं मान लूँ कि भावी आप के दृष्टिगोचर है ?"

चंडीदास ने कहा—"मैं तो शाश्वत, नित्य सत्ता में रहता हूँ। कभी भी मैंने यह जानने की कोशिश नहीं की कि आगे चल कर मेरे ऊपर क्या बीतने वाला है ?"

"लेकिन दूसरों के लिए तो भावी का पता लगा सकते हैं ?"

"हाँ; यदि चाहूँ तो।"

मैंने इरादा कर लिया कि सारी बातें साफ़ साफ़ जान लूँ।

"तो आप किसी के जीवन में आगे होने वाली घटनायें बता सकते हैं ?"

"कुछ अंशों में। आदमियों के जीवन का इतना सीधा सादा मार्ग नहीं होता जिसमें सभी बातों का हर पहलू साफ़ साफ़ नियत किया गया हो।"

"तो, आपको जहाँ तक पता चले बताइये तो सही कि मेरे ऊपर भविष्य में क्या गुजरने वाला है !"

"इन बातों को तुम क्योंकर जानना चाहते हो ?"

मैं गहरे संकोच में पड़ गया।

वे गम्भीर होकर रुखाई के साथ कहते गये—"भगवान ने भावी पर परदा डाल कर उचित ही किया है।"

मैं अजीब फेर में पड़ गया कि क्या कहूँ। अचानक दिल में एक प्रेरणा उठी। बोला:

"गंभीर प्रश्न मेरे मन को सदा व्याकुल करते रहते हैं। उनको किसी हद तक हल कर लेने की आशा से मैं आपके देश का पाहुना बना। हो सकता है कि आप जो मुझे बता सकते हैं उसी से मेरे लिये कोई खास मार्ग

रुक पड़े; अथवा उससे मुझे यही मालूम हो जाय कि मेरी खोज निष्फल तो नहीं है।"

योगी अपनी चमकने वाली काली आँखों से मेरी ओर ताकने लगे। उस समय की खामोशी में उनकी गंभीर उदात्तता मेरे मन पर और भी अंकित हो गई।

वे पालथी मारे हुए इतने गहरे और किसी आचार्य के समान विद्वत्तापूर्ण मालूम पड़ते थे मानो उस दूरवर्ती जंगली गाँव की गरीब मढ़ी में वे अपने चारों ओर की परिस्थितियों से कहीं परे होकर भासने लगे हों।

पहली ही बार एक छिपकली दीवार के ऊपरी भाग से मेरी ओर ताकते हुए दिखाई दी। उसकी दोनों आँखें मेरे ऊपर लगी हुई थीं। उसका चौड़ा बेढंगा मुँह इतना हास्यप्रद था कि मानो वह मुझे देख कर बुरी तरह दाँत निकाल रही थी।

आखिर को चंडीदास की आवाज़ सुनाई देने लगी :

"मैं विद्वत्ता के चौंधियाने वाले उज्ज्वल हीरों से भूषित नहीं हूँ। किंतु तुम मेरी बात कान देकर सुनो तो मेरा कहना यह है कि तुम्हारी खोज व्यर्थ नहीं जायगी। तुमने जहाँ से भारत का भ्रमण शुरू किया था उसी जगह चले जाओ। अमावस से पहले ही तुम्हारी मनोकामना पूर्ण होगी।"

"क्या आपकी सलाह है कि मैं बम्बई चला जाऊँ?"

"तुम्हारा अनुमान ठीक है।"

मैं चकरा गया। उस दोगले अर्ध-पश्चिमी शहर में मेरे लिए क्या धरा होगा?

"लेकिन मेरी खोज में मदद पहुँचाने वाली कोई भी बात मुझे वहाँ नज़र नहीं आयी।"

चंडीदास ने मेरी ओर एक ठंडी निगाह दौड़ाई :

"वहीं तुम्हारा मार्ग है। जितनी जल्दी जा सको उतनी जल्दी उसी मार्ग

का अनुसरण करो। व्यर्थ ही समय की बरबाद मत करो। कल ही बम्बई के लिए रवाना हो जाओ।"

"क्या आप की यही आखिरी बात है?"

"और भी है, किन्तु मैंने उसका पता चलाने का कष्ट नहीं उठाया है।"

उन्होंने फिरसे मौन धारण कर लिया। उनकी आँखों की स्तब्ध, निराली भावशून्यता थी। थोड़ी देर बाद वे बोले :

"तुम भारत छोड़-कर जल्द ही पश्चिम लौट जाओगे। हमारा देश छोड़ते ही तुम्हारा शरीर सख्त बीमार पड़ जायगा। तुम्हारी आत्मा जर्जर शरीर से छूटने के लिए तलफ उठेगी पर उसके मुक्त होने का अभी समय नहीं आया है। तब नियति के गुप्त कार्य प्रकट में आ जायँगे क्योंकि नियति से प्रेरित होकर तुम फिर भारत का दर्शन करोगे। यों हमारी भूमि का तुम तीन बार दर्शन कर लोगे। अब भी एक ऋषि तुम्हारी प्रतीक्षा कर रहे हैं। और चूँकि तुम उनके साथ पुराने बंधनों से बँधे हुए हो तुम उनके लिए फिर इस देश में आ जाओगे।"*

उनकी आवाज़ थम गई! उनकी पलकों पर से एक अस्फुट कँपकँपी गुज़र गयी। पीछे मेरी ओर ताक कर उन्होंने कहा :

"तुमने सुन लिया? इससे अधिक और कुछ नहीं कहना है।"

बाद को हमारी आपस की बात-चीत असुख्य और अव्यवस्थित रही। अपने बारे में और किसी प्रकार का जिक्र करने से चंडीदास ने साफ़ ही इन-कार कर दिया। अतः मैं इस अचम्भे में पड़ गया कि उनकी निराली बातों की मर्म को क्योंकर ग्रहण करूँ। तो भी मुझे भासता था कि उन बातों के पीछे और भी अधिक रहस्य छिपा पड़ा है।

उनके चेले के साथ मेरी जो थोड़े समय की बात-चीत जारी रही उसी के सिलसिले में एक दिलचस्प बात छिड़ गई। चेले ने मुझसे बड़ी

---

* इस पेशगोई का पूर्वार्ध सच निकला।

गंभीरता से प्रश्न किया—"इंगलैंड के योगियों में आप को ऐसी बात दिखाई नहीं देती ?"

मैंने अपनी हँसी रोक कर कहा—"उस देश में योगी नहीं हैं।"

और बाकी लोग शाम भर चुप्पी साध कर हमारी बातें सुनते रहे। लेकिन जब योगी ने सूचित किया कि बात-चीत समाप्त हो गयी कुटिया के मालिक (शायद वे भी एक किसान थे) ने हमारे निकट आकर प्रार्थना की कि हम भी उनके गरीबखाने पर आतिथ्य स्वीकार करें। मैंने उनको बता दिया कि हम लोग मोटर में कुछ भोजन की सामग्री ले आये हैं और हम मुखिया के घर पर रसोई तय्यार कर लेंगे क्योंकि रात भर ठहरने के लिये मुखिया ने अपने घर में हमें जगह देने की बात कही है। पर वह किसान अतिथि सत्कार करने के इस महान् अवसर से वंचित नहीं होना चाहता था। मैंने उससे कहा कि दिन को हमारा कुछ अधिक भोजन हुआ था, अतः हमारे लिए वह कष्ट न उठाये। तब भी वह अपनी ही बात पर डटा रहा तो उसको निराश न करने के लिए हम राज़ी हो गये।

उसने मेरे सामने चिउड़े की एक तश्तरी रखते हुए कहा—"मेरे घर पर अतिथि आ जाय और मैं उन्हें रूखी सूखी भी न खिलाऊँ तो मेरे मुँह में कालिख लग जाय।"

उस कुटिया की दीवार में एक सुराख था। उसी से खिड़की का काम चल जाता था। मैंने उसमें से झाँक कर देखा। चंद्रमा की किरणें अपने मन्द आलोक को उस खिड़की के छेद में से भीतर फैला रही थी। मैं इन गरीब भोले भाले निरक्षर किसानों में प्रायः दिखाई पड़ने वाली दया, दाक्षिण्य और उत्तम चरित्र के बारे में सोचते सोचते मुग्ध हो रहा था। शहरी लोगों में जो चरित्रहीनता प्रायः नज़र आती है उसकी कमी को कालेज की पढ़ाई या कारोबार की चतुरता क्या दूर कर सकेगी ?

मैंने चंडीदास और उनके चेले से बिदा ली तो किसान छप्पर से डोरी के बल लटकने वाली एक कम क़ीमती लालटेन हाथ में लेकर सड़क तक हमें

मार्ग दिखाने आया। मैंने उसे प्रेम से और आगे बढ़ने से रोक दिया तो वह मुझे प्रणाम करके मुस्कराते हुए फाटक ही पर खड़ा हो गया। अपने नौकर के पीछे पीछे मैं चलने लगा। दोनों बीच बीच में टार्च डालते हुए रात को आराम करने के वास्ते मुखिया के घर की ओर बढ़े। मुझे नींद किसी प्रकार नहीं लगती थी क्योंकि बाहर दूर पर सियारों की जुगुप्साजनक 'हुँआँ, हुँआँ' और कुत्तों के भूँकने की गमगीन आवाजों का तुमुल नाद मच रहा था और भीतर मेरे दिल में बंगाल के इस विचित्र योगी के बारे में ज़ोरों के साथ अनेक विचार लहर मार रहे थे।

× × ×

यद्यपि मैंने चंडीदास की सलाह का हूबहू अनुसरण नहीं किया तो भी मैं अपनी मोटर का रुख बदल कर बंबई की ओर चलाने लगा। जैसे-तैसे बंबई पहुँच भी गया। शहर में जाकर किसी होटल में रहने का ठीक ठीक प्रबंध भी कर न पाया था कि बीमारी का मैं शिकार बन गया।

चारों ओर दीवारें घेरे खड़ी थीं। मेरा मन क्लांत था और बदन थका-माँदा। मेरे जीवन में पहले पहल निराशा मुझे घर दबाने लगी। मुझे मालूम होने लगा कि मैं हिंदुस्तान से तंग आ गया हूँ। प्रायः बड़ी ही विरुद्ध और अननुकूल परिस्थितियों में मैंने इस मुल्क में हज़ारों मील का सफ़र किया था। जिस भारत की खोज में मैं निकला था यूरोपियनों की आबादी में उसकी झलक तक मिलने की कोई उम्मीद नहीं थी। वहाँ का रंग-ढंग ही कुछ और है। जुआ, नाच, खेल-कूद, ताश, दावतें, शराब, सोडा आदि का वहाँ दौर-दौरा है। जब जंगल पड़ता था हिंदू लोगों की आबादी के बीच में टिकने पर अपनी खोज में काफ़ी मदद मिलने की आशा दिखाई देती थी। लेकिन इससे मेरी तबियत के सुधरने में काफ़ी अड़चन पड़ जाती थी। उत्तर भारत के ज़िलों में, जंगली गाँवों में अननुकूल भोजन करते, मलिन जल पीते, अव्यवस्थित जीवन बिताते, झुलसाने वाले इस देश में रतजगा करते, सफ़र करने में मुझे काफ़ी जोखिमें उठानी पड़ी थीं। अब मेरी देह केवल पीड़ा और यंत्रणा की शय्या पर पड़ा हुआ थकित बोझ मात्र बन गई थी।

मुझे अचरज हो रहा था कि कितने दिनों तक मैं यों ही बीमारी की आँख बचा कर चल फिर सकूँगा। मेरे भारत के सारे भ्रमण में मेरे पीछे पड़ कर निर्दयता के साथ मुझे तंग करने वाले 'नींद न आने' के भूत को झाड़ देने में महीनों से मैं असफल होता आया था। भिन्न भिन्न तथा विचित्र प्रकार के लोगों के बीच में सावधानी के साथ चलने की आवश्यकता की वजह से मेरी नसों की बड़ी बुरी हालत हो गई थी। हिंदुस्तान के गुप्त और रहस्यमय जीवन बिताने वाली अपरिचित मंडलियों के मर्म का पता लगाते, अपनी भीतरी मानसिक समता को खोये बिना, एक साथ ही समालोचक की दृष्टि तथा तत्त्व को स्वीकार करने की बुद्धि, दोनों को बनाये रखने की ज़रूरत के कारण मेरे दिमाग़ में एक दारुण खींचा-तानी पैदा हो गई थी। अपनी अभिमानपूर्ण कल्पनाओं को ही दैवी ज्ञान समझने वाले भ्रान्त विमूढ़ों तथा सच्चे योगियों में, करामातों के पीछे रही सही बुद्धि को भी ताक़ पर रखने वाले ओछी तबियत के लोगों और सच्ची आध्यात्मिकता में पगे धार्मिक योगियों में, टोना-टोटका करने वाले नामधारी महात्माओं तथा योग के पीछे पागल सच्चे जिज्ञासुओं में, मुझे अपनी जीवन नैया की राह ढूँढ़ निकालने की शिक्षा ग्रहण करनी थी। एक ही खोज के पीछे अपने जीवन के कई अमूल्य वर्ष निछावर करने को मैं बिलकुल ही तय्यार नहीं था। मुझे तो अपनी फ़ुरसत के चन्द महीनों को जाँच-पड़ताल से खचाखच भर कर पूरे पूरे ध्यान से तत्त्व को जान लेना था।

यदि एक ओर मेरी शरीरिक और मानसिक दशा बहुत ही नाज़ुक हो गई थी तो दूसरी ओर मेरी आध्यात्मिक उन्नति की स्थिति कुछ कुछ सुधर चली थी। तो भी असफलता का ख्याल करते ही मेरा दिल बैठ गया। उज्ज्वल चरित्र और विलक्षण संसिद्धि वाले पुरुषवरों से और अजीब बातें कर दिखाने वाले महात्माओं से मेरी भेंट अवश्य हुई थी, पर मेरे दिल ही दिल में अभी वह निश्चयात्मक ध्वनि गूँज नहीं उठी थी, यह दृढ़ धारणा बैठ नहीं गई थी कि जिस अतीत आध्यात्मिक गुरू की तुम खोज में हो, जो गुरुवर तुम्हारी तर्क बुद्धि को तृप्त कर सकेंगे, जिनके श्रीचरणों में तुम अपने आपको सर्वात्मना समर्पण कर सकते हो वह परम पुरुष, वह परम गुरु मुझे मिल गये

है। उत्साही चेलों ने व्यर्थ ही मुझे अपने अपने गुरुओं की छत्रछाया में अपने गुरू के संप्रदाय में शामिल कर लेने की भरसक कोशिश की थी। लेकिन मैंने पहचान लिया था कि जिस प्रकार युवक लोग सर्व प्रथम जवानी के जोश को ही पराकाष्ठा के प्रेम का पैमाना मान लेते हैं उसी प्रकार ये भोले-भाले चेले अपनी सर्व प्रथम आध्यात्मिक अनुभूतियों से इतने चकित हो गये थे कि उससे भी परे रहने वाली किसी अनुभूति की खोज का नाम तक नहीं लेते थे। अलावा इसके, दूसरों के सिद्धांतों की केवल एक धरोहर रखने वाला बनने की मेरी इच्छा ही नहीं थी। जिस बात की मैं तलाश में था वह एक जीती जागती अपरोक्ष अनुभूति थी। वह एक ऐसा आध्यात्मिक आलोक था जो सर्वात्मना मेरा अपना हो, जिसमें परायेपन की कोई पुट भी न हो।

लेकिन आखिर मैं कौन था? अपने जीवन की सारी लालसाओं को तिलांजलि देकर सुदूर पूर्वी खंडों को छानने वाला, गरीब, दायित्वहीन एक लेखक मात्र था। तब ऐसी अनुभूति प्राप्त करने की आशा भी रखने का मुझे कौन सा अधिकार था? अतः मेरे दिल पर निरुत्साह का भारी परदा पड़ ही गया।

जब मेरी तबियत कुछ दुरुस्त हो गयी और मैं पैर घसीटते इधर उधर चल फिर सका तो मैं होटल में मेज़ के सामने अपने एक पड़ोसी फ़ौजी कप्तान के साथ बैठ गया। उसने अपनी मरीज़ बीबी, उसके आहिस्ते आहिस्ते चंगी हो जाने, अपनी छुट्टी के सारे प्रबंधों को रद्द कर डालने आदि की लम्बी राम-कहानी का पोथा ही खोल दिया। इससे मेरी बेचैनी और अस्वस्थता को और भी ठेस पहुँची। जब हम दोनों मेज़ से उठे और बरामदे में आ गये उसने एक लम्बा चुरट मुँह में दबा लिया और धीरे धीरे बोलने लगा—"कोई खेल, दिलबहलाव, क्यों?"

थोड़े ही में मैंने स्वीकार कर लिया—"हाँ, क्यों नहीं?"

आध घंटे के बाद हम दोनों हार्नबी रोड पर एक तेज़ मोटर पर सवार थे। हम किसी जहाज़ी कम्पनी के ऊँचे, विशाल भवन के सामने ठहर गये।

इस बात की पूरी जानकारी के साथ कि मौजूदा हालत में अचानक हिन्दुस्तान को छोड़ देने में ही सम्भवतः मेरा खैर है मैंने अपना टिकट कटा लिया।

बम्बई की बेढंगी झोपड़ियों, धूल भरी दूकानों, सुशोभित महलों और सजे-सजाये दफ़रों से मेरा जी उकता गया था। उनसे मुँह मोड़ कर मैं अपने होटल के कमरे में लौट चला ताकि अपने दुःखद विचारों की परम्परा को जारी रक्खूँ।

ज्यों त्यों करके शाम हो गई। खानसामे ने सुस्वादु तरकारी की एक रकाबी मेज पर सजा दी, पर भोजन से मेरी अरुचि सी हो गई थी। मैंने दो प्याले बरफ पड़ा शरबत पी लिया और फिर मोटर पर सवार हो शहर में घूमने लगा। मोटर से उतर कर एक गली में धीरे धीरे टहल रहा था कि मुझे एक बड़ा ही उज्ज्वल सिनेमा थियेटर जो भारत के लिए पश्चिम का एक वर प्रदान है, मिला। उसके दीपोज्ज्वल फाटक पर थोड़ी देर ठहर कर मैं उसके भड़कीले रंगदार इश्तहारों को गौर से देखने लगा।

मुझे चलचित्र देखने की पहले से ही लत सी थी। आज तो थियेटर मुझे अमृतपान कर लेने का न्योता सा दे रहा था। संसार भर में किसी भी शहर में क्यों न हो, यदि किसी सिनेमा में एक-दो रुपये के पैसे लुटाने से मुलायम रोवाँदार कपड़े से ढकी गद्दी मिल जाय तो मुझे यकीन नहीं कि मैं कभी भी अपने को लाचार और एकदम अकेला समझूँगा।

गद्दी पर बैठे थियेटर में मैंने देखा कि अमेरिका के जीवन के कुछ इधर उधर के पहलू चलचित्रों के रूप में सफ़ेद परदे पर पड़ रहे हैं। एक मूर्ख घरनी और विश्वासघाती पति दोनों शानदार महलों के सुन्दर कमरों में चलते फिरते नज़र आते हैं। ग़ौर से चलचित्र देखने की मैंने बड़ी कोशिश की लेकिन न जाने क्यों मेरा जी और भी उकता रहा था। ताज्जुब की बात थी कि सिनेमा देखने की मेरी पुरानी लत एकबारगी कैसे छूट गयी। मानवीय भावनाओं के तुमुल संघर्ष की कहानियाँ और विषाद तथा मोद भरी घटनायें समवेदना

पैदा करके मुझे दुखी या सुखी बनने की, रुलाने और हँसाने की सारी शक्ति एकदम गवाँ बैठी थीं।

खेल आधा भी समाप्त नहीं हुआ था कि चलचित्र धुँधला पड़ते हुए सम्पूर्ण शून्यता में विलीन होते हुए मुझे प्रतीत होने लगा। मेरा ध्यान एकाग्र हो गया और मेरा मन फिर से मेरी विचित्र खोज के बारे में सोच विचार करने लग गया। अचानक मुझे भान होने लगा कि मैं एक ऐसा यात्री हूँ जिसका कोई खुदा न हो, ऐसा घुमक्कड़ जो एक शहर से दूसरे शहर और एक गाँव से दूसरे गाँव उस जगह की खोज में भटकता रहे जहाँ अपने मन को चैन दें और कहीं भी आश्रय न पावे। अपने देश और समय के लोगों की अपेक्षा जिस महापुरुष ने और भी गहरे तक पैठ कर खोज की हो, उस अतीत महात्मा की विदेशी रूप-रेखा देखने की लालसा से मैंने कितनों के चेहरे ग़ौर से नहीं ताके ? इस आशा में कि कहीं उस दिव्य नेत्र-युग्म को जो मेरे शक्की हृदय को तोष देने वाली रहस्य भरी वाणी गुँजा दे, देख पाऊँ अन्य देश के लोगों के काले चमकीले नेत्रों की ओर कितनी उत्सुकता से मैंने ताका न था !

इस प्रकार सोचते सोचते मेरे दिमाग में कुछ विचित्र ऐंचा-खेंची पैदा हो गई और भान होने लगा कि चारों ओर प्रबल वैद्युतिक स्पंद प्रवाहित हो रहे हैं। मुझे मालूम हुआ कि मुझमें कोई गम्भीर शक्तिशाली मानसिक परिवर्तन हो रहा है। अचानक एक मानसिक वाणी मेरे ध्यान की परिधि में बुलन्द हो उठी और मुझे मजबूर करने लगी कि मैं उसके इन तिरस्कारी वचनों को स्तब्ध भाव से सुनूँ—'जीवन भी क्या है ? पालने से लेकर चिता तक की मानव जीवन की सारी घटनाओं और उपाख्यानों को एक एक करके दरसाने वाला सिनेमा है। अतीत के दृश्य कहाँ गये ? तुम उन्हें फिर भी पा सकते हो ? शाश्वत और नित्य वस्तुसत्ता को पहचानने की सारी कोशिश छोड़ कर, साधारण व्यावहारिक सत्य से भी गये गुज़रे छलनात्मक चलचित्रों में अपनी वास्तविक खोज भूल कर व्यर्थ ही अपने समय को बरबाद करने आये हो ? सिवाय एक पूरी काल्पनिक कथा के यह खेल है ही क्या ? महा विभ्रम के अंतर्गत एक क्षुद्र विभ्रम मात्र है।'

इसके बाद मानव प्रेम और विषाद के इस फ़िल्म में मेरी रही सही अभिरुचि भी गायब हो गयी। अब भी गद्दी पर बैठे रहना एक स्वाँग नहीं तो क्या था। चुपचाप मैं उठ खड़ा हुआ और थियेटर के बाहर चला आया।

मैं धीमी चाल से निरुद्देश ही शहर की गलियों में भटकने लगा। ऊपर आसमान में चंद्रमा की विमल चाँदनी, जो इन पूर्वी देशों में मानव जीवन के बहुत ही निकट मालूम होती है, छिटक रही थी। गली के मोड़ पर किसी भिखमंगे की करुणा जनक आवाज़, जो पहले मेरी समझ में नहीं आयी, सुनाई पड़ी। उसकी ओर आँख उठा कर ताका तो डर और जुगुप्सा के मारे मेरे पैर पीछे हट गये, क्योंकि वह एक खौफ़नाक बीमारी का शिकार था। उस बीमारी ने उसको एकदम बदशकल बना दिया था। उसके चेहरे का चमड़ा जहाँ-तहाँ हड्डी से चिपक कर बड़ा ही भयानक मालूम होता था। लेकिन थोड़ी ही देर बाद इस कुत्सित घृणा के स्थान पर जीवन की मार खाये हुए इस भिखमंगे के प्रति एक अजीब करुणा ने मेरे दिल में जगह कर ली।

मैं समुद्र तट की ओर चलते चलते बाकबे विहार स्थल पर पहुँच गया। मैंने वहाँ एक ऐसी एकान्त जगह अपने लिए खोज ली जहाँ पर वहाँ हर रात इकठे होने वाले भिन्न भिन्न जाति के लोगों से किसी प्रकार की बाधा न पहुँचे। नगर के ऊपर तने हुए ताराओं के सुन्दर चँदोवे की ओर निहारते हुए मुझे अच्छी तरह प्रतीत हो गया कि मेरे जीवन में एक बड़ी ही नाज़ुक हालत, जिसकी मुझे तनिक भी आशा नहीं थी, आ पहुँची है।

× × ×

कुछ ही दिनों में मेरा जहाज़ यूरोप की ओर कूच करके अरब समुद्र के जल पर तैरने वाला था। एक बार जहाज़ पर सवार हुआ तो मेरा इरादा था कि आध्यात्मिकता से बिदाई ले लूँ और पूर्वी खोज को अतल जल में फेंक दूँ। मैं और कभी भूल कर भी काल्पनिक और अवास्तविक आध्यात्मिक गुरुओं के अन्वेषण की बलि-वेदी पर अपने सर्वस्व को, अपने समय, बुद्धि, शक्ति, धन आदि को निछावर नहीं करूँगा।

किन्तु मेरी आत्मवाणी, जिससे निस्तार पाना दुर्घट सा था, मुझे फिर से तंग करने लगी। मुझे धिक्कारते हुए वह बोल उठी—'मूर्ख कहीं का! बरसों की जिज्ञासा, खोज तथा आशा का अन्त में यही थोथा नतीजा निकलना था! साधारण जनता के समान तुम भी उसी साधारण जीवन के पुराने ढर्रे पर पैर घसीटते चलोगे! और वह भी किस लिए? जो कुछ सीख चुके उसको मिट्टी में मिलाने, अपनी उत्तम भावनाओं को अहंकार और विषय-लालसाओं में डुबा देने के लिए? किन्तु सावधान! जीवन का तुम्हारा नौसिखियापन गज़ब के उस्तादों के निकट गुज़रा है; निरंतर विचार और विमर्श ने अस्तित्व के ऊपर पड़ी हुई झिल्ली को खोल कर सच्चाई का नंगा चित्र तुम्हारे सामने खड़ा कर दिया है; सदा के उद्योग ने तुम्हारी आत्मा को विविक्त सेवी बना दिया है। क्या सोचते हो कि ऐसे ही अपने भाग्य की बेड़ियों से बच सकते हो? कभी नहीं! उसने तुम्हारे पाँवों को अलख जंजीरों से जकड़ दिया है।'

मेरा मन डाँवाडोल था। आसमान में तारे झुंड-के-झुंड चमक रहे थे। उनके आलोक को देखते हुए मैं कभी कुछ सोचता था और कभी कुछ। इस निठुर आत्मवाणी के हाथों मैंने अपनी पराजय स्वीकार कर के बच जाने की चेष्टा की। वाणी ने जवाब दिया—'क्या यही तुम्हारी दृढ़ धारणा है कि हिंदुस्तान में तुम्हारा गुरू बनने के योग्य किसी महात्मा से तुम्हारी भेंट नहीं हुई है?'

मेरे मन-पट पर अनेक मुख मंडलों के चित्र खिंच गये। तीव्र बुद्धि वाले हिंदुस्तानी, धीर प्रशांत द्राविड़, भावुक बंगवासी, दृढ़ और मौन पश्चिमी, सभी के मुख मंडल कोई मैत्री भरे, कोई मूर्ख, कोई होशियार और चालाक, कोई भयानक, कोई कुत्सित, कोई गंभीर, अनेक प्रकार के चेहरे मेरे मनोनेत्र के आगे फिर गये।

उन उज्ज्वल मुखाकृतियों में से, एक की निराली मुखश्री एक अपूर्व विलक्षणता लिये बारंबार मेरे सामने दिखाई देने लगी और वह मुख मंडल अपने प्रसन्न शांत नेत्रों से मेरे मुख की ओर ताक रहा था। वह दक्षिण के

अरुणाचल गिरिवर पर बसने वाले श्री महर्षि की मूर्तिवत् प्रशांत और उद्वेग रहित चितवन थी। वे मुझ को कभी नहीं भूले। वास्तव में महर्षि के बारे में कुछ कोमल विचार बारंबार मेरे मन मंदिर में उठते अवश्य थे लेकिन मेरे अनुभवों का आकस्मिक स्वभाव, असंख्य मानवों के जल्द बदलने वाले चेहरे, निरंतर परिवर्तनशील घटनाओं के चल दृश्य, मेरी खोज में सामने आने वाले आकस्मिक परिवर्तन इन सभी ने मिल कर महर्षि के साथ के मेरे थोड़े दिन के परिचय की स्मृति पर एक परदा सा डाल दिया था।

तो भी अब मुझे भासने लगा कि वे मेरे जीवन की अँधेरी रात में उस तारे के समान जगमगा उठे थे जो आसमान की अँधेरी शून्यता में अपनी अकेली ज्योति एक बार चमका कर फिर से गायब हो जाता है। मेरी आत्मा के प्रश्न के उत्तर में मुझे स्वीकार करना ही पड़ा कि अब तक चाहे पश्चिम चाहे पूर्व हो कहीं भी महर्षि का सानी मुझे देखने में नहीं मिला है। लेकिन वे तो इतने दूर, यूरोपियन मानसिक प्रवृत्ति के इतने परे, मुझे चेला बनाने या न बनाने की ओर इतने उदासीन, इतने लापरवाह रहे थे!

अब मूक आत्मवाणी ने अपनी सारी शक्ति से मुझे धर पकड़ा—'तुमने कैसे निश्चय कर लिया कि वे उदासीन रहे? तुम वहाँ ठहरे ही कितने दिन। चन्द रोज़ के तो तुम मेहमान ही रहे।'

मैंने स्वीकार किया—'हाँ, लेकिन मुझे तो अपनी निश्चित कार्यप्रणाली पूरी करनी थी। ऐसी सूरत में, बतलाओ मैं और क्या कर सकता था?'

'लेकिन तुम अब एक बात कर सकते हो। उनके ही पास लौट जाओ।'

'अपने तईं मैं उनके यहाँ कैसे जाऊँ?'

'इस खोज में सफलता ही सब से प्रधान है। तुम्हारी इच्छा या अनिच्छा से कोई मतलब नहीं है। महर्षि के पास चले जाओ।'

'वे तो भारत के उस सिरे पर हैं और मैं हूँ बहुत ही बीमार; फिर भ्रमण करने की मुझमें ताकत ही कहाँ है?'

'इसका क्या अर्थ ? यदि तुम सच ही गुरुदेव को पाना चाहते हो तो तुम्हें कैसी भी कठिनाई का सामना करने में किसी प्रकार की आपत्ति नहीं उठानी चाहिये।'

'लेकिन मुझे इसी में शक है कि मुझे अब किसी गुरु की आवश्यकता है या नहीं। मैं इस कदर थक गया हूँ कि किसी बात की कामना ही नहीं रही। मैंने जहाज़ का टिकट भी कटाया है और तीन दिन में घर की ओर मुझे रवाना हो जाना चाहिये। अब कार्यक्रम में हेरफेर करने का वक्त ही कहाँ है ?'

मेरी आत्मवाणी मानो मेरी हँसी उड़ा रही थी :

'वक्त ही कहाँ है ? क्या खूब ! तुम्हारे उचित और अनुचित के ज्ञान को हो क्या गया है ? अभी अभी तुमने कहा है कि मेरी राय में महर्षि ही सब से अधिक प्रभावशाली हैं। फिर तुम्हीं उनको ठीक ठीक जाने बिना ही उनसे दूर भागते हो ! लौट जाओ, उनके पास।'

मैं एकदम हठी और जिद्दी बन गया। मेरी बुद्धि तो कह रही थी—'हाँ, लौट जाओ' पर मेरा दिल बुद्धि की एक नहीं सुनता था।

फिर एक बार वाणी ने झिड़क कर कहा—'अपना कार्यक्रम बदल लो। तुमको महर्षि के निकट जाना ही पड़ेगा।'

तब मेरे अंतरतम अंतस्तल से कोई अजीब प्रेरणा उमड़ उठी और उस अकथनीय आत्मवाणी की मूक आज्ञा को तुरन्त ही शिरोधार्य करने के लिए मुझे मजबूर करने लगी। उसने मेरे ऊपर पूरा पूरा कब्ज़ा ही जमा लिया था। मेरे तर्क के सारे एतराजों को उसने इतना मिट्टी पलीद कर दिया कि मैं उसके हाथों का एक कठपुतला सा बन गया। महर्षि की शरण में जाने की अचानक ही आज्ञा देने वाली इस प्रेरणा के आवेग की तेज़ी में से उन ऋषिवर के नेत्र स्पष्ट रूप से मुझे पास बुलाते दिखाई दिये।

मैंने अपनी आत्मवाणी से और तर्क करना छोड़ दिया, क्योंकि मुझे मालूम था कि मैं अब उसके सामने एकदम लाचार हूँ। मैंने ठान लिया कि

तुरन्त महर्षि के पास चला जाऊँगा और यदि वे मुझे स्वीकार करेंगे तो उनका शिष्य बन जाऊँगा। उस उज्ज्वल तारे से मैं अपनी जीवन नैया बाँध लूँगा।

पांसा पड़ ही गया। कोई शक्ति मेरे ऊपर विजय पा रही थी, लेकिन मझे पता नहीं था यह कौन सी थी?

मैं होटल पहुँचा। माथे का पसीना पोंछा और चाय का एक प्याला पी गया। पीते समय मुझे भासता था मानो मेरा दूसरा ही जन्म हुआ है। मुझे साफ़ मालूम हो रहा था कि अब मेरे सिर पर से लाचारी और शंका का सारा बोझ टला जा रहा है।

दूसरे दिन सवेरे मैं कलेवा करने बैठा तो मालूम हुआ कि बंबई पहुँचने के बाद पहले पहल मैं मुस्करा रहा था। मेरी कुर्सी के पीछे उज्ज्वल सफेद कुरता, सुनहला कमरबंद और सफेद पायजामा पहने एक लम्बी दाढ़ी वाला सिख नौकर हाथ बाँध कर खड़ा हुआ था। मुझे मुस्कराते देख कर वह भी मुस्कराने लगा। बोला—"साहब, आपकी एक चिट्ठी है।"

मैंने लिफ़ाफ़े पर नज़र डाली। दो बार वह मेरी खोज में जुदा जुदा पते पर चला गया था और मेरे पीछे पीछे कई जगह हो आया था। बैठते हुए मैंने उसे खोल कर देखा तो क्या था?

मेरे आनन्द और आश्चर्य का कोई ठिकाना नहीं था। वह अरुणाचल की तलहटी के आश्रम में लिखा गया था। लेखक एक समय बड़ा ही प्रमुख नेता था और मद्रास व्यवस्थापिका सभा का सदस्य रहा था। अपने किसी आत्मीय के सिधार जाने पर संसार के प्रति उसे विराग पैदा हो गया और वह महर्षि का शिष्य बन गया। वह सज्जन जब तब महर्षि के दर्शनों को आते रहते हैं। मेरी उनसे मुलाकात हुई थी और हम दोनों के बीच में एक प्रकार की चिट्ठी-पत्री भी चलती थी।

उस चिट्ठी में मेरे हौसले बढ़ाने वाली कई बातें थीं। उसमें यह सूचना भी थी कि चाहूँ तो सहर्ष आश्रम का फिर से दर्शन कर सकता हूँ। बाकी सब

बातों को फीका बनाने वाली एक बात उस चिट्ठी के पढ़ने के बाद मेरे मन पर खूब ही अंकित हो गयी। 'तुम्हारा अहोभाग्य है कि सच्चे गुरू का दर्शन हुआ।'

महर्षि के पास लौटने के मेरे नये संकल्प का यह शुभ शकुन था। कलेवा करने के बाद मैं जहाज़ी दफ़्तर पर गया और अपने सफ़र के रुक जाने की खबर दे दी।

शीघ्र ही मैं बम्बई से बिदा हुआ और अपने नये कार्यक्रम को क्रियान्वित करने का बीड़ा उठाया। रेलगाड़ी पर सवार होकर सुदूर दक्षिण प्रान्त की ओर तेज़ी से मैं चला जा रहा था। सैकड़ों मील तक ऊंचा समतल भूमि मेरी आँखों के सामने तेज़ी से गुज़रती जाती थी। कहीं कहीं बाँस के जङ्गल अपने पत्रमय मस्तकों को उठाये दृश्य की उबाने वाली एकरूपता में अन्तर डाल रहे थे। मैं इस विरल वृक्ष वाली चौरस भूमि से जितनी जल्द पार होना चाहता था, रेलगाड़ी उतनी जल्दी मुझे ले नहीं जा सकती थी। रेलगाड़ी झूमते-झामते झटकों के साथ दौड़ी जा रही थी कि मुझे अनुभव होने लगा कि मैं बड़े वेग के साथ एक महत्त्वपूर्ण घटना की ओर, आत्मविज्ञान के उज्ज्वल सुप्रभात की शुभ घड़ी की ओर, दौड़ा जा रहा हूँ। मुझे प्रतीत होने लगा कि मैं हवा के घोड़े पर सवार होकर उस महान् ऋषिवर के दिव्य दर्शन करने जा रहा हूँ जिसकी बराबरी दुनिया भर में मुझे मिली नहीं थी। रेल के डिब्बे की खिड़कियों के परदों में से झाँक कर जब मैं अपनी नज़र दौड़ाने लगा मेरे भीतर ही भीतर एक ऋषि प्रवर, आध्यात्म विद्या में पारदर्शी एक पुरुषोत्तम के दर्शन करने की मेरी प्रसुप्त कामनायें एक बार फिर आशामय कल्लोल के साथ जाग पड़ी थीं।

दूसरे दिन तक हमने कोई १००० मील का फासला तय किया और प्रशांत दक्षिण के नज़ारे आँख के सामने से गुज़रने लगे। कहीं लाल लाल टीले उस दृश्य के बीचों बीच अपना उन्नत मस्तक ऊँचा किये हुए बहुत ही सुन्दर मालूम होते थे। मुझे एक अजीब प्रकार का आनन्द प्राप्त हो रहा था।

गरम देशों के पीछे छूटने पर मद्रास शहर की नमी मिली। यह मुझे बहुत ही अच्छी लगी क्योंकि इसका यह मतलब था कि मेरा सफ़र अब शीघ्र ही समाप्त होने वाला है।

मद्रास शहर में मद्रास साउथ मरहटा कम्पनी का रेल पथ समाप्त हो जाता है। अतः मुझे गाड़ी बदल कर साउथ इण्डियन रेलवे की गाड़ी पकड़नी थी। इसलिए मुझे मदरास की कम भीड़ वाली सड़कों से होकर गुजरना पड़ा। गाड़ी छूटने में अभी काफ़ी देर थी। मैंने कुछ आवश्यक चीजें खरीद लीं और दक्षिण के जगद्गुरु श्री शंकराचार्य जी से मेरा परिचय कराने वाले एक भारतीय कवि महाशय से मिल कर शीघ्र ही एक छोटी गुफ़्तगू में लग गया।

उन्होंने बड़े आदर के साथ मेरी अभ्यर्थना की और जब मैंने उनसे कहा कि मैं महर्षि के दर्शनों के लिये निकल पड़ा हूँ तो उन्होंने कहा—"कोई आश्चर्य नहीं। इसकी तो मुझे पहले से ही खबर थी।"

मैं चकित हुआ और उनसे प्रश्न किया—"यह आप क्या कहते हैं!"

वे मुस्कराये :

"दोस्त, तुम्हें स्मरण होगा कि श्री जगद्गुरु जी चेंगलपट में हम दोनों से क्यों कर विदा हुए थे। तुमने नहीं देखा था कि हमारे चलने से पहले उन्होंने मेरे कान में कुछ कह दिया था?"

"हाँ, आपके कहने पर मुझे भी याद आयी।"

कवि महाशय के परिमार्जित पतले चेहरे पर अब भी वही मुस्कान थिरक रही थी। बोले :

"जगद्गुरु ने मुझसे यही कहा था कि 'तुम्हारा मित्र सारे भारत का भ्रमण करेगा। वह अनेक योगियों का दर्शन करेगा और अनेक उपदेशकों की बातें सुनेगा। लेकिन अन्त में उसे महर्षि के पास लौटना ही होगा। उसके लिए महर्षि ही योग्य और सच्चे गुरू हैं।"

निवासस्थान पर लौट आते ही कवि महाशय की ये बातें मेरे मन पर खूब ही अंकित हो गईं। इनसे श्री शंकराचार्य की भविष्य जानने की विभूति के पक्के सबूत मिल गये। इसके अतिरिक्त ये बातें सुन कर मेरा यह विश्वास और भी दृढ़ हो गया कि मैं जिस मार्ग का पथिक हो रहा हूँ वह एकदम ठीक और सही है।

मेरे भाग्य के सितारे ही जानें कि मेरे भाल पट्ट पर विधाता ने कैसा आश्चर्यजनक भ्रमण लिख रक्खा है!

१६

विपिनाश्रम

हर एक व्यक्ति के जीवन में कुछ ऐसी अविस्मरणीय घटनाएँ हुआ करती हैं जो सोने के अक्षरों में लिखे जाने योग्य होती हैं। महर्षि के दर्शन के लिए दालान में प्रवेश करना मेरे लिये एक ऐसी ही बात थी।

सदा के समान वे अपने उच्च आसन के बीच में एक सुन्दर बाघम्बर पर विराजमान थे। उनके समीप ही एक छोटी मेज़ पर ऊदबत्तियाँ धीरे धीरे जल रही थीं और उनकी भीनी महक से सारा स्थान सुरभित हो रहा था। आज महर्षि समाधि में लीन न होकर हम मानवों की पहुँच के एकदम बाहर नहीं थे। आज वे आँखें खोले दुनिया को अवलोक रहे थे। मैंने उन्हें प्रणाम किया तो उन्होंने मेरी अभ्यर्थना स्वीकार करते हुए मेरी ओर ताका और मेरी अगवानी में उनके मुँह पर मन्द मुसकान खिल उठी।

अपने गुरुदेव से हट कर कुछ दूर पर बड़े आदर के साथ कुछ शिष्य बैठे थे। कोई पंखा खींच रहा था जिससे चारों ओर हवा की कोमल लहरियाँ फैल रही थीं।

मैं अच्छी तरह से जानता था कि उनके शिष्य होने की अभिलाषा से मैं वहाँ गया था। अतः जब तक महर्षि का निर्णय न सुनूँ तब तक मेरे हृदय

को शांति कैसे मिल सकती थी। मुझे इस बात की बड़ी भारी उम्मीद थी कि वे मुझ पर अवश्य दया करेंगे, क्योंकि जिस प्रेरणा के कारण, बम्बई छोड़ कर मैंने अरुणाचल की राह ली थी वह साधारण अथवा संसारी नहीं थी। वह किसी दैवी अनुशासन के रूप में उठी थी। उसके सामने मुझे सर झुकाना ही पड़ा था। संक्षेप में मैंने अपनी राम-कहानी उन्हें सुना दी और साफ़ साफ़ उन पर अपनी मनोकामना प्रकट कर दी।

वे मुस्कराते ही रहे। उनके मुँह से कोई उत्तर नहीं निकला। मैंने कुछ ज़ोर देकर अपना प्रश्न दुहरा दिया। कुछ देर तक खामोशी छाई रही। तब कहीं श्री महर्षि ने स्वयं, बिना किसी दुभाषिए की मदद के, अंग्रेज़ी में निम्न आशय प्रकट किया :

"गुरू और शिष्य का क्या अर्थ है? इस प्रकार के सारे भेद शिष्य के दृष्टिकोण से उत्पन्न होते हैं। सदात्मा का जो वेत्ता है उसकी दृष्टि में न कोई गुरू है और न कोई शिष्य ही। वह सब में समान दृष्टि रखता है।"

शुरू में ही मुझे इस प्रकार का मुँहतोड़ जवाब मिल गया। मैंने और कई प्रकार से अपनी प्रार्थना उन्हें जताई लेकिन वे कुछ भी नहीं पसीजे। अंत में उन्होंने यह कहा—तुम्हारे गुरू तुम्हारे पास ही हैं। उनको कहाँ खोजते फिरते हो? तुम्हारी आत्मा में ही तुम्हारे गुरू आसीन हैं। वे अपने शरीर को जिस दृष्टि से देखते हैं तुम भी उनके शरीर को उसी प्रकार का समझो। शरीर उनकी सदात्मा नहीं है।"

मेरे कानों में यह अच्छी तरह गूँजने लगा कि महर्षि मेरे प्रश्न का सीधा उत्तर नहीं देंगे। अतः मुझे उनके उत्तर का पता किसी दूसरे ढँग से चलाना होगा। यह ढँग भी, जैसा महर्षि की बातों से व्यक्त होता था, निश्चय ही सूक्ष्म और अस्पष्ट है। अतः उस विषय का जिक्र मैंने उस समय छोड़ दिया और मेरी इस यात्रा के सांसारिक पहलुओं पर बातें होने लगीं।

वहीं कुछ दिन तक ठहरने के प्रबन्ध में शाम बीत गई।

× × ×

उसके बाद के कुछ सप्ताह एक अनूठे, अनभ्यस्त जीवन के अनुकूल बना लेने में गुजरे। दिन भर महर्षि की सन्निधि में बीतता था। उनके ज्ञान के बिखरे हुए, संबंध रहित विचार रत्नों का धीरे धीरे संग्रह करने लगा। मेरे प्रश्नों के उत्तर में कुछ अस्पष्ट सूचनायें भी मिलती गईं। रात का समय किसी प्रकार से कटता न था। मेरी वह कुटिया जल्दी में किसी प्रकार खड़ी की गई थी। ज़मीन कड़ी थी। दरी बिछा कर, उस पर अपने थके बदन को किसी प्रकार आराम पहुँचाना पड़ता था। वह रात का समय मेरे लिए निद्रारहित यातना से कम न था।

मेरी साधारण कुटी आश्रम से कोई ३०० फुट की दूरी पर थी। उसकी दीवारें मिट्टी की थीं जिन पर हलका पलस्तर लगाया गया था। बरसात से बचने के लिये खपरे का छप्पर छवाया गया था। झोंपड़ी के चारों ओर झाड़ी स्वच्छंदता से उगी हुई थी। वह एक प्रकार से पश्चिम के जंगल का एक छोर कहा जा सकता था। वह दूर तक फैला हुआ, ऊबड़-खाबड़ दृश्य प्रकृति की अकृत्रिम बंजर शोभा दरसा रहा था। चारों ओर नागफनी का बाड़ा अनियत रूप से घिरा हुआ था। उसके पीछे कुछ दूर पर जंगली झाड़ी उगी थी। जहाँ-तहाँ वृक्षों की पंक्ति दिखाई देती थी। उत्तर की ओर गगनचुम्बी पर्वतश्रेणी गंभीर और अचल भाव से खड़ी हुई थी। दक्षिण की ओर एक स्फटिक जल वाली पुष्करिणी थी जिसके किनारों पर वृक्षों के झुरमुट थे। उन पर भूरे रंग के बन्दर झुंड-के-झुंड निवास करते थे।

हर एक रोज़ एक बँधे हुए ढंग से बीतता था। तड़के उठ कर मैं उस जङ्गल में ऊषा देवी का प्यारा पट परिवर्तन देखा करता था। पौफट की ललाई धीरे धीरे सुनहली बनती जाती थी। भोर होते ही ठंडे जल में मैं गोता लगाता और जल्दी उस पोखरे के एक पार से दूसरे पार तक हाथ पैर पटकते हुए खूब तैरा करता था। तैरने में मैं बहुत हलचल मचाता था ताकि इधर उधर के साँप आदि डर कर दूर हो जायँ। तब कपड़े पहन कर चाय के दो-तीन प्याले बड़े चाव से पी जाता था।

मेरे यहाँ एक खानसामा रहा करता था। उसका नाम राजू था। राजू कहता—'साहब, चाय पानी तैयार है।' वह अंग्रेज़ी बिलकुल नहीं जानता था, लेकिन मेरे साथ रह कर धीरे धीरे थोड़ी अंग्रेज़ी उसने सीख ली। वह बहुत ही अच्छा नौकर था क्योंकि बड़े हौसले के साथ वह मुझ अंग्रेज को रुचने वाली चीज़ों की खोज में सारा शहर छान डालता, या महर्षि के दालान के बाहर ध्यान के समय इधर उधर टहलते हुए मेरी इंतजारी करता। किन्तु खानसामे का काम वह बहुत कम जानता था क्योंकि उसको गोरों के स्वाद का पता नहीं था। वह उसे बड़ा विचित्र मालूम होता था। कुछ तकलीफ उठा कर रसोई का बहुत कुछ काम मैंने अपने जिम्मे ले लिया। साथ ही एक वक्त ही भोजन करके रसोई तैयार करने के श्रम से कुछ छुटकारा पाता था। दिन भर में तीन बार चाय पीता था। उसी पर मेरी सारी शक्ति का दारमदार था। राजू धूप में खड़े होकर बड़े ताज्जुब के साथ चाय का मेरा यह चस्का देखा करता था। सूर्य की धूप में उसका शरीर आबनूस के समान चमका करता था। क्योंकि वह कृष्ण वर्ण द्रविड़ों के खानदान का था।

कलेवा करके धीमी चाल से टहलते हुए मैं आश्रम पहुँच जाता था। आश्रम के बाग में गुलाब की भीनी महक मेरा स्वागत करती थी। आश्रम में नारियल के पेड़ लगाये गये थे। वे गगन-चुम्बी वृक्षराज चारों ओर अपनी शीतल छाया फैलाते थे। उनकी टहनियाँ चारों ओर झुकती दिखाई देती थीं और ऊपर नारियलों के गुच्छे आँखों को बहुत ही सुहावने लगते थे। धूप चढ़ने के पहले ही आश्रम के बाग में टहलते हुए रंग बिरंगे फूलों की सुगंधि का मज़ा लूटना मुझे बहुत ही सुहाता था।

तब मैं दालान में प्रवेश करता और महर्षि को प्रणाम करके पालथी मार कर फर्श पर बैठ जाता। कुछ समय तक लिखते या पढ़ते, किसी अन्य सज्जन के साथ बात-चीत करते या किसी समस्या के हल करने के लिए महर्षि से प्रार्थना करते या ध्यान में डूबते वह समय बीत जाता। लेकिन चाहे जो भी काम करता रहूँ मैं यह कभी नहीं भूलता था कि चारों ओर एक रहस्यमय प्रभाव फैला है; एक कृपापूर्ण प्रभा मेरे मन में पैठती है। महर्षि की सन्निधि

में बैठने से ही मुझे एक प्रकार की अकथनीय आनंदमय, प्रशांतिमय अनुभूति का स्वाद मिलता था। गौर से परिशीलन करते करते और बार बार प्रत्यवेक्षण का आश्रय लेते लेते मैं इस निश्चय पर पहुँच गया कि जब जब हम दोनों की मुलाकात होती है तब तब एक संपूर्ण विश्वास मेरे दिल में स्थान कर लेता है और कुछ आंतरंगिक परिवर्तन हुआ करता है। यह परिवर्तन बहुत ही सूक्ष्म था, किंतु मेरे इस अनुभव में कोई भूल नहीं हुई है।

ग्यारह बजे मैं दुपहर का भोजन करने के लिए अपनी झोंपड़ी पर लौट आता और कुछ देर सुस्ता कर फिर आश्रम जाया करता। बीच बीच में अपने इस कार्यक्रम में कुछ परिवर्तन भी कर देता और उस छोटे शहर और महान् मंदिर का और भी ध्यानपूर्वक दर्शन और परिशीलन करने जाया करता।

कभी कभी महर्षि नाश्ता करके मेरे गरीबखाने पर पधारने की कृपा करते। इससे लाभ उठा कर मैं प्रश्नों की एक झड़ी लगा देता था। वे भी अपने स्वाभाविक संक्षिप्त वचनविन्यास से सूत्र-प्राय उत्तर दे देते। किंतु जब मैं किसी नवीन समस्या के बारें में प्रश्न कर बैठता था तो वे कुछ भी उत्तर नहीं देते थे। वे क्षितिज व्यापी पहाड़ी जंगलों की ओर ताकते, निश्चल ही खड़े हो जाते। इस प्रकार कई मिनट बीत जाते। तब भी वे टकटकी लगाये ही रहते। समीप रहते हुए भी वे दूरवर्ती भासित होते। वे किसी अलक्ष्य आधिदैविक सत्ता को प्रत्यक्ष करते रहते हैं या किसी आंतरंगिक प्रत्यवेक्षण में विलीन होते हैं सो तो मेरी समझ के बाहर की बात है। पहले मुझे शंका होने लगती थी कि हो न हो उन्होंने मेरी बात न सुनी हो। किन्तु उसके दूसरे क्षण से जो गंभीर मौनावस्था प्रारम्भ होती, उसको भंग करने की न तो मुझे ताकत थी, न इच्छा ही। मेरी तर्क बुद्धि पर गज़ब ढाने वाली एक महान् शक्ति का वेग मुझे डराने लगता और अन्त को मुझे अपने वेग में मग्न कर लेता।

मेरे हृदय कुहर में अपने आप यह सच्चा ज्ञान भास उठता कि मेरे सारे प्रश्न एक 'अनन्त लीला के दाँव पेंच हैं, ऐसे विचारों की लीला के जिसका

कोई अन्त नहीं। ऐसा जान पड़ता कि मेरे भीतर ही भीतर किसी प्रच्छन्न कोने में मेरे दिल को सत्य सलिल से प्लावित करने की सामर्थ्य रखने वाली एक निश्चयात्मक वापी है और प्रश्न पूछने के बदले मौन धारण कर अपनी प्रसुप्त आध्यात्मिक शक्तियों का साक्षात्कार करना ही बेहतर है। अतः मैं चुप्पी साध कर रह जाता।

करीब आध घंटे तक महर्षि अचल स्थिर दृष्टि से सामने के अनंत शून्य की ओर ताकते रहे। मेरी उपस्थिति का उन्हें शायद ही कोई चेत हो। किन्तु मुझे स्पष्ट ही इस बात का भान हुआ कि मुझे अचानक जो संसिद्धि की एक झलक दिखाई दी वह इस रहस्यपूर्ण अविचल दिव्य पुरुष से अनवरत प्रस्फुरित होने वाली आध्यात्मिक शक्त्युद्रेक की एक छोटी सी लहर ही है। और एक बार जब वे मेरी कुटिया पर पधारे मैं निराशा में डूबा हुआ था। उन्होंने मुझे बता दिया कि उनके उपदेश पर चलने वाले कैसे उज्ज्वल आदर्श को प्राप्त कर सकते हैं।

"किंतु आप का बतलाया मार्ग कठिनाइयों से भरा पड़ा है और मैं बिलकुल कमज़ोर हूँ।"

"ऐसा समझना सरासर भूल है। इसके कारण तुम अपने आप को धोखे में डालते हो। अपने असफल होने की चिंता से, सदा अपनी कमज़ोरी के विचार के भार से अपने दिल को दुखी करना बड़ी भारी भूल है।"

"तब भी यदि यही सच हो कि—!"

"नहीं, वह सच नहीं है। आदमी की सब से भारी भूल यही है कि वह सोचता है कि कुदरतन वह कमज़ोर और पापी है। किंतु सत्य यह है कि प्रकृति से मानव दिव्य है। जो पापी और बलहीन होती हैं वह उसकी आदतें हैं, उसकी इच्छायें और विचार हैं। वह स्वयं पापी और बलहीन कभी नहीं हो सकता।

उनकी बातें मुझ में नयी जान फूँक देतीं। मैं अनुभव करने लगता कि मेरा कायाकल्प ही हो रहा है। यही बातें किसी दूसरे व्यक्ति के मुँह से उतनी

प्रामाणिक और विश्वसनीय कभी नहीं जँचतीं और मैं उनका शायद ही विश्वास करता। किंतु मेरे भीतर से यह आवाज़ उठ रही थी कि यह महात्मा जो कुछ कहते हैं अपनी गंभीर आत्मानुभूति के बूते पर कहते हैं। ये अन्य वेदान्तियों की तरह किताबी बातें करने वाले, अटकल पच्चू उड़ाने वाले नहीं हैं।

एक बार फिर पश्चिम के बारे में हम बात-चीत कर रहे थे। किसी प्रश्न के उत्तर में मैंने कहा—"इस विपिनाश्रम में अपना आध्यात्मिकता को बनाये रखना और संसिद्धि को प्राप्त होना मुश्किल नहीं है, क्योंकि यहाँ ध्यान में खलल पहुँचाने वाली कोई बात नहीं है।"

"जब साधक गन्तव्य स्थान पर पहुँच जाते हैं, जब 'विज्ञाता' के यह ज्ञाता बन जाते हैं, तब फिर लंदन के आलीशान मकानों में रहें या जंगल की तनहाई में दोनों उनके लिए एक से हैं।"

एक बार मैंने हिन्दुस्तानियों की सांसारिक विषयों के प्रति घोर उदासीनता की कड़ी समालोचना की। ताज्जुब की बात है कि महर्षि ने मेरी बात एकदम मान ली। कहा :

"यह बात बिलकुल सच है। हमारी जाति पिछड़ी हुई है। किन्तु हमारी ज़रूरतें बहुत ही कम होती हैं। हमारे समाज का सुधार करने की बड़ी ज़रूरत है। आप लोगों की अपेक्षा हमारे अभाव तथा आवश्यकतायें बहुत कम होती हैं। अतः किसी जाति के पिछड़े रहने का यह मतलब नहीं लगाया जा सकता कि वह सुखी नहीं है।"

× × ×

महर्षि ने यह अद्भुत शक्ति और विशाल दृष्टिकोण किस प्रकार से हासिल किये। बड़ी उदासीनता के साथ उन्होंने अपने जीवन का कुछ अंश बता दिया। उनके शिष्यों से भी कुछ बातों का पता चला। इन सब से मुझे महर्षि का जीवन चरित्र एक प्रकार से मालूम हो गया।

मदुरा दक्षिण भारत का एक मशहूर शहर है। उससे करीब ३० मील

के फासिले पर एक छोटा सा गाँव है। इसी गाँव में श्री रमण महर्षि का जन्म हुआ था। उनके पिता वकालत का पेशा करते थे। वे जाति के ब्राह्मण थे। कहते हैं कि वे बड़े उदार थे और गरीब लोगों को खुले दिल से सहायता पहुँचाया करते थे। उन्हें खाने को देते और पहनने के कपड़े बँटवाते। बालक रमण पढ़ने के लिए मदुरा गये। वहीं अमेरिकन पादरियों के मदरसे में अंग्रेजी की प्रारम्भिक शिक्षा उन्होंने पाई।

शुरू में बालक रमण खेल-कूद में लगे रहते थे। वे कुश्ती लड़ते और भयानक बाढ़ के समय भी बड़ी बड़ी नदियों को तैर कर पार कर जाते थे। धार्मिक या दार्शनिक विषयों में उस समय उनकी कोई दिलचस्पी नहीं थी। उन दिनों में उनके जीवन में यदि कोई असाधारण बात थी तो वह उनकी गहरी नींद थी, जो इतनी गहरी होती थी कि उन्हें जगाने के बड़े बड़े प्रयत्न भी निष्फल हुआ करते थे। इस बात का उनके दोस्तों को पता चला। उससे उन बालकों ने खेल तमाशे का मजा लूटा। दिन के वक्त वे उनके बल और धृष्टता से डरते थे किंतु रात के समय वे उनके शयनागार में आते और सोते हुए वेंकट रमण को उठा कर खेल-कूद के मैदान पर ले जाते, जी अघाते तक मार पीट कर घर पर उन्हें नींद की दशा में ही छोड़ जाते। रमण को इन बातों का कुछ भी ज्ञान नहीं रहता था और जागने पर इस बात की छाया तक उनके मन में नहीं रहती थी। गाढ़ सुषुप्ति के तत्व को ठीक ठीक जानने वाले मनोवैज्ञानिक को बालक रमण की इस सुषुप्ति के तले उनकी भावी आध्यात्मिकता का पता जरूर लग जायगा।

एक दिन उनके कोई रिश्तेदार मदुरा आये और रमण के किसी प्रश्न के जवाब में उन्होंने यह बताया कि वे अरुणाचलेश के मंदिर की यात्रा से लौटे हैं। बस फिर क्या था। अरुणाचलेश के नाम ने उस बालक के मन के तहखाने में प्रसुप्त कुछ स्मृति चिह्नों को, कुछ अनभिव्यक्त लालसाओं को जगा दिया। उनके सारे बदन में एक सनसनी फैल गयी। वे हैरान थे कि इस सब परिवर्तन की, इन अजीब लालसाओं का क्या अर्थ हो सकता है?
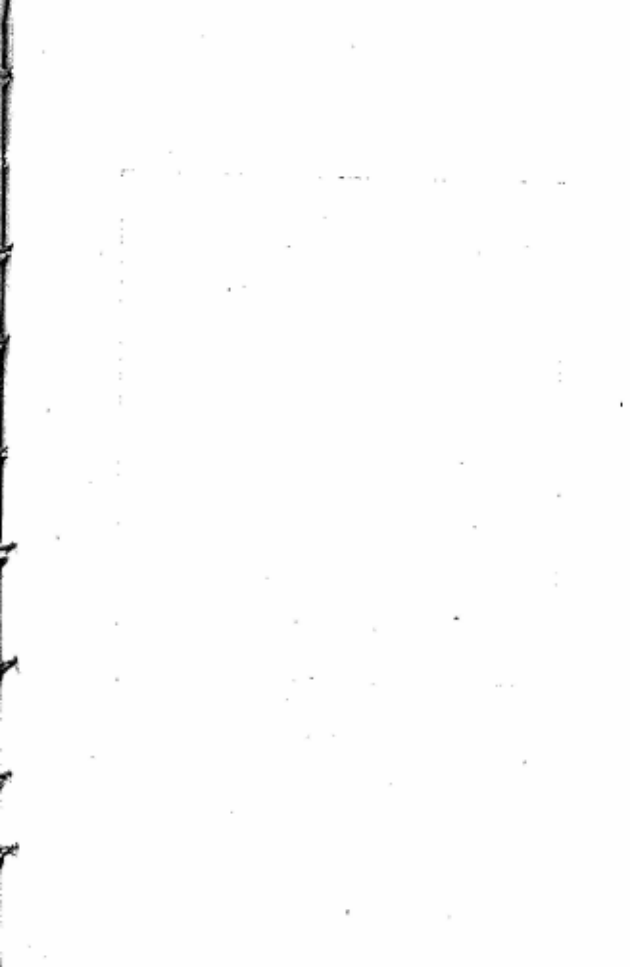
बालक रमण

उन्होंने उस मंदिर के पते आदि के बारे में दर्याफ़्त किया और उस दिन से उनका मन अरुणाचल के ध्यान का लीलाक्षेत्र बन गया। उनको प्रतीत होने लगा कि अरुणाचल एक महत्त्व की चीज़ है, किन्तु उन्हें यह नहीं मालूम पड़ता था कि जब हिन्दुस्तान भर में लाखों बड़े मंदिर बिखरे पड़े हैं अरुणाचल में क्या विशेषता थी कि उसी की उन्हें रट लग गई।

मिशन स्कूल की पढ़ाई जारी रही। तो भी उसमें उनका दिल नहीं लगा। तब भी क्लास में वे किसी तरह औरों से पिछड़े नहीं रहते थे। किन्तु जब वे १७ वर्ष के हुए नियति ने सहसा उनके चरित्र को इस प्रकार झकझोर दिया कि उनकी जीवन यात्रा में एक किस्म का रद्दोबदल सा हो गया।

उन्होंने एकबारगी मदरसा छोड़ दिया। उन्होंने अपने अध्यापकों को व अपने भाई बन्धुओं को इस बात की सूचना तक नहीं दी। भविष्य की सारी सांसारिक उन्नति तथा आशाओं पर पानी फेर देने वाले इस अचानक परिवर्तन का क्या कारण था?

इसका कारण उनको मालूम था। उससे उन्हें समाधान भी मिला। लेकिन वह ऐसी कोई वजह नहीं थी जिसे सुन कर लोग चकरा न जावें।

इस आश्चर्यजनक अनुभूति के साथ रमण ने एक नवीन जन्म धारण कर लिया। वे एकदम दूसरे ही आदमी बन गये। पढ़ाई, खेल-कूद, मित्रों आदि में रही सही दिलचस्पी भी छूट गई। अब उनका सारा ध्यान उसी अत्युत्तम सदात्मा के चैतन्य के आलोक से मंडित था जो कि अचानक उन्हें दिखाई पड़ा था। मृत्यु का भय जिस अज्ञेय रूप से आया था उसी अज्ञेय रूप से गायब भी हो चला। दिल में एक नई प्रशान्ति विराजने लगी, एक आत्मबल प्राप्त हो गया जो कि अब तक उनके हृदय में निगूढ़ था। पहले यदि कभी लड़कों ने उनकी हँसी उड़ाई तो वे उसे सहते नहीं थे, बहुत ही जल्दी उनकी करतूतों का मज़ा चखा देते थे। किन्तु अब वे बड़ी नम्रता के साथ सब कुछ सहने लगे। अन्यायपूर्ण करतूतों के प्रति उदासीनता दिखाने लगे। दूसरों के सामने बड़ी नम्रता का बर्ताव करने लगे। पुरानी

आदतें छोड़ दीं और जहाँ तक बन पड़ा एकान्त में रहने की कोशिश करते थे, क्योंकि एकान्त मिलने पर वे ध्यान में डूब सकते थे और उस प्रवाह के सामने जो कि उनके ध्यान को सदा अंतर्मुख बनाता था, संपूर्ण स्वात्मार्पण कर सकते थे।

उनके जीवन में जो गंभीर परिवर्तन हो गया था वह दूसरों से छिपा रहा। एक दिन उनके बड़े भाई उनके कमरे में आये। वह वेंकट रमण के पढ़ने का समय था किन्तु उन्होंने यह देखा कि रमण आँखें बंद कर ध्यान में लीन हो गया है। पोथी-पत्रे सारे कमरे में अस्तव्यस्त बिखरे हुए थे। पढ़ाई के प्रति छोटे भाई की यह घोर लापरवाही देख कर बड़े भाई ने ताना मारते हुए चुभती बातें सुनाईं :

"तुम्हारे जैसे का यहाँ क्या काम ? योगी बनने की चाह हो तो पढ़ाई की फजूल झंझट ही क्यों ?"

बड़े भाई की बातें काम कर गयीं। वे रमण के कोमल हृदय में गड़ गयीं। उन बातों का सच्चा अर्थ उन के मन पर प्रकट हो गया। अब उन्होंने उन बातों को चुपचाप क्रियान्वित करने का निश्चय कर लिया। उनके पिता स्वर्ग सिधार चुके थे; माँ की रक्षा उनके अन्य भाई तथा मामा जरूर करेंगे। अतः इस ओर से वेंकट रमण एकदम निश्चिंत हो गये। घर पर उनका कोई काम न था। झट उनके स्मृति पट पर वह नाम 'अरुणाचल', जो उनके मन मन्दिर में एक साल तक विहार करता रहा था, जिसका ध्यान ही उन्हें आनन्द विभोर बनाता था, भास उठा। उन्होंने अरुणाचल जाने का निश्चय कर लिया।

उनके अंतरंग में एक प्रबल अदम्य उत्साह काम कर रहा था और वही उनको राह दिखाने लगा। क्या करना था, कहाँ जाना था, रमण कुछ भी नहीं जानते थे। उनके आवेग ने ही सारे काम सँभाल दिये।

महर्षि ने एक बार मुझसे कहा था—"वस्तुतः यहाँ आने में मेरा कोई वश नहीं था। जिस मोहिनी शक्ति ने तुम्हें बम्बई से यहाँ पहुँचा दिया वही मुझे मदुरा से यहाँ तक खींच ले आयी।"

इस प्रकार श्री रमण ने इस अंतरंग की प्रेरणा के वश होकर भाई-बन्धु, पोथी-पत्रा आदि को छोड़ दिया और अरुणाचल की राह ली, जहाँ उन्हें निगूढ़ आध्यात्मिक संसिद्धि प्राप्त हो गयी। विदा होते समय वे एक छोटा पत्र लिख कर घर पर छोड़ चले। यह पत्र अब भी आश्रम में देखा जा सकता है। उसमें तामिल भाषा में यों लिखा हुआ है :

'मैं अपने पिता की खोज में, उन्हीं की आज्ञानुसार यहाँ से विदा हुआ। यह अच्छे काम पर चल रहा है। अतः कोई इस मामले में शोक न करे। इसको खोज निकालने के लिए कुछ भी पैसे खर्च न किये जायँ।'

जेब में तीन ही रुपये थे। दुनिया की हवा तब तक उन्हें नहीं लगी थी। ऐसी दशा में रमण दक्षिण देश में सफर करने लगे। उस सफर में ऐसी अनेक अजीब घटनायें घटीं जिनसे यह साफ़ ज़ाहिर होता है कि कोई अजीब शक्ति उनको बड़ी सावधानी के साथ आगे लिये जा रही थी। आखिर जब वे गन्तव्य स्थान पर पहुँचे, अपरिचितों के बीच में वे एकदम असहाय और आश्रयरहित थे।

लेकिन उनके मन में सर्व-संग-परित्याग और सन्यास के भाव जागरूक हो गये थे। उनमें उस वक्त दुनियावी माया-ममता के प्रति इतनी घोर घृणा हो गई थी कि उन्होंने अपने कपड़े लत्ते फेंक दिये। नंगे धड़ंगे मन्दिर में ध्यान में निमग्न हो बैठ गये। एक पुजारी ने इनका यह भेस देखकर आपत्ति उठाई, किंतु यह किसी काम की नहीं हुई। इतने में और भी पुजारी वहाँ इकट्ठे हो गये और सभी ने घोर विरोध किया तो रमण कोपीन भर पहनने को राज़ी हो गये। आज भी उनका यही पहनावा है।

वे मन्दिर में छः महीने तक जगह बदल बदल कर निवास करते रहे। एक पुजारी, जो एक बार उनके चाल चलन के निरालेपन पर मुग्ध हुआ था, दिन में एक बार उनको भात खिला देता था। सारे दिन रमण समाधि और ध्यान में इतना अधिक विलीन रहते थे कि उन्हें सारी दुनिया भूल जाती थी। एक बार कुछ मुसलमान लड़कों ने उन पर मिट्टी के ढेले फेंके

और भाग खड़े हुए। किंतु कुछ घण्टे बाद महर्षि को इस बात की सुध ही नहीं रही। बाद में भी उन बालकों पर उन्हें किसी प्रकार का गुस्सा नहीं आया।

मन्दिर में दर्शन के लिए प्रायः लोगों का बड़ा जमघट लगा रहता था जिसके कारण रमण को काफ़ी तनहाई प्राप्त नहीं हुई। अतः उन्होंने मन्दिर छोड़ दिया और गाँव से कुछ दूर पर स्थित एक छोटे मंदिर में रहने लगे। वहाँ लोगों की उतनी भीड़ नहीं रहती थी। रमण वहाँ करीब डेढ़ साल तक रहे। मन्दिर में दर्शन के लिए जो थोड़े लोग आया करते थे वे रमण को कुछ न कुछ खिलाया करते थे। उसी से वे प्रसन्न रहते थे। उन दिनों वे मौनी थे। उस जिले में पहुँचने के तीन साल तक वे किसी से एक शब्द तक नहीं बोले। इसका कारण यह नहीं था कि उन्होंने किसी मौनव्रत की दीक्षा ली हो। उनकी अंतरात्मा उन्हें उकसा रही थी कि वे अपना सारा ध्यान, अपनी सारी शक्ति, आध्यात्मिक जीवन के साधने में लगा दें। जब वे अपने ध्येय को प्राप्त हो गये, अंतरात्मा के इस निषेध की कोई जरूरत नहीं रही, तब वे फिर बोलने लगे। किन्तु वे बहुत ही मितभाषी रहे।

कोई उनका पता नहीं जानता था किन्तु घटनाचक्र के अनुसार उनकी माँ को उनके घर से निकलने के दो वर्ष बाद उनका पता लग गया। वे अपने बड़े पुत्र को साथ लेकर अरुणाचल पहुँच गईं और रो कर उन्हों ने रमण से घर लौटने की प्रार्थना की। किन्तु लड़का टस से मस न हुआ। आँसू व्यर्थ ही बहा कर वह उन्हें उनके उदासीन भाव के लिए कोसने लगीं। अंत में माँ के रोने बिलपने के जवाब में रमण ने एक छोटे पुरजे पर लिख दिया कि एक महान शक्ति मानव के कर्मों का नियमन करती है और जो कुछ उसकी करनी है वह किसी के मिटाये नहीं मिटेगी। उन्होंने माँ को दिलासा देते हुए लिख कर बताया कि वे सँभल जावें और रोने कलपने से बाज आवें। अतः रमण की जिद के सामने उस बेचारी को हार माननी पड़ी।

इस घटना के बाद कुछ दर्शनेच्छुक लोग इस हठी बालयोगी के एकांत

में दखल देने लगे। उन्होंने वह जगह छोड़ कर ज्योतिस्वरूप अवध्याद्रि को अपना आवास बना लिया। तब से वे वहीं रहते हैं। इस गिरिराज पर कुछ गुफाएँ हैं। हर एक में कोई न कोई योगी महात्मा निवास करते हैं। किन्तु जिसमें बालयोगी रमण रहते थे उसकी एक विशेषता यह थी कि उसमें किसी प्राचीन योगिराज की समाधि थी।

प्रायः धार्मिक हिन्दू शवों का दाह संस्कार करते हैं। किन्तु संसिद्धि को प्राप्त योगिवरों के शरीर के लिए दाह संस्कार मना है। ऐसा विश्वास किया जाता है कि योगिवरों के शरीर में कोई प्राणशक्ति या कोई अज्ञात जीवन प्रवाह का अस्तित्व होता है जिससे उनके शरीर हजारों वर्ष तक मिट्टी में नहीं मिलते।

ऐसे समय योगियों के शरीर को स्नान कराते हैं और कई द्रव्यों से उसका अभिषेक करते हैं। उनके शरीर को वे इस प्रकार बाँधते हैं मानो योगी पालथी मार कर ध्यानारूढ़ हो गये हों। तब उस शव को समाधि में उतारते हैं। समाधि का ऊपरी भाग एक बड़े पत्थर से ढँक दिया जाता है। बाद में चूने और गारे से उसे बन्द कर देते हैं। उसका नाम समाधि पड़ जाता है। वह बहुत पवित्र समझी जाती है। लोग उसकी पूजा-पुरस्कार करने में अपना अहोभाग्य समझते हैं। योगिवरों को समाधिस्थ करने का और भी एक कारण है। यह विश्वास है कि योगियों के शरीर को अग्नि में जला कर पवित्र करने की कोई आवश्यकता नहीं है क्योंकि उनके जीवन काल में उनकी साधना के प्रकारों से वह पवित्र किया हुआ रहता है।

यह सोचने की बात है कि योगी और महात्मा लोग पर्वत कन्दराओं को ही अपने आवास के लिए पसन्द क्यों करते हैं। अगले जमानों के लोग कन्दराओं को देवताओं के निवास के कारण पवित्रीकृत समझते थे। जरतुस्त्र (पारसी धर्म के स्थापनाचार्य) ने गुफा ही में ध्यान समाधि साधी थी। मोहम्मद को गुफा में ही धार्मिक अनुभूतियाँ प्राप्त हुईं। जब अनुकूल आवास प्राप्त नहीं होते, तब भारत के योगी लोग और स्थानों की अपेक्षा गुफाओं को

अधिक पसंद करते हैं, क्योंकि उन में हवा के हेर फेर का कोई असर नहीं पड़ता है। वहाँ की रोशनी धुँधली रहती है और ध्यान में बाधा डालने वाली कोई आवाज़ या शोर-गुल वहाँ बिलकुल ही नहीं रहता। गुफाओं के शीतांतरित वायु भक्षण से भूख भी बहुत हद तक मर जाती है जिस से योगियों को जीवन यात्रा के लिए बहुत कम चीजों की आवश्यकता रहती है।

रमण को इस गुफा ने आकृष्ट कर लिया। इसकी एक वजह यह भी हो सकती है कि अरुणाचल पर इसी गुफा के सामने एक अद्भुत दृश्य फैला हुआ है। गुफा के एक ओर उभड़ी हुई एक चट्टान पर खड़े होने से दूर के मैदान में शहर और उसके बीच में आसमान की ओर उमड़ने वाला मंदिर का कलश दिखाई देगा। इस से भी दूर पर एक पर्वत पंक्ति दूर तक फैली हुई है। वहाँ की प्रकृति की रमणीयता आँखों को शीतल कर देती है।

जो हो, इसी धुँधली गुफा में रमण ने ध्यान और समाधि में कई साल बिताये। योगी शब्द के सांप्रदायिक अर्थ के अनुसार वे योगी न थे। उन्होंने न किसी योगशास्त्र का अध्ययन किया है और न किसी योगिराज का शिष्य होकर योग का अभ्यास किया। उन्होंने जो मार्ग अपने लिए चुन लिया वह आत्मज्ञान की ओर ले जाने वाला था। उनकी आंतरिक प्रेरणा ने ही उनके लिए वह मार्ग खोल दिया था।

सन् १६०५ में तिरुवण्णामल में प्लेग जोरों से फैल गया। अरुणाचलेश के दर्शनेच्छुक किसी भक्त के कारण वह बीमारी शहर में फैली। इसका इतना भयंकर प्रकोप था कि शहर के प्रत्येक व्यक्ति ने अपनी जान की रक्षा के लिए शहर छोड़ निरुपद्रव स्थानों का आश्रय लिया। सारा कस्बा उजाड़ हो गया। सब जगह इतनी सुनसानी छा गई कि बाघ, चीते आदि अपनी जंगली गुफाओं को छोड़ कर शहर की आम सड़कों पर दिन को ही घूमने लगे। जहाँ महर्षि रहा करते थे वह गुफा उनके पहाड़ी वासस्थान और शहर के बीच में थी। कई बार बनैले जानवर उनकी खोह के इर्द-गिर्द घूमा करते थे। तो भी उन्होंने अपनी गुफा नहीं छोड़ी और सदा के जैसे शांत और अविचल बने रहे।

तब अनायास ही उन को एक अकेला चेला मिल गया। उनकी महर्षि पर ऐसी दृढ़ भक्ति थी कि वे हमेशा उनके साथ रहा करते थे और उनकी छोटी-मोटी जरूरतों की पूर्ति करते थे। वे अब नहीं रहे हैं किंतु दूसरे चेलों से उन्होंने बताया था कि हर रात एक बड़ा शेर गुफा पर आया करता था और महर्षि के हाथ चाटा करता था। रमण भी उसका प्यार किया करते थे और रात बीतने पर शेर जंगल में चला जाता था। सारे हिन्दुस्तान के लोगों का यह पूरा विश्वास है कि जिन्होंने सिद्धि प्राप्त कर ली हो ऐसे योगियों और फकीरों का घोर जंगलों में, बड़े बड़े पहाड़ों पर, शेर, बाघ, साँप, आदि खौफनाक जानवरों के बीच में रहने पर भी बाल भी बाँका नहीं होता। रमण के बारे में यह भी एक कहानी प्रचलित है कि वे एक समय अपनी गुफा के दरवाज़े पर बैठे हुए थे। दोपहर का समय था। एक बड़ा भारी नागराज फुँफकार मारते हुए पत्थरों के बीच में से निकल आया और उन के सामने आकर खड़ा हो गया। वह अपना फन फैला कर आगे पीछे झूमने लगा किंतु महर्षि ने वहाँ से हिलने का नाम भी नहीं लिया। दोनों—मानव और जानवर कुछ मिनट तक एक दूसरे की ओर टकटकी लगाए देखते रहे। उनकी आँखें मिल गई थीं। अंत को साँप धीरे धीरे खिसक गया। और यद्यपि वह काफ़ी नज़दीक रहने के कारण उनको आहत कर सकता था वह चुपचाप चला गया।

इस अद्भुत बालक के अति पवित्र एकांतवास के प्रथम खंड के पूरे होने तक वह अपनी आत्मा की गूढ़तम गंभीरता में स्थिर रूप से अवस्थित हो गया। अब एकांतवास की उतनी आवश्यकता नहीं थी। तो भी वे इसी गुफा में ही रहने लगे। एक दिन उनके दर्शन करने के लिए एक मशहूर पंडित, गणपति शास्त्री जी आये। उनके आगमन से रमण के बाह्य जीवन में एक नया अध्याय शुरू हो गया। अब रमण लोगों से कुछ कुछ मिल जुल कर रहने लगे। पंडित गणपति शास्त्री जी मंदिर में रह कर अध्ययन और ध्यान करने के लिए अरुणाचल आये थे। उनको मालूम हुआ कि गिरि पर एक बाल योगी तप कर रहे हैं। अपने दिल की उत्सुकता की पूर्ति करने के

लिए गणपति जी रमण के दर्शन करने गये। जिस समय गणपति जी उनसे मिले रमण सूर्य की ओर स्थिर दृष्टि से देख रहे थे। चौंधियाने वाले सूर्य की प्रखर ज्योति की ओर घंटों स्थिर दृष्टि से ताकते रहना उस बाल योगी के लिए कोई असाधारण बात नहीं थी। इस का महत्त्व वे ही समझ सकते हैं जो हिन्दुस्तान की कड़ाकेदार धूप में गरमी के मारे झुलस कर तंग आ गये हों।

गणपति जी करीब बारह वर्ष तक हिन्दुओं के सारे धर्म शास्त्र अध्ययन करते रहे। कुछ निश्चित संसिद्धि प्राप्त करने के लिए उन्होंने कठोर तपस्यायें भी की थीं। किंतु इससे उनके संशय छिन्न नहीं हुए। उनका दिमाग बिना सुलझी पहेलियों का अड्डा बन गया था। उन्होंने रमण से एक प्रश्न किया और पन्द्रह मिनट के बाद जो उत्तर सुना तो वे बाल योगी की विज्ञान संपदा से दंग रह गये। गणपति जी ने फिर अपने संशयों के बारे में कई प्रश्न किये और बाल योगी की प्रखर बुद्धि के सामने वर्षों की शंकाओं को झटपट सुलझते देख उनके आश्चर्य की कोई सीमा नहीं रही। बाल योगी के प्रति उनके हृदय में इतनी श्रद्धा पैदा हो गई कि शिष्य बन कर उनके चरणों में दण्डवत की। वेल्लूर में उनके शिष्यों का समुदाय था। गणपति शास्त्री ने घर लौटने पर उनको बता दिया कि एक महर्षि का उन्होंने दर्शन किया है। बाल योगी रमण के उपदेश इतने मौलिक और आध्यात्मिकता में पगे हुए मालूम पड़े कि पंडित जी को उनकी सानी किसी ग्रन्थ में नहीं मिली। उस समय से पढ़े हुए लोग रमण को महर्षि कह कर पुकारने लगे। लेकिन आम लोगों ने उनके चरित्र को जान कर उन्हें एक दैवी पुरुष मान कर उनकी पूजा करनी चाही। महर्षि ने ऐसी पूजा आदि की सख्त मनाही कर दी। तब भी आपस में उनके भक्त उन्हें भगवान कह कर पुकारते हैं। मेरे साथ बात-चीत करते हुए कई लोगों ने उन्हें भगवान कह कर पुकारा है और ऐसे ही पुकारने पर ज़ोर भी दिया है।

समय पाकर कुछ शिष्य महर्षि के पास इकट्ठे हो गये। उन्होंने पहाड़ की तलहटी पर महर्षि के लिए एक छोटा बँगला खड़ा कर दिया और किसी

प्रकार महर्षि उसमें उनके साथ रहने के लिए राजी हो गये। कई बार उनकी माता जी उन्हें देखने के लिये आयीं और अपने पुत्र के रंग ढंग से कुछ दिन बाद वे संतुष्ट हो गईं। अपने ज्येष्ठ पुत्र और अन्य निकट बन्धुओं के स्वर्ग सिधार जाने के बाद वे महर्षि के पास चली आयीं और साथ रहने की आज्ञा माँगी। जब रमण ने हामी भर ली तो वे वहीं छः वर्ष तक रहीं। अन्त को वे अपने पुत्र की श्रद्धालु चेली बन गयीं। वनाश्रम में उनकी जो पहुनाई होती थी उसके बदले में उन्होंने रसोई तय्यार करने का काम अपने जिम्मे ले लिया।

जब वे इस दुनिया से कूच कर गयीं उनके शरीर के भौतिक चिह्न पहाड़ के तले भूमिस्थ कर दिये गये। महर्षि के भक्तों ने उस जगह पर एक छोटा सा मन्दिर खड़ा कर दिया। वहाँ उस माता की, जिसने मानव समाज को महर्षि जैसा सिद्ध प्रदान किया, यादगार में रात दिन प्रदीप जलते रहते हैं। भीनी भीनी महक वाली चमेली और बेले उनकी पवित्र स्मृति में उस समाधि पर चढ़ाये जाते हैं। क्रमशः महर्षि की ख्याति चारों ओर फैल गई और मन्दिर के दर्शन के लिए आने वाले यात्री घर लौटने से पहले उनका दर्शन अवश्य करने लगे। उनके लिए पहाड़ी की तलहटी में एक विशाल दालान खड़ा किया गया और बार बार प्रार्थना करने पर महर्षि ने उसमें रहना स्वीकार कर लिया।

महर्षि अन्न के अतिरिक्त और किसी भी चीज के लिए याचना नहीं करते। धन के स्पर्श से वे सदा बचे रहते हैं। आज उनके यहाँ जो कुछ संपत्ति नजर आती है वह उनकी याचना से प्राप्त नहीं हुई है। भक्तों ने अपने आप ही उन चीजों से आश्रम को भरा-पूरा कर दिया है। शुरू शुरू में जब वे एकांत में रहते थे और अपनी आध्यात्मिक शक्तियों को प्राप्त करने की साधना में उन्होंने अपने को अविचल मौन से ढाँक लिया था, भूख लगने पर हाथ में भिक्षा-पात्र लेकर भीख माँगने के लिए शहर में जाते कुछ भी संकोच नहीं करते थे। उन दिनों किसी बूढ़ी ने उनको देख कर तरस खाया और वह उन्हें प्रति दिन खिलाने लगी। घर छोड़ते समय वे इस फेर में नहीं पड़े

कि खान-पान कैसे मिले। ईश्वर पर उन्होंने भरोसा किया और उनका यह विश्वास रीता नहीं गया। तब से कई चीजें उनकी भेंट में चढ़ाई गईं किन्तु सदा वे उनसे विमुख ही रहे। एक बार बड़ी रात बीते कुछ डकैत चोरी करने के वास्ते दालान में घुसे। माल-मता के लिए बहुत कुछ खोज की किन्तु भंडार के आदमी के पास से केवल बहुत कम रुपये हाथ लगे। इससे चोर बेहद चिढ़ गये और महर्षि पर लाठियों की बौछार करने लगे।

महर्षि ने सब कुछ बड़ी शांति और प्रसन्नता से सह लिया। उन्होंने चोरों से कहा कि 'तुम लोगों को जरूर आतिथ्य ग्रहण कर आश्रम से विदा होना चाहिये।' उनके हृदय में चोरों के प्रति कुछ भी घृणा न थी। उनके मोह और अविवेक पर महर्षि के दिल में केवल अनुकम्पा मात्र पैदा हुई। उन्होंने चोरों को यों ही जाने दिया किन्तु एक साल के भीतर ही भीतर वे सब के सब एक दूसरी चोरी के मामले में, पकड़े गये और उन्हें कड़ी सजा भुगतनी पड़ी।

अधिकांश पाश्चात्यों की दृष्टि में महर्षि का जीवन व्यर्थ जँचेगा। लेकिन शायद हमारे लिए यही बेहतर है कि कोई न कोई कभी न थमने वाले दुनियावी जंजाल और माया-ममता से शून्य ऋषि प्रवर हमारे बदले में हमारे लिए उदासीन दृष्टि से जीवन की परख करते रहें। ऐसे प्रेक्षक को हमसे अधिक देखने का मौका मिलेगा। अतः हो सकता है कि उन्हें सम्यग्दृष्टि भी प्राप्त हो जाय। यह भी सच है कि दुनिया की हर हवा के साथ रंग बदलने वाले हम लोगों की अपेक्षा, जिसने आत्म विजय प्राप्त की हो वह बनवासी किसी प्रकार से कम नहीं है।

× × ×

प्रति दिन इस महात्मा के बड़प्पन की अधिक सूचनाएँ मिलती जाती हैं। कई जातियों के, कई विचारों के लोग इस वनाश्रम के दर्शन करने आते हैं। उन में एक दिन एक अछूत भी आया था। वह किसी यंत्रणा के वेग में चिल्ला रहा था। महर्षि ने कुछ भी नहीं कहा, क्योंकि उनका मौन धारण करना स्वाभाविक था। दिन में वे कितने शब्द बोलते हैं, कोई भी सहज ही

गिन सकता है। वे उस पीड़ित व्यक्ति की ओर चुपचाप ताकते रहे। थोड़ी देर में उसका चिल्लाना थम गया और दो ही घण्टे बाद वह प्रशांत मूर्ति धारण किये दालान से निकला।

मुझ पर दिन प्रति दिन यह प्रकट होने लगा है कि महर्षि इसी प्रकार दूसरों की मदद किया करते हैं। अज्ञेय, अस्पष्ट लहरियाँ उनसे ऊपर उठती हैं और पीड़ित व्यक्ति के व्यथित हृदय को प्लावित करके शांति पहुँचाती हैं। हमारे इन मूक दिमागी वेदना प्रतिवेदनाओं के आदान प्रदानों के रहस्य का उन्मीलन शायद वैज्ञानिकों की खोज ही से होगा।

एक दिन कालेज की शिक्षा पाये हुए एक ब्राह्मण कुछ शंकाओं का समाधान करने के लिए उनके यहाँ आये। यह कोई नहीं कह सकता कि महर्षि कब, किससे और क्या बोलेंगे। प्रायः बिना ओंठ हिलाये ही वे अपने विचारों को साफ़ ही ज़ाहिर कर सकते हैं। लेकिन आज वे वार्त्तालाप करने के सुमुख थे। अतः उन्होंने स्वल्प किन्तु अर्थगर्भित बातों से उस अगंतुक के प्रश्नों के समाधान बताये। आगन्तुक की शंकाएँ छिन्नभिन्न हो गयीं और उन्हें उन बातों में सोच विचार करने का काफ़ी मसाला मिल गया। एक दिन दालान में महर्षि के चेले कुछ अन्य सज्जनों के साथ एकत्रित थे। उस समय किसी ने यह खबर दी कि शहर का सब से मशहूर गुंडा संसार से उठ गया। तुरन्त वहाँ के लोगों में उसके बारे में बात-चीत होने लगी। मानव स्वभाव के अनुसार कुछ लोग उसके कुछ भयानक जुल्मों का ज़िक्र करने लगे। जब लोगों का आवेश कुछ थम चला तो महर्षि मुँह खोल कर धीरे धीरे बोले :

"हाँ, जो तुम लोग कहते हो सो तो ठीक है, किन्तु वह बहुत ही साफ़ रहा करता था। हर रोज दो-तीन बार नहाने की उसे आदत पड़ गयी थी।"

महर्षि के पाँव छू कर उनके दर्शन से पवित्र होने के लिए १०० मील का फ़ासला तय करके एक किसान अपने कुटुंब के साथ आया था। वह निरा अपढ़ था। वह अपने धन्धे के काम, पैतृक आचार-विचार आदि से वाकिफ़ था। वह पुराने रस्म-रिवाजों और मूढ़ विश्वासों की लीक पर चलने वाला

था। उसने किसी से सुना था कि अरुणाचल पर कोई महात्मा, कोई दैवी पुरुष निवास कर रहे हैं। तीन बार महर्षि के सामने साष्टांग दण्डवत करके वह चुपचाप फर्श पर बैठ गया। उसका पूरा विश्वास था कि उनके दर्शन से किसी प्रकार का आशीर्वाद और सौभाग्य प्राप्त होगा। उसकी पत्नी धीरे धीरे चल कर पति की बगल में फर्श पर बैठ गयी। वह लाल साड़ी पहने थी। उसके चिकने बाल सुवासित तेल से और भी चिकण मालूम हो रहे थे। उसके पीछे पीछे उसकी छोटी बिटिया भी चली। उसके चलते समय पाँवों की घुंघरू बज उठती थी। उसने अपने कान में एक सुन्दर फूल खोंसा था।

इस किसान का यह स्वल्प परिवार महर्षि के सामने यों ही भक्ति-विभोर हो खड़ा रहा। उनके मुँह से एक भी शब्द नहीं निकला। यह स्पष्ट था कि महर्षि के दर्शन से उनको आध्यात्मिक खुराक मिलती थी। महर्षि समदर्शी हैं। उनकी दृष्टि में सभी धर्म समान हैं। सभी एक ही सच्ची अखंड अनुभूति के व्यक्त चिह्न हैं, सच्चे प्रकाश हैं। महर्षि की दृष्टि में कृष्ण और ईसा दोनों समान हैं।

एक ७५ बरस के बूढ़े व्यक्ति मेरी बायीं ओर बैठे थे। उनके मुँह में पान का बीड़ा था और हाथ में संस्कृत की एक पुस्तक थी। वे ध्यानपूर्वक अपनी मोटी पलकों वाली आँखें किताब की मोटी छपाई पर लगाये थे। वे जाति के ब्राह्मण थे। वे मद्रास के पास ही किसी स्टेशन पर कई साल तक स्टेशन मास्टर की पदवी पर रहे थे। रेलवे की नौकरी से साठ वर्ष की उम्र में उन्होंने छुट्टी ले ली। चन्द रोज बाद उनकी पत्नी की मृत्यु हुई। उनको अपनी चिर संचित अभिलाषाओं को पूरा कर लेने का अब मौका मिला। १४ वर्ष तक वे तीर्थ यात्रा करते रहे। कई साधु महात्माओं का दर्शन किया और इस खोज में थे कि व्यक्तित्व और उपदेशों के विचार से कौन उनका गुरु बन सकता है। तीन बार उन्होंने सारे भारत का भ्रमण किया किंतु कोई ऐसे गुरु उन्हें नहीं मिले जिनका आदर्श बहुत ही ऊँचा हो। जब हम दोनों ने आपस में अपनी अनुभूतियों की तुलना की तो उन्होंने अपनी असफलता पर आँसू बहाये। उनके चेहरे से ईमानदारी टपकी पड़ती थी। ललाट पर झुर्रियाँ प

हुई थीं और उनका मुँह मेरी दृष्टि को आकृष्ट कर रहा था। वे खूब पढ़े लिखे थे। उनकी बुद्धि काफ़ी तेज थी। वे सीधे-सादे थे और सहज प्रतिभा से सम्पन्न भी थे। मैं उनसे छोटा था। तो भी मैंने अपना यह फ़र्ज़ समझा कि उस बूढ़े को कुछ अच्छी सलाह दूँ। उनकी बातों ने मुझे हैरत में डाल दिया। उन्होंने मुझसे प्रार्थना की कि मैं उनका गुरु बनूँ। मैंने उनसे कहा कि आपके गुरु निकट ही हैं। यों कह कर मैं उन्हें महर्षि के सन्निधि में ले चला। मेरी बात को मानते उन्हें देर नहीं लगी। अतः वे महर्षि के एक श्रद्धालु भक्त बने।

दालान में और एक सज्जन बैठे थे। वे चश्मा लगाये हुए थे। रेशमी कपड़ों और अपनी रहन-सहन से धनी और सम्पन्न भी मालूम होते थे। वे एक जज थे। उन्हें छुट्टी मिली तो महर्षि के दर्शनों के लिए आये। वे एक कुशल शिष्य थे। महर्षि के प्रति उनकी गहरी श्रद्धा थी। साल में कम से कम एक बार महर्षि के दर्शन करने से वे चूकते नहीं थे। वे बड़े सभ्य और अच्छे पढ़े लिखे थे। तो भी उस दालान में उन गरीब तामिल लोगों में, जिन्हें अपना तन ढँकने भर को कपड़ा भी मयस्सर नहीं था, वे बिना किसी प्रकार के संकोच के बैठे थे। इन सब को इस प्रकार एक भाव के सूत्र में बाँधने वाली, उनके आपस की जाति-पाँति के झूठे घमंड की दुर्भेद्य दीवारों को ढहाने वाली, उनमें एकता का मधुर भाव पैदा करने वाली बात वही थी जिससे प्रेरित हो कर पुराने जमाने में राजे महाराजे बड़ी दूर से ऋषियों की सलाह लेने के लिए जाया करते थे। बात तो यही थी कि उन्हें यह विश्वास दृढ़ हो गया था कि सच्चे ज्ञान की बलिवेदी पर भेद-भावों को न्योछावर करना बहुत ही उचित है।

एक युवती ने दालान में प्रवेश किया। उसकी गोद में एक उज्ज्वल शिशु था। उसने बड़ी श्रद्धा के साथ महर्षि को दंडवत की। उस समय जीवन के कुछ गंभीर पहलुओं पर विचार हो रहा था। अतः वह चुपचाप बैठ गयी। वास्तव में उस वादविवाद में वह क्या भाग ले सकती थी। हिन्दू औरतों के लिए विद्या एक भूषण नहीं समझा जाता। उन्हें घर के काम-काज

और रसोई बनाने को छोड़ कर और किसी भी बात की जानकारी नहीं रहती। तो भी उनको इस बात का अचूक ज्ञान हो जाता है कि वे कब महात्माओं की सन्निधि में हैं और कब नहीं।

संध्याकालीन सूर्य की छाया चारों ओर फैलने लगी। गोधूलि का समय था। दालान में सामान्यतः यही ध्यान का समय है। प्रायः इस समय की सूचना महर्षि के चेहरे से ही मिल जाती है। बहुधा संध्या काल के होते होते किसी को पता तक नहीं चलता कि कब महर्षि समाधि में डूब जाते हैं और कब बाह्य जगत से अपनी सारी इन्द्रियों को खींच कर अंतर्मुखी बना लेते हैं। महर्षि की सन्निधि में एक अजीब शक्ति का प्रसार होता रहता है। उस शक्ति के प्रसार की परिधि में रह कर मैं यह सीख गया कि ध्यान करते करते प्रति दिन अपने विचारों को कैसे और अधिक अंतर्मुख बनाया जाय। यह असंभव ही है कि उनके संसर्ग रखने पर अंतरंग आलोक से भर न जाय; उनके आध्यात्मिक ज्योतिश्चक्र की एक कौंधने वाली किरण से मानसिक जगत चमक न उठे। इस बात का मुझे बार बार अनुभव हो रहा था कि उन प्रशांत घड़ियों में महर्षि अपनी ओर मेरे मन को खींचे लिये जा रहे हैं। ऐसे मौक़ों पर ही यह साफ़ ज़ाहिर हो जाता है कि क्योंकर इन महात्मा का मौन इनकी उक्तियों से अधिक महत्त्व रखता है। उनके ऊपरी अनुद्विग्न शांति के आवरण के तले एक प्रबल और शक्तिमान संसिद्धि छिपी है। बिना किसी प्रकार के वचन या गोचर बाह्य क्रियाओं के माध्यम के ही यह शक्ति दूसरे आदमियों पर गहरा असर डाल सकती है। मेरे जीवन में कभी कभी ऐसा भासित हुआ करता था कि इन महात्मा में ऐसी प्रबल शक्ति है कि यदि वे कह दें तो कैसी भी आज्ञा क्यों न हो मैं जरूर उसका पालन करूँगा ही। किंतु महर्षि अपने शिष्यों और अनुयायियों को गुलामी और अविचारित विधेयता की बेड़ियों में नहीं जकड़ते हैं। इस बात में वे भारत के अन्य योगियों में कितनों ही से एकदम न्यारे हैं। मैं अपनी पहली मुलाकात में बताई हुई राह के अनुसार ध्यान करने लगा। उस समय महर्षि के सब उत्तर अस्पष्ट और रहस्यमय मालूम पड़े थे। मैं इस समय अपने अंतरंग की परीक्षा

करने लगा था कि 'मैं' कौन हूँ ? क्या मैं शरीर हूँ, मांस, रक्त और अस्थि का केवल एक पिंड हूँ ? या 'मैं' और व्यक्तियों से मुझे भिन्न और अलग करने वाले अपने मन, विचार और वेदनाओं का समूह हूँ। अब तक मैं इन सबसे अपने को अभिन्न मानते आया था। किंतु महर्षि ने मुझे सचेत कर दिया कि मैं इसे मानी हुई बात न समझूँ किंतु इसकी भी जाँच कर लूँ। तो भी जाँच करने का उन्होंने कोई व्यवस्थित तरीका नहीं बताया। उनके उपदेश का यही सार था :

मैं कौन हूँ वाली जिज्ञासा को कभी मत छोड़ो। सदा उसे जारी रक्खो। अपने पूरे व्यक्तित्व का विश्लेषण कर लो। यत्न करके देख लो कि अहंता के इस बोध की उत्पत्ति कहाँ होती है। अपने ध्यान में लगे रहो। अपनी दृष्टि को अंतरंग की ओर फेरने की कोशिश करो। एक न एक दिन विचार का चक्र धीरे धीरे फिरना छोड़ कर रुकने पर मजबूर होगा। तब तुम्हारे भीतर एक विचित्र प्रकार का स्फुरण पैदा होगा। उसी ज्ञान स्फूर्ति के पीछे चलो। अपने विचारों को रुकने दो। अंत को तुम अपने ध्येय पर पहुँच जाओगे।

मैं प्रतिदिन अपने विचारों के साथ इस तुमुल युद्ध में लगा रहता था। धीरे धीरे मुझे अपने अंतरंग के अंतरतम तल की पहचान होने लगी। महर्षि के प्रोत्साहन देने वाले नैकट्य में ध्यान करना और आत्मजिज्ञासा को जारी रखना अत्यन्त सुलभ और फलदायक सिद्ध होता था। यह आशा और दृढ़ विश्वास कि महर्षि मेरे रहनुमा हैं अपनी खोज में बार बार लग जाने की प्रेरणा देता था। महर्षि की अप्रत्यक्ष शक्ति मेरे मन के ऊपर गहरा असर करती थी। ऐसे मौकों का मुझे स्पष्ट ही ज्ञान है। फलतः अपने अंतरंग के निगूढ़ और रहस्यमय अंतरतम तल के अन्वेषण में मैं और भी गहराई तक पहुँच सका।

शाम के बाद ध्यान समाप्त होने पर दालान खाली हो जाता है। सब लोग ब्यालू के लिए बगल की भोजनशाला में पहुँच जाते थे। मुझे उन लोगों

के भोजन की कोई आवश्यकता नहीं थी और अपने लिए भोजन तय्यार करने का भार मैं खुद नहीं उठाता था। अतः मैं दालान में अकेले रह कर उन लोगों की इंतजारी में रहता था। तो भी मुझे आश्रम के दही का चस्का लग गया था। मुझे वह बहुत ही पसन्द आता था। महर्षि को इस बात का पता था। अतः वे रसोइये से कहते कि हर रात को मेरे लिये दही पहुँचाया जाय।

उन लोगों के आने के आध घण्टे के बाद आश्रमवासी और अन्य आगंतुक दालान के फ़र्श पर बिछौने डाल कर आराम करने लगते। महर्षि अपनी चौकी पर लेट जाते थे। उनके सोने के पहले उनके परिचारक भक्त उनके पाँवों पर तेल लगा कर खूब मालिश करते थे।

मैं एक लालटेन लेकर अपनी कुटिया की ओर अकेले चल देता था। बाग के पेड़ों और फूल पत्तों के बीच में असंख्य जुगुनुओं की चमक आँखों को प्यारी लगती थी। एक बार तीन घण्टे देर करके मैं उस राह से जा रहा था। तब भी आधी रात के समय कीड़े जगह जगह चमक रहे थे। उस मार्ग में बिच्छुओं और साँपों के रहने की संभावना थी। अतः बच कर चलना पड़ता था। कभी कभी मेरे मन पर ध्यान का खूब कब्जा रहता था और मैं उसके मार्ग को रोकना नहीं चाहता था। ऐसे समय उस तंग पगडंडी और लालटेन की धीमी रोशनी का मुझे कुछ भी ख्याल नहीं रहता था। मैं इस ढंग से अपनी साधारण कुटी में पहुँच जाता और दरवाजा मजबूती से बंद कर लेता। खिड़कियों पर परदे तान देता ताकि बनैले जानवर रात को मेरे आतिथ्य के लिए भूल कर भीतर न आवें। बिस्तर पर लेटे लेटे सामने के ताड़ के पेड़ों पर मेरी आँखें पड़ जातीं थीं जो झाड़ी के एक ओर खड़े थे। चाँदनी की रुपहली आभा की लहरें उन वृक्षों के पत्तों से होकर चारों ओर फैलने लगतीं थी और सारा दृश्य एक उज्ज्वल रजत प्रकाश में विलीन हो जाता था।

योगी रामरूप

१७
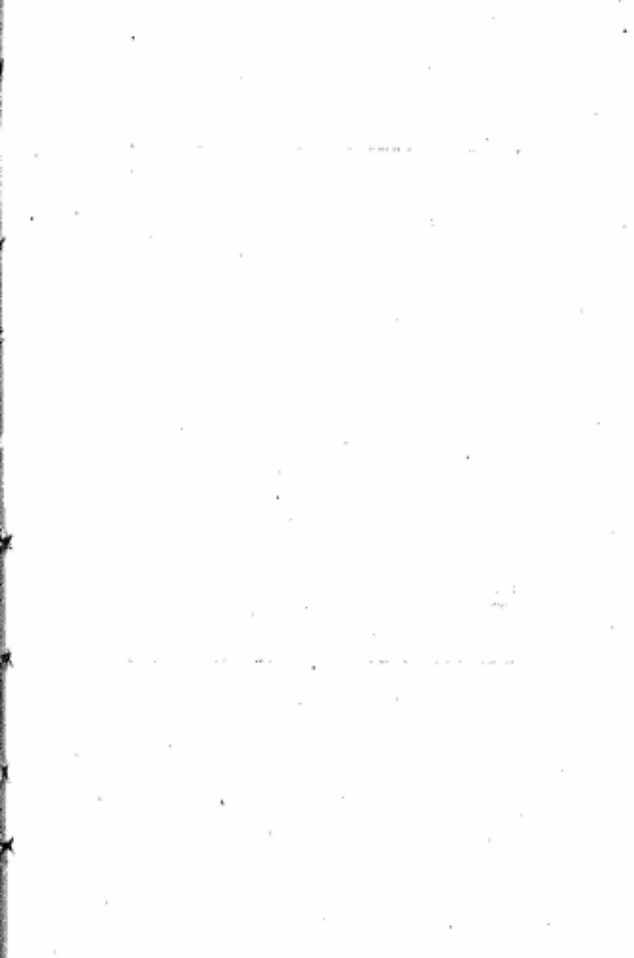
कुछ संस्मरण

शाम का समय था। एक महाशय बड़े ठाट से दालान में आते दिखाई दिये। वे महर्षि की चौकी के बहुत ही समीप आकर बैठ गये। उनका रंग एकदम काला था, तो भी उनका चेहरा बहुत ही तेजस्वी मालूम होता था। उन्होंने बोलने की कोई चेष्टा नहीं की पर महर्षि ने सुन्दर मुसकान से उनकी तुरन्त अगवानी की।

उन आगन्तुक महाशय के चेहरे का मेरे ऊपर बड़ा ही असर पड़ा। वे मानो मूर्तिधारी बुद्धदेव थे। उनके मुखमंडल से शांति और प्रसन्नता की छवि छलकी पड़ती थी। जब हमारी निगाहें मिलीं वे मेरी ओर देर तक ताकते रहे, यहाँ तक कि मैंने अपनी दृष्टि विवश होकर उनसे फेर दी। शाम तक उनके मुँह से एक शब्द तक नहीं निकला।

दूसरे दिन बिना किसी प्रकार की आकांक्षा या आशा किये उनसे मेरी मुलाक़ात हुई। मेरा नौकर राजू कुछ सामान लाने के लिए शहर गया था। मैं भी दालान छोड़ कर चाय बनाने के लिए अपनी कुटिया पर पहुँच गया। कुटिया का दरवाज़ा खोल कर मैं भीतर कदम रखने ही वाला था कि कोई जन्तु फ़र्श पर रेंगते हुए मेरे पाँवों से कुछ दूर पर ही रुकता हुआ दिखाई दिया। उसके रेंगने के ढंग और अव्यक्त फ़ुफकार की आवाज़ ने मुझे होशियार कर दिया कि मेरे कमरे में साँप घुस गया है। मैं उसकी ओर टकटकी लगा कर देख रहा था, पर मेरे अन्दर घोर भय समा गया। मेरी नसें एकदम तन गईं। मेरे दिल में जुगुप्सा ने घर कर लिया। मेरी नज़र उस ज़हरीले जन्तु के सुन्दर फन पर गड़ी हुई थी। इस अचानक घटना से मैं बिलकुल चकित सा हो गया। वह क्रूर सर्प अपना फन फैला कर खड़ा हो गया और मुझे अपनी कुत्सित दृष्टि से घूरने लगा।

जैसे तैसे होश में आकर मैं पीछे हट गया। डंडे से मैं उसकी कमर तोड़ने

ही वाला था कि कल के आगन्तुक महाशय कुटिया के बाहर की जगह में चलते हुए दिखाई दिये। उनके गंभीर मुख, उनकी विचार और विमर्शमय प्रशांत दृष्टि की शीतल छाया में मैं कुछ शांत हो गया। वे मेरी कुटी पर पहुँचे। पल भर में सारी बातें जान कर वे स्थिर भाव से कमरे में प्रवेश करने लगे। ज़ोर से चिल्ला कर मैंने उन्हें सचेत कर दिया किन्तु उन्होंने इसकी कुछ भी परवाह नहीं की। यह दूसरा अवसर था जब कि उन्होंने मुझे चकित कर दिया। वे निहत्थे थे और दोनों हाथ बढ़ाये साँप की ओर चल रहे थे। कैसे अचरज की बात थी!

साँप अपनी दोनों जीभें निकाल कर फुफकार मार रहा था, किन्तु उन पर वह झपटना नहीं चाहता था। उसी समय मेरी पुकार सुन कर दो सज्जन तालाब की ओर से अपना नहाना छोड़ कर दौड़े आये। जब तक वे हमारे निकट पहुँचे तब तक आगन्तुक महाशय साँप के बहुत ही पास पहुँच गये थे। उनके सामने साँप ने अपना सिर झुका लिया तो आगन्तुक महाशय धीरे धीरे उसकी पूँछ सुहलाने लगे।

उन दोनों के आते आते साँप ने अपना कुत्सित स्वभाव छोड़ दिया और उसका सुन्दर परन्तु ज़हरीला शरीर बहुत ही शीघ्र टेढ़ी मेढ़ी चाल से मेरी कुटिया छोड़ जंगल की सुरक्षित झाड़ियों के तले छिप गया।

पीछे आये हुए व्यक्तियों में एक उसी शहर के एक प्रमुख व्यापारी थे। उन्होंने कहा—"यह एक छोटा नागिन है।"

मैंने अचरज प्रगट किया कि क्योंकर पहले के आगन्तुक महोदय ने निर्भीकता से साँप की पूँछ सुहलायी थी। व्यापारी ने इसका मर्म समझाते हुए मुझे बताया—"ये योगी रामय्या हैं, महर्षि के प्रधानतम शिष्य। ये बहुत पहुँचे हुए हैं, इन योगी से कोई भी बात-चीत नहीं कर सकता है क्योंकि इन्होंने मौन व्रत धारण कर लिया है। ये तेलुगू (आंध्र) प्रान्त के हैं। अंग्रेजी ये बिलकुल नहीं समझते। ये प्रायः अपने को तनहा रखते हैं और आश्रम के और लोगों से नहीं मिलते। ये एक छोटी पथरीली कुटी में रहते हैं।
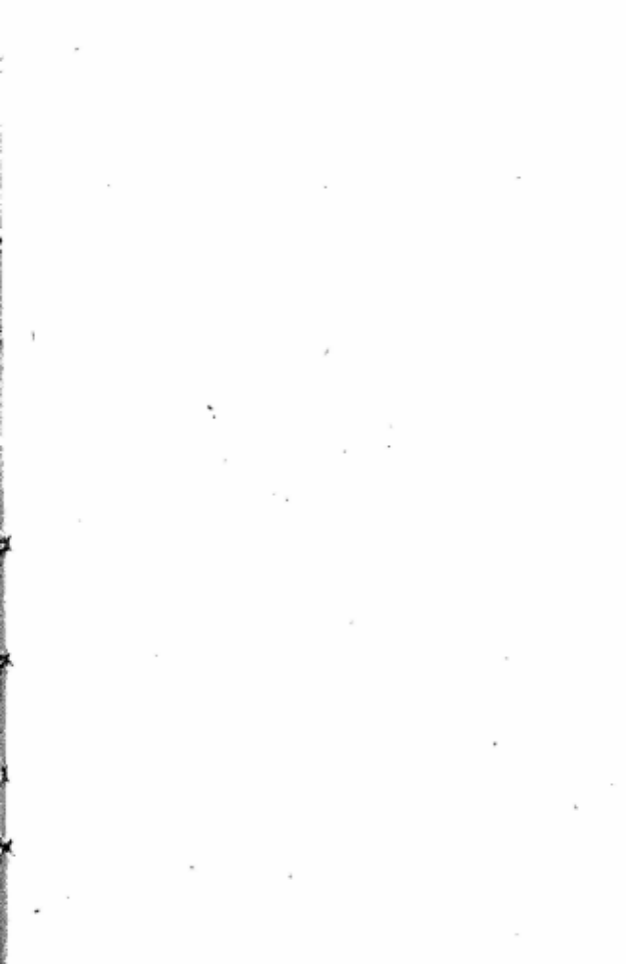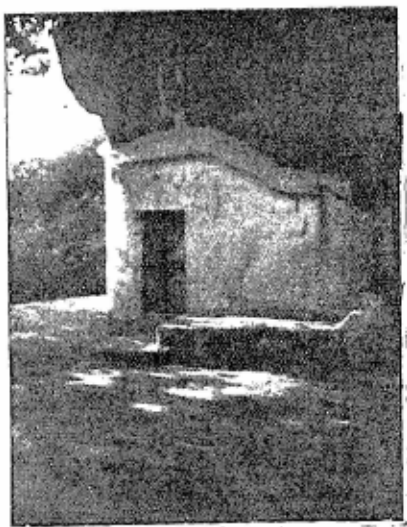
योगी रामय्या की एकान्त कुटी

यह कुटी पोखरे के एक किनारे बड़ी चट्टानों के तले खड़ी है। योगी रामय्या को महर्षि का शिष्य हुए दस साल हुए हैं।"

बहुत शीघ्र हम दोनों के बीच का भेद-भाव दूर हो गया। वे एक दिन पोखरे के पास पीतल का कमंडल ले पानी भरने आये। उनकी उस काली, रहस्य भरी किन्तु प्रसन्न चितवन ने मेरे मन को बरबस खींच लिया। उस समय मेरी जेब में एक छोटा कैमरा था। मैंने इशारा करके उन्हें जता दिया कि मैं उनका फोटो उतारना चाहता हूँ। उनकी ओर से कुछ भी उज्र नहीं था। फोटो उतारने के बाद वे मेरे साथ मेरी झोंपड़ी तक चले भी। वहाँ हमें एक भूतपूर्व स्टेशन मास्टर मिले। वे मेरी ही कुटिया के बाहर मेरी इन्तज़ारी में आसन जमाये बैठे थे।

मुझे मालूम हुआ कि वे तेलुगू के समान अंग्रेज़ी के भी अच्छे ज्ञाता हैं। अतः योगी रामय्या और मेरे बीच में वे दुभाषिए का काम बखूबी कर सकते थे। रामय्या जी कुछ बोलते तो न थे किन्तु काग़ज़ पर लिख कर अपने विचार प्रकट करने में उन्हें कोई बाधा प्रतीत नहीं हुई। प्रायः योगी रामय्या न तो किसी से बात करते हैं न मिलना ही चाहते हैं, किन्तु उनसे उनके बारे में और कुछ बातें जान लेने में मुझे काफ़ी कामयाबी हाथ लगी।

रामय्या जी अधेड़ उम्र के हैं। ज़िला नेल्लूर में उनकी कुछ ज़मींदारी है। बाह्य रूप से उन्होंने सन्यास ग्रहण नहीं किया है। अपने कुटुम्ब के लोगों पर ज़मींदारी की देख-भाल की सारी ज़िम्मेदारी उन्होंने छोड़ दी है ताकि उन्हें योग साधन के लिए अधिक समय प्राप्त हो। नेल्लूर के इर्द-गिर्द उनके कई चेले हैं, किन्तु वे हर साल महर्षि का दर्शन कर लेते हैं और लगातार दो-तीन महीने तक आश्रम ही में रहते हैं।

बचपन में उन्होंने सारे दक्षिण भारत का फेरा लगाया था और बड़ी धुन व लगन के साथ गुरु की खोज में लग गये थे। अनेक आचार्यों की उन्होंने चरण सेवा की है और कई प्रकार की विभूतियाँ प्राप्त कर ली हैं। प्राणायाम और ध्यान धारणा तथा समाधि उनके लिए बायें हाथ का खेल हैं। जल्द

ही इन बातों में अपने गुरुओं से वे आगे बढ़ गये। उन्हें कुछ ऐसे अनुभव प्राप्त हुए जिनका मर्म उनके लिए दुरूह साबित हुआ। अतः अपनी शंकाओं के समाधान करने के लिए वे महर्षि के यहाँ आये और उनकी बातों से योगी रामय्या की सारी शंकायें दूर हो गयीं। उन्हें अपने अनुभवों का सच्चा अर्थ मालूम हो गया और योग मार्ग में महर्षि के वचनों से अधिक सहारा मिलने लगा।

योगी रामय्या ने मुझसे कहा कि दो महीने तक यहाँ ठहरने का उनका विचार था। अतएव वे अपने एक परिचारक को साथ लाये थे। उन्हें आनन्द हुआ कि मैं, पश्चिम का एक निवासी, प्राच्य विज्ञान में अभिरुचि दिखा रहा था। मैंने उन्हें एक सचित्र अंग्रेजी पत्र दिखाया तो उन्होंने एक चित्र की अजीब समालोचना की।—"तुम लोग इंजनों के वेग को और बढ़ाने की सारी कोशिश छोड़ कर अपनी आत्मा की झाँकी लेने लगो तो तुम्हें सच्चा सुख मिलने की अधिक गुंजाइश होगी। क्या आप सोचते हैं कि प्रत्येक नई ईजाद के साथ आप लोगों को अधिक आनंद और तृप्ति प्राप्त होती है!"

योगी रामय्या के चले जाने के पहले मैंने उनसे उस नागिन वाली घटना के बारे में प्रश्न किया। मुस्करा कर कागज पर उन्होंने लिख दिया:

मुझे किसी चीज का क्या भय हो सकता है। सभी के प्रति गहरे प्रेम के साथ, बिना द्वेष रक्खे, मैं उस नागिन के पास पहुँचा।"

मैंने सोचा कि योगी के इस भावमय कथन के तले और अधिक तत्त्व छिपा हुआ है किंतु मैंने और कोई प्रश्न नहीं किया और रामय्या जी पोखरे के उस पार, अपनी एकान्त कुटी की ओर बढ़े।

इसके बाद कुछ सप्ताह के अंदर योगी जी के बारे में मुझे अधिक जानकारी प्राप्त हुई। मेरी झोपड़ी के बाहर खुली जगह में, या पोखरे के किनारे, अथवा उनके आवास के बाहर, कहीं न कहीं हम दोनों की भेंट प्रायः हो जाती। उनके दृष्टिकोण में अपनी प्रवृत्ति के अनुकूल कुछ बातें मुझे दिखाई दीं। उनके बड़े, काले तथा प्रशांत नेत्रों में कोई अनुपम मोहिनी

शक्ति है। हम दोनों में एक विचित्र मूक मित्रता पैदा हो गई; यहाँ तक कि एक दिन उन्होंने मेरे मस्तक पर हाथ फेरते, मेरे दोनों हाथों को अपने हाथों में लेते हुए मुझे असीसा था। स्टेशन मास्टर के दुभाषिये बनने के समय की थोड़ी बात-चीत को छोड़ हम दोनों के बीच में किसी प्रकार की बात-चीत नहीं होती थी। तब भी हमारे आपस में एक अटूट संबंध पैदा होते दिखाई दिया। कभी कभी मैं उनके पीछे पीछे जंगल की सैर करने जाता। एक दो बार दोनों ने पहाड़ के बड़े बड़े ढीलों पर चढ़ते हुए पहाड़ की पथरीली, खुरदरी चोटी तक पहुँचने की कोशिश भी की थी। चाहे कहीं भी जाँय उनकी वह प्रशांत और गंभीर प्रकृति ज्यों की त्यों बनी रहती और मेरे मन को मोह लेती। इसके अनंतर बहुत दिन बीते नहीं होंगे कि मुझे इन योगी की अद्भुत शक्ति का एक और अविस्मरणीय परिचय प्राप्त हुआ। मुझे एक पत्र मिला जिसमें भारी विषाद भरी एक बात का जिक्र था। उसका नतीजा यह होने वाला था कि मेरी आर्थिक दशा एकदम इतनी नाज़ुक और खराब हो जाती कि झख मार कर मुझे हिन्दुस्तान छोड़ना ही पड़ता। इसमें ज़रा भी शंका नहीं है कि मैं आश्रम की मेहमानी का बहुत दिन तक निस्संकोच फ़ायदा उठा सकता था, किंतु ऐसा करना मेरी प्रकृति के एकदम खिलाफ़ था। मुझे अपने कुछ वादे भी पूरे करने थे जिनके कारण मेरे लिए आश्रम में टिकना ग़ैर मुमकिन हो चला। पश्चिम में जाकर अपने पुराने काम-काज के ढर्रे पर चले बिना मैं अपने वादों को पूरा नहीं कर सकता था। अतः सारी बातें यों ही तय हो गयीं।

इस खबर से मुझे एक बहुत अच्छा मौका हाथ लगा कि मैं अपनी आध्यात्मिक साधनाओं की सफलता को जाँच लूँ; किंतु खेद के साथ कहना पड़ता है कि मुझे पर्याप्त कामयाबी प्राप्त नहीं हुई। अभी मैं कच्चा ही था। मेरे दिल में भारी उथल पुथल होने लगी। महर्षि की सन्निधि में भी इस घटना के कारण मैं उनके साथ सहज साधारण आंतरिक संबंध कायम नहीं रख सका। थोड़ी देर के बाद मैं दालान से अचानक बाहर निकला। एक ही चोट में सारे पुरुषार्थ पर पानी फेरने वाली नियति की दुर्निवार प्रबल शक्ति

के विकट थपेड़ों का लक्ष्य बन गया। उसके खिलाफ़ मूक बाग़ी बन कर यों ही बाकी सारा दिन राह की गर्द फाँकता रहा। दिल में संतोष का नामो-निशान नहीं था।

अन्त में हताश होकर मैंने कुटी की राह ली और थके मांदे अपने व्यथित चित्त और बदन को आराम के लिए बिस्तर पर डाल दिया। मालूम होता है कि उस समय मैं किसी गहरे ध्यान में डूब गया था, क्योंकि किसी के दरवाजे पर धीरे धीरे थपकी देने से चौंक पड़ा और आगन्तुक को भीतर आने का आदेश दिया। दरवाज़ा बहुत ही धीरे खुला और योगी रमय्या को भीतर प्रवेश करते देख कर मेरे अचरज का कोई ठिकाना न रहा।

तुरन्त मैं बिस्तर पर से उठा। उन्होंने आसन ग्रहण किया तो उन्हीं के मुखातिब होकर मैं भी बैठ गया। गौर से वे मेरी ओर ताकने लगे। वे मानो अपनी चितवन से मुझसे कोई प्रश्न करते थे। परन्तु उनकी एक भी बात मैं समझ नहीं सकता था। वे अंग्रेजी नहीं जानते थे। तो भी किसी विचित्र प्रेरणा के वेग में मैं अपनी मातृभाषा अंग्रेजी में बोलने लगा। मुझे उम्मीद थी कि यद्यपि वे मेरे शब्दों को नहीं समझ सकते हैं तथापि मेरे दिल के विचारों को अवश्य जान लेंगे। अतः संक्षेप में अपनी कठिनाइयाँ उनके सामने मैंने पेश कर दीं और अपने अर्ध-प्रकट विचारों को अपनी असफलता और व्याकुलता की चेष्टाओं से प्रकट करने का प्रयत्न करने लगा।

योगी रामय्या ने ध्यान देकर सुना। मेरी राम-कहानी खतम हुई। योगी जी ने अपनी सहानुभूति प्रकट करते हुए बड़ी गंभीरता के साथ अपना सिर हिलाया। थोड़ी देर बाद वे उठ कर खड़े हो गये और इशारों से बताया कि मैं उनके साथ बाहर चलूँ। हमें एक शीतल जङ्गल में से होकर गुज़रना था। कुछ दूर चलने पर एक विशाल खुला मैदान देखने में आया। वहाँ दुपहर के सूर्य की रश्मियाँ हमें नहलाने लगीं। आध घंटे तक मैं उनके पीछे पीछे चला। थक कर मैं अपने संतप्त शरीर को एक बरगद की सुखद छाया में आराम देने लगा। थोड़ी देर सुस्ता कर और एक आध घंटा हम

उन्हीं जङ्गली रास्तों को तय करने गये। तब कहीं हम एक बड़े पोखरे के तीर पर अचानक पहुँच गये। मालूम पड़ता था कि रामय्या जी उस पोखरे से वाकिफ़ हैं। उसके तीर पर बहुत सुन्दर बालू का मुलायम फर्श बिछा हुआ था। चलते समय हमारे पाँव उस बालू में धँसे जा रहे थे। वहाँ हमें एक सुन्दर जलराशि मिली जिसके स्वच्छ जल की शोभा को कुंद और कमल के फूल अपनी निराली आभा से बढ़ा रहे थे।

योगी रामय्या एक छोटे वृक्ष की छाया में शीतल बालू पर पालथी मार कर बैठ गये। मैं उन्हीं की बगल में बैठा। हमारे सिर के ऊपर ताड़ के हरे पत्ते छाते का काम दे रहे थे। चंचल जगत के इस एकांत कोने में हम एकदम तनहा बैठे थे। जहाँ तक नज़र दौड़ती थी एक निर्जन प्राकृतिक दृश्य पहाड़ी जङ्गलों की नीलिमा में विलीन हो गया था।

योगी जी अपनी आदत के अनुसार ध्यानानुकूल आसन मार कर बैठे थे। अपनी अँगुली से निर्देश करके मुझे उन्होंने और भी निकट बुला लिया। तब अपने शान्त और गंभीर बदन को स्थिरता से सामने की जलराशि की ओर घुमा कर स्थिर दृष्टि से ताकने लगे और शीघ्र ही गहरी समाधि में विलीन हो गये।

समय की गति बड़ी ही मंद थी। धीरे धीरे काल-चक्र फिरने लगा, किन्तु रामय्या अचल थे, मूर्तिवत् स्थिर बन गये। उनका चेहरा समीपवर्ती निर्मल जलराशि की सतह के समान ही प्रसन्न और गंभीर हो गया। उनकी वह अचल मूर्ति मूक प्रकृति का मानो एक अंग सी बन गयी और हवा की मंद हिलकोरी से भी अपनी गंभीरता खोने वाले सघन कुंज के समान प्राकृतिक दृश्य में विलीन हो गयी। आधा घंटा बीत गया। योगी उसी ताड़ के तले, उस निराली अंतर्मुखी मूकता में शान्त बैठे थे। उनके चेहरे की वह शांति अब प्राकृतिक शांति से निराली हो गयी। उनकी स्थिर दृष्टि या तो शून्य में या दूर की उस पर्वत श्रेणी की निविड़ता में, किसमें लगी थी, कुछ कहा नहीं जा सकता।

बहुत देर नहीं लगी कि उस परम गंभीरता और शांति तथा मेरे साथी की आश्चर्यजनक प्रसन्न प्रशांति दोनों का मेरे ऊपर असर पड़ने लगा। धीरे धीरे मेरी आत्मा में उस छलिये की सौम्यता और शांति का मोहक प्रभाव ओत-प्रोत हो गया। जिसको इससे पहले कभी भी पाने के मेरे भाग्य नहीं थे, वैयक्तिक दुःख को अपने शीतल स्पर्श से भुला देने वाली प्रशांति की वह गंभीर विजय मुझे आज बहुत सहज ही प्राप्त हो गयी। इस बात में मुझे रत्ती भर भी शंका नहीं थी कि योगी जी अपने निराले ढंग से मुझ दुखी की जीवन नैया को रास्ते पर लगा रहे हैं।

रामय्या ध्यान की इतनी गहराई तक पहुँच गये थे कि उनकी अचल मूर्ति से साँसें भी मुश्किल से गुज़र पाती थीं। उनकी इस अवस्था का मर्म क्या हो सकता है? उनसे चारों ओर छिटकने वाली उन शुभद शांति की हिलकोरियों की उत्पत्ति क्योंकर हुई?

संध्या का समय समीप था। सूर्य की धूप धीमी पड़ती जाती थी। गरम बालू शीतल होने लगी। ढलने वाले सूर्य की स्वर्ण आभा की एक किरण योगी के मुख मंडल पर गिरी और उनका वह अचल शरीर तेजोमंडल से घिर कर पवित्र मूर्तिवत् भासने लग गया। मैंने उनके बारे में विचार और वितर्क करना छोड़ दिया ताकि अपने ऊपर पड़ने वाली निरंतर वर्धमान शांति तरंगों का अनुभव कर लूँ। जैसे जैसे मैं अपनी आध्यात्मिक सत्ता के आलोक में विचरने लगा, वैसे वैसे आधिभौतिक व्यक्तित्व के परिवर्तन और संभावनीय सत्ता के यथायोग्य 'दशांतरों को पहुँच गया। आश्चर्यजनक स्पष्टता के साथ मेरे ऊपर यह बात प्रकट हो गई कि यदि जीव अपनी आध्यात्मिक सत्ता में लीन हो जाय तो वह अनासक्त और गंभीर भाव से अपने ऊपर बीतने वाले सारे दारुण दुःखों को देख सकता है और विनश्वर सांसारिक वैषयिक कामनाओं के पीछे पड़े रहना सरासर मूर्खता का काम है जब कि संपूर्ण भाव से स्वीकार करने पर एक ध्रुव, अटल, शाश्वत्, दैवी ज्योति मुझ पर अनुग्रह करने को तत्पर है। बुद्धिशाली ईसामसीह के 'कल की फ़िक्र में न पड़ने' के उपदेश का उचित कारण यही था कि एक अधिक उत्तम शक्ति ने उनके शिष्यों

की रक्षा का भार अपने ऊपर लिया था। मुझे यह भी भासने लगा कि जब एक बार किसी आदमी को अपनी आत्मा की वाणी पर भरोसा रखने का न्योता मिलता है और वह उसे स्वीकार करता है तब निडर हो कर अपने पथ से हटे बिना दुनियावी तकलीफों का वह सामना कर सकता है। मेरा विश्वास है कि ऐसा व्यक्ति एक अनुपम दशा के बहुत ही निकट पहुँच जाता है जिसकी शीतल छाया में किसी प्रकार के दुःख का टिके रहना असंभव हो जाता है। इस ढंग से आध्यात्मिकता की ज्योति से मेरे घिर जाते ही मेरे दिल से एक बहुत भारी बोझ टल सा गया।

इस सुन्दर अनुभूति में मुझे समय का बीतना महसूस नहीं हुआ। इस में मुझे बड़ा भारी शक है कि अंतर्निविष्ट दैवी ज्योति का मर्म तथा भौतिक जगत से उसका एकदम निरालापन और स्वतंत्रता, इन दोनों को कोई भी ठीक ठीक किस प्रकार समझा सकता है। धीरे धीरे गोधूलि का परदा पड़ने लगा। मेरे स्मृति पट के किसी धुँधले कोने से एक आवाज़ उठती सी मालूम हो रही थी कि इस देश में रात की जवनिका बहुत ही जल्द अचानक आ गिरती है। तो भी, मुझे इस बात की कुछ भी चिन्ता नहीं थी। मैं इस बात से संतुष्ट था कि मेरे बगलगीर योगी रामय्या मेरे साथ रह कर, मेरे रहनुमा बन, मुझे अंतर्मुख मार्ग पर आरूढ़ बना कर सार्वभौम श्रेय, शांति की ओर ले चलने के लिये तैयार हैं।

कुछ देर बाद, उन्होंने मेरे हाथ छू कर उठने के लिये इशारा किया। रात उतर आयी। चारों ओर घोर अँधेरा छा गया। रात के नीले परदे से घिर कर हम दोनों उस निर्जन एकांत मरुभूमि में भटकते हुए घर की ओर चलने लगे। न हाथ में कोई रोशनी थी, न राह का कुछ पता ही। योगी रामय्या की उस स्थान की विचित्र जानकारी ही राहदिखैया थी। दूसरा समय होता तो यह परिस्थिति मेरे दिल में खौफ पैदा कर देती, क्योंकि रात के समय जङ्गल में रहने की विकट स्मृतियाँ मेरे मन पट पर अब भी अंकित थीं। उस समय मुझे मालूम पड़ता था कि निकट ही अज्ञात जन्तु समुदाय मेरे चारों ओर भटक रहा है। पल भर के लिए एक दुःखद घटना मेरे स्मृति पट पर कौंध

गयी। 'जाकी', जो हमेशा मेरे साथ पूँछ हिलाते टहलने के लिए चलता था, भोजन के समय मेरा साथी बन कर मेरे आनन्द को बढ़ाता था, उस कुत्ते की गर्दन पर चीते के दाँत लगने के दो दाग खूब ही याद आये। उसके गरीब भाई का भी, जो एक चीते का शिकार बन गया था, स्मरण आया। मैं डरने लगा कि हो न हो मुझे भी शिकार की खोज में भटकने वाले किसी भूखे चीते की खूँख्वार आँखें दीख पड़ें या अनजान ही अँधेरे में जमीन पर बेहिस होकर पड़े रहने वाले किसी नाग पर मैं अपने पाँव डाल दूँ या किसी सफ़ेद बिच्छू पर पैर रख दूँ। किन्तु शीघ्र ही मुझे योगी रामय्या की भय रहित उपस्थिति में इन तुच्छ विचारों के लिए शरमिंदा होना पड़ा। मुझे किसी प्रकार भास रहा था कि योगी का अभय तेजोचक्र मुझे आवृत कर रहा है और उसी की छत्र-छाया में मैं अपने को सुरक्षित और स्वस्थ मानने लगा।

रात के कुछ बीतने पर, कुछ जानवरों के बोलने की अजीब आवाजें सुनाई पड़ीं, जो प्रभात-वेला की मधुर, विचित्र संगीत की सुरीली तान के साथ होड़ करती सी मालूम पड़ीं। किसी सियार की हुआँ हुआँ की आवाज़ कहीं दूर पर बार बार सुनाई दे रही थी। कभी कभी किसी बनैले जानवर की खौफ़-नाक गुर्राने की गूँज कानों के परदे फाड़ रही थी। जब हम अपने आवासों के बीच में रहने वाले पोखरे के पास पहुँचे तो हमें मेंढ़कों के टरटराने और चमगीदड़ों के बोलने, तथा झिल्लियों के जुगुप्साजनक रुदन की आवाजें सुनाई पड़ीं। प्रभात हुआ तो भोर की पद्मिनी के साथ मेरे नेत्र कमल भी खुल गये और सामने सूर्य के आलोक से मंडित विश्व का दृश्य बिछा पड़ा था। मेरे दिल का कमल भी अपनी पंखुड़ियाँ खोल कर उस दृश्य की आभा से मंडित होने के लिये लालायित हो रहा था।

× × ×

बार बार मेरी लेखनी चारों ओर दिखाई देने वाले आश्रम जीवन का वर्णन करने और महर्षि के साथ मेरे अलापों का ब्यौरा और अधिक लिखने के लिये बड़ी ही उमंग के साथ आगे बढ़ती है। किन्तु कहानी यहीं खतम

करना मुझे उचित जँचता है। बड़ी लगन से मैं महर्षि के जीवन के हर पहलू को परख लेता हूँ। क्रमशः मुझ पर प्रकट हो जाता है कि यह उस प्राचीन युग की एक जीती जागती ज्योति है जब कि आध्यात्मिक तत्त्व का आविष्कार उतना ही मूल्यवान समझा जाता था जितना कि आज-कल सोने की खानों को खोज निकालना। दिन दिन मेरे दिल में यह दृढ़ धारणा जड़ पकड़ने लगी कि दक्षिण भारत के इस प्रशांत और निर्जन कोने में भव्य भारत के आध्यात्मिक जीवन के जीते जागते उत्तमोत्तम कीर्ति स्तम्भ, इस पुरुषोत्तम का दर्शन करने का मेरा नसीब हुआ। इस जाग्रत ऋषिप्रवर की गंभीर तथा प्रशांत मूर्ति को देखते देखते मेरा भारत के अतीत पुराण पुरुषों और प्राचीन ऋषिवरों के साथ निकटतम संबन्ध पैदा होने लगा है। मुझे भान होता है कि अब भी इस महात्मा के विचित्रतम पहलू हमारे देखने में नहीं आये हैं। उनकी आत्मा की गहराई, जो कि आम लोगों की सहज धारणा में भी ज्ञान के अनूठे भंडार से भरी पड़ी है, अभी हमारे लिए एक निक्षिप्त खजाना ही है। उसका पता चलाने की कितनी भी कोशिश करो वह और भी दूर और अधिकाधिक गंभीर हो जाता है। कभी कभी वे एक अजीब मुद्रा धारण कर लेते हैं और एक अकथनीय निरालेपन में, एक विचित्र विशेषता में प्रच्छन्न हो जाते हैं। कभी कभी उनकी अंदरूनी परम कृपा का आलोक मुझे स्थिर पाशों से उनके साथ संबद्ध करता है। उनके व्यक्तित्व की इस अनूठी पहेली के सामने सर झुकाने का मैं आदी हो जाता हूँ और उन्हें अपना पूज्यतम गुरुवर मानने लग जाता हूँ। किन्तु हम साधारण मानवों के दृष्टिकोण में वे बाह्य संस्पर्शों से एकदम पृथक हैं। जो कोई आवश्यक सूत्रात्मा को पहचान ले वह आध्यात्मिक मार्ग पर आरूढ़ होकर महर्षि के साथ निकटतम रूप से आध्यात्मिक सम्बन्ध पा सकता है। जब कि वे निस्संदेह महत्ता और प्रामाणिकता और सर्वमान्यता के भव्य आलोक से भूषित हैं, वे इतने सीधे-सादे और नम्र हैं कि देख कर मेरी श्रद्धा और भी गहरी हो जाती है। वे किसी गुप्त शक्ति या रहस्य ज्ञान का दम नहीं भरते। वे किसी प्रकार की विभूति दिखा कर अपने देश की विभूति मुग्ध जनता के चित्त को आकर्षित करने

का दावा नहीं करते। वे हर प्रकार के छल-प्रपंच के कट्टर विरोधी हैं। अतः कोई उन्हें धार्मिक प्रवक्ता बनाने का प्रयत्न करे तो वे शक्ति भर उसका विरोध करते हैं।

मेरा विश्वास है कि महर्षि के समान महात्माओं की उपस्थिति इस बात का भारी सबूत है कि पुराने जमाने से हमारे लिए अन्यथा अनुपलब्ध दिव्य संदेशों के सुनाने वाले बराबर अवतरित होते आये हैं। मुझे यह भी भासने लगा है कि ऐसे महापुरुष हम लोगों से तर्क वितर्क करने के लिए नहीं वरन् हमें किसी दिव्य तत्त्व का संदेश देने के लिए ही अवतरित होते हैं। जो हो, उनके उपदेशों का मेरे ऊपर गहरा असर पड़ा क्योंकि उनकी हर एक बात, उनकी प्रवृत्ति और चरित का हर एक पहलू समझने पर वैज्ञानिक जँचने लगा। उनके सिद्धान्त में किसी अप्राकृतिक शक्ति या किसी प्रकार के धार्मिक सिद्धान्त को अंधविश्वास के साथ मान लेने की कोई आवश्यकता नहीं है। महर्षि के चारों ओर गंभीर आध्यात्मिकता का वातावरण फैला रहता है। उनके सिद्धान्त की सफलता की कुंजी 'आत्मजिज्ञासा' तर्क की कसौटी पर कसने से बहुत ही खरी निकलती है। उसकी एक अस्पष्ट प्रतिध्वनि दूरवर्ती मन्दिर में भी गूँजती रहती है। 'ईश्वर' शब्द विरले ही किसी ने उनके मुँह से सुना होगा। वे विभूतियों के छलमय प्रपंच की नील अथाह गहराइयों से दूर रहते हैं जिनमें असंख्य होनहार जीवन नौकाएं भँवर ग्रसित हुई हैं। वे सीधे-सादे मार्ग का प्रतिपादन करते हैं। कहते हैं 'आत्मजिज्ञासा करो—प्रत्यवेक्षण करो'। उनके इस सिद्धान्त को साधने में नये या पुराने किसी प्रकार के सिद्धांत या विश्वासों की अपेक्षा नहीं है। इस मार्ग पर आरूढ़ होने पर वास्तव में जिज्ञासु को आत्मज्ञान के प्राप्त होने में जरा भी शंका नहीं है।

मैंने इस अनात्म-पदार्थ-निराकरण के मार्ग का आश्रय लिया ताकि मैं अपने पूर्ण सत्ता का ज्ञान प्राप्त कर लूँ। यद्यपि महर्षि और मेरे बीच में कुछ भी बात-चीत नहीं होती थी तो भी बार बार मुझे ज्ञात हो रहा था कि उनके मन से मेरा मन किसी प्रकार प्रबोधित हो रहा है। निकट भविष्य में मुझे वहाँ से रवाना होना था। इसकी छाया मेरी सारी कोशिशों पर पड़ गई। तो भी

मैंने दृढ़ता के साथ वहाँ न रहने का इरादा कर लिया। बीमारी के कारण सारे खेल मिट्टी में मिला कर कूच करने के लिए मैं उतावला होने लगा। आश्रम में आने के लिए मुझे जो भीतरी प्रेरणा मिली थी उससे मुझे इतना संकल्प बल अवश्य प्राप्त हो गया था जिससे मैं अपने थके बदन की सारी शिकायतों की कुछ भी चिन्ता नहीं करता था। इस गरम देश की झुलसाने वाली आबहवा में मैं अपने निश्चय को कायम रख सका। किन्तु सदा के लिए प्रकृति का निग्रह करना एक अनहोनी बात है। आखिर को मेरी तबियत बिलकुल खराब होने वाली थी। आध्यात्मिक दृष्टि से मेरा जीवन अनुभूति की पराकाष्ठा को पहुँचने वाला था, किन्तु भौतिक दृष्टि से कभी भी मेरी तन्दुरुस्ती इतनी खराब नहीं हुई थी। महर्षि के साथ मेरे संसर्ग की आखिरी अनुभूति के प्राप्त होने में अभी कुछ घंटे बाकी थे। अचानक मेरे शरीर में ज़ोरों के साथ कम्पन हुआ और सारे बदन से पसीने की धारायें बहने लगीं। सचमुच मुझे बुखार चढ़ने वाला था।

शहर के मन्दिर में कुछ गुप्त पवित्र स्थान थे। प्रायः वहाँ कोई भी जाने नहीं पाता। उनका परिशीलन करके मैं जल्द ही आश्रम लौट आया और मैंने दालान में प्रवेश किया। सायंकाल की ध्यान की बेला आधी बीत चली थी। चुपचाप मैं ज़मीन पर बैठ गया और मैंने ध्यान का आसन जमाया। चंद क्षणों में मैंने अपने को स्वस्थ बना लिया और अपने बिखरे हुये ख्यालों को मैं एक जगह अच्छी तरह बटोर सका। आँखें मूँद लेते ही तीव्र वेग के साथ चेतना की धारा अंतर्मुख हो बहने लगी।

मेरे मनोनेत्र के सामने महर्षि की वह आसीन मूर्ति साफ ही झलकती थी। उनके निरन्तर आदेशों के अनुसार मैंने इस मानसिक परिधि को लाँघ कर महर्षि की वास्तविक सत्ता, उनके स्वरूप का पता चलाने का प्रयत्न किया। ताज्जुब की बात है कि इस कोशिश में मुझे आशातीत सफलता तुरन्त प्राप्त हुई। उनका यह चित्र गायब हो चला। मुझे केवल उनकी उपस्थिति नैकट्य के सिवा और किसी बात का ख्याल तक नहीं था।

शुरू शुरू में ध्यान के समय मेरे मन में तर्क वितर्क उठा करते थे। अब वे नहीं के बराबर होने लगे थे। मैंने अनेक बार भौतिक और मानसिक संवेदनाओं की परीक्षा करके आत्म-जिज्ञासा के मार्ग में उनसे किसी प्रकार की सहायता न मिलने के कारण उन सबको परखना छोड़ दिया था। तब अपने चैतन्य को उसी केन्द्र पर, अर्थात् उसी की उत्पत्ति स्थान पर लगाया और यह जानने की कोशिश करने लगा कि चैतन्य की उत्पत्ति कहाँ से होती है। अब एक महान अद्भुत समय आ गया था। उस सुनसान ध्यान की अवस्था में मन अपने में लीन हो गया था। दुनिया, जिससे कि हम परिचित हैं, गायब होते होते धुँधली अस्पष्टता में विलीन हो गई!

मेरे चारों ओर थोड़ी देर तक केवल शून्य ही शून्य घिरा हुआ था। एक प्रकार से मन की शून्य भित्ति हो गई थी। उस समय अपने ध्यान को एकत्रित बनाये रखने के लिए मुझे बहुत ही सचेत रहना पड़ा। लेकिन ऊपरी जीवन की सुस्त जगमगाहट को छोड़कर अपने मन को ध्यान के निश्चित केन्द्र में लगाना क्या ही कठिन काम था!

प्रायः इस दशा के प्राप्त होने से पूर्व विचारों का एक तूफ़ान उठता था। उसके साथ घमासान लड़ाई ठाननी पड़ती थी। किन्तु आज रात को कोई विशेष कठिनाई पेश नहीं आयी और बिना किसी प्रकार की तकलीफ के जल्दी ही मैं एकाग्रता को प्राप्त हो गया। मेरे आभ्यंतर जीवन में एक नई बहुत ही ताकतवाली शक्ति के सोते छूटे और वह अपने दुर्दम वेग के झोंके में मुझे अंतर्मुख की ओर बहा ले चली। पहली बड़ी लड़ाई में अनायास ही विजय प्राप्त हुई और उस युद्ध के सारे तुमुल संक्षोभ के गुजरने पर एक सुखद आनंदमय शांति अंतरंग में विराजने लगी।

दूसरी भूमि पर पहुँचते ही मुझे प्रतीत होने लगा कि मैं बुद्धि से भिन्न हूँ। मुझे ज्ञात होने लगा कि बुद्धि सोच रही है, लेकिन मुझे किसी सहज स्फूर्ति से मालूम हो रहा था कि वह केवल एक साधन मात्र है। मैं एक अनूठे अनासक्त भाव से इन तर्क वितर्कों का साक्षी था। पहले बुद्धि शक्ति गर्व

करने की एक बात प्रतीत होती थी, किंतु अब वह एक ऐसी चीज़ हो गई जिससे बचे रहने में ही श्रेय था। मुझे इस बात के भान होने पर चकित होना पड़ा कि अनजान ही मैं बुद्धि के हाथों बिना मोल गुलाम बना हुआ था। अचानक हृदय में यह चाह पैदा हुई कि बुद्धि से परे रह कर अपनी सत्ता ही में निविष्ट रहूँ। विचार से भी परे किसी गहराई में मैंने गोते लगाने चाहे। अपनी सावधानी को जागरूक और सचेत रखकर ही मैं यह जानना चाहता था कि बुद्धि के अनवरत बंधन से छूटने का वह अनुभव कैसा होगा।

प्रेक्षकवत् उदासीन भाव से अलग रह कर परायी दृष्टि से इस बात को देखने की ताकत रखना ही बड़ा निराला है कि मेरी मानसिक क्रियायें किस प्रकार होती हैं, क्योंकर वे अभिव्यक्त और तिरोभूत होती हैं। किंतु इस बात को सहज स्फूर्ति से भाँप लेना कि मैं अपनी आत्मा के अंतरतम तत्वों को प्रच्छन्न रखने वाले रहस्यों की झाँकी लेने पर ही हूँ, कहीं अधिक निराला है। मैं उस समय किसी अज्ञात भूमिखंड पर लंगर डालने वाले कोलंबस माझी के समान था। एक पूर्ण, संयमित और प्रशांत आशा की सनसनी मुझ में दौड़ने लगी लेकिन इन वृत्तियों के अति पुराण आतंक और उपद्रवों से क्योंकर अपने को छुड़ा लूँ? मुझे याद था कि वृत्तियों को जबर्दस्ती रोकने की कोशिश करने की महर्षि ने कभी सूचना तक नहीं दी थी। बारंबार उनका यही आदेश रहा—'विचार और विमर्श के मूल का पता चलाओ, सजग होकर इस बात की प्रतीक्षा करो कि आत्मा क्यों, किस प्रकार, अपने तत्त्व को खोल कर बता देती है। तब तुम्हारे सारे विचारों और वितर्कों की ज्वालायें अपने आप दूर होंगी।'

मेरा विश्वास था कि विमर्श और विचार के मूल का मुझे पता लग गया। अतः अपने ध्यान को एकाग्र रखने के लिए जिस प्रबल प्रयत्न को मैंने जारी रक्खा था उसे मैंने शिथिल होने दिया और अपने ग्रास की इंतजारी में रहने वाले साँप के समान सचेत और सजग रहते हुए मैंने पूर्ण निष्काम भाव की वेदी पर स्वात्मार्पण कर दिया। इस समाधि की दशा के आलोक में मुझे महर्षि कि भविष्यवाणी की सचाई का पता चला। सहज ही चित्त वृत्तियों

की चंचलता विलय को प्राप्त होने लगी। वितर्क शक्ति की सारी सज-धज मिट कर शून्यता में विलीन हो गई। उस समय जिस अनुपम, अत्यंत निराली अनुभूति का मैंने रसास्वादन किया वह आज भी भूली नहीं है। शारीरिक संस्पर्शों से मुझे किसी प्रकार की अनुभूति या जानकारी नहीं रही। मुझे वस्तुतः मालूम हो गया था कि किसी समय मैं विषयों से एकदम परे हो जाऊँगा, संसार के परम रहस्य की बाह्य सीमा की आखिरी लकीर को लाँघ जाऊँगा।.........अन्त को वह शुभ घड़ी आ ही गयी। फूँकी हुई दीप-शिखा के सामन विचार की ज्वाला निर्वापित हो गई। चित्त-वृत्ति अपने असली आधार में पहुँच गई, अर्थात् विचारों से अबाधित चिन्मय प्रकाश में परिणत हो गई। महर्षि बारंबार जिस सत्य के विषय का ध्रुव अटल विश्वास के साथ निर्देश करते रहे थे, जिसके होने का इधर कुछ समय से मुझे अनुमान भी होने लगा था उसकी मुझे अपरोक्ष अनुभूति होने लगी कि मन का उदय एक ऐसी भूमि में होता है जो तुरीय है, जो देश काल आदि से अनवच्छिन्न है। मन एकदम अमनीभाव को प्राप्त हो गया। जैसे सुषुप्ति के समय अन्दरूनी हरकत भी रुक जाती है उसी प्रकार की अवस्था मुझे प्राप्त हो गयी थी। किंतु प्रज्ञान का कुछ भी ह्रास नहीं हुआ था। मेरा अंतरंग एकदम शांत था। मुझे इस बात का पूरा ज्ञान था कि 'मैं कौन हूँ'। जो कुछ बीतता था उसका मुझे पता चलता था। किन्तु मेरी इस चेतनता का बोध जो व्यक्तित्व की संकुचित परिधि से उत्पन्न हुआ था अब बहुत ही उदात्त और सर्वव्यापक हो गया। आत्मबोध तब भी बना रहा किन्तु वह पुरानी आत्मा नहीं थी। वह नयी ज्योति से प्रपूर्ण थी। पहले वह जिस अहंपद-वाच्य क्षुद्र व्यक्तित्व का बोध था उससे कहीं उत्तम, कहीं गंभीर, कहीं अधिक दैवी सत्ता का बोध अब होने लगा। मेरा क्षुद्र अहम् अब इस उत्तम अहम् पद वाच्य पदार्थ में परिणत हो गया। उसी के साथ पूर्ण विमोक्ष का आश्चर्यजनक बोध होने लगा। चित्तवृत्ति जो इधर से उधर और उधर से इधर चलने वाले करघे की लकड़ी के समान है गति के चंगुल से छूट कर स्वच्छन्द हो रही थी।

मैं जगत के बोध की परिधि के बाहर था। अब तक मुझे जो आश्रय देती

रही थी वह भूमि गायब हो चली। मैं एक प्रज्वलित ज्योति समुद्र के बीच में झूला झूल रहा था। यों कहना बेहतर है कि मुझे सूझ पड़ा कि यह ज्वलित ज्योति ही वह आदिम पदार्थ है जिससे ब्रह्माण्ड निकाय परिणत हुए। वह ज्योति समुद्र अकथनीय अनंत आकाश में व्याप्त था, वह इतना जीता जागता तत्त्व था जिसका वर्णन करने पर कभी किसी को विश्वास नहीं होगा।

अनंत आकाश के रंगमंच पर खेले जाने वाले इस रहस्यमय विश्वनाटक का अर्थ बिजली के समान मेरे मन पर कौंध गया और मैं अपनी सत्ता के मूल पर आ पहुँचा। 'मैं'—नवीन 'मैं'—पवित्र आनन्द की गोदी में झुलता रहा था। मैं सूफियों के मयखाने में प्याला ढाल ढाल कर मतवाला हो उठा था। अतीत की कड़वी स्मृतियाँ या अनागत की व्यग्रता भरी चिंताएँ एकदम विलुप्त हो गयीं। मुझे दिव्य विमोह प्राप्त हो गया। साथ ही अकथ आनन्द दिल में हिलोरें मारने लगा। चूँकि मुझे अच्छी तरह मालूम हो गया कि सर्वज्ञता का अर्थ सब किसी को क्षमा करना ही नहीं बल्कि सब किसी को प्यार करना भी है। मेरे हाथों ने सारे विश्व को अपनी गंभीर समवेदना में गले लगा लिया। आनन्द के कारण मेरा कायापलट ही हो गया।

मैं कैसे बताऊँ कि इसके आगे मुझे कौन कौन सी अनुभूतियाँ प्राप्त हुईं। वे इतनी सूक्ष्म और कोमल थीं कि लेखनी भी उनका बयान करने में लज्जित होकर गड़ सी जायगी। तो भी ज्योति मंडल में विहार करने वाले उन सत्य प्रकाशों की मर्त्य भाषा में एक झलक दिखाने की चेष्टा कदापि व्यर्थ नहीं हो सकती। अतएव दिलेरी के साथ मनोजगत के परे अनंतता की छोर तक फैलने वाले अज्ञात किन्तु विचित्र विश्व की संस्मृतियों का एक अस्पष्ट चित्र खींचने की मैं चेष्टा करूँ तो वह क्षम्य होगी।

× × ×

मनुष्य को जननी से भी उत्तम एक भव्य सत्ता ने पाला और पोसा है। उस महान सत्ता से मानव का भव्य बान्धव्य है। यह सत्य सिद्धांत उसके विवेक के आलोक में उस पर प्रकट भी हो सकता है।

एक समय था जब अपने ही अतीत के प्राचीन दिनों में उसने शान के साथ प्रपत्ति का आश्रय लेने की कसम खा ली। दिव्य शोभा का साफा पहन कर उसने देवों के साथ कदम बढ़ाया था। यदि आज उद्यमी संसार राजसी ठाट से उसे अपने पास बुलावे और वह उस आज्ञा के सामने नत मस्तक हो जाय, तो उसकी पुरानी प्रतिज्ञा को स्मरण रखने वालों की कोई कमी नहीं है। वे ऐन मौके पर प्रतिज्ञा भंग की ओर उसके ध्यान को आकर्षित करेंगे ही।

मानव में अमर जाति संबंधी जो जौहर है वह अपनी सद्-आत्मा की ओर एकदम लापरवाह रहता है, किंतु उसकी लापरवाही से उसके तत्त्व की दीप्यमान अव्यय महिमा किसी भी प्रकार प्रभावित नहीं होती। हो सकता है कि वह उसको एकदम भूल जाय और इंद्रियों के वश हो प्रसुप्त भी हो जाय, लेकिन जिस समय वह परतत्त्व अपने हाथ बढ़ा कर उसके हृदय को छू ले तब उसको अवश्य ही याद आ जायगी कि वह असलियत में कौन है और फलतः उसको आत्मलाभ प्राप्त होगा।

चूँकि मानव को उस का दिव्य भाव भूला हुआ है, वह अपना सच्चा मूल्य आप ही नहीं जानता। अतएव अपनी सत्ता के सर्व-शक्तिमय आध्यात्मिक केंद्र में पूर्ण निश्चल शांति को प्राप्त होने पर भी वह दूसरों की सलाह की खोज में निकल पड़ता है। [1]स्फिंक्स किसी मर्त्यलोक की ओर आँख तक नहीं उठाती। उसकी अचल दृष्टि हमेशा भीतर की ओर मुड़ी रहती है। उसकी अलक्ष्य मन्द मुस्कान का मर्म आत्म-ज्ञान है। जो अपने अंतरंग की झाँकी लेकर, उसमें असंतोष, दुर्बलता, अंधकार और भीति को ही भरा पावे, उसे परिहास या शंका में मुँह फुलाने की आवश्यकता नहीं है। अंतरंग की ओर भी गहराई में वह गोता लगावे, गहराई तक पहुँचते पहुँचते क्रमशः उसे हृदय के शांत रहने पर नजर आने वाले अस्पष्ट इशारों और अस्फुट साँस की सी सूचनाओं का पता चलेगा। वह उनकी अच्छी तरह परवाह करे। वे ही सजीव हो उन्नत भावनाओं में परिणत होंगी और उसके मन मंदिर में

---

[1] एक कल्पित जन्तु जिसका शरीर सिंह का सा और मुँह स्त्री का सा होता है।

देवताओं के समान विहार करेंगी। ये उन्नत विचार पीछे सुनाई देने वाली मानव के अंतरतम तह की प्रच्छन्न, निगूढ़ और रहस्यमय सत्ता की वाणी के पुरोगामी हरकारे ही हैं—उस सत्ता की वाणी के जो वस्तुतः उसके पुराण स्वरूप से अभिन्न है। हर एक मनुष्य के जीवन में आत्मा के दिव्य भाव का उन्मीलन पुनः पुनः होता ही रहता है। किंतु यदि मानव उसके प्रति उदासीन हो जाय तो वह उन्मीलन पथरीली जमीन पर बोये बीज के समान फजूल होगा। इस दिव्य चैतन्य से कोई भी छूटा नहीं है। आदमी ही अपने को छूटा हुआ समझता है और छुड़ा लेता है। जब कि हरी हरी झाड़ियों पर बैठने वाली प्रत्येक चिड़िया और प्यारी माँ का हाथ पकड़ कर अड़बड़ा कर, गिरते उठते चलने वाले शिशुओं ने इस समस्या को हल कर लिया और अपने भोले-भाले निर्मल बदनों पर उस पहेली के रहस्य को धारण किये हुए हैं तो लोग जीवन के अर्थ और मर्म की जिज्ञासा का एक स्वाँग क्यों रचते हैं।

ऐ मर्त्य, जिस जीव ने तुझे जन्म दिया वह तुम्हारे गंभीरतम विचार से भी कहीं श्रेष्ठ और उत्तम है। उसकी कृपामय प्रणिधान का विश्वास रखो और अर्ध प्रस्फुटित प्रेरणाओं के आवेश में अपने दिल के कानों को सुनाई पड़ने वाली उसकी सूक्ष्म आज्ञाओं का पालन करो।

जो यह समझता है कि मनुष्य अपने उन अविचारित वासनाओं के प्रबल आवेगों के अनुसार उच्छृंखल रह कर भी ऐसे आचरण के सहज परिणाम के भार से मुक्त रह सकता है, वह अपने जीवन को सपने के थोथे जाल में फँसा लेता है। जो अपने समान प्राणियों के प्रति या अपने ही प्रति पापाचरण करता है, उसी आचरण के कारण उसकी सज़ा आप ही मिल जाती है। संभव है कि वह अपने पापों को दूसरों की नजर से ओझल रखे, किंतु सर्वान्तर्यामी ईश्वर के सहस्रों नेत्रों से उसको कदापि गुप्त नहीं रख सकता। यद्यपि न्याय की प्रभुता प्रायः अलक्ष्य है, यद्यपि उसका नामोनिशान बहुत करके संसार के पथरीले न्यायालयों में नहीं मिलता, तब भी न्याय इस संसार में ममताहीन कठोरता से हुकूमत चला ही रहा है। संसार के दंडविधान के

पंजे से संभव है कोई बच भी जाय किंतु कोई भी दैवी न्याय-दंड-विधान से अपने को बचा नहीं सकता। ऐसे व्यक्ति के निर्मम और अति कठोर जीवन की हर एक घड़ी नियति के हाथों खतरों में फँस गयी है।

जीवन हमेशा ही मूक वाणी से सत्य का प्रतिपादन कर रहा है। उसको ग्रहण करने में वे ही अधिक तत्पर और तैयार रहेंगे जिन्होंने विषाद के कड़वे फलों को चखा हो, जिन्होंने अपने धुँधले जीवन के लम्बे वर्षों को आँसुओं के कुहरे में बिताया हो। यदि उन्हें और कुछ भी मालूम न होवे तो कोई हर्ज नहीं है। कम से कम उनके ऊपर यह तो रोशन हो जायगा कि भाग्य लक्ष्मी की मुसकानों पर कैसा विषादमय नश्वरता का अवगुंठन पड़ा है। जो अपने जीवन की सुखमय अनुभूतियों के मोह माया में अपने को भ्रान्त नहीं होने देते वे विषाद के समय भी उसके बोझ के तले दब और पिस नहीं जायँगे। सुख दुःख के ताने-बाने से जो न बुना हुआ हो ऐसा कोई भी जीवन नहीं है। अतः कोई व्यक्ति घमंड में चूर होकर जीवन बिता नहीं सकता। जो ऐसा करे उसकी जीवन नैया बड़े जोखिम में फँसी हुई है। ईश्वर अलक्ष्य है। वह चन्द मिनट में जिन्दगी की कमाई को खाक में मिला सकते हैं। अतः उनके रहते हुए भी नम्रता और विनय की मूर्ति बनना ही आदमी को सोहता है। सब पदार्थों के भोग और भाग्य काल चक्र के साथ फेरे लगाते हैं। इस बात को कोई मूर्ख ही पहचान नहीं सकता। विश्व में यह देखा जाता है कि हर एक आकर्षण के बाद एक विकर्षण, हर उत्थान के बाद एक पतन भी होता है। यही बात मानव के जीवन और भाग्य के बारे में भी लागू होती है। संपन्नता के ज्वार के बाद अकाल और तंगी का भाटा आ सकता है। स्वास्थ्य एक चंचल मेहमान हो सकता है और प्रेम, सम्भव है कि फिर भटकने के लिए ही अंकुरित हुआ हो। किन्तु दीर्घकालीन दुःख निशा के बीतने पर नूतनोपलब्ध ज्ञान की ज्योति चमक उठेगी। इन सब का अंतिम संदेश यही है कि जो नित्य सर्वशरण्य सत्ता, अनदेखे और अनन्वेषित होकर भी दिल में अवस्थित है, उसी सत्ता को फिर से उसके सच्चे स्थान पर बिठला देना चाहिये, अर्थात् उसी में सब किसी को अपना सहारा प्राप्त

करना चाहिये। वरना, निराशा और दुःख दारिद्रय साजिश रच कर, मौके मौके पर मानव को उसी पर-सत्ता में ही शरण लेने के लिये मजबूर करेंगे। किसी का भी भाग्य इतना नहीं चमका है कि दैव मनुष्य जाति के इन दोनों महान् शिक्षकों से उसे मुक्त होने दे।

जब आदमी को मालूम हो जाता है कि गरिमा और महत्त्व ने अपने डैनों से उसे ढँक लिया है तभी वह अपने को सुरक्षित और अभय मान लेता है। जब तक वह ज्ञान के प्रकाश से जिद् के साथ दूर रहने की चेष्टा करता रहता है तब तक उसके सबसे उत्तम ईजाद ही उसकी सब से अटल बाधाओं का रूप धारण कर लेते हैं। आदमी को जो वैषयिक संपन्नता की ओर बढ़ाये लिये चलता है वह एक ऐसी गाँठ सा बन जाता है जिसको कभी न कभी सुलझाने की आवश्यकता आ ही जाती है। मानव अपने पुराने अतीत के साथ अकाट्य संबंध से बँधा हुआ है, वह अपने दिल की दिव्य सत्ता की भव्य सन्निधि में खड़ा हुआ है। उस सन्निधि से टल जाना उसके बूते से बाहर की बात है। इसलिये उसको चाहिये कि वह भूल कर भी इस बात से गाफिल न रहे, अपने 'उत्तम-स्व' अपने पुरुषोत्तम की कृपामय सुन्दर वेदी पर अपने को और अपनी सांसारिक चिन्ताओं तथा प्रच्छन्न दुःखों की बलि चढ़ावे। यह स्वात्मार्पण कभी व्यर्थ नहीं हो सकता। यदि वह शांति का जीवन बिता कर, निर्भीक भाव से, अभिमान के साथ मृत्यु को गले लगाना चाहे तो वह इसी मार्ग पर दृढ़ता से आगे बढ़े।

जो एक बार अपनी सच्ची आत्मा का साक्षात्कार कर पाता है वह दूसरे के प्रति भूल कर भी द्वेष भाव नहीं रख सकता। द्वेष से बढ़ कर कोई गुनाह नहीं है। द्वेष के कारण जरूर ही खून की नदियाँ बहेंगी। उनसे सींचे हुए साम्राज्यों की विरासत से बदतर कोई दुःख नहीं है। द्वेष का यही अवश्यंभावी नतीजा है कि वह उलट कर उसी का सर्वनाश कर देता है जिसने उसके लिये अपने दिल में स्थान दिया हो। इससे मुबतर कोई परिणाम नहीं है। ऐसी आशा रखना फिजूल है कि हम दैव के पंजे से छूट सकते हैं। ग़ैबी तौर पर वे मानव के कुत्सित और भयानक कार्यों के मूक गवाह बने हुए हैं। चारों ओर दुनिया

दुःख के सागर में डूबी हुई है; तो भी सब किसी को सहज ही परम शान्ति मिल सकती है। दुःख में पड़ी, शंकाग्रस्त, थकी-माँदी मनुष्य जाति पूर्ण अंधकार से भरी हुई जीवन की गलियों में राह टटोलते जा रही है किन्तु वह क्या जानती है कि उसी के सामने के पड़े हुए प्रस्तरों पर एक महान् ज्योति का मृदु आलोक बिखरा पड़ा है। जब मनुष्य अपने साथियों को केवल दिन की साधारण रोशनी में ही न देखे बल्कि दैवी संभावनाओं की कायापलट करने वाली रोशनी में देखना सीख ले, उसी समय संसार से द्वेष का नामो-निशान मिट जायगा। सब के दिल में जिसको ईश्वर कहते हैं उससे मिलती जुलती कोई सत्ता अवश्य जागरूक है। इस दृष्टि से मनुष्य आदर और सत्कार के योग्य ठहरता है। जब वह अपने साथियों को इस आदर और सम्मान की उचित दृष्टि से देख सकेगा तभी संसार से द्वेष का नाम एकदम उठ जायगा।

प्रकृति में जो सचमुच भव्य है, कलाओं में दूसरों में जान फूँकने वाली जो कुछ सुन्दरता है, दोनों मानव को उसी शक्ति के गीत सुना रहे हैं। जहाँ धर्माचार्य अपने कार्य में असफल हो जाते हैं वहाँ उनके बदले में विस्मृत संदेश को सुनाने का भार, सत्य के रसावेश में लीन कलावेत्ता अपने ऊपर ले लेता है और आत्म ज्योति की कुछ सूचनायें छोड़ जाता है। यदि कोई इस शुभ घड़ी का स्मरण कर सके जब कि सौंदर्य पिपासा ने उसे शाश्वत लोकों का निवासी बनाया है, तो उसको चाहिये कि वह अपनी स्मरण शक्ति को एक मार कर अपने भीतर रहने वाले दिव्यालय की खोज करे, इस विश्वास के साथ कि सदात्मा के पहचानते ही बल और सारे प्रयत्नों का पूरा मेहनताना मिल जायगा। थोड़ी सी शांति के लिए, थोड़ा सा बल पाने, या ज्ञान ज्योति की एक झाँकी भर लेने के लिए, उसी पवित्रालय का उसे आश्रय लेना पड़ेगा। चाहें तो विद्वान दिन दूनी रात चौगुनी बढ़ने वाली ग्रंथ राशि और सरस्वती भवन की दीवारों की शोभा बढ़ाने वाली पुरानी पोथियों में अपने को भुलाये रक्खें, पर वे कभी इससे बढ़ कर किसी दूसरे गंभीर और रहस्यमय तथा उदात्त सत्य को जान नहीं सकेंगे कि मानव की आत्मा वास्तव में दिव्य है। समय की गति के साथ मनुष्य की सभी कामनाएँ विफल और विनष्ट हो

सकती हैं; किन्तु अमर जीवन की ध्रुव आशा, परिपूर्ण प्रेम की आकांक्षा, अव्यय और निश्चित आनंद की लालसा एक न एक दिन निश्चय ही पूर्ण होगी, क्योंकि ये दुर्निवार नियति के भविष्य की सूचना देने वाली सहज शुभ वासनायें हैं। संसार अपने सबसे उत्तम विचारों के लिए प्राचीन प्रवक्ताओं का ऋणी है, और अपने सब से उत्तम नीतिशास्त्र के लिए धुँधले युगों के सामने कृतज्ञता के साथ नतजानु हो जाता है। लेकिन जब मनुष्य को उसके उज्ज्वल स्वरूप का भव्य विज्ञान प्राप्त हो जाता है वह आनंद विभोर हो जाता है। ज्ञान और इच्छा के क्षेत्रों में जो कुछ भव्य और प्रशंसनीय हैं वह अनायास ही उसके सामने हाथ जोड़े खड़ा हो जाता है। अपनी जातियों को उनके दिव्य स्वरूप की याद दिलाने वाले इब्रानी और अरबी महर्षियों के समान उनके भी आश्रम की सी प्रशांति से भरे हुए मन-पट पर दिव्य और पवित्र हृदय खिंच जाते हैं। इस दिव्य आभा में ही बुद्धदेव ने निर्वाण का रहस्य जान कर लोगों को उसका उपदेश दिया था। इस बात के समझने पर ऐसा विश्वव्यापी प्रेम पैदा हो जाता है जिससे प्रेरित हो कर मेरी मेगलीन ने अपनी बरबादी के जीवन की सारी कालिमा ईसामसीह के श्री चरणों के पास रो रो कर धो डाली थी।

ये भव्य तथा गंभीर पुराण तत्त्व मनुष्य जाति के शैशव के दिनों में काल की निविड़ तह में प्रच्छन्न हो गये थे। तो भी ये सदा के लिए कभी भी धूल धूसर नहीं हो सकते। एक भी मानव समुदाय ऐसा नहीं है जिसको सुलभ परतत्त्व की सूचनायें न मिली हों। खुले दिल से इसको जो स्वीकार करना चाहे, उसको चाहिये कि वह इन तत्वों को केवल बौद्धिक रूप से ही नहीं बल्कि अपने हृदय की सारी भावनाओं की पूरी उमंग से गले लगा ले। इससे प्रेरित होकर वह दिव्यकर्ता यह महाकर्ता बन जायेगा।

× × ×

एक अनिवार्य शक्ति से प्रेरित होकर मैं इस भौतिक जगत में उतर आया। धीरे धीरे अत्वरित भाव से मुझे अपने पास पड़ोस का बोध हुआ।

मैंने अपने को महर्षि के दालान में तब भी बैठा हुआ पाया। दालान सूना था। आश्रम की घड़ी पर मेरी निगाह पड़ी। भास गया कि आश्रमवासी ब्यालू करते होंगे। तब मेरी बायीं ओर किसी के उपस्थित होने की आहट मिली। वे वही ७५ बरस के बूढ़े, भूतपूर्व स्टेशन मास्टर थे। वे मेरी बगल ही में फर्श पर बैठे करुणा भरी दृष्टि से मेरी ओर ताक रहे थे।

उन्होंने मुझसे कहा—"आप करीब दो घंटे तक समाधि में लीन हो गये थे।" उनके चेहरे पर बुढ़ापे की झुर्रियाँ पड़ गयी थीं। उम्र भर की कठिनाइयों की छाप उस वृद्ध के शांत मुख मंडल पर दिखायी दे रही थी। उनके मुँह पर मुसकान की चाँदनी छिटक गयी और मालूम पड़ता था कि वे मेरे आनंद में आप भी आनंद के भागी हो रहे हैं।

मैंने जवाब देने की चेष्टा तो की किन्तु मैं यह देखकर चकित हो गया कि बोलने की मेरी शक्ति ही नहीं रही। पन्द्रह मिनट तक वाक्‌शक्ति मेरे काबू में नहीं आयी। तब तक उस वृद्ध ने अपनी बातें पूरी कर दीं। कहा—"अन्त तक महर्षि ने बड़े गौर से तुम्हारे ऊपर अपनी दृष्टि गड़ायी थी। मेरा विश्वास है कि उनके विचारों ने तुम्हारी बड़ी मदद पहुँचायी है और तुम्हें सही राह पर चलाया है।"

लौट कर जब महर्षि ने दालान में अपना आसन ग्रहण किया उनके साथ जो आये थे वे भी थोड़ी देर तक रात को आराम करने से पहले वहीं अपनी अपनी जगह बैठ गये। महर्षि ने चौकी पर अपने आसन को कुछ ऊँचा कर लिया और एक के ऊपर दूसरा पाँव डाल कर दाहिनी जाँघ पर अपनी कुहनी टेकी और अपनी हथेली पर चिबुक धरी। उनके गाल पर हाथ की दो उँगलियाँ लगी हुई थीं। हम दोनों की नजरें मिलीं। वे लवलीन हो कर मेरी ओर ताकते ही रहे।

सोने का समय निकट था। आदत के अनुसार परिचारक दालान के लैम्प बुझाने लगा। तब महर्षि के प्रशांत नेत्रों की अनूठी ज्योति ने एक बार फिर मेरे मन को हर लिया। दालान की उस धुँधली रोशनी में वे दो दिव्य

तारात्रों के समान चमक रहे थे। मुझे स्मरण होने लगता है कि भारत के ऋषिप्रवरों की संतति के इस अंतिम सितारे की आँखों की सी विलक्षणता और कहीं नहीं मिली। जहाँ तक मर्त्य नेत्रों में दिव्य शक्ति प्रतिबिंबित हो सकती है वहाँ तक सचमुच ही इस महात्मा की आँखों में वह प्रतिबिंबित है।

धूप द्रव्यों की महक से भरा हुआ धुआँ चक्कर मारते चारों ओर फैल रहा था। मैंने उन अनिमिष, अचंचल नेत्रों की कांति की ओर टकटकी लगायी थी। इसी विचित्र दशा में कोई ४० मिनट बीते होंगे। हम दोनों मौन साधे थे। बात-चीत की कौन सी जरूरत ही थी जब मौन व्याख्या ही से वस्तुसत्ता का ज्ञान हो रहा था। शब्द विकार के बिना ही हम एक दूसरे को अच्छी तरह समझ रहे थे। इस गंभीर मौन दशा में हम दोनों के मन एक विचित्र पर अति सुंदर संगीत में लीन हो गये। इस चाक्षुष मनोग्रहण में मुझे एक सुस्पष्ट अनुक्त संदेश मिल ही गया। जीवन के बारे में महर्षि के दृष्टिकोण की एक संस्मरणीय रहस्यभरी झाँकी मुझे मिल गयी। मेरा आभ्यन्तर जीवन उनकी जीवन ज्योति में मिल कर घुलने लगा।

× × ×

बुखार चढ़ा ही चाहता था किन्तु मैंने उसकी एक न चलने दी और दो दिन तक उसे दूर भी रख सका।

शाम का समय था। बूढ़े स्टेशन मास्टर मेरी कुटिया पर पधारे। कुछ चिंतित हो कर उन्होंने कहा :

"भाई साहब अब हमारे बीच में आपका शुभ निवास समाप्त हुआ ही चाहता है। किन्तु किसी दिन आप जरूर यहाँ लौटेंगे ही।"

मेरे हृदय कुहर से उनकी बातों का उत्तर गूँज उठा—"निस्संदेह जरूर लौटूँगा ही।"

चलने लगा तो मैं चौखट पर खड़े हो कर उस पवित्र ज्योतिर्गिरि अरुणाचल को देखने लगा। वह मेरे सारे जीवन चित्र की रंजित भित्ति सा बन

गया है। हमेशा, खाते-पीते, चलते-फिरते, सोचते-विचारते, चाहे जो भी करता रहूँ, आँख उठाते ही मेरे सामने या खिड़कियों के सींखचों के बाहर खुली जगह में उस पर्वतराज के चपटे शिखर की निराली मूर्ति खड़ी रहती है। यहाँ इस पर्वतराज के गंभीर दर्शन से बचना असंभव है, बल्कि यों कहिये कि उसने मेरे ऊपर जो जादू फेरी है उससे बचना इससे भी अधिक ग़ैरमुमकिन है। मैं चकित हूँ कि क्या इस एकान्त पर्वत शिखर ने मुझे सम्मोहित तो नहीं किया है। लोगों में यह कथन प्रचलित है कि यह शिखर एकदम खोखला है, जिसमें मानवों के चर्म चक्षुओं के लिये अदृश्य सिद्ध पुरुष रहते हैं। लेकिन मेरे नज़दीक यह बच्चों की दन्तकथा मालूम होती है। यद्यपि मैंने इससे भी उत्तम पहाड़ी चोटियों की सुन्दरता की बहार लूटी है तब भी इस एकान्त शिला ने मुझ पर गजब की जादू फेर दी है। यह अचल अरुणागिरि प्रकृति का एक खुरदुरा भूमिखंड है। इस पर बड़े बड़े लाल पत्थर यत्र-तत्र बिखरे पड़े रहते हैं। धूप में यह पर्वत एक मंद ज्वाला के समान चमकता रहता है। इस गिरिवर का एक महिमामय अनुभाव है जिसके कारण उसके चारों ओर गजब का प्रभाव स्पष्ट रूप से प्रसारित होता रहता है।

गोधूलि के समय तक महर्षि के अतिरिक्त बाकी सबों से मैंने छुट्टी ले ली थी। मुझे इस बात की प्रसन्नता थी कि आध्यात्मिक आधार के पाने में मैं विजयी हुआ था। इस संग्राम में जीत पाने के लिए अपनी प्रिय विचार शक्ति को ताक़ पर रख कर अंधविश्वास का मुझे आश्रय नहीं लेना पड़ा। लेकिन थोड़ी देर बाद मेरे साथ जब महर्षि आँगन में चलने लगे तो मेरा सारा संतोष एकबारगी गायब हो गया। यह महात्मा किसी अज़ीब ढंग से मुझ पर ग़ालिब हो गये। इस कारण इनसे विदा होते मेरे दिल में तूफ़ान सा उठ रहा था। उन्होंने मुझे लोहे की जंजीरों से दृढ़ परन्तु अदृश्य बंधनों द्वारा अपनी आत्मा से बाँध लिया। किन्तु यह भी एक भूले हुए मानव को सच्चाई का पता चला कर, स्वस्थिति में कायम रखने के लिये ही था, उसे विमुक्त करने के लिये था, न कि बाँध कर रखने के लिए। वे मुझे मेरे अध्यात्म के कृपालोक में ले चले। मुझ मंदबुद्धि पश्चिम की संतान को उन्होंने अर्थ रहित शब्द मात्र के

रहस्य का उन्मीलन करके उसको एक जीती जागती आनन्दमय अनुभूति में परिणत करने में बड़ी सहायता पहुँचाई।

विदाई का समय निकट था। मेरा दिल आगा-पीछा कर रहा था। मेरे हृदय में लहर मारने वाले अथाह भावावेग के कारण कुछ कहते नहीं बनता था। नील गगन में हमारे मस्तकों पर अगणित तारागण बिखरे हुए थे। उदीयमान चन्द्र के रजत मय प्रकाश की एक रेखा दूर दिखाई दे रही थी। वाम भाग में संध्या काल के जुगनू हर कहीं झाड़ियों के बीच में टिमटिमाते हुए चमक रहे थे। उनके बीच में से दीर्घकाय ताल वृक्ष अपने पत्रमय उन्नत मस्तकों को उठा कर नील आकाश से मूक संभाषण में तल्लीन हो रहे थे।

मेरे कायापलट की यह अद्भुत कहानी यहीं समाप्त होती है। किन्तु मेरा विश्वास था कि निरंतर भ्रमणशील काल चक्र के फेर में मैं यहाँ फिर आऊँगा ही। मैंने अपने हाथ उठा कर आचार के अनुसार प्रणाम किया और थोड़े शब्दों में विदायी की बात तुतला दी। महर्षि मुस्कराये और अचल दृष्टि से मेरी ओर ताकने लगे; किन्तु उनके मुँह से एक शब्द भी नहीं निकला।

आखिरी बार महर्षि की ओर एक दृष्टि, लैम्प की उस धुँधली कांति में दृष्टि होने वाले दिव्य नेत्र वाली तेजोमूर्ति की ओर एक आखिरी चितवन, और विदा होने का मेरा एक इशारा, उत्तर में उनका दाहना हाथ उठा कर संकेत करना, फिर मेरा बिछुड़ना!

फाटक पर आकर मैं एक बैलगाड़ी पर चढ़ा। गाड़ीवान ने उन बेचारे बैलों को कोड़ा लगाया। वे आश्रम की पवित्र भूमि से होकर शहर की सड़क पर आ गये और मल्लिका की भीनी महक से सुरभित भारत की उस उज्ज्वल रात में अपने गन्तव्य स्थान की ओर दौड़ने लगे।